

चाहिये। यव, तिल, दधि, गर्थ-पुष्पादिसे युक्त अर्घ्यद्वारा सबकी पूजा करनी चाहिये तथा सभी ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। ब्राह्मणोंको मधुर मिष्ठान भोजन कराना चाहिये। भोजनमें कटु पदार्थ नहीं होने चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पिण्डदान देना चाहिये। दही-अक्षतका पिण्ड बनाये। एक चौरस मण्डप बनाकर उसकी प्रदक्षिणा करे। सव्य होकर हाथसे पूर्वाग्र कुशों तथा पुष्पोंको चढ़ाना चाहिये। माता, प्रमाता, वृद्धप्रमाता, पितामही, प्रपितामही, वृद्धप्रपितामही तथा अन्य अपने कुलमें जो भी माताएँ हों, उन्हें आदरपूर्वक निमन्त्रित करना चाहिये। इस प्रकार माताओंको उद्दिष्ट कर छः पिण्ड बनाकर पूजन

करना चाहिये। नान्दीमुखको उद्दिष्ट कर पाँच उत्तम ब्राह्मणोंको पाँच पितरोंके रूपमें भोजन कराना चाहिये। नान्दीमुख-श्राद्धमें ब्राह्मणोंको विधिवत् भोजन कराकर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

खगपते! श्राद्धमें दौहित्र अर्थात् नाती, कुतुप वेला (एक बजे दिनका समय) और तिल—ये तीन पवित्र माने गये हैं तथा तीन प्रशंसायोग्य कहे गये हैं—शुद्धि, अक्रोध और शीघ्रता न करना। एक वस्त्र धारण कर देव-पूजन और पितरोंके कर्म नहीं करने चाहिये। बिना उत्तरीय वस्त्र धारण किये पितर, देवता और मनुष्योंका पूजन, अर्चन तथा भोजन आदि सब कार्य निष्फल होता है।

(अध्याय १८५)

सौर-धर्ममें शुद्धि-प्रकरण

भगवान् भास्करने कहा—खगाधिप! ब्राह्मणोंको नित्य पवित्र तथा मधुरभाषी होना चाहिये, उन्हें प्रतिदिन स्नानादिसे पवित्र हो चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंको धारणकर देवताओंका पूजन आदि करना चाहिये। सूर्यको निष्प्रयोजन नहीं देखना चाहिये और नग्न स्त्रीको भी नहीं देखना चाहिये। मैथुनसे दूर रहना चाहिये। जलमें मूत्र तथा विषाका परित्याग नहीं करना चाहिये। शास्त्रोक्त नियमोंके अनुसार कर्म करने चाहिये। शास्त्र-वर्णित कर्मानुष्ठानके अतिरिक्त कोई भी व्रतादि नहीं करने चाहिये।

खगाधिपते! अभक्ष्य-भक्षण सभी वर्णोंके लिये वर्जित है। द्रव्यकी शुद्धि होनेपर ही कर्मकी शुद्धि होती है अन्यथा कर्मके फलकी प्राप्तिमें संशय ही बना रहता है। जातिसे दुष्ट, क्रियासे दुष्ट, कालसे दुष्ट, संसर्गसे दुष्ट, आश्रयसे दुष्ट तथा सहल्लेख (स्वभावतः निन्दित एवं अभक्ष्य) पदार्थमें अथवा दूषित हृदयके एवं कपटी व्यक्तिके स्वभावमें परिवर्तन नहीं होता। लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुत्ता,

बैगन (सफेद) तथा मूली (लाल) आदि जात्या दूषित हैं। इनका भक्षण नहीं करना चाहिये। जो वस्तु क्रियाके द्वारा दूषित हो गयी हो अथवा पतितोंके संसर्गसे दूषित हो गयी हो, उसका प्रयोग न करे। अधिक समयतक रखा गया पदार्थ कालदूषित कहलाता है, वह हानिकर होता है, पर दही तथा मधु आदि पदार्थ कालदूषित नहीं होते। सुरा, लहसुन तथा सात दिनके अंदर ब्यायी हुई गायके दूधसे युक्त पदार्थ और कुत्तेद्वारा स्पर्श किये गये पदार्थ संसर्ग-दुष्ट कहे जाते हैं। इन पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये। शूद्रसे तथा विकलाङ्ग आदिसे स्पृष्ट पदार्थ आश्रय-दूषित कहा जाता है। जिस वस्तुके भक्षण करनेमें मनमें स्वभावतः घृणा उत्पन्न हो जाती है, जैसे पुरीष (विष्ठा)-के प्रति स्वभावतः घृणा उत्पन्न होती है—उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। वह सहल्लेख दोषयुक्त पदार्थ कहा गया है। खीर, दूध, पाकादिका भक्षण शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ही करना चाहिये।



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

सपिण्डमें दस दिन, बारह दिन अथवा पंद्रह दिन और एक मासमें प्रेत-शुद्धि हो जाती है। सूतकाशौच तथा मरणाशौचमें दस दिनके भीतर किसी व्यक्तिके यहाँ भोजन नहीं करना चाहिये। दशगात्र एवं एकादशात्रके बीत जानेपर बारहवें दिन स्नान करनेसे शुद्धि हो जाती है। संवत्सर पूर्ण हो जानेपर स्नान-मात्रसे ही शुद्धि हो जाती है। सपिण्डमें जन्म और मृत्यु होनेपर अशौच लगता है। दाँत आनेतकके बालककी मृत्यु हो जानेपर सद्यः शुद्धि हो जाती है। चूडाकरणके पहले बालककी मृत्यु हो जानेपर एक दिन-रातकी अशुद्धि होती है तथा चूडाकरणके बाद और यज्ञोपवीत लेनेके पहले मृत्यु होनेपर त्रिरात्र अशुद्धि होती है और इसके अनन्तर दशरात्रकी

अशुद्धि होती है। गर्भस्नाव हो जानेपर तीन रात्रिके पश्चात् जलसे स्नान करनेके बाद शुद्धि होती है। असपिण्डी (एवं सगोत्री)-की मृत्यु होनेपर तीन अहोरात्रके बाद शुद्धि होती है। यदि केवल शव-यात्रा करता है तो स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है।

द्रव्यकी शुद्धि आगमें तपाने, मिट्टी और जलसे धोने तथा मल हटाने, प्रक्षालन करने, स्पर्श और प्रोक्षण करनेसे होती है। द्रव्य-शुद्धिके पश्चात् स्नान करनेसे शुद्धि होती है। प्रातःकालका स्नान नित्य-स्नान है, ग्रहणमें स्नान करना काम्य-स्नान है तथा क्षौर और शौचादिके पश्चात् जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान है, इससे पापादिकी निवृत्ति होती है।

(अध्याय १८६)

श्रद्धाकी महिमा, खखोल्क-मन्त्रका महात्म्य तथा गौकी महिमा

अरुणने पूछा—भगवन्! आदित्यदेव! मनुष्य किस पुण्यकर्मका सम्पादन कर स्वर्ग जाते हैं? कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ध्यानयज्ञ और ज्ञानयज्ञ—इन पाँच यज्ञोंमें सर्वोत्तम यज्ञ कौन है? इन यज्ञोंका क्या फल है और इनसे कौन-सी गति प्राप्त होती है? धर्म और अधर्मके कितने भेद कहे गये हैं? उनके साधन क्या हैं और उनसे कौन-सी गति होती है। नारकी पुरुषोंके पुनः पृथ्वीपर आनेपर भोगसे शेष कर्मोंके कौन-कौनसे चिह्न उपलब्ध रहते हैं। इस धर्माधर्मसे व्यास भवसागर तथा गर्भमें आगमनरूपी दुःखसे कैसे मुक्ति प्राप्त होती है? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् सूर्य बोले—अरुण! स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)-के फलको देनेवाले तथा नरकरूपी समुद्रसे पार करानेवाले, पापहारी एवं पुण्यप्रद धर्मको सुनो।

धर्मके पूर्वमें तथा मध्यमें और उसके अन्तमें श्रद्धा आवश्यक है। श्रद्धानिष्ठ ही धर्म प्रतिष्ठित होता है, अतः धर्म श्रद्धामूलक ही है। वेद-मन्त्रोंके अर्थ अतीव गूढ़तम हैं। उनमें प्रधान पुरुष परमेश्वर अधिष्ठित हैं, अतः इन्हें श्रद्धाके आश्रयसे ही ग्रहण किया जा सकता है। ये इस बाह्य चक्षुसे नहीं देखे जाते। श्रद्धारहित देवता भी भाँति-भाँतिके शरीरको कष्ट देनेपर तथा अत्यधिक अर्थव्यय करनेपर भी धर्मके सूक्ष्मरूप वेदमय परमात्माको नहीं प्राप्त कर सकते। श्रद्धा परम सूक्ष्म धर्म है, श्रद्धा यज्ञ है, श्रद्धा हवन, श्रद्धा तप, श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है। यह सम्पूर्ण जगत् श्रद्धामय ही है, अश्रद्धासे सर्वस्व जीवन देनेपर भी कुछ फल नहीं होता। बिना श्रद्धाके किया गया कार्य सफल नहीं होता। अतः मानवको श्रद्धा-सम्पन्न होना चाहिये*।

* श्रद्धापूर्वः सदा धर्मः श्रद्धामध्यान्तसंस्थितः । श्रद्धानिष्ठप्रतिष्ठित धर्मः श्रद्धा प्रकीर्तिता ॥

श्रुतिमन्त्ररसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वरः । श्रद्धामात्रेण गृह्णन्ते न परेण च चक्षुषा ॥

हे खगश्रेष्ठ ! अब मेरे मण्डलके विषयमें सुनो । मेरा कल्याणमय मण्डल खखोल्क नामसे विख्यात है । यह तीनों देवों एवं तीनों गुणोंसे परे एवं सर्वज्ञ है । यह सर्वशक्तिमान् है । 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रमें यह मण्डल अवस्थित है । जैसे घोर संसार-सागर अनादि है वैसे ही खखोल्क भी अनादि और संसार-सागरका शोधक है । जैसे व्याधियोंके लिये ओषधि होती है वैसे ही यह संसार-सागरके लिये ओषधि है । मोक्ष चाहनेवालोंके लिये मुक्तिका साधन और सभी अर्थोंका साधक है । खखोल्क नामका यह मेरा मन्त्र सदा उच्चारण एवं स्मरण करने योग्य है । जिसके हृदयमें यह 'ॐ नमः खखोल्काय' मन्त्र स्थित है, उसीने सब कुछ पढ़ा है, सुना है और सब कुछ अनुष्ठित किया है—ऐसा समझना चाहिये ।

मनीषियोंने इस खखोल्कको मार्त्णिके नामसे कहा है । उसके प्रति श्रद्धायुक्त होनेपर पुण्य प्राप्त होता है और अश्रद्धासे अधःपतन होता है । सूर्य-सम्बन्धी वचनको कहनेवाले गुरुकी सूर्यके समान पूजा करनी चाहिये । वह गुरु भवसागरमें निमग्न व्यक्तिका उद्धार कर देता है । सौरधर्मरूपी शीतल जलके द्वारा जो अज्ञानरूपी वहिसे संतप्त मनुष्यको शान्त करता है, उसके समान गुरु कौन होगा ? जो भक्तोंको ज्ञानरूपी अमृतसे आप्लावित करते हैं, भला उनकी कौन पूजा नहीं करेगा । स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)-की प्राप्तिके लिये देवाधिदेव सूर्यके द्वारा जो वाक्य कहे गये हैं, वे अतिशय कल्याणकारी हैं । राग, द्वेष, अक्षमा, क्रोध, काम, तृष्णाका अनुसरण करनेवाले व्यक्तिका कहा हुआ वाक्य नरकका साधन होनेसे दुर्भाषित कहा जाता

है । अविद्यात्मक संसारके क्लेश-साधक मुदुल आलापवाले संस्कृत वाक्यसे भी क्या लाभ है ? जिस वाक्यके सुननेसे राग-द्वेष आदिका नाश एवं पुण्य प्राप्त होता है, वह कठोर वाक्य भी अतिशय शोभाजनक है । स्मृतियाँ, महाभारत, वेद, महान् शास्त्र यदि धर्म-साधक न बन सकें तो इनका अध्ययनमात्र अपनी आयुके व्यतीत करनेके लिये ही है । सहस्रों वर्षकी आयु प्राप्त करनेपर भी शास्त्रका अन्त नहीं मिलता । अतः सभी शास्त्रोंको छोड़कर अक्षर तन्मात्र (परमात्मा)-का ज्ञान कर परलोकके अनुरूप आचरण करना चाहिये । मनुष्योंके समर्थ शरीरसे भी क्या लाभ है जो पारलौकिक पुण्य-भारको वहन करनेमें असमर्थ है । जो सौर-ज्ञानके माहात्म्यको उच्चारण करनेमें असमर्थ है, वह शक्तिसम्पन्न और पण्डित होते हुए भी मूर्ख है । इसलिये जो सौर-ज्ञानके सद्वावकी महिमामें तत्पर रहता है, वही पण्डित, समर्थ, तपस्वी और जितेन्द्रिय है । जो नृप गुरुको सम्पूर्ण पृथिवी, धन और सुवर्ण आदि देकर भी यदि अन्यायपूर्वक सौर-ज्ञानकी जिज्ञासा करता है अर्थात् अन्यायाचरण करते हुए पूछता है तो उसे षडक्षर-मन्त्रका उपदेश गुरुको नहीं देना चाहिये । जो भगवान् सूर्यके धर्मको न्यायपूर्वक विनम्र भावसे सुनता है और कहता है, वह उचित स्थानको प्राप्त करता है, अन्यथा उसके विपरीत नरकको जाता है ।

जो भगवान् सूर्यके षडक्षर-मन्त्रसे विधानपूर्वक गोदुग्धद्वारा सूर्यकी पूजा करता है वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ है । देवासुरोंद्वारा मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे सभी लोकोंकी मातृस्वरूपा पाँच गौएँ उत्पन्न हुईं—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुमना तथा शोभनावती ।

कायक्लेशैर्न बहुभिर्न चैवार्थस्य रशिभिः । धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैः सुररपि ॥

श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा यज्ञाहुतं तपः । श्रद्धा मोक्षश्च स्वर्गश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ॥

सर्वस्व जीवितं वापि दद्यादश्रद्धया च यः । नापृयात् स फलं किंचित् तस्माच्छ्रद्धापरो भवेत् ॥ (ब्राह्मपर्व १८७।९—१३)

गौएँ तेजमें सूर्यके समान हैं। ये सम्पूर्ण संसारका उपकार करनेके लिये एवं देवताओंकी तृप्तिके लिये और मुझे स्नान करानेके लिये उत्पन्न हुई हैं। ये मेरा ही आधार लेकर स्थित हैं। गौओंके सभी अङ्ग पवित्र हैं। उनमें छहों रस निहित हैं। गायके गोबर, मूत्र, गोरोचन, दूध, दही तथा घृत—ये छः पदार्थ परम पवित्र हैं तथा सभी सिद्धियोंको देनेवाले हैं। सूर्यका परम प्रिय बिल्ववृक्ष गोमयसे ही उत्पन्न हुआ है, उस वृक्षपर कमलहस्ता लक्ष्मी विराजमान रहती है, अतः यह श्रीवृक्ष कहा जाता है। गोमयसे पङ्क उत्पन्न होता है और उससे कमल उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन परम मङ्गलमय, पवित्र और सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। गोमूत्रसे सभी देवोंका आहार-स्वरूप विशेषकर भास्करके लिये भोग्य एवं प्रियदर्शन सुगन्धित गुगुल उत्पन्न हुआ है। जगत्के सभी बीज क्षीरसे उत्पन्न हुए हैं। कामनाकी सिद्धिके लिये सभी माङ्गल्य वस्तु दहीसे उत्पन्न समझें। देवोंका अतिशय प्रिय अमृत घृतसे उत्पन्न है, अतः घी, दूध, दहीसे भगवान् सूर्यको स्नान कराना चाहिये। अनन्तर उष्ण जल और कषायसे स्नपन कराना चाहिये। फिर शीतल जलसे स्नान कराकर गोरोचनका लेपन एवं बिल्वपत्र, कमल और नीलकमलसे

पूजन करना चाहिये। शर्करायुक्त गुगुलसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। दूध, दही, भात, मधुके साथ शर्करा एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंको निवेदित करे। इसके बाद भगवान् भास्करकी प्रदक्षिणा कर उनसे क्षमा-याचना करे।

इस विधिसे जो दिनपति भगवान् भानुकी पड़ङ्ग-पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर अपने कुलकी इक्कीस पीढ़ियोंको स्वर्गमें ले जाता है तथा उन्हें वहाँ प्रतिष्ठित कर स्वयं ज्योतिष्क नामक स्थानको प्राप्त करता है। भगवान् भास्करकी पूजामें पत्र, पुष्प, फल, जल जो भी अर्पित होता है वह सब तथा सूर्य-सम्बन्धी गौएँ भी सूर्यलोकको प्राप्त करती हैं, इसमें संदेह नहीं है। देश, काल तथा विधिके अनुरूप श्रद्धापूर्वक सुपात्रको दिया गया अल्प भी दान अक्षय होता है। हे वीर! तिलका अर्धपरिमाणमात्र सत्पात्रको दिया गया श्रद्धापूर्वक दान सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। जिसने ज्ञानरूपी जलसे स्नान कर लिया है और शीलरूपी भस्मसे अपनेको शुद्ध कर लिया है, वह सभी पात्रोंमें उत्तम सत्पात्र माना गया है। जप, इन्द्रियदमन और संयम मनुष्यको संसार-सागरसे पार उतारनेवाले साधन हैं। (अध्याय १८७)

पञ्चमहायज्ञ एवं अतिथि-माहात्म्य-वर्णन, सौर-धर्ममें दानकी महत्ता और पात्रापात्रका निर्णय तथा पञ्च महापातक

सप्तश्ववाहन (भगवान् सूर्य)-ने कहा—हे वीर! जो प्राणी सूर्य, अग्नि, गुरु तथा ब्राह्मणको निवेदन किये बिना स्वयं जो कुछ भी भक्षण

करता है वह पाप-भक्षण करता है। गृहस्थ मनुष्योंके कृषिकार्यसे, वाणिज्यसे, क्रोध और असत्य आदिके आचरणसे तथा पञ्चसूना*-दोषसे

* भोजन पकानेका स्थान (चूल्हा), आटा आदि पीसनेका स्थान (चक्की आदि) मसाला आदि कूटने-पीसनेका स्थान (लोड़ा, सिलवट आदि), जल रखनेका स्थान तथा झाड़ू देनेका काम—इनमें अनजाने ही हिंसाकी साम्भावना रहती है। अतः गृहस्थके लिये इन्हें ही पञ्चसूना-दोष कहा गया है।

पाप होते हैं। सूर्य, गुरु, अग्नि और अतिथि आदिके सेवारूप पञ्चमहायज्ञोंसे ये पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य पापोंसे भी वह लिस नहीं होता, अतः इनकी नित्य पूजा करनी चाहिये। देवाधिदेव दिवाकरके प्रति जो इस प्रकार भक्ति करता है, वह अपने पितरोंको सभी पापोंसे विमुक्त कर स्वर्ग ले जाता है।

हे खग ! भगवान् सूर्यके दर्शनमात्रसे ही गङ्गा-स्नानका फल एवं उन्हें प्रणाम करनेसे सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है तथा सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। संध्या-समयमें सूर्यकी सेवा करनेवाला सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक बार भी भगवान् सूर्यकी आराधना करनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पितृगण तथा सभी देवगण एक ही साथ पूजित एवं संतुष्ट हो जाते हैं।

श्रद्धमें भगवान् सूर्यकी पूजा करने तथा सौर-भक्तोंको भोजन करनेसे पितृगण तृप्त हो जाते हैं। पुराणवेत्ताको आते हुए देखकर सभी ओषधियाँ यह कहकर आनन्दसे नृत्य करने लगती हैं कि आज हमें अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा। पितृगण एवं देवगण अतिथिके रूपमें लोकके अनुग्रह और श्रद्धाके परीक्षणके लिये आते हैं, अतः अतिथिको आया हुआ देखकर हाथ जोड़कर उसके सम्मुख जाना चाहिये तथा स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अन्न आदिद्वारा उसकी सेवा करनी चाहिये। अतिथि रूप-सम्पन्न है या कुरूप, मलिन वस्त्रधारी है अथवा स्वच्छ वस्त्रधारी इसपर विद्वान् पुरुषको विचार नहीं करना चाहिये; उसका यथेष्ट स्वागत करना चाहिये।

अरुण ! दान सत्पात्रको ही देना चाहिये, जैसे कच्चे मिट्टीके पात्रमें रखा हुआ द्रव—जल आदि पदार्थ नष्ट हो जाता है, जैसे ऊषर-भूमिमें बोया गया बीज और भस्ममें हवन किया गया हव्य

पदार्थ निष्फल हो जाता है, वैसे ही अपात्रको दिया गया दान भी निष्फल हो जाता है।

खगश्रेष्ठ ! जो दान करुणापूर्वक श्रद्धाके साथ प्राणियोंको दिया जाता है, वह सभी कर्मोंमें उत्तम है। हीन, अन्ध, कृपण, बाल, वृद्ध तथा आतुरको दिये गये दानका फल अनन्त होता है। साधु पुरुष दाताके दानको अपने स्वार्थका उद्देश्य न रखकर ग्रहण करते हैं। इससे दाताका उपकार होता है। कोई अर्थी यदि घरपर आये तो कौन ऐसा व्यक्ति है जो उसका आदर नहीं करेगा। घर-घर याचना करनेवाला याचक पूज्य नहीं होता। कौन दाता है और कौन याचक इसका भेद देने और लेनेवालेके हाथसे ही सूचित हो जाता है। जो दाता व्यक्ति याचकको आया हुआ देखकर दान देनेकी अपेक्षा उसकी पात्रतापर विचार करता है, वह सभी कर्मोंको करता हुआ भी पारमार्थिक दाता नहीं है। संसारमें यदि याचक न हों तो दानधर्म कैसे होगा ? इसलिये याचकको 'स्वागत है, स्वागत है'—यह कहते हुए दान देना चाहिये।

याचकको प्रेमपूर्वक आधा ग्रास भी दिया जाय तो वह श्रेष्ठ है, किंतु बिना प्रेमका दिया हुआ बहुत-सा दान भी व्यर्थ है, ऐसा मनीषियोंने कहा है। इसलिये अनन्त फल चाहनेवाले व्यक्तिको सत्कारपूर्वक दान देना चाहिये। इससे मरनेपर भी उसकी कीर्ति बनी रहती है। प्रिय एवं मधुर वचनोंद्वारा दिया गया दान कल्याणकारी है, किंतु कठोरतासे असत्कारपूर्वक दिया गया दान युक्त दान नहीं है। अन्तरात्मासे क्रुद्ध होकर याचकको दान देनेसे न देना अच्छा है। प्रेमसे रहित दान न धर्म है, न धन है, न प्रीति है। दान, प्रदान, नियम, यज्ञ, ध्यान, हवन और तप—ये सभी क्रोधके साथ करनेपर निष्फल हो जाते हैं*।

* न तद्वानमसत्कारापारपूर्वमलिनीकृतम् । वरं न दत्तमर्थिभ्यः संकुद्धेनान्तरात्मना ॥

न तद्वनं न च प्रीतिर्न धर्मः प्रियवर्जितः । दानप्रदाननियमयज्ञध्यानं हुतं तपः ॥

यत्रेनापि कृतं सर्वं क्रोधोऽस्य निष्फलं खग ॥ (ब्राह्मपर्व १८९। १९-२०)

श्रद्धाके साथ आदरपूर्वक ग्रहीताका अर्चन कर दान देनेवाले तथा श्रद्धा एवं आदरपूर्वक दान ग्रहण करनेवाले—दोनों स्वर्ग प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत देना और लेना ये दोनों नरक-प्राप्तिके कारण बन जाते हैं। उदारता, स्वागत, मैत्री, अनुकम्मा, अमत्सर—इन पाँच प्रकारोंसे दिया गया दान महान् फल देनेवाला होता है।

हे खगश्रेष्ठ ! वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गङ्गा और समुद्रतट, नैमिषारण्य, महापुण्य, मूलस्थान, मुण्डीरस्वामी (उड़ीसाका कोणार्कक्षेत्र), कालप्रिय (कालपी), क्षीरिकावास—ये स्थान देवताओं और पितरोंसे सेवित कहे गये हैं। सभी सूर्याश्रम, पर्वतोंसे युक्त सभी नदियाँ, गौ, सिद्ध और मुनियोंसे प्रतिष्ठित स्थान पुण्यक्षेत्र कहे गये हैं। सूर्यमन्दिरसे युक्त स्थानोंमें रहनेवालेको दिया गया थोड़ा भी दान क्षेत्रके प्रभावसे अनन्त फलप्रद होता है। सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, उत्तरायण विषुव, व्यतीपात, संक्रान्ति—ये सब पुण्यकाल कहे गये हैं। इनमें दान देनेसे पुण्यकी वृद्धि होती है। भक्तिभाव, परमप्रीति, धर्म, धर्मभावना तथा प्रतिपत्ति—ये पाँच श्रद्धाके पर्याय हैं। श्रद्धापूर्वक विधानके साथ सुपात्रको दिया गया दान उत्तम एवं अनन्त फलप्रद कहा गया है, अतः अक्षय पुण्यकी इच्छासे श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। इसके विपरीत दिया गया दान भारस्वरूप ही है। आर्त, दीन और गुणवान्‌को श्रद्धाके साथ थोड़ा भी दिया गया दान सभी कामनाओंका पूरक और सभी श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करानेवाला होता है। मनीषियोंने श्रद्धाको ही दान माना है। श्रद्धा ही दान, श्रद्धा ही परम तप तथा श्रद्धा ही यज्ञ और श्रद्धा ही परम उपवास है। अहिंसा, क्षमा, सत्य, नग्रता, श्रद्धा, इन्द्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप तथा ध्यान

—ये दस धर्मके साधन हैं।

पर-स्त्री तथा पर-द्रव्यकी अपेक्षा करनेवाला और गुरु, आर्त, अशक्त, विदेशमें गये हुए तथा शत्रुसे पराभूत व्यक्तिको कष्ट देनेवाला पापकर्मा कहा जाता है। ऐसे व्यक्तियोंका परित्याग कर देना चाहिये, किंतु उसकी भार्या तथा उसके मित्र एवं पुत्रका अपमान नहीं करना चाहिये ? उनका अवमान करना गुरुनिन्दाके समान पातक माना गया है। ब्राह्मणको मारनेवाला, सुरा-पान करनेवाला, स्वर्ण-चोर, गुरुकी शव्यापर शयन करनेवाला एवं इनके साथ सम्पर्क रखनेवाला—ये पाँच महापातकी कहे गये हैं। जो क्रोध, द्वेष, भय एवं लोभसे ब्राह्मणका अपमान करता है, वह ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो याचना करनेवालेको और ब्राह्मणको बुलाकर ‘मेरे पास कुछ नहीं है’ ऐसा कहकर बिना कुछ दिये लौटा देता है, वह चाण्डालके समान है। देव, द्विज और गौके लिये पूर्वप्रदत्त भूमिका जो अपहरण करता है, वह ब्रह्मघाती है। जो मूर्ख सौरज्ञानको प्राप्तकर उसका परित्याग कर देता है अर्थात् तदनुकूल आचरण नहीं करता, उसे सुरा-पान करनेवालेके समान जानना चाहिये। अग्निहोत्रके परित्यागी, माता और पिताके परित्यागी, कुकर्मके साक्षी, मित्रके हन्ता, सूर्यभक्तोंके अप्रियको और पञ्चयज्ञोंके न करनेवाले, अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले तथा निरपराध प्राणियोंको मारनेवालेको सर्वाधिपत्यकी प्राप्ति नहीं होती। सर्वजगत्पति भानुकी आराधनासे आत्मलोकका आधिपत्य प्राप्त होता है। अतः मोक्षकामीको भोगकी आसक्तिका परित्याग कर देना चाहिये। जो विरक्त हैं, शान्तचित्त हैं, वे सूर्यसम्बन्धी लोकको प्राप्त करते हैं।

(अध्याय १८८-१८९)

पातक, उपपातक, यममार्ग एवं यमयातनाका वर्णन

सप्तश्वतिलक भगवान् सूर्यने कहा—खगश्रेष्ठ!
मानसिक, वाचिक तथा कायिक-भेदसे पाप अनेक प्रकारके होते हैं, जो नरक-प्राप्तिके कारण हैं, उन्हें मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ—

गौओंके मार्गमें, वनमें नगरमें और ग्राममें आग लगाना आदि सुरापानके समान महापातक माने गये हैं। पुरुष, स्त्री, हाथी एवं घोड़ोंका हरण करना तथा गोचरभूमिमें उत्पन्न फसलोंको नष्ट करना, चन्दन, अगरु, कपूर, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र आदिकी चोरी करना और धरोहर (थाती) वस्तुका अपहरण करना—ये सभी सुवर्णस्तेयके समान महापातक माने गये हैं। कन्याका अपहरण, पुत्र एवं मित्रकी स्त्री तथा भगिनीके प्रति दुराचरण, कुमारी कन्या और अन्त्यजकी स्त्रीके साथ सहवास, सवर्णके साथ गमन—ये सभी गुरु-शाय्यापर शयन (गुरुपत्नी-गमन)-के समान महापातक माने गये हैं।

ब्राह्मणको अर्थ देनेका वचन देकर नहीं देनेवाले, सदाचारिणी पत्नीका परित्याग करनेवाले, साधु, बन्धु एवं तपस्वियोंका त्याग करनेवाले, गौ, भूमि, सुवर्णको प्रयत्नपूर्वक चुरानेवाले, भगवद्भक्तोंको उत्पीड़ित करनेवाले, धन, धान्य, कूप तथा पशु आदिकी चोरी करनेवाले तथा अपूज्योंकी पूजा करनेवाले—ये सभी उपपातकी हैं।

नारियोंकी रक्षा न करना, ऋषियोंको दान न देना, देवता, अग्नि, साधु, साध्वी, गौ तथा ब्राह्मणकी निन्दा करना, पितर एवं देवताओंका उच्छेद, अपने कर्तव्य-कर्मका परित्याग, दुःशीलता, नास्तिकता, पशुके साथ कदाचार, रजस्वलासे दुराचार, अप्रिय बोलना, फूट डालना आदि उपपातक कहे गये हैं।

जो गौ, ब्राह्मण, सस्य-सम्पदा, तपस्वी और साधुओंके दूषक हैं, वे नरकगामी हैं। परिश्रमसे

तपस्या करनेवालेका छिद्रान्वेषण करनेवाला, पर्वत, गोशाला, अग्नि, जल, वृक्षोंकी छाया, उद्धान तथा देवायतनमें मल-मूत्रका परित्याग करनेवाला, काम, क्रोध तथा मदसे आविष्ट पराये दोषोंके अन्वेषणमें तत्पर, पाखण्डियोंका अनुगामी, मार्ग रोकनेवाला, दूसरेकी सीमाका अपहरण करनेवाला, नीच कर्म करनेवाला, भृत्योंके प्रति अतिशय निर्दयी, पशुओंका दमन करनेवाला, दूसरोंकी गुस बातोंको कान लगाकर सुननेवाला, गौको मारने अथवा उसे बार-बार त्रास देनेवाला, दुर्बलकी सहायता न करनेवाला, अतिशय भारसे प्राणीको कष्ट देनेवाला और असमर्थ पशुको जोतनेवाला—ये सभी पातकी कहे गये हैं तथा नरकगामी होते हैं। जो परोक्षमें किसी प्रकार भी सरसोंके बराबर किसीका धन चुराता है, वह निश्चित ही नरकमें जाता है। ऐसे पापियोंको मृत्युके उपरान्त यमलोकमें यातना-शरीरकी प्राप्ति होती है। यमकी आज्ञासे यमदूत उसे यमलोकमें ले जाते हैं और वहाँ उसे बहुत दुःख देते हैं। अधर्म करनेवाले प्राणियोंके शास्ता धर्मराज कहे गये हैं। इस लोकमें जो परस्त्रीगामी हैं, चोरी करते हैं, किसीके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं तो इस लोकका राजा उन्हें दण्ड देता है। परंतु छिपकर पाप करनेवालोंको धर्मराज दण्ड देते हैं। अतः किये गये पापोंका प्रायश्चित्त करना चाहिये। अनेक प्रकारके शास्त्र-कथित प्रायश्चित्तोंके द्वारा पातक नष्ट हो जाते हैं। शरीरसे, मनसे और वाणीसे किये गये पाप बिना भोगे अन्य किसी प्रकारसे कोटि कल्पोंमें भी नष्ट नहीं होते। जो व्यक्ति स्वयं अच्छा कर्म करता है, करता है या उसका अनुमोदन करता है, वह उत्तम सुख प्राप्त करता है।

सप्तश्वतिलक भगवान् सूर्यने पुनः कहा—हे

खगश्रेष्ठ ! पाप करनेवालोंको अपने पापके निमित्त घोर संत्रास भोगना पड़ता है। गर्भस्थ, जायमान, बालक, तरुण, मध्यम, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक सभी शरीरधारियोंको यमलोकमें अपने किये गये शुभ और अशुभ फलोंको भोगना पड़ता है। वहाँ सत्यवादी चित्रगुप्त आदि धर्मराजको जो भी शुभ और अशुभ कर्म बतलाते हैं, उन कर्मोंका फल उस प्राणीको अवश्य ही भोगना पड़ता है। जो सौम्य-हृदय, दया-समन्वित एवं शुभकर्म करनेवाले हैं, वे सौम्य पथसे और जो मनुष्य क्रूर कर्म करनेवाले एवं पापाचारमें संलग्न हैं, वे घोर दक्षिण-मार्गसे कष्ट सहन करते हुए यमपुरीमें जाते हैं। वैवस्वतपुरी छियासी हजार अस्सी योजनमें है। शुभ कर्म करनेवाले व्यक्तियोंको यह धर्मपुरी समीप ही प्रतीत होती है और रौद्रमार्गसे जानेवाले पापियोंको अतिशय दूर। यमपुरीका मार्ग अत्यन्त भयंकर है, कहीं कौटि बिछे हैं और कहीं बालू-ही-बालू है, कहीं तलवारकी धारके समान है, कहीं नुकीले पर्वत हैं, कहीं असह्य कड़ी धूप है, कहीं खाइयाँ और कहीं लोहेकी कीले हैं। कहीं वृक्षों तथा पर्वतोंसे गिराया जाता हुआ वह पापी व्यक्ति प्रेतोंसे युक्त मार्गमें दुःखित हो यात्रा करता है। कहीं ऊबड़-खाबड़, कहीं कँकरीले और कहीं तस बालुकामय मार्गोंसे चलना पड़ता है। कहीं अन्धकाराच्छन्न भयंकर कष्टमय मार्गसे बिना किसी आश्रयके जाना पड़ता है। कहीं सोंगसे परिव्यास मार्गसे, कहीं

दावागिनसे परिपूर्ण मार्गसे, कहीं तस पर्वतसे, कहीं हिमाच्छादित मार्गसे और कहीं अग्निमय मार्गसे गुजरना पड़ता है। उस मार्गमें कहीं सिंह, कहीं व्याघ्र, कहीं काटनेवाले भयंकर कीड़े, कहीं भयंकर जोंक, कहीं अजगर, कहीं भयंकर मक्षिकाएँ, कहीं विष वमन करनेवाले सर्प, कहीं विशाल बलोन्मत्त प्रमादी गजसमूह, कहीं भयंकर बिच्छू, कहीं बड़े-बड़े शृंगोंवाले महिष, रौद्र डाकिनियाँ, कराल राक्षस तथा महान् भयंकर व्याधियाँ उसे पीड़ित करती हैं, उन्हें भोगता हुआ पापी व्यक्ति यममार्गमें जाता है। उसपर कभी पाषाणकी वृष्टि होती है, कभी बिजली गिरती है तथा कभी वायुके झंझावातोंमें वह उलझाया जाता है और कहीं अंगरोंकी वृष्टि होती है। ऐसे भयंकर मार्गोंसे पापाचरण करनेवाले भूख-प्याससे व्याकुल मूढ़ पापीको यमदूत यमलोककी ओर ले जाते हैं।

अतः पाप छोड़कर पुण्य-कर्मका आचरण करना चाहिये। पुण्यसे देवत्व प्राप्त होता है और पापसे नरककी प्राप्ति होती है। जो थोड़े समयके लिये भी मनसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी भी यमपुरी नहीं जाता। जो इस पृथिवीपर सभी प्रकारसे भगवान् भास्करकी पूजा करते हैं, वे पापसे वैसे ही लिस नहीं होते, जैसे कमलपत्र जलसे लिस नहीं होता। इसलिये सभी प्रकारसे भुवनभास्करकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये। (अध्याय १९०—१९२)

सप्तमी-व्रतमें दन्तधावन-विधि-वर्णन

भगवान् सूर्यने कहा—विनतानन्दन अरुण ! अयनकाल, विषुवकाल, संक्रान्ति तथा ग्रहणकालमें सदा भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। सप्तमीमें तो विशेषरूपसे उनकी पूजा करनी चाहिये। सप्तमियाँ

सात प्रकारकी कही गयी हैं—अर्कसम्पुटिका-सप्तमी, मरीचि-सप्तमी, निष्क-सप्तमी, फल-सप्तमी, अनोदना-सप्तमी, विजय-सप्तमी तथा सातवीं कामिका-सप्तमी। माघ मास या मार्गशीर्ष मासमें

शुक्ल पक्षकी सप्तमीको उपवास ग्रहण करना चाहिये। आर्त व्यक्तिके लिये मास और पक्षका नियम नहीं है। रात बीतनेमें जब आधा प्रहर शेष रहे, तब दन्तधावन करना चाहिये। महुएकी दतुवनसे दन्तधावन करनेपर पुत्र-प्राप्ति, भँगरैयासे दुःखनाश, बदरी (बेर) और बृहती (भटकटैया)-से शीघ्र ही रोगमुक्ति, बिल्वसे ऐश्वर्य-प्राप्ति, खैरसे धन-संचय, कदम्बसे शत्रुनाश, अतिमुक्तकसे अर्थप्राप्ति, आटरूषक (अडूसा)-से गुरुता प्राप्त होती है। पीपलके दातूनसे यश और जातिमें प्रधानता तथा करवीरसे अचल परिज्ञान प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं। शिरीषकी दातूनसे विपुल लक्ष्मी और प्रियंगुके दातूनसे परम सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

अभीप्सित अर्थकी सिद्धिके लिये सुखपूर्वक बैठकर वाणीका संयम करके निम्न लिखित मन्त्रसे दातूनके वृक्षकी प्रार्थना कर दातून करे—

वरं त्वामभिजानामि कामदं च वनस्पते।
सिद्धिं प्रयच्छ मे नित्यं दन्तकाष्ठ नमोऽस्तु ते॥
(ब्राह्मपर्व १९३। १३)

‘वनस्पते! आप श्रेष्ठ कामनाओंको प्रदान करनेवाले हैं, ऐसा मैं भलीभाँति जानता हूँ। हे दन्तकाष्ठ! मुझे सिद्धि प्राप्त करायें। आपको नमस्कार है।’

इस मन्त्रका तीन बार जप करके दन्तधावन करना चाहिये।

दूसरे दिन पवित्र होकर भगवान् सूर्यको प्रणाम कर यथेष्ट जप करे। तदनन्तर अग्निमें हवन करे। अपराह्न-कालमें मिट्टी, गोबर और जलसे स्नानकर विधिपूर्वक नियमके साथ शुक्ल वस्त्र धारण कर पवित्र हो, देवाधिदेव दिवाकरकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा और गायत्रीका जप करे।

(अध्याय १९३)

स्वप्न-फल-वर्णन तथा उदक-सप्तमी-व्रत

भगवान् सूर्यने कहा—हे खगश्रेष्ठ! ब्रतीको चाहिये कि जप, होम आदि सभी क्रियाओंको विधिपूर्वक सम्पन्न कर देवाधिदेव भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शयन करे। स्वप्नमें यदि मनुष्य भगवान् सूर्य, इन्द्रध्वज तथा चन्द्रमाको देखे तो उसे सभी समृद्धियाँ सुलभ होती हैं। शृङ्खार, चँवर, दर्पण, स्वर्णलिंकार, रुधिरस्नाव तथा केशपातको देखे तो ऐश्वर्यलाभ होता है। स्वप्नमें वृक्षाधिरोपण शीघ्र ऐश्वर्यदायक है। महिषी, सिंही तथा गौका अपने हाथसे दोहन और इनका बन्धन करनेपर राज्यका लाभ होता है। नाभिका स्पर्श करनेपर दुर्बुद्धि होती है। भेड़ एवं सिंहको तथा जलमें उत्पन्न जन्तुको मारकर स्वयं खानेसे,

अपने अङ्ग, अस्थि, अग्नि-भक्षण, मदिरा-पान, सुवर्ण, चाँदी और पद्मपत्रके पात्रमें खीर खानेपर उसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। द्यूत या युद्धमें विजय देखना सुखप्रद होता है। अपने शरीरके प्रज्वलन तथा शिरोबन्धन देखनेसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है। माला, शुक्ल वस्त्र, अश्व, पशु, पक्षीका लाभ और विष्टाका अनुलेपन प्रशंसनीय माना गया है। अश्व या रथपर यात्राका स्वप्न देखना शीघ्र ही संततिके आगमनका सूचक है। अनेक सिर और भुजाएँ देखनेपर घरमें लक्ष्मी आती है। वेदाध्ययन देखना श्रेष्ठ है। देव, द्विज, श्रेष्ठ वीर, गुरु, वृद्ध तपस्वी स्वप्नमें मनुष्यको जो कुछ कहें उसे सत्य ही मानना चाहिये*। इनका दर्शन एवं

* देवद्विजश्रेष्ठवीरगुरुवृद्धतपस्विनः:

॥ यद्यदन्ति नरं स्वने सत्यमेवेति तद्विदुः।

(ब्राह्मपर्व १९४। ११-१२)

आशीर्वाद श्रेष्ठ फलदायक है। पर्वत, अश्व, सिंह, बैल और हाथीपर विशिष्ट पराक्रमके साथ स्वप्नमें जो आरोहण करता है, उसे महान् ऐश्वर्य एवं सुखकी प्राप्ति होती है। ग्रह, तारा, सूर्यका जो स्वप्नमें परिवर्तन करता है और पर्वतका उन्मूलन करता है, उसे पृथ्वीपति होनेका संकेत मिलता है। शरीरसे आँतोंका निकालना, समुद्र एवं नदियोंका पान करना ऐश्वर्य-प्राप्तिका सूचक है। जो स्वप्नमें समुद्रको एवं नदीको साहसके साथ पार करता है, उसे चिरजीवी पुत्र होता है। यदि स्वप्नमें कृमिका भक्षण करना देखता है तो उसे अर्थकी प्राप्ति होती है। सुन्दर अङ्गोंको देखनेसे लाभ होता है। मङ्गलकारी वस्तुओंसे योग होनेपर

आरोग्य और धनकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

भगवान् भास्कर अज्ञानान्धकारको दूरकर अपनी अचल भक्ति प्रदान करते हैं, उनके विधिपूर्वक पूजन करनेके पश्चात् सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम कर प्रदक्षिणा करनी चाहिये। जो व्यक्ति भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह उत्तम विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। विधिपूर्वक पूजन करनेके पश्चात् उनके यथेष्ट मन्त्रोंका जप तथा हवन करना चाहिये। सप्तमीके दिन भगवान् सूर्यनारायणका विधिपूर्वक पूजन कर केवल आधी अञ्जलि जल पीकर व्रत करनेको उदक-सप्तमी कहते हैं, वह सदैव सुख देनेवाली है। (अध्याय १९४—१९७)

सूर्यनारायणकी महिमा, अर्घ्य प्रदान करनेका फल तथा आदित्य-पूजनकी विधियाँ

महाराज शतानीकने कहा—सुमन्तु मुने! इस लोकमें ऐसे कौन देवता हैं, जिनकी पूजा-स्तुति करके सभी मनुष्य शुभ-पुण्य और सुखका अनुभव करते हैं। सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म कौन है? आपके विचारसे कौन पूजनीय है तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता किसकी पूजा-अर्चना करते हैं और आदिदेव किस देवताको कहा जाता है?

सुमन्तुजी बोले—राजन्! मैं इस विषयमें भगवान् वेदव्यास और भीष्मपितामहके उस संवादको कह रहा हूँ जो सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है, उसे आप सुनें।

एक समय गङ्गाके किनारे वेदव्यासजी बैठे हुए थे। वे अग्निके समान जाज्वल्यमान, तेजमें आदित्यके समान, साक्षात् नारायणतुल्य दिखायी दे रहे थे। भगवान् वेदव्यास महाभारतके कर्ता तथा वेदके अर्थोंको प्रकाशित करनेवाले हैं और ऋषियों तथा राजर्षियोंके आचार्य हैं, कुरुवंशके

स्त्री हैं, साथ ही मेरे परमपूज्य हैं। इन वेदव्यासजीके पास कुरुश्रेष्ठ महातेजस्वी भीष्मजी आये और उन्हें प्रणाम कर कहने लगे।

भीष्मपितामहने पूछा—हे महामते पराशरनन्दन! आपने सम्पूर्ण वाङ्मयकी व्याख्या मुझसे की है, किंतु मुझे भगवान् भास्करके सम्बन्धमें संशय उत्पन्न हो गया है। सर्वप्रथम भगवान् आदित्यको नमस्कार करनेके पश्चात् ही अन्य देवताओंको नमस्कार किया जाता है। इसमें क्या कारण है? ये भगवान् भास्कर कौन हैं? कहाँसे उत्पन्न हुए हैं? हे द्विजश्रेष्ठ! इस लोकके कल्याणके लिये उस परम तत्त्वको कहिये। मुझे जाननेकी बड़ी ही अभिलाषा है।

व्यासजीने कहा—भीष्म! आप अवश्य ही किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि भगवान् भास्करकी स्तुति, पूजन-अर्चन सभी सिद्ध और ब्रह्मादि देवता करते हैं। सभी देवताओंमें

आदिदेव भगवान् भास्करको ही कहा जाता है। ये संसार-सागरके अन्धकारको दूरकर सब लोकों और दिशाओंको प्रकाशित करते हैं। ये सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्मस्वरूप हैं। ये पूज्यतम हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता आदिदेव भगवान् आदित्यकी ही पूजा करते हैं। आदित्य ही अदिति और कश्यपके पुत्र हैं। ये आदिकर्ता हैं, इसलिये भी आदित्य कहे जाते हैं। भगवान् आदित्यने ही सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न किया है। देवता, असुर, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, पक्षी आदि तथा इन्द्रादि देवता, ब्रह्मा, दक्ष, कश्यप सभीके आदिकारण भगवान् आदित्य ही हैं। भगवान् आदित्य सभी देवताओंमें श्रेष्ठ और पूजित हैं।

भीष्मपितामहने पूछा—पराशरनन्दन महर्षि व्यासजी! यदि भगवान् सूर्यनारायणका इतना अधिक प्रभाव है तो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल—इन तीनों कालोंमें राक्षसादि कैसे इन्हें संत्रस्त करते हैं तथा भगवान् आदित्य फिर कैसे चक्रवत् घूमते रहते हैं? हे द्विजोत्तम! राहु उन्हें कैसे ग्रसित करता है?

व्यासजीने कहा—पिशाच, सर्प, डाकिनी, दानव आदि जो क्रोधसे उन्मत्त हो भगवान् सूर्यनारायणपर आक्रमण करते हैं, भगवान् सूर्यनारायण उन्हें प्रताडित करते हैं। यह मुहूर्तादि कालस्वरूप भगवान् सूर्यका ही प्रभाव है। संसारमें धर्म एकमात्र भगवान् सूर्यका आधार लेकर प्रवर्तित होता है। ब्रह्मादि देवता सूर्यमण्डलमें स्थित रहते हैं। भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार करनेमात्रसे ही सभी देवताओंको नमस्कार प्राप्त हो जाता है। तीनों कालोंमें संध्या करनेवाले ब्राह्मणजन भगवान् आदित्यको ही प्रणाम करते हैं। भगवान् भास्करके बिम्बके नीचे राहु स्थित है। अमृतकी इच्छा करनेवाला राहु विमानस्थ अमृत-घटसे थोड़ा भी अमृत छलकनेपर उस अमृतको प्राप्त करनेके

उद्देश्यसे जब विमानके अति संनिकट पहुँचता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि राहुने सूर्यनारायणको ग्रसित कर लिया है, उसे ही ग्रहण कहा जाता है। आदित्यभगवान्को कोई ग्रसित नहीं कर सकता; क्योंकि वे ही इस चराचर जगत्का विनाश करनेवाले हैं। दिन, रात्रि, मुहूर्त आदि सब आदित्यभगवान्के ही प्रभावसे प्रकाशित होते हैं। दिन, रात्रि, धर्म, अधर्म जो कुछ भी इस संसारमें दृष्टिगोचर हो रहा है, उन सबको भगवान् आदित्य ही उत्पन्न करते हैं। वे ही उसका विनाश भी करते हैं। जो व्यक्ति भगवान् आदित्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, उस व्यक्तिको भगवान् आदित्य शीघ्र ही संतुष्ट होकर वर प्रदान करते हैं तथा बल, वीर्य, सिद्धि, ओषधि, धन-धान्य, सुवर्ण, रूप, सौभाग्य, आरोग्य, यश, कीर्ति, पुत्र, पौत्रादि और मोक्ष आदि सब कुछ प्रदान करते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

भीष्मने कहा—महात्मन्! अब आप मुझसे सौर-धर्मके स्नानकी विधि रहस्यसहित बतलायें। जिससे भगवान् आदित्यकी पूजा कर मनुष्य सभी प्रकारके दोषोंसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

व्यासजी बोले—भीष्म! मैं सौर-स्नानकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ, जो सभी प्रकारके पापोंको दूर कर देती है। सर्वप्रथम पवित्र स्थानसे मृत्तिका ग्रहण करे, तदनन्तर उस मृत्तिकाको शरीरमें लगाये। फिर जलको अभिमन्त्रित कर स्थान करे। शङ्ख, तुरही आदिसे ध्वनि करते हुए सूर्यनारायणका ध्यान करना चाहिये। भगवान् सूर्यके 'हाँ हीं सः' इस मन्त्रराजसे आचमन करना चाहिये। फिर देवताओं एवं ऋषियोंका तर्पण और स्तुति करनी चाहिये। अपसव्य होकर पितरोंका तर्पण करे। अनन्तर संध्या-वन्दन करे। उसके बाद भगवान् भास्करको अञ्जलिसे जल देना चाहिये। स्नान करनेके बाद त्र्यक्षर-मन्त्र 'हाँ हीं सः' अथवा

षडक्षर-मन्त्र 'खखोल्काय नमः' का जप करना चाहिये। जिस मन्त्रराजको पूर्वमें कहा है उस मन्त्रराजसे हृदयादि- न्यास करना चाहिये। मन्त्रको हृदयङ्गम कर भगवान् सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। एक ताम्रपात्रमें गन्ध, लाल चन्दन आदिसे सूर्य-मण्डल बनाकर उसमें करवीर (कनेर) आदिके पुष्प, गन्धोदक, रक्त चन्दन, कुश, तिल, चावल आदि स्थापित कर घुटनेको मोड़ उस ताम्रपात्रको उठाकर सिरसे लगाये और भक्तिपूर्वक 'हाँ हीं सः' इस मन्त्रराजसे भगवान् सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करे। जो व्यक्ति इस विधिसे भगवान् आदित्यको अर्घ्य निवेदन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। हजारों संक्रान्तियों, हजारों चन्द्रग्रहणों, हजारों गोदानों तथा पुष्कर एवं कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल केवल सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। सौरदीक्षाविहीन व्यक्ति भी यदि भगवान् आदित्यको संवत्सरपर्यन्त अर्घ्य प्रदान करता है तो उसे भी वही फल प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। फिर दीक्षाको ग्रहण कर जो विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करता है, वह व्यक्ति इस संसार-सागरको पारकर भगवान् भास्करमें विलीन हो जाता है।

भीष्मने कहा—ब्रह्मन्! आपने पाप-हरण करनेवाली स्नान-विधि तो बता दी, अब कृपाकर उनकी पूजा-विधि बतायें, जिससे मैं भगवान् सूर्यकी पूजा कर सकूँ।

व्यासजी बोले—भीष्म! अब मैं आदित्य-पूजनकी विधि कह रहा हूँ आप सुनें। आदित्यपूजकको चाहिये कि स्नानादिसे पवित्र होकर किसी शुद्ध एकान्त स्थानमें प्रसन्न होकर भास्करकी पूजा करे। वह श्रेष्ठ सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठे। सूर्य-मन्त्रोंसे करन्यास एवं हृदयादि-

न्यास करे। इस प्रकार आत्मशुद्धिकर न्यासद्वारा भगवान् सूर्यकी अपनेमें भावना करे। अपनेको भास्कर समझकर स्थणिडलपर भानुकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करे। दक्षिण पार्श्वमें पुष्पकी टोकरी एवं वाम पार्श्वमें जलसे परिपूर्ण ताम्रपात्र स्थापित करे। पूजाके लिये उपकल्पित सभी द्रव्योंका अर्घ्यपात्रके जलसे प्रोक्षण कर पूजन करे, अनन्तर मन्त्रवेत्ता एकाग्रचित्त होकर सूर्यमन्त्रोंका जप करे।

भीष्मने कहा—भगवन्! अब आप भगवान् सूर्यकी वैदिक अर्चाविधि बतलायें।

व्यासजी बोले—भीष्म! आप इस सम्बन्धमें सुरज्येष्ठ ब्रह्मा तथा विष्णुके मध्य हुए संवादको सुनें। एक बार ब्रह्माजी मेरुपर्वतपर स्थित अपनी मनोवती नामकी सभामें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय विष्णुभगवान् ने प्रणाम कर उनसे कहा—‘ब्रह्मन्! आप भगवान् भास्करकी आराधनाविधि बतायें और मण्डलस्थ भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये, इसे कहें।’

ब्रह्माने कहा—महाबाहो! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है, आप एकाग्रचित्त होकर भगवान् भास्करकी पूजनविधि सुनिये।

सर्वप्रथम शास्त्रोक्त विधिसे भूमिका विधिवत् शोधनकर केसर आदि गन्धोंसे सात आवरणोंसे युक्त कर्णिकासमन्वित एक अष्टदलकमल बनाये। उसमें दीसा आदि सूर्यकी दिव्य अष्ट शक्तियोंको पूर्वादि-क्रमसे ईशानकोणतक स्थापित करे। बीचमें सर्वतोमुखी देवीकी स्थापना करे। दीसा, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता और सर्वतोमुखी—ये नौ सूर्यशक्तियाँ हैं। इन शक्तियोंका आवाहन कर पद्मकी कर्णिकाके ऊपर भगवान् भास्करको स्थापित करना चाहिये। ‘उदु त्यं जातवेदसं’ (यजु० ७। ४१) तथा ‘अग्निं दूतं’ यजु० २२। १७)—ये मन्त्र आवाहन और उपस्थानके

कहे गये हैं। 'आ कृष्णन रजसा०' (यजु० ३३। ४३) तथा 'ह ९ सः शुचिषद्०' (यजु० १०। २४) इन मन्त्रोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। 'अपसे तारकं०' मन्त्रसे दीपादेवीकी पूजा करे। 'अदृश्रमस्य केतवो०' (यजु० ८। ४०) मन्त्रसे सूक्ष्मादेवीकी, 'तरणिविश्वदर्शतो०' (यजु० ३३। ३६)-से जयाकी, 'प्रत्यङ्गदेवाना०' इस मन्त्रसे भद्राकी, 'येना पावक चक्षसा०' (यजु० ३३। ३२) इस मन्त्रसे विभूतिकी, 'विद्यामेषि०' इस मन्त्रसे विमलादेवीकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकारसे अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी देवियोंकी भी पूजा करनी चाहिये। अनन्तर वैदिक मन्त्रोंसे सप्तावरण-पूजनपूर्वक मध्यमें भगवान् सूर्यकी पूजा करे। भगवान् सूर्य एक चक्रवाले रथपर बैठकर क्षेत्र कमलपर स्थित हैं। उनका लाल वर्ण है। वे सर्वाभरणभूषित तथा सभी लक्षणोंसे समन्वित और महातेजस्वी हैं। उनका बिम्ब वर्तुलाकार है। वे अपने हाथोंमें कमल और धनुष लिये हैं। ऐसे उनके स्वरूपका ध्यानकर नित्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये।

भगवान् विष्णुने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मण्डलस्थ भगवान् भास्करकी प्रतिमारूपमें किस प्रकारसे पूजा की जाय, उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—हे सुब्रत! आप एकाग्रचित्त-मनसे प्रतिमा-पूजन-विधिको सुनिये। 'इषे त्वो०' (यजु० १। १) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सिर-प्रदेशका पूजन करना चाहिये। 'अग्निमीळे०' (ऋ० १। १। १) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके दक्षिण हाथकी पूजा करनी चाहिये। 'अग्न आ याहि०' (ऋ० ६। १६। १०) इस मन्त्रसे सूर्यभगवान्के दोनों चरणोंकी पूजा करनी चाहिये। 'आ जिघ०' (यजु० ८। ४२) इस मन्त्रसे पुष्पमाला समर्पित करनी चाहिये। 'योगे योगे०' (यजु० ११। १४) इस मन्त्रसे

पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। 'समुद्रंगच्छ०' (यजु० ६। २१) तथा 'इमं मे गङ्गे०' (ऋ० १०। ७५। ५) तथा 'समुद्रञ्ज्येष्टाः०' (ऋ० ७। ४९। १) इन मन्त्रोंसे उन्हें अङ्गराग लगाये। 'आ प्यायस्व०' (यजु० १२। ११२) इस मन्त्रसे दुग्ध-स्नान, 'दधिक्राव्यो०' (यजु० २३। ३२) इस मन्त्रसे दधिस्नान, 'तेजोऽसि शुक्र०' (यजु० २२। १) इस मन्त्रसे धृत-स्नान तथा 'या ओषधीः०' (यजु० १२। ७५) इस मन्त्रद्वारा ओषधि-स्नान कराये। इसके बाद 'द्विपदा०' (यजु० २३। ३४) इस मन्त्रसे भगवान्का उद्वर्तन करे। फिर 'मा नस्तोके०' (यजु० १६। १६) इस मन्त्रसे पुनः स्नान कराये। 'विष्णो रराट०' (यजु० ५। २१) इस मन्त्रसे गन्ध तथा जलसे स्नान कराये। 'स्वर्ण धर्म०' (यजु० १८। ५०) इस मन्त्रसे पाद्य देना चाहिये। 'इदं विष्णुर्विं चक्रमे०' (यजु० ५। १५) इस मन्त्रसे अर्द्ध प्रदान करना चाहिये। 'वेदोऽसि०' (यजु० २। २१) इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत और 'ब्रह्मस्पते०' (यजु० २६। २३) इस मन्त्रसे वस्त्र-उपवस्त्र आदि भगवान् सूर्यको चढ़ाना चाहिये। इसके अनन्तर पुष्पमाला चढ़ाये। 'धूरसि धूर्व०' (यजु० १। ८) इस मन्त्रसे गुग्गुलसहित धूप दिखाना चाहिये। 'समिद्धो०' (यजु० २९। १) इस मन्त्रसे रोचना लगाये। 'दीर्घायुस्त०' (यजु० १२। १००) इस मन्त्रसे आलक्त (आलता) लगाये। 'सहस्रशीर्षा०' (यजु० ३१। १) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सिरका पूजन करना चाहिये। 'संभावया०' इस मन्त्रसे दोनों नेत्रों और 'विश्वतश्शक्षु०' (यजु० १७। १९) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श करना चाहिये। 'श्रीश्वते लक्ष्मीश्व०' (यजु० ३१। २२) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन-अर्चन करना चाहिये। (अध्याय १९८—२०२)

भगवान् भास्करके व्योम-पूजनकी विधि तथा आदित्य-माहात्म्य

विष्णुभगवान् ने पूछा—हे सुरश्रेष्ठ चतुरानन! अब आप भगवान् आदित्यके व्योम-पूजनकी विधि बतलायें। अष्ट-शृङ्गयुक्त व्योमस्वरूप भगवान् भास्करकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—महाबाहो! सुवर्ण, चाँदी, ताम्र तथा लोहा आदि अष्ट धातुओंसे एक अष्ट शृङ्गमय व्योम बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। सर्वप्रथम उसके मध्यमें भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये। ‘महिषा वो०’ इस मन्त्रसे अनेक प्रकारके पुष्पोंको चढ़ाना चाहिये। ‘त्रातारमिन्द्रं०’ (यजु० २०। ५०) तथा ‘उदीरतामवरं०’ (यजु० १९। ४९) इत्यादि वैदिक मन्त्रोंसे शृङ्गोंकी तथा ‘नमोऽस्तु सर्पेभ्यो०’ (यजु० १३। ६) इस मन्त्रसे व्योमपीठकी पूजा करनी चाहिये। जो व्यक्ति ग्रहोंके साथ सब पापोंको दूर करनेवाले व्योम-पीठस्थ भगवान् सूर्यको नमस्कार कर उनका पूजन करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

भगवान् भास्करकी पूजा करके गुरुको सुन्दर वस्त्र, जूता, सुवर्णकी अँगूठी, गन्ध, पुष्प, अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ निवेदित करने चाहिये। जो व्यक्ति इस विधिसे उपवास रखकर भगवान् सूर्यकी पूजा-अर्चना करता है, वह बहुत पुत्रोंवाला, बहुत धनवान् और कीर्तिमान् हो जाता है। भगवान् सूर्यके उत्तरायण तथा दक्षिणायन होनेपर उपवास रखकर जो व्यक्ति उनकी पूजा करता है,

उसे अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल, विद्या, कीर्ति और बहुत-से पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय जो व्यक्ति उपवास रखकर भगवान् भास्करकी पूजा-अर्चना आदि करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

इसी प्रकार भगवान् भास्करके रत्नमय व्योमकी प्रतिमा बनाकर उसकी प्रतिष्ठा और वैदिक मन्त्रोंसे विविध उपचारोंद्वारा उसकी पूजा करे। पूजनके अनन्तर ऋग्वेदकी पाँच ऋचाओंसे भगवान् आदित्यकी परास्तुति करे*। इसके बाद भास्करको अव्यङ्ग निवेदित करे। अनन्तर भगवान् सूर्यकी दीसा, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी नामवाली नौ दिव्य शक्तियोंका पूजन करे।

इस विधिसे जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह इस लोक और परलोकमें सभी मनःकामनाओंको पूर्ण कर लेता है। पुत्र चाहनेवालेको पुत्र तथा धन चाहनेवालेको धन प्राप्त हो जाता है। कन्यार्थीको कन्या और वेदार्थीको वेद प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति निष्कामभावसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। इतना कहकर ब्रह्माजी शान्त हो गये।

व्यासजीने पुनः कहा—हे भीष्म! अब आप ध्यान करने योग्य ग्रहोंके स्वरूपका तथा भगवान् आदित्यके माहात्म्यका श्रवण करें। भगवान् सूर्यका वर्ण जपाकुसुमके समान लाल है। वे महातेजस्वी

* उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुब्रह्माणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहिता नेन्नयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुद्मान् । एकं सद् विप्रा बहुधा बदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पत्तिं । त आववृत्रन् त्सदनादृतस्यादिद् धृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥

यो रत्ना वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥

(ऋग्वेद १। १६४। ४३, ४५—४७, ४९)

श्वेत पद्मपर स्थित हैं। सभी लक्षणोंसे समन्वित हैं। सभी अलंकारोंसे विभूषित हैं। उनके एक मुख है, दो भुजाएँ हैं। रक्त वस्त्र धारण किये हुए वे ग्रहोंके मध्यमें स्थित हैं। जो व्यक्ति तीनों समय एकाग्रचित्त होकर उनके इस रूपका ध्यान करता है, वह शीघ्र ही इस लोकमें धन-धान्य प्राप्त कर लेता है और सभी पापोंसे छूटकर तेजस्वी तथा बलवान् हो जाता है। श्वेत वर्णके चन्द्रमा, रक्त वर्णके मंगल, रक्त तथा श्याम-मिश्रित वर्णके बुध, पीत वर्णके बृहस्पति, शङ्ख तथा दूधके समान श्वेत वर्णके शुक्र, अङ्गनके समान कृष्ण वर्णके शनि, लाजावर्तके समान नील वर्णके राहु और केतु कहे गये हैं। इन ग्रहोंके साथ ग्रहोंके अधिपति भगवान् सूर्यनारायणका जो व्यक्ति ध्यान एवं पूजन करता है, उसे शीघ्र ही महासिद्धि प्राप्त हो जाती है, सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं तथा महादेवत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

सूर्यनारायणके समान कोई देवता नहीं और न ही उनके समान कोई गति देनेवाला है। सूर्यके समान न तो ब्रह्मा हैं और न अग्नि। सूर्यके धर्मके समान न कोई धर्म है और न उनके समान कोई धन। सूर्यके अतिरिक्त कोई बन्धु नहीं है और न तो कोई शुभचिन्तक ही है। सूर्यके समान कोई माता नहीं और न तो कोई गुरु ही है। सूर्यके समान न तो कोई तीर्थ है और न उनके समान कोई पवित्र ही है। समस्त लोकों, देवताओं तथा पितरोंमें एक भगवान् सूर्य ही व्याप्त हैं, उनका ही स्तवन, अर्चन तथा पूजन करनेसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक

सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह इस भवसागरको पार कर जाता है। भगवान् सूर्यके प्रसन्न हो जानेपर राजा, चोर, ग्रह, सर्प आदि पीड़ा नहीं देते तथा दरिद्रता और सभी दुःखोंसे भी निवृत्ति हो जाती है।

रविवारके दिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा कर नक्तव्रत करनेवाला व्यक्ति अमरत्वको प्राप्त करता है। भगवान् मार्तण्डकी प्रीतिके लिये जो संक्रान्तिमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। जो व्यक्ति भास्करकी प्रीतिके लिये उपवास रखकर षष्ठी या सप्तमीके दिन विधिवत् श्राद्ध करता है, वह सभी दोषोंसे निवृत्त होकर सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति सप्तमीके दिन विशेषकर रविवार अथवा ग्रहणके दिन भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करता है, उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। ग्रहणके दिन भगवान् भास्करका पूजन करना उन्हें अतिप्रिय है। भगवान् आदित्य परमदेव हैं और सभी देवताओंमें पूज्य हैं। उनकी पूजा कर व्यक्ति इच्छित फलको प्राप्त कर लेता है। धन चाहनेवालेको धन, पुत्र चाहनेवालेको पुत्र तथा मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त हो जाता है और वह अमर हो जाता है।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! भीष्मसे ऐसा कहकर वेदव्यासजी अपने स्थानको चले गये और भीष्मने भी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी विधि-विधानसे पूजा की। राजन्! आप भी भगवान् भास्करकी पूजा करें, इससे आपको शाश्वत स्थान प्राप्त होगा। (अध्याय २०३—२०७)

सप्त-सप्तमी तथा द्वादश मास-सप्तमी-ब्रतोंका वर्णन

शतानीकने कहा—मुने! भगवान् भास्करको अति प्रिय जिन अर्कसम्पुटिका आदि सात सप्तमी-ब्रतोंकी आपने पूर्वमें चर्चा की है, उन्हें बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तुजी बोले—महामते! मैं सात सप्तमियोंका वर्णन कर रहा हूँ, उन्हें सुनिये। पहली सप्तमी अर्कसम्पुटिका नामकी है। दूसरी मरिच-सप्तमी, तीसरी निष्प-सप्तमी, चौथी फल-सप्तमी, पाँचवीं अनोदना-सप्तमी, छठी विजय-सप्तमी तथा सातवीं कामिका नामकी सप्तमी है। इनकी संक्षिप्त विधि इस प्रकार है—

उत्तरायण या दक्षिणायनमें, शुक्ल पक्षमें, रविवारके दिन ग्रहणमें, पूँलिलङ्घवाची नक्षत्रमें—इन सप्तमी-ब्रतोंको ग्रहण करना चाहिये। ब्रतीको जितेन्द्रिय, पवित्रता-सम्पन्न और ब्रह्मचारी होकर सूर्यकी अर्चनामें रत रहना चाहिये तथा जप-होमादिमें तत्पर रहना चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि पञ्चमीके दिन एकभुक्त रहकर षष्ठीके दिन जितेन्द्रिय रहे एवं निन्द्य पदार्थोंका भक्षण न करे। अर्क-सेवनसे पहली सप्तमी, मरिचसे दूसरी सप्तमी तथा निष्पपत्रसे तीसरी सप्तमी व्यतीत करे। फलसप्तमीमें फलोंका भक्षण करना चाहिये। अनोदना-सप्तमीके दिन अन्न-भक्षण न करके उपवास करे। विजय-सप्तमीके दिन वायु भक्षण कर उपवास करे। कामिका-सप्तमीको भी हविष्य भोजनकर यथाविधि सम्पन्न करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन सप्तमी-ब्रतोंको करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

अर्कसम्पुटिका-ब्रतसे सात पीढ़ीतक अचल सम्पत्ति बनी रहती है। मरिच-सप्तमीके अनुष्टानसे प्रिय पुत्रादिका साथ बना रहता है। निष्पसप्तमीके पालनसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है और फल-सप्तमी-ब्रतके करनेसे

ब्रती अनेक पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हो जाता है। अनोदना-सप्तमीके ब्रतसे धन-धान्य, पशु, सुवर्ण, आरोग्य तथा सुख सदा सुलभ रहते हैं। विजय-सप्तमीका ब्रत करनेसे शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं। कामिका-सप्तमीका विधिवत् अनुष्टान करनेसे पुत्रकी कामना करनेवाला पुत्र, अर्थकी कामना करनेवाला अर्थ, विद्या-प्राप्तिकी कामना करनेवाला विद्या और राज्यकी कामना करनेवाला राज्य प्राप्त करता है। पुरुष हो या स्त्री इस ब्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न कर परमगतिको प्राप्त कर लेते हैं। उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उनके कुलमें न कोई अंधा होता है, न कुष्ठी, न नपुंसक और न कोई विकलाङ्घ तथा न निर्धन। लोभवश, प्रमादवश या अज्ञानवश यदि ब्रत-भङ्ग हो जाय तो तीन दिनतक भोजन न करे और मुण्डन कराकर प्रायश्चित्त करे। पुनः ब्रतके नियमोंको ग्रहण करे।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! चैत्रादि बारह मासोंकी शुक्ल सप्तमियोंमें गोमय, यावक, सूखे पत्ते, दूध अथवा भिक्षान् भक्षण कर या एकभुक्त रहकर उपवास करना चाहिये। भगवान् सूर्यकी पूजा कमल-पुष्प, नाना प्रकारके गन्ध, चन्दन, गुगुल धूप आदि विविध उपचारोंसे करनी चाहिये तथा इन्हीं उपचारोंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भी पूजा कर उन्हें दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिये। इससे ब्रतीको अपार दक्षिणावाले यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह सूर्यलोकमें पूजित होता है। चैत्रादि बारह महीनोंमें पूजित होनेवाले भगवान् सूर्यके बारह नाम इस प्रकार हैं—चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में दिवाकर, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, आश्विनमें मार्तण्ड, कार्तिकमें भार्गव, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग तथा फाल्गुनमें त्वष्टा।

(अध्याय २०८-२०९)

अर्कसम्पुटिका-सप्तमीव्रत-विधि, सप्तमी-व्रत-माहात्म्यमें कौथुमिका आख्यान

सुमन्तुजी बोले—राजन्! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको अर्कसप्तमी कहते हैं। इसमें षष्ठीको उपवास रहकर स्नान करके गन्ध, पुष्प, गुगुल, अर्क-पुष्प, श्वेत करवीर एवं चन्दनादिसे भगवान् दिवाकरकी पूजा करनी चाहिये। रविकी प्रसन्नताके लिये नैवेद्यमें गुडोदक समर्पित करे। इस प्रकार दिनमें भानुकी पूजा करके रातमें निद्रारहित होकर उनके मन्त्रका जप करे।

शतानीकने पूछा—मुने! भगवान् सूर्यका प्रिय मन्त्र कौन-सा है? उसे बतायें और धूप-दीपका भी निर्देश करें; जिससे उस मन्त्रका जप करता हुआ मैं दिवाकरकी पूजा कर सकूँ।

सुमन्तुजीने कहा—हे भरतश्रेष्ठ! मैं इस विधिको संक्षेपसे कह रहा हूँ। व्रतीको चाहिये कि एकाग्रचित्त होकर षडक्षर-मन्त्रका जप, होम तथा पूजा आदि सभी कर्म सम्पादित करे। सर्वप्रथम यथाशक्ति गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। सौरी गायत्री-मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ भास्कराय विद्धहे सहस्ररश्मि धीमहि। तत्रः सूर्यः प्रचोदयात्॥’ इसे भगवान् सूर्यने स्वयं कहा है। यह सौरी गायत्री-मन्त्र परम श्रेष्ठ है। इसका श्रद्धापूर्वक एक बार जप करनेसे ही मानव पवित्र हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। सप्तमीके दिन प्रातःकाल एकाग्रचित्त हो इस मन्त्रका जप करे और भक्तिपूर्वक भास्करकी पूजा करे। राजन्! यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। धनकी कंजूसी न करे। जो सूर्यके प्रति श्रद्धा-सम्पन्न नहीं हैं, उन्हें भोजन नहीं कराना चाहिये। शाल्योदन, मूँग, अपूप, गुड़से बने पुए, दूध तथा दहीका भोजन कराना चाहिये। इससे भास्कर तृप्त होते हैं। भोजनके वर्ज्य पदार्थ इस प्रकार हैं—कुलथी, मसूर, सेम तथा बड़ी। उड़द आदि, कड़वा तथा दुर्गन्ध्ययुक्त

पदार्थ भी निवेदित नहीं करने चाहिये।

अर्कवृक्षकी ‘ॐ खर्खोल्काय नमः’ से पूजा कर अर्क-पल्लवोंको ग्रहण करे। फिर स्नानकर अर्क-पुष्पसे रविकी पूजा करके ब्राह्मणको भोजन कराये और ‘अर्को मे प्रीयताम्’ सूर्यदेव मुझपर प्रसन्न हों, ऐसा कहे। तदनन्तर देवताके सम्मुख दाँत और ओठसे स्पर्श किये बिना निम्नलिखित मन्त्रसे अर्कसम्पुटकी प्रार्थना करते हुए जलके साथ पूर्वाभिमुख होकर अर्कपुट निगल जाय।

ॐ अर्कसम्पुट भद्रं ते सुभद्रं मेऽस्तु वै सदा।

ममापि कुरु भद्रं वै प्राशनाद् वित्तदो भव॥

(ब्राह्मपर्व २१०। ७३)

इस मन्त्रका जप करते हुए जो अर्कका ध्यान करता है तथा अर्कसम्पुटका प्राशन करता है, वह श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है।

दाँतसे स्पर्श न किये जानेके कारण अर्कपुट अर्कसम्पुट कहलाता है। जो इस विधिसे वर्षभर सूर्यनारायणकी प्रसन्नताके लिये श्रद्धापूर्वक सप्तमी-व्रत करता है, उस मनुष्यका धन सात पीढ़ीतक अक्षय तथा अचल हो जाता है। हे राजन्! इस व्रतके अनुष्ठानसे सामग्रान करनेवाले महर्षि कौथुमि कुष्ठरोगसे मुक्त हो गये तथा सिद्धि प्राप्त की। साथ ही बृहदवल्क, राजा जनक, महर्षि याज्ञवल्क्य तथा कृष्णपुत्र साम्ब—इन सबने भी भगवान् सूर्यकी पूजा करके और इस व्रतके अनुष्ठानसे उनकी साम्यता प्राप्त कर ली। यह अर्क-सप्तमी पवित्र, पापनाशिनी, पुण्यप्रद तथा धन्य है। अपने कल्याणके लिये इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये।

शतानीकने पूछा—मुने! जनक आदिने भगवान् सूर्यकी पूजा करके जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की, उसे तो मैंने बहुधा सुना है, किंतु महर्षि कौथुमिने किस प्रकार अर्ककी आराधना कर सिद्धि प्राप्त

की और वे कैसे कुष्ठ-रोगसे मुक्त हुए, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। वे कौथुमि कौन थे, उन्हें कैसे कुष्ठ हुआ? हे द्विजत्रेष! किस प्रकार उन्होंने देवाधिदेव दिवाकरकी आराधना की? इन सभी बातोंको मुझे संक्षेपमें सुनायें।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! आपने बहुत अच्छी जिज्ञासा की है। इस विषयको आप श्रवण करें। प्राचीन कालमें हिरण्यनाभ नामके एक विद्वान् ब्राह्मण थे। वे अपने पुत्रके साथ महाराजा जनकके आश्रमपर गये। वहाँ अनेक ब्राह्मणोंके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। क्रोधवश कौथुमिसे एक ब्राह्मणका वध हो गया। पुत्रके द्वारा विप्रको मारा गया देखकर पिताने कौथुमिका परित्याग कर दिया। सज्जनों तथा कुटुम्बियोंने भी उनका बहिष्कार कर दिया। शोक और दुःखसे दुःखी होकर वे दिव्य देवालयोंमें गये और उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्राएँ कीं, किंतु ब्रह्महत्यासे मुक्ति न मिल सकी। ब्रह्महत्याके कारण उन्हें भयंकर कुष्ठ नामक व्याधिने ग्रस्त कर लिया। नाक, कान आदि अङ्ग गलकर गिर गये। शरीरसे पीब और रक्त बहने लगा। समस्त पृथ्वीपर घूमते हुए वे पुनः अपने पिताके घर आये। दुःखसे व्यकुलचित्त हो उन्होंने अपने पितासे कहा—‘तात! मैं पवित्र तीर्थों और अनेक देवालयोंमें गया, किंतु इस क्रूर ब्रह्महत्यासे मुक्त नहीं हो सका। प्रायश्चित्त करनेपर भी मुझे इससे छुटकारा नहीं मिला है। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे मैं रोगसे मुक्ति पाऊँ? हे अनघ! अल्प परिश्रम-साध्य जिस कर्मके करनेसे इस ब्रह्महत्यारूपी व्याधिसे मुझे छुटकारा मिले, उस उपायको आप शीघ्र बतायें और मेरा कल्याण करें।’

हिरण्यनाभने कहा—पुत्र! पृथ्वीमें घूमते हुए तुमने जो क्लेश प्राप्त किया है, उसे मैं भलीभाँति जानता हूँ। तुम अनेक तीर्थोंमें गये और प्रायश्चित्त भी किये, परंतु ब्रह्महत्यासे मुक्ति न मिली, अब मैं एक उपाय बताता हूँ, उस उपायसे तुम अनायास ही ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाओगे।

कौथुमिने कहा—विभो! मैं ब्रह्मादि देवोंमें किसकी आराधना करूँ? मैं तो शरीरसे भी विकल हूँ, अतः सभी कर्मोंका यथावत् सम्पादन मुझसे सम्भव नहीं है, फिर किस प्रकार मैं देवताको संतुष्ट कर सकूँगा।

हिरण्यनाभने कहा—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, वरुण आदि देवताओंने भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा की है और इसी कारण वे स्वर्गलोकमें आनन्दित हो रहे हैं। हे पुत्र! मैं भगवान् सूर्यके समान किसी भी देवताको नहीं जानता हूँ। वे सभी कामनाओंको देनेवाले और माता-पिता तथा सभीके मान्य हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिये तुम उनके मन्त्रका जप करते हुए तथा सामवेदके मन्त्रोंका गान करते हुए भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करो और उनसे सम्बन्धित इतिहास-पुराण आदिका श्रवण करो, इससे तुम्हें शीघ्र ही रोगसे मुक्ति मिलेगी और तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! सामगान करनेवाले महर्षि कौथुमिने श्रद्धा-समन्वित हो अपने पिताद्वारा निर्दिष्ट सूर्योपासनाकी विधिसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी आराधना की। भगवान् भास्करकी कृपासे महर्षि कौथुमि दिव्य मूर्तिमान् हो गये और उन्होंने भगवान् भास्करके दिव्य मण्डलमें प्रवेश किया*। (अध्याय २१०-२११)

* महर्षि कौथुमि एक वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। सामवेद-संहिताकी कौथुमी शाखा अत्यन्त प्रसिद्ध है और इस समय वही प्राप्त है। उसके द्रष्टा ऋषि यही हैं। ये प्राच्य सामग भी कहलाते हैं। शौनकीय चरणव्यूह-ग्रन्थमें सामवेदकी प्रायः एक हजार शाखाओंकी विस्तृत चर्चा है।

मरिच-सप्तमी-ब्रत-वर्णन

सुमन्तुजीने कहा—हे वीर! मैंने तुमको अर्कसम्पुटिका-ब्रतकी संक्षिप्त विधि बतलायी। अब मरिच-सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, इसमें मरिचका भक्षण किया जाता है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको उपवास रहकर सौरधर्मकी विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये। ‘ॐ वं फट्’ यह महाबलशाली मन्त्र साक्षात् सूर्यस्वरूप ही है। इसका बारम्बार स्मरण एवं जप करनेसे मानव एक वर्षमें ही देवेश भगवान् भास्करका दर्शन प्राप्त कर लेता है और अन्तमें व्याधि तथा मृत्युसे मुक्त हो सूर्यलोकको प्राप्त करता है। ब्रती आत्मशुद्धयर्थ मरिच-सप्तमीके दिन सौर-मन्त्रों एवं मुद्राओंसे हृदयादि अङ्गन्यास कर प्राणायाम आदि करे। भगवान्को अर्घ्य प्रदान करे। विविध पुष्टियोंको अर्पित करे। स्नान कराये, नैवेद्य अर्पित करे। संयत होकर सूर्यमन्त्रोंका जप करे। व्योममुद्रा दिखाकर प्रदक्षिणा करे, हवन करे और हृदयमुद्रासे भगवानका विसर्जन करे। भगवान्‌के पूजन आदि कर्मोंमें तत्तद् मुद्राओंको दिखाये। मुद्राओंके नाम इस प्रकार हैं—किंकिणी, व्योम, अस्त्र, पद्मिनी, अर्किणी, ज्वालिनी, तेजनी, गभस्तिनी, शंखिनी, सूर्यवक्त्रा, सहस्रकिरणा, उदया, मध्यमा, अस्तमनी, मालिनी, तर्जनी तथा कुम्भमुद्रा। इन मुद्राओंके

साथ जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उससे वे प्रसन्न हो जाते हैं। इस विधिसे ब्रह्माने भगवान् सूर्यकी पूजा की थी। राजन्! तुम भी इस विधिसे भास्करकी पूजा करो। इस विधिसे जो सदा रविकी पूजा करता है, वह भगवान् सूर्यदेवके दिव्य धामको प्राप्त कर लेता है। नृप! इस विधिसे देवेशकी पूजा कर यथाशक्ति ब्राह्मणको विधिपूर्वक भोजन कराकर सप्तमीके दिन मन्त्रपूर्वक सूर्यका स्मरण करते हुए मौन होकर भोजन करे और भोजनसे पहले मरिचकी इस प्रकार प्रार्थना करे—
ॐ खखोल्काय स्वाहा। प्रीयतां प्रियसङ्गदो भव स्वाहा॥

ऐसा करनेसे ब्रतीको प्रिय व्यक्तिका समागम उसी क्षण प्राप्त हो जाता है। यह मरिच-सप्तमी प्रियसंगमदायिनी और पुण्यको प्रदान करनेवाली तथा कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली है। एक वर्षतक इस सप्तमी-ब्रतका पालन करनेसे पुत्रादिकोंसे वियोग नहीं होता। इसलिये महाबाहो! इस प्रियदायिनी सप्तमीको तुम भी करो। देवराज इन्द्रने इस मरिच-सप्तमीको उपवास कर महाराजी शचीका सङ्ग प्राप्त किया था। महाबलशाली राजा नलने भी इस सप्तमीको उपवास कर दमयन्तीको प्राप्त किया था और श्रीरामने भी इस सप्तमीके दिन उपवास कर भगवती सीताको प्राप्त किया था।

(अध्याय २१२—२१४)

निम्ब-सप्तमी तथा फलसप्तमी-ब्रतका वर्णन

सुमन्तुजीने कहा—हे वीर! अब मैं तृतीय निम्ब-सप्तमी (वैशाख शुक्ला सप्तमी)-की विधि बतला रहा हूँ, आप सुनें। इसमें निम्ब-पत्रका सेवन किया जाता है। यह सप्तमी सभी तरहके व्याधियोंको हरनेवाली है। इस दिन हाथमें शार्ङ्गधनुष, शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हुए

भगवान् सूर्यका ध्यान कर उनकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् सूर्यका मूल मन्त्र है—‘ॐ खखोल्काय नमः।’ ‘ॐ आदित्याय विद्वहे विश्वभागाय धीमहि। तत्रः सूर्यः प्रचोदयात्॥’ यह सूर्यका गायत्री-मन्त्र है।

पूजामें सर्वप्रथम समाहित-चित्त होकर प्रयत्नपूर्वक

मन्त्रपूत जलसे पूजाके उपचारोंका प्रोक्षण करे। अपनेमें भगवान् सूर्यकी भावना करके उनका ध्यान करते हुए मन्त्रवित् हृदय आदि अङ्गोंमें मन्त्रका विन्यास करे। सम्मार्जनी मुद्रासे दिशाओंका प्रतिबोधन करे। भूशोधन करना चाहिये। पूजाकी यह विधि सभीके लिये अभीष्ट फल देनेवाली है।

पवित्र स्थानमें कर्णिकायुक्त एक अष्टदल-कमल बनाये, उसमें आवाहिनी मुद्राके द्वारा भगवान् सूर्यका आवाहन करे। वहाँपर मनोहर-स्वरूप खखोल्क भगवान् सूर्यको स्नान कराये। मन्त्रमूर्ति भगवान् सूर्यकी स्थापना और स्नान आदि कर्म मन्त्रोंद्वारा करने चाहिये। आग्नेय दिशामें भगवान् सूर्यके हृदयकी, ईशानकोणमें सिरकी, नैऋत्यकोणमें शिखाकी एवं पूर्वदिशामें दोनों नेत्रोंकी भावना करे। इसके अनन्तर ईशानकोणमें सोम, पूर्व दिशामें मंगल, आग्नेयमें बुध, दक्षिणमें बृहस्पति, नैऋत्य दिशामें शुक्ल, पश्चिममें शनि, वायव्यमें केतु और उत्तरमें राहुकी स्थापना करे। कमलकी द्वितीय कक्षामें भगवान् सूर्यके तेजसे उत्पन्न द्वादश आदित्यों—भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, चन्द्र तथा विष्णुको स्थापित करे। पूर्वमें इन्द्र, दक्षिणमें यम, पश्चिममें वरुण, उत्तरमें कुबेर, ईशानमें ईश्वर, अग्निकोणमें अग्निदेवता, नैऋत्यमें पितृदेव, वायव्यमें वायु तथा जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, शेष, वासुकि, रेवती, विनायक, महाश्वेता, राज्ञी, सुवर्चला आदि तथा अन्य देवताओंके समूहको यथास्थान स्थापित करना चाहिये। सिद्धि, वृद्धि, स्मृति, उत्पलमालिनी तथा श्री इनको अपने दक्षिण पार्श्वमें स्थापित करना चाहिये। प्रज्ञावती, विभा, हारीता, बुद्धि, ऋद्धि, विसृष्टि, पौर्णमासी तथा विभावरी आदि देव-

शक्तियोंको अपने उत्तर भगवान् सूर्यके समीप स्थापित करना चाहिये।

इस प्रकार भगवान् सूर्य तथा उनके परिकरों एवं देव-शक्तियोंकी स्थापना करनेके अनन्तर मन्त्रपूर्वक धूप, दीप, नैवेद्य, अलंकार, वस्त्र, पुष्प आदि उपचारोंको भगवान् सूर्य तथा उनके अनुगामी देवोंको प्रदान करे। इस विधिसे जो भास्करकी सदा अर्चना करता है, वह सभी कामनाओंको पूर्ण कर सूर्यलोकको प्राप्त करता है। निम्नलिखित मन्त्रद्वारा निम्बकी प्रार्थना कर उसे भगवान्को निवेदित करके प्राशन करे—

त्वं निम्ब कटुकात्मासि आदित्यनिलयस्तथा ।

सर्वरोगहरः शान्तो भव मे प्राशनं सदा ॥

‘हे निम्ब! तुम भगवान् सूर्यके आश्रयस्थान हो। तुम कटु स्वभाववाले हो, तुम्हारे भक्षण करनेसे मेरे सभी रोग सदाके लिये नष्ट हो जायँ और तुम मेरे लिये शान्तस्वरूप हो जाओ।’

इस मन्त्रसे निम्बका प्राशन कर भगवान् सूर्यके समक्ष पृथ्वीपर बैठकर सूर्यमन्त्रका जप करे। इसके बाद यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे। अनन्तर संयत-वाक् हो लवणवर्जित मधुर भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक इस निम्ब-सप्तमीका व्रत करनेवाला व्यक्ति सभी रोगोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको जाता है।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको उपवास कर भगवान् सूर्यकी सौर-विधानसे पूजा करनी चाहिये। पुनः अष्टमीको स्नानकर दिवाकरकी पूजा कर ब्राह्मणोंको खजूर नारियल, मातुलुङ्घ (बिजौरा) तथा आम्रके फलोंको भगवान्के सम्मुख रखना चाहिये और ‘मार्तण्डः प्रीयताम्’ ऐसा कहकर इन्हें ब्राह्मणोंको निवेदित कर दे। यह फल-सप्तमी कहलाती है। ‘सर्वे भवन्तु

सफला मम कामः समन्ततः ।' ऐसा कहकर स्वयं | एक वर्षतक श्रद्धा-भक्तिपूर्वक व्रत करनेसे पुत्र-
भी उन्हीं फलोंका भक्षण करे। इस फल-सप्तमीका | पौत्रोंकी प्राप्ति होती है१। (अध्याय २१५)

ब्राह्मपर्व-श्रवणका माहात्म्य, पुराण-श्रवणकी विधि, पुराणों तथा पुराणवाचक व्यासकी महिमा

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! भविष्यपुराणके इस प्रथम ब्राह्मपर्वके सुननेसे मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सहस्रों अश्वमेध, वाजपेय एवं राजसूय-यज्ञों, सभी तीर्थ-यात्राओं, वेदाभ्यास तथा पृथ्वीदान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। इतिहास-पुराणके श्रवणके अतिरिक्त ऐसा कोई साधन नहीं है, जो सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर सके। पुराण-श्रवणका जो फल बतलाया गया है, वही फल पुराणके पाठसे भी होता है, इसमें कोई संदेह नहीं२।

शतानीकने पूछा—भगवन्! महाभारत, रामायण एवं पुराणोंका श्रवण तथा पठन किस विधानसे करना चाहिये? पुराण-वाचकके क्या लक्षण हैं? भगवान् खखोल्कका क्या स्वरूप है? वाचककी विधिवत् पूजा करनेसे क्या फल होता है? पर्वकी समाप्तिपर वाचकोंको क्या देना चाहिये? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

सुमन्तुजी बोले—राजन्! आपने इतिहास-पुराणके सम्बन्धमें अच्छी जिज्ञासा की है। महाबाहो! इस सम्बन्धमें पूर्वकालमें देवगुरु बृहस्पति तथा ब्रह्माजीके

मध्य जो संवाद हुआ था, उसे आप श्रवण करें।

मानव विशेष भक्तिपूर्वक इतिहास और पुराणका श्रवण कर ब्रह्महत्यादि सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। पवित्र होकर प्रातः, सायं तथा रात्रिमें जो पुराणका श्रवण करता है, उस व्यक्तिसे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश संतुष्ट हो जाते हैं। प्रातःकाल भगवान् ब्रह्मा, सायंकाल विष्णु और रात्रिमें महादेव प्रसन्न होते हैं३। राजन्! अब वाचकके विधानको सुनिये। पवित्र वस्त्र पहनकर शुद्ध होकर प्रदक्षिणापूर्वक जब वाचक आसनपर बैठता है तो वह देवस्वरूप हो जाता है। आसन न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा। वाचकके आसनकी सदा वन्दना की जानी चाहिये। वाचकके आसनको व्यासपीठ कहा जाता है। पीठको गुरुका आसन समझना चाहिये। वाचकके आसनपर सुननेवालेको कभी भी नहीं बैठना चाहिये। देवताओंकी अर्चना करके विशेषरूपसे ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। सभी समागत व्यक्तियोंको साथमें लेकर पुराण-ग्रन्थ वाचकके लिये प्रदान

१-यहाँ भविष्यपुराणका पाठ कुछ त्रुटित प्रतीत होता है। सात सप्तमी-ब्रतोंमेंसे अवशिष्ट अनोदना, विजय तथा कामिका-सप्तमी-ब्रत छूट गये हैं। चतुर्वर्ग-चिन्तामणि (हेमाद्रि)-के ब्रतखण्डमें भविष्यपुराणके नामसे इन ब्रतोंका विस्तारसे वर्णन आता है। वैशाख शुक्ला सप्तमी अनोदना-सप्तमी, माघ शुक्ला सप्तमी विजया-सप्तमी तथा फाल्गुन शुक्ला सप्तमी कामिका-सप्तमी कही गयी है। विजया-सप्तमीमें सूर्यसहस्रनाम स्तोत्र भी पढ़ा गया है। इससे लगता है कि हेमाद्रिके पास भविष्यपुराणकी प्रामाणिक एवं पूर्ण शुद्ध प्रति सुरक्षित थी। पुराणोंकी उपेक्षासे ही इस समयकी प्रतिमें वह अंश खण्डित हो गया है।

२-इतिहासपुराणाभ्यां न त्वन्यत् पावनंनृणाम्। येषां श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

विधिना राजशार्दूल शृण्वतां यत्कलं किल। यथोक्तं नात्र संदेहः पठतां च विशाम्पते॥ (ब्राह्मपर्व २१६। ३४-३५)

३-इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या विशेषतः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो॥

सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः। तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शंकरस्तथा॥

प्रत्यूषे भगवान् ब्रह्मा दिनान्ते तुष्यते हरिः। महादेवस्तथा रात्रौ शृणवतां तुष्यते विभुः॥

(ब्राह्मपर्व २१६। ४३-४५)

करे। उस ग्रन्थको नतमस्तक हो प्रणाम करे। तब शान्तचित्त होकर श्रवण करे।

ग्रन्थका सूत्र (धागा) वासुकि कहा गया है। ग्रन्थका पत्र भगवान् ब्रह्मा, उसके अक्षर जनार्दन, सूत्र शंकर तथा पंक्तियाँ सभी देवता हैं। सूत्रके मध्यमें अग्नि और सूर्य स्थित रहते हैं। इनके आगे सभी ग्रह तथा दिशाएँ अवस्थित रहती हैं। शंकुको मेरु कहा गया है। रिक्तस्थानको आकाश कहा गया है। ग्रन्थके ऊपर तथा नीचे रहनेवाले दो काष्ठफलक द्यावा-पृथिवीरूपमें सूर्य और चन्द्रमा हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ देवमय है और देवताओंद्वारा पूजित है। इसलिये अपने कल्याणकी कामनासे इतिहास-पुराणादि श्रेष्ठ ग्रन्थोंको अपने घरमें रखना चाहिये, उन्हें नमस्कार करना चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये*।

राजन्! वाचक ग्रन्थको हाथमें ग्रहण कर ब्रह्मा, व्यास, वाल्मीकि, विष्णु, शिव, सूर्य आदिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके श्रद्धासमन्वित होकर ओजस्वी स्वरमें अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण करते हुए तथा सात स्वरोंसे युक्त यथासमय यथोचित रस एवं भावोंको प्रकट करते हुए ग्रन्थका पाठ करे। इस प्रकार वाचकके मुखसे जो श्रोता नियमतः श्रद्धापूर्वक इतिहास-पुराण और रामचरितको सुनता है, वह सभी फलोंको प्राप्त कर सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है और विपुल पुण्यको प्राप्त कर भगवान्के उत्तम और अद्वृत स्थानको प्राप्त करता है।

श्रोताको चाहिये कि वह स्नानादिसे पवित्र होकर वाचकको प्रणाम करके उसके सम्मुख आसनपर बैठे और वाणीको संयत कर सुसमाहित हो वाचककी बातोंको सुने।

महाबाहो! व्यासस्वरूप वाचकको नमस्कार करनेपर संशयके बिना अन्य कुछ भी नहीं बोलना चाहिये। कथा-सम्बन्धी धार्मिक शंका या जिज्ञासा उत्पन्न होनेपर वाचकसे नम्रतापूर्वक पूछना चाहिये, क्योंकि व्यासस्वरूप वक्ता उसका गुरु और धर्मबन्धु है। वाचकको भी भलीभाँति उसे समझाना चाहिये, क्योंकि वह गुरु है, इसीलिये सबपर अनुग्रह करना उसका धर्म है। उत्तरके अनन्तर 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहकर पुनः आगेकी कथा सुनानी चाहिये। श्रोताको अपनी वाणीपर नियन्त्रण रखना चाहिये। वाचक ब्राह्मणको ही होना चाहिये। प्रत्येक मासमें पारण करे तथा वाचककी पूजा करे, महीनाके पूर्ण होनेपर वाचकको स्वर्ण प्रदान करे।

प्रथम पारणमें वाचककी अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करनेपर अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है। कार्तिकसे आरम्भकर आश्विनतक प्रत्येक मासमें एक-एक पारणापर पूजन करनेसे क्रमशः अग्निष्टोम, गोसव, ज्योतिष्टोम, सौत्रामणि, वाजपेय, वैष्णव, माहेश्वर, ब्राह्म, पुण्डरीक, आदित्य, राजसूय तथा अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। इस प्रकार यज्ञ-फलोंकी प्राप्ति कर वह निःसंदेह उत्तम लोकको प्राप्त करता है।

पर्वकी समाप्तिपर गन्ध, माला, विविध वस्त्र आदिसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। स्वर्ण, रजत, गाय, काँसेका दोहन-पात्र आदि वाचकको प्रदान कर कथा-श्रवणका फल प्राप्त करना चाहिये। वाचकसे बढ़कर दान देने योग्य सुपात्र और कोई नहीं है, क्योंकि उसकी जिह्वाके अग्रभागपर सभी शास्त्र विराजमान रहते हैं। जो श्रद्धापूर्वक वाचकको भोजन कराता है, उसके पितर सौ वर्षतक तृप्ति

* इत्थं देवमयं ह्येतत् पुस्तकं देवपूजितम् । नमस्यं पूजनीयं च गृहे स्थाप्य विभूतये ॥ (ब्राह्मपर्व २१६।५८)

रहते हैं। जैसे सभी देवोंमें सूर्य श्रेष्ठ हैं वैसे ही ब्राह्मणोंमें वाचक श्रेष्ठ है। वाचक व्यास कहा जाता है। जिस देश, नगर, गाँवमें ऐसा व्यास निवास करता है, वह क्षेत्र श्रेष्ठ माना जाता है। वहाँके निवासी धन्य हैं, कृतार्थ हैं, इसमें संदेह नहीं। वाचकको प्रणाम करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उस फलकी प्राप्ति अन्य कर्मोंसे नहीं होती।

जैसे कुरुक्षेत्रके समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं, गङ्गाके समान कोई नदी नहीं, भास्करसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं, अश्वमेधके समान कोई यज्ञ

नहीं, पुत्र-जन्मके तुल्य सुख नहीं, वैसे ही पुराणवाचक व्यासके समान कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता। देवकार्य, पितृकार्य सभी कर्मोंमें यह परम पवित्र है*।

राजन्! इस प्रकार मैंने पुराणश्रवणकी विधि तथा वाचकके माहात्म्यको बतलाया। विधिके अनुसार ही पुराणादिका श्रवण एवं पाठ करना चाहिये। स्नान, दान, जप, होम, पितृपूजन तथा देवपूजन आदि सभी श्रेष्ठ कर्म विधिपूर्वक अनुष्ठित होनेपर ही उत्तम फल प्रदान करते हैं।

(अध्याय २१६)

॥ भविष्यपुराणान्तर्गत ब्राह्मपर्व सम्पूर्ण ॥



* कुरुक्षेत्रसमं तीर्थं न द्वितीयं प्रचक्षते । न नदी गङ्ग्या तुल्या न देवो भास्कराद्वरः ॥
नाश्वमेधसमं पुण्यं न पापं ब्रह्महत्या । पुत्रजन्मसुखैस्तुल्यं न सुखं विद्यते यथा ॥
तथा व्याससमो विप्रो न क्लिच्छत् प्राप्यते नृप । दैवे कर्मणि पित्र्ये च पावनः परमो नृणाम् ॥

(ब्राह्मपर्व २१६। १०९—१११)

मध्यमपर्व

(प्रथम भाग)

गृहस्थाश्रम एवं धर्मकी महिमा

जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्ता

जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः ।

जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो

जयति सकलमौलिर्भानुमांश्चित्रभानुः ॥

‘संसारकी सृष्टि करनेवाले भुवनके दीपस्वरूप भगवान् भास्करकी जय हो। श्याम शरीरवाले शार्ङ्गधनुधर्षी भगवान् मुरारिकी जय हो। मस्तकपर चन्द्रमा धारण किये हुए भगवान् रुद्रकी जय हो। सभीके मुकुटमणि तेजोमय भगवान् चित्रभानु (सूर्य)-की जय हो।’

एक बार पौराणिकोंमें श्रेष्ठ रोमहर्षण सूतजीसे मुनियोंने प्रणामपूर्वक पुराण-संहिताके विषयमें पूछा। सूतजी मुनियोंके वचन सुनकर अपने गुरु सत्यवती-पुत्र महर्षि वेदव्यासको प्रणामकर कहने लगे। मुनियो ! मैं जगत्के कारण ब्रह्मस्वरूपको धारण करनेवाले भगवान् हरिको प्रणामकर पापका सर्वथा नाश करनेवाले पुराणकी दिव्य कथा कहता हूँ, जिसके सुननेसे सभी पापकर्म नष्ट हो जाते हैं और परमगति प्राप्त होती है। द्विजगण ! भगवान् विष्णुके द्वारा कहा गया भविष्यपुराण अत्यन्त पवित्र एवं आयुष्यप्रद है। अब मैं उसके मध्यमपर्वका वर्णन करता हूँ, जिसमें देव-प्रतिष्ठा आदि इष्टापूर्त-कर्मोंका वर्णन है। उसे आप सुनें—

इस मध्यमपर्वमें धर्म तथा ब्राह्मणादिकी प्रशंसा, आपद्धर्मका निरूपण, विद्या-माहात्म्य, प्रतिमा-निर्माण, प्रतिमा-स्थापना, प्रतिमाका लक्षण, काल-व्यवस्था, सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पुराणका लक्षण, भूगोलका निर्णय, तिथियोंका निरूपण, श्राद्ध, संकल्प, मन्वन्तर, मुर्मुर्षु

मरणासन्नके कर्म, दानका माहात्म्य, भूत, भविष्य, युग-धर्मानुशासन, उच्च-नीच-निर्णय, प्रायश्चित्त आदि विषयोंका भी समावेश है।

मुनियो ! तीनों आश्रमोंका मूल एवं उत्पत्तिका स्थान गृहस्थाश्रम ही है। अन्य आश्रम इसीसे जीवित रहते हैं, अतः गृहस्थाश्रम सबसे श्रेष्ठ है। गार्हस्थ्य-जीवन ही धर्मानुशासित जीवन है। धर्मरहित होनेपर अर्थ और काम उसका परित्याग कर देते हैं। धर्मसे ही अर्थ और काम उत्पन्न होते हैं, मोक्ष भी धर्मसे ही प्राप्त होता है, अतः धर्मका ही आश्रयण करना चाहिये। धर्म, अर्थ और काम यही त्रिवर्ग हैं। प्रकारान्तरसे ये क्रमशः त्रिगुण अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणात्मक हैं। सात्त्विक अथवा धार्मिक व्यक्ति ही सच्ची उन्नति करते हैं, राजस मध्य स्थानको प्राप्त करते हैं। जघन्यगुण अर्थात् तामस व्यवहारवाले निम्न भूमिको प्राप्त करते हैं। जिस पुरुषमें धर्मसे समन्वित अर्थ और काम व्यवस्थित रहते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर मरनेके अनन्तर मोक्षको प्राप्त करते हैं, इसलिये अर्थ और कामको समन्वित कर धर्मका आश्रय ग्रहण करे। ब्रह्मवादियोंने कहा है कि धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। स्थावर-जङ्गम अर्थात् सम्पूर्ण चराचर विश्वको धर्म ही धारण करता है। धर्ममें धारण करनेकी जो शक्ति है, वह ब्राह्मी शक्ति है, वह आद्यन्तरहित है। कर्म और ज्ञानसे धर्म प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं। अतः ज्ञानपूर्वक कर्मयोगका आचरण करना चाहिये। प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलकके भेदसे

वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं। ज्ञानपूर्वक त्याग संन्यास है, संन्यासियों एवं योगियोंके कर्म निवृत्तिपरक हैं और गृहस्थोंके वेद-शास्त्रानुकूल कर्म प्रवृत्तिपरक हैं। अतः प्रवृत्तिके सिद्ध हो जानेपर मोक्षकामीको निवृत्तिका आश्रय लेना चाहिये, नहीं तो पुनः-पुनः संसारमें आना पड़ता है। शम, दम, दया, दान, अलोभ, विषयोंका त्याग, सरलता या निश्छलता, निष्क्रोध, अनसूया, तीर्थयात्रा, सत्य, संतोष, आस्तिकता, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजन, विशेषरूपसे ब्राह्मणपूजा, अहिंसा, सत्यवादिता,

निन्दाका परित्याग, शुभानुष्ठान, शौचाचार, प्राणियोंपर दया—ये श्रेष्ठ आचरण सभी वर्णोंके लिये सामान्य रूपसे कहे गये हैं। श्रद्धामूलक कर्म ही धर्म कहे गये हैं, धर्म श्रद्धाभावमें ही स्थित है, श्रद्धा ही निष्ठा है, श्रद्धा ही प्रतिष्ठा है और श्रद्धा ही धर्मकी जड़ है। विधिपूर्वक गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले ब्राह्मणोंको प्रजापतिलोक, क्षत्रियोंको इन्द्रलोक, वैश्योंको अमृतलोक और तीनों वर्णोंकी परिचर्यापूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाले शूद्रोंको गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है। (अध्याय १)

सृष्टि तथा सात ऊर्ध्व एवं सात पाताल लोकोंका वर्णन

श्रीसूतजी बोले—मुनियो! अब मैं कल्पके अनुसार सैकड़ों मन्वन्तरोंके अनुगत ईश्वर-सम्बन्धी कालचक्रका वर्णन करता हूँ।

सृष्टिके पूर्व यह सब परम अन्धकार-निमग्न एवं सर्वथा अप्रतिज्ञात-स्वरूप था। उस समय परम कारण, व्यापक एकमात्र रुद्र ही अवस्थित थे। सर्वव्यापक भगवान् ने आत्मस्वरूपमें स्थित होकर सर्वप्रथम मनकी सृष्टि की। फिर अहंकारकी सृष्टि की। उससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध नामक पञ्चतन्मात्रा तथा पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति की। इनमेंसे आठ प्रकृति हैं (अर्थात् दूसरेको उत्पन्न करनेवाली हैं)—प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शकी तन्मात्राएँ। पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन—ये सोलह इनकी विकृतियाँ हैं। ये किसीकी भी प्रकृति नहीं हैं, क्योंकि इनसे किसीकी उत्पत्ति नहीं होती। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। कानका शब्द, त्वक्का स्पर्श, चक्षुका रूप, जिह्वाका रस, नासिकाका गन्ध है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानके भेदसे वायुके पाँच प्रकार हैं। सत्त्व,

रज और तम—ये तीन गुण कहे गये हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और उससे उत्पन्न सारा चराचर विश्व भी त्रिगुणात्मक है। उस भगवान् वासुदेवके तेजसे ब्रह्मा, विष्णु और शाम्भुका आविर्भाव हुआ है। वासुदेव अशरीरी, अजन्मा तथा अयोनिज हैं। उनसे परे कुछ भी नहीं है। वे प्रत्येक कल्पमें जगत् और प्राणियोंकी सृष्टि एवं उपसंहार भी करते हैं।

बहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर तथा चौदह मन्वन्तरका एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्माका एक दिन और रात है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक और ब्रह्मलोक—ये सात लोक कहे गये हैं। पाताल, वितल, अतल, तल, तलातल, सुतल और रसातल—ये सात पाताल हैं। इनके आदि, मध्य और अन्तमें रुद्र रहते हैं। महेश्वर लीलाके लिये संसारको उत्पन्न करते हैं और संहार भी करते हैं। ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा करनेवालेकी ऊर्ध्वगति कही गयी है।

त्रिष्ठुर सर्वदर्शी (परमात्मा)–ने सर्वप्रथम प्रकृतिकी सृष्टि की। उस प्रकृतिसे विष्णुके साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। द्विजश्रेष्ठो! इसके बाद बुद्धिसे नैमित्तिकी

सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सृष्टिक्रममें स्वयम्भुव ब्रह्माने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया। अनन्तर क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी सृष्टि की। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिशाओंकी कल्पना की। लोकालोक, द्वीपों, नदियों, सागरों, तीर्थों, देवस्थानों, मेघगर्जनों, इन्द्रधनुषों, उल्कापातों, केतुओं तथा विद्युत् आदिको उत्पन्न किया। यथासमय ये सभी उसी परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। ध्रुवसे ऊपर एक करोड़ योजन विस्तृत महर्लोक है। ब्राह्मण-श्रेष्ठ वहाँ कल्पान्तपर्यन्त रहते हैं। महर्लोकसे ऊपर दो करोड़ योजन विस्तृत जनलोक है, वहाँ ब्रह्माके पुत्र सनकादि रहते हैं। जनलोकसे ऊपर तीन करोड़ योजनवाला तपोलोक है, वहाँ तापत्रयरहित देवगण रहते हैं। तपोलोकसे ऊपर छः करोड़ योजन विस्तृत सत्यलोक है, जहाँ भृगु, वसिष्ठ, अत्रि, दक्ष, मरीचि आदि प्रजापतियोंका निवास है। जहाँ सनत्कुमार आदि सिद्ध योगिगण निवास करते हैं, वह ब्रह्मलोक कहा जाता है। उस लोकमें विश्वात्मा विश्वतोमुख गुरु ब्रह्मा रहते हैं। आस्तिक ब्रह्मवादी, यतिगण, योगी, तापस, सिद्ध तथा जापक उन परमेष्ठी ब्रह्माजीकी गाथाका गान इस प्रकार करते हैं—‘परमपदकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले योगियोंका द्वार यही परमपद लोक है। वहाँ जाकर किसी प्रकारका शोक नहीं होता। वहाँ जानेवाला विष्णु एवं शंकरस्वरूप हो जाता है। करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान यह स्थान बड़े कष्टसे प्राप्त होता है। ज्वालामालाओंसे परिव्याप्त इस पुरका वर्णन नहीं किया जा सकता।’ इस ब्रह्मधाममें नारायणका भी भवन है। माया-सहचर परात्पर

श्रीमान् हरि यहाँ शयन करते हैं। इसे ही पुनरावृत्तिसे रहित विष्णुलोक भी कहा जाता है। यहाँ आनेपर कोई भी लौटकर नहीं जाता। भगवान्‌के प्रपन्न महात्मागण ही जनार्दनको प्राप्त करते हैं। ब्रह्मासनसे ऊर्ध्व परम ज्योतिर्मय शुभ स्थान है। उसके ऊपर वहि परिव्याप्त है, वर्हीं पार्वतीके साथ भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। सैकड़ों-हजारों विद्वान् और मनीषियोंद्वारा वे चिन्त्यमान होकर प्रतिष्ठित रहते हैं। वहाँ नियत ब्रह्मवादी द्विजगण ही जाते हैं। महादेवमें सतत ध्यानरत, तापस, ब्रह्मवादी, अहंता-ममताके अध्याससे रहित, काम-क्रोधसे शून्य, ब्रह्मत्व-समन्वित ब्राह्मण ही उनको देख सकते हैं—वही रुद्रलोक है। ये सातों महालोक कहे गये हैं।

द्विजगणो! पृथ्वीके नीचे महातल आदि पाताललोक हैं। महातल नामक पाताल स्वर्णमय तथा सभी बर्णोंसे अलंकृत है। वह विविध प्रासादों और शुभ देवालयोंसे समन्वित है। वहाँपर भगवान् अनन्त, बुद्धिमान् मुचुकुन्द तथा बलि भी निवास करते हैं। भगवान् शंकरसे सुशोभित रसातल शैलमय है। सुतल पीतवर्ण और वितल मूँगेकी कान्तिवाला है। वितल श्वेत और तल कृष्णवर्ण है। यहाँ वासुकि रहते हैं। कालनेमि वैनतेय, नमुचि, शङ्खकर्ण तथा विविध नाग भी यहाँ निवास करते हैं। इनके नीचे रौरव आदि अनेकों नरक हैं, उसमें पापियोंको गिराया जाता है। पातालोंके नीचे शेष नामक वैष्णवी शरीर है। वहाँ कालाग्नि रुद्रस्वरूप नरसिंह भगवान् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु नागरूपी अनन्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। (अध्याय २-३)

भूगोल एवं ज्योतिश्वकका वर्णन

श्रीसूतजी बोले—मुनियो ! अब मैं भूर्लोकका वर्णन करता हूँ । भूर्लोकमें जम्बू, प्लक्ष, शालमलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर नामके सात महाद्वीप हैं, जो सात समुद्रोंसे आवृत हैं । एक द्वीपसे दूसरे द्वीप क्रम-क्रमसे ठीक दूने-दूने आकार एवं विस्तारवाले हैं और एक सागरसे दूसरे सागर भी दूने आकारके हैं । क्षीरोद, इक्षुरसोद, क्षारोद, घृतोद, दध्योद, क्षीरसलिल तथा जलोद—ये सात महासागर हैं । यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तृत, समुद्रसे चारों ओरसे धिरी हुई तथा सात द्वीपोंसे समन्वित है । जम्बूद्वीप सभी द्वीपोंके मध्यमें सुशोभित हो रहा है । उसके मध्यमें सोनेकी कान्तिवाला महामेरु पर्वत है । इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है । यह महामेरु पर्वत नीचेकी ओर सोलह हजार योजन पृथ्वीमें प्रविष्ट है और ऊपरी भागमें इसका विस्तार बत्तीस हजार योजन है । नीचे (तलहटी)-में इसका विस्तार सोलह हजार योजन है । इस प्रकार यह पर्वत पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिका (कोष)-के समान है । इस मेरु पर्वतके दक्षिणमें हिमवान्, हिमकूट और निषध नामके पर्वत हैं । उत्तरमें नील, श्वेत तथा शृंगी नामके वर्ष-पर्वत हैं । मध्यमें लक्ष्योजन प्रमाणवाले दो (निषध और नील) पर्वत हैं । उनसे दूसरे-दूसरे दस-दस हजार योजन कम हैं । (अर्थात् हैमकूट और श्वेत नब्बे हजार योजन तथा हिमवान् और शृंगी अस्सी-अस्सी हजार योजनतक फैले हुए हैं ।) वे सभी दो-दो हजार योजन लम्बे और इतने ही चौड़े हैं ।

द्विजो ! मेरुके दक्षिण भागमें भारतवर्ष है, अनन्तर किंपुरुषवर्ष और हरिवर्ष ये मेरु पर्वतके दक्षिणमें हैं । उत्तरमें चम्पक, अश्व, हिरण्मय तथा उत्तरकुरुवर्ष हैं । ये सब भारतवर्षके समान ही हैं । इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार नौ सहस्र योजन है,

इनके मध्यमें इलावृतवर्ष है और उसके मध्यमें उन्नत मेरु स्थित है । मेरुके चारों ओर नौ सहस्र योजन विस्तृत इलावृतवर्ष है । महाभाग ! इसके चारों ओर चार पर्वत हैं । ये चारों पर्वत मेरुकी कीलें हैं, जो दस सहस्र योजन परिमाणमें ऊँची हैं । इनमेंसे पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुपार्श्व है । इनपर कदम्ब, जम्बू, पीपल और वट-वृक्ष हैं । महर्षिगण ! जम्बूद्वीप नाम होनेका कारण महाजम्बू वृक्ष भी यहाँ है, उसके फल महान् गजराजके समान बड़े होते हैं । जब वे पर्वतपर गिरते हैं तो फटकर सब ओर फैल जाते हैं । उसीके रससे जम्बू नामकी प्रसिद्ध नदी वहाँ बहती है, जिसका जल वहाँके रहनेवाले पीते हैं । उस नदीके जलका पान करनेसे वहाँके निवासियोंको पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा और इन्द्रिय-क्षय नहीं होता । वहाँके निवासी शुद्ध हृदयवाले होते हैं । उस नदीके किनारेकी मिट्टी उस रससे मिलकर मन्द-मन्द वायुके द्वारा सुखाये जानेपर 'जाम्बूनद' नामक सुवर्ण बन जाती है, जो सिद्ध पुरुषोंका भूषण है ।

मेरुके पास (पूर्वमें) भद्राश्वर्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष है । इन दो वर्षोंके मध्यमें इलावृतवर्ष है । विप्रश्रेष्ठ ! मेरुके ऊपर ब्रह्माका उत्तम स्थान है । उसके ऊपर इन्द्रका स्थान है और उसके ऊपर शंकरका स्थान है । उसके ऊपर वैष्णवलोक तथा उससे ऊपर दुर्गालोक है । इसके ऊपर सुवर्णमय, निराकार दिव्य ज्योतिर्मय स्थान है । उसके भी ऊपर भक्तोंका स्थान है, वहाँ भगवान् सूर्य रहते हैं । ये परमेश्वर भगवान् सूर्य ज्योतिर्मय चक्रके मध्यमें निश्चलरूपसे स्थित हैं । ये मेरुके ऊपर राशिचक्रमें भ्रमण करते हैं । भगवान् सूर्यका रथ-चक्र मेरु पर्वतकी नाभिमें रात-दिन वायुके द्वारा

भ्रमण कराया जाता हुआ ध्रुवका आश्रय लेकर प्रतिष्ठित है। दिक्पाल आदि तथा ग्रह वहाँ दक्षिणसे उत्तर मार्गकी ओर प्रतिमास चलते रहते हैं। ह्रास और वृद्धिके क्रमसे रविके द्वारा जब चान्द्रमास लघुत होता है, तब उसे मलमास कहा जाता है^१। सूर्य, सोम, बुध, चन्द्र और शुक्र शीघ्रगामी ग्रह हैं। दक्षिणायन मार्गसे सूर्य गतिमान् होनेपर

सभी ग्रहोंके नीचे चलते हैं। विस्तीर्ण मण्डल कर उसके ऊपर चन्द्रमा गतिशील रहता है। सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल सोमसे ऊपर चलता है। नक्षत्रोंके ऊपर बुध और बुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल और उससे ऊपर बृहस्पति तथा बृहस्पतिसे ऊपर शनि, शनिके ऊपर सप्तर्षिमण्डल और सप्तर्षिमण्डलके ऊपर ध्रुव स्थित है। (अध्याय ४)

ब्राह्मणोंकी महिमा तथा छब्बीस दोषोंका वर्णन

श्रीसूतजी बोले—हे द्विजोत्तम! तीनों वर्णोंमें ब्राह्मण जन्मसे प्रभु हैं। हव्य और कव्य सभीकी रक्षाके लिये तपस्याके द्वारा ब्राह्मणकी प्रथम सृष्टि की गयी है। देवगण इन्हींके मुखसे हव्य और पितृगण कव्य स्वीकार करते हैं। अतः इनसे श्रेष्ठ कौन हो सकता है। ब्राह्मण जन्मसे ही श्रेष्ठ हैं और सभीसे पूजनीय हैं। जिसके गर्भाधान आदि अड़तालीस संस्कार शास्त्रविधिसे सम्बन्ध होते हैं, वही सच्चा ब्राह्मण है। द्विजकी पूजाकर देवगण स्वर्गफल भोगनेका लाभ प्राप्त करते हैं। अन्य मनुष्य भी ब्राह्मणकी पूजाकर देवत्वको प्राप्त करते हैं। जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। वेद भी ब्राह्मणोंके मुखमें संनिहित रहते हैं। सभी विषयोंका ज्ञान होनेके कारण ब्राह्मण ही देवताओंकी पूजा, पितृकार्य, यज्ञ, विवाह, वहिकार्य, शान्तिकर्म, स्वस्त्र्ययन आदिके सम्पादनमें प्रशस्त है। ब्राह्मणके बिना देवकार्य, पितृकार्य तथा यज्ञ-कर्मोंमें दान, होम और बलि—ये सभी निष्फल होते हैं।

ब्राह्मणको देखकर श्रद्धापूर्वक अभिवादन करना

चाहिये, उसके द्वारा कहे गये 'दीर्घायुर्भव' शब्दसे मनुष्य चिरजीवी होता है। द्विजश्रेष्ठ! ब्राह्मणकी पूजासे आयु, कीर्ति, विद्या और धनकी वृद्धि होती है। जहाँ जलसे विप्रोंका पाद-प्रक्षालन नहीं किया जाता, वेद-शास्त्रोंका उच्चारण नहीं होता और जहाँ स्वाहा, स्वधा और स्वस्तिकी ध्वनि नहीं होती, ऐसा गृह शमशानके समान है^२।

विद्वानोंने नरकगामी मनुष्योंके छब्बीस दोष बतलाये हैं, जिन्हें त्यागकर शुद्धतापूर्वक निवास करना चाहिये—(१) अधम, (२) विषम, (३) पशु, (४) पिशुन, (५) कृपण, (६) पापिष्ठ, (७) नष्ट, (८) रुष्ट, (९) दुष्ट, (१०) पुष्ट, (११) हष्ट, (१२) काण, (१३) अन्ध, (१४) खण्ड, (१५) चण्ड, (१६) कुष्ठ, (१७) दत्तापहारक, (१८) वक्ता, (१९) कदर्य, (२०) दण्ड, (२१) नीच, (२२) खल, (२३) वाचाल, (२४) चपल, (२५) मलीमस तथा (२६) स्तेयी।

उपर्युक्त छब्बीस दोषोंके भी अनेक भेद-प्रभेद बतलाये गये हैं। विप्रेन्द्र! इन (छब्बीस) दोषोंका विवरण संक्षेपमें इस प्रकार है—

१-रविणा लघुतो मासशान्द्रः ख्यातो मलिम्लुचः। (मध्यमपर्व १। ४। २७)

प्रकारान्तरसे यह श्लोक ज्योतिषके 'संक्रान्तिरहितो मासो मलमास उदाहतः।' इसी वचनके भावका द्योतक है।

२-न विप्रपादोदकर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिगर्जितानि। स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि शमशानतुल्यानि गृहणि तानि॥

(मध्यमपर्व १। ५। २२)

१. गुरु तथा देवताके सम्मुख जूता और छाता धारणकर जानेवाले, गुरुके सम्मुख उच्च आसनपर बैठनेवाले, यानपर चढ़कर तीर्थ-यात्रा करनेवाले तथा तीर्थमें ग्राम्य धर्मका आचरण करनेवाले—ये सभी अधम-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति कहे गये हैं। २. प्रकटमें प्रिय और मधुर वाणी बोलनेवाले पर हृदयमें हालाहल विष धारण करनेवाले, कहते कुछ और हैं तथा आचरण कुछ और ही करते हैं—ये दोनों विषम-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति कहे जाते हैं। ३. मोक्षकी चिन्ता छोड़कर सांसारिक चिन्ताओंमें श्रम करनेवाले, हरिकी सेवासे रहित, प्रयागमें रहते हुए भी अन्यत्र स्नान करनेवाले, प्रत्यक्ष देवको छोड़कर अदृष्टकी सेवा करनेवाले तथा शास्त्रोंके सार-तत्त्वको न जानेवाले—ये सभी पशु-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति हैं। ४. बलसे अथवा छल-छद्मसे या मिथ्या प्रेमका प्रदर्शन कर ठगनेवाले व्यक्तिको पिशुन दोषयुक्त कहा गया है। ५. देव-सम्बन्धी और पितृ-सम्बन्धी कर्मोंमें मधुर अन्नकी व्यवस्था रहते हुए भी म्लान और तिक्त अन्नका भोजन करनेवाला दुर्बुद्धि मानव कृपण है, उसे न तो स्वर्ग मिलता है और न मोक्ष ही। जो अप्रसन्न मनसे कुत्सित वस्तुका दान करता एवं क्रोधके साथ देवता आदिकी पूजा करता है, वह सभी धर्मोंसे बहिष्कृत कृपण कहा जाता है। निर्दुष्ट होते हुए भी शुभका परित्याग तथा शुभ शरीरका विक्रय करनेवाला कृपण कहलाता है। ६. माता-पिता और गुरुका त्याग करनेवाला, पवित्राचाररहित, पिताके सम्मुख निःसंकोच भोजन करनेवाला, जीवित पिता-माताका परित्याग करनेवाला, उनकी कभी भी सेवा न करनेवाला तथा होम-यज्ञादिका लोप करनेवाला पापिष्ठ कहलाता है। ७. साधु आचरणका परित्याग कर

झूठी सेवाका प्रदर्शन करनेवाले, वेश्यागामी, देवधनके द्वारा जीवन-यापन करनेवाले, भार्याके व्यभिचारद्वारा प्राप्त धनसे जीवन-यापन करनेवाले या कन्याको बेचकर अथवा स्त्रीके धनसे जीवन-यापन करनेवाले—ये सब नष्ट-संज्ञक व्यक्ति हैं—ये स्वर्ग एवं मोक्षके अधिकारी नहीं हैं। ८. जिसका मन सदा क्रुद्ध रहता है, अपनी हीनता देखकर जो क्रोध करता है, जिसकी भौंहें कुटिल हैं तथा जो क्रुद्ध और रुष्ट स्वभाववाला है—ऐसे ये पाँच प्रकारके व्यक्ति रुष्ट कहे गये हैं। ९. अकार्यमें या निन्दित आचारमें ही जीवन व्यतीत करनेवाला, धर्मकार्यमें अस्थिर, निद्रालु, दुर्व्यसनमें आसक्त, मद्यपायी, स्त्री-सेवी, सदैव दुष्टोंके साथ वार्तालाप करनेवाला—ऐसे सात प्रकारके व्यक्ति दुष्ट कहे गये हैं। १०. अकेले ही मधुर-मिष्टान्न भक्षण करनेवाले, वञ्चक, सज्जनोंके निन्दक, शूकरके समान वृत्तिवाले—ये सब पुष्ट संज्ञक व्यक्ति कहे जाते हैं। ११. जो निगम (वेद), आगम (तत्र)-का अध्ययन नहीं करता है और न इन्हें सुनता ही है, वह पापात्मा हृष्ट कहा जाता है। १२-१३. श्रुति और स्मृति ब्राह्मणोंके ये दो नेत्र हैं। एकसे रहित व्यक्ति काना और दोनोंसे हीन अन्धा कहा जाता है*। १४. अपने सहोदरसे विवाद करनेवाला, माता-पिताके लिये अप्रिय वचन बोलनेवाला खण्ड कहा जाता है। १५. शास्त्रकी निन्दा करनेवाला, चुगलखोर, राजगामी, शूद्रसेवक, शूद्रकी पत्नीसे अनाचरण करनेवाला, शूद्रके घरपर पके हुए अन्नको एक बार भी खानेवाला या शूद्रके घरपर पाँच दिनोंतक निवास करनेवाला व्यक्ति चण्डोषवाला कहा जाता है। १६. आठ प्रकारके कुष्ठोंसे समन्वित, त्रिकुष्ठी, शास्त्रमें निन्दित व्यक्तियोंके साथ वार्तालाप करनेवाला अधम व्यक्ति कुष्ठ-दोषयुक्त कहा जाता

* श्रुति स्मृतिश्व विप्राणां नयने द्वे विनिर्मिते। एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्तः प्रकीर्तिः ॥ (मध्यमपर्व १ । ५ । ५७)

है। १७. कीटके समान भ्रमण करनेवाला, कुत्सित-दोषसे युक्त व्यापार करनेवाला दत्तापहारक कहा गया है। १८. कुपण्डित एवं अज्ञानी होते हुए भी धर्मका उपदेश देनेवाला वक्ता है। १९. गुरुजनोंकी वृत्तिको हरण करनेकी चेष्टा करनेवाला तथा काशी-निवासी व्यक्ति यदि बहुत दिन काशीको छोड़कर अन्यत्र निवास करता है, वह कदर्य (कंजूस) है। २०. मिथ्या क्रोधका प्रदर्शन करनेवाला तथा राजा न होते हुए भी दण्ड-विधान करनेवाला व्यक्ति दण्ड (उद्दण्ड) कहा जाता है। २१. ब्राह्मण, राजा और देव-सम्बन्धी धनका हरण कर, उस धनसे अन्य देवता या ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेवाला या उस धनका भोजन या अन्नको देनेवाला व्यक्ति खरके समान नीच है, जो अक्षर-अभ्यासमें तत्पर व्यक्ति केवल पढ़ता है, किंतु समझता नहीं, व्याकरण-शास्त्रशून्य व्यक्ति पशु है, जो गुरु और देवताके आगे कहता कुछ है और करता कुछ और है, अनाचारी-दुराचारी है वह नीच कहा जाता है। २२. गुणवान् एवं सज्जनोंमें जो दोषका अन्वेषण करता है वह व्यक्ति खल कहलाता है। २३. भाग्यहीन व्यक्तिसे परिहासयुक्त वचन बोलनेवाला तथा चाण्डालोंके साथ निर्लज्ज होकर वार्तालाप

करनेवाला वाचाल कहा जाता है। २४. पक्षियोंके पालनेमें तत्पर, बिल्लीके द्वारा आनीत भक्ष्यको बाँटनेके बहाने बंदरकी भाँति स्वयं भक्षण करनेवाला, व्यर्थमें तृणका छेदक, मिट्टीके ढेलेको व्यर्थमें भेदन करनेवाला, मांस भक्षण करनेवाला और अन्यकी स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला व्यक्ति चपल कहलाता है। २५. तैल, उबटन आदि न लगानेवाला, गन्ध और चन्दनसे शून्य, नित्यकर्मको न करनेवाला व्यक्ति मलीमस कहलाता है। २६. अन्यायसे अन्यके घरका धन ले लेनेवाला तथा अन्यायसे धन कमानेवाला, शास्त्र-निषिद्ध धनोंको ग्रहण करनेवाला, देव-पुस्तक, रत्न, मणि-मुक्ता, अश्व, गौ, भूमि तथा स्वर्णका हरण करनेवाला स्तेयी (चोर) कहा जाता है। साथ ही देव-चिन्तन तथा परस्पर कल्याण-चिन्तन न करनेवाले, गुरु तथा माता-पिताका पोषण न करनेवाले और उनके प्रति पालनीय कर्तव्यका आचरण न करनेवाले एवं उपकारी व्यक्तिके साथ समुचित व्यवहार न करनेवाले—ये सभी स्तेयी हैं। इन सभी दोषोंसे युक्त व्यक्ति रक्तपूर्ण नरकमें निवास करते हैं। इनका सम्यक् ज्ञान सम्पन्न हो जानेपर मनुष्य देवत्वको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ५)

माता, पिता एवं गुरुकी महिमा

श्रीसूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ! चारों वर्णोंके लिये पिता ही सबसे बड़ा अपना सहायक है। पिताके समान अन्य कोई अपना बन्धु नहीं है, ऐसा वेदोंका कथन है। माता-पिता और गुरु—ये तीनों पथप्रदर्शक हैं, पर इनमें माता ही सर्वोपरि है। भाइयोंमें जो क्रमशः बड़े हैं, वे क्रम-क्रमसे

ही विशेष आदरके पात्र हैं। इन्हें द्वादशी, अमावास्या तथा संक्रान्तिके दिन यथारुचि मणियुक्त वस्त्र दक्षिणाके रूपमें देना चाहिये, दक्षिणायन और उत्तरायणमें, विषुव संक्रान्तिमें तथा चन्द्र-सूर्य-ग्रहणके समय यथाशक्ति इन्हें भोजन कराना चाहिये; अनन्तर इन मन्त्रोंसे* इनकी चरण-वन्दना करनी चाहिये;

* स्वर्गापवर्गप्रदमेकमाद्यं ब्रह्मस्वरूपं पितरं नमामि । यतो जगत् पश्यति चारुरूपं तं तर्पयामः सलिलैस्तिलैर्युतैः ॥

पितरो जनयन्तीह पितरः पालयन्ति च । पितरो ब्रह्मरूपा हि तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥

यस्माद्विजयते लोकस्तस्माद्वर्द्धमः प्रवर्तते । नमस्तु यं पितः साक्षाद्ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥

क्योंकि विधिपूर्वक वन्दन करनेसे ही सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। स्वर्ग और अपवर्ग-रूपी फलको प्रदान करनेवाले एक आद्य ब्रह्मस्वरूप पिताको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनकी प्रसन्नतासे संसार सुन्दररूपमें दिखायी देता है, उन पिताका मैं तिलयुक्त जलसे तर्पण करता हूँ। पिता ही जन्म देता है, पिता ही पालन करता है, पितृगण ब्रह्मस्वरूप हैं, उन्हें नित्य पुनः-पुनः नमस्कार है। हे पितः ! आपके अनुग्रहसे लोकधर्म प्रवर्तित होता है, आप साक्षात् ब्रह्मरूप हैं, आपको नमस्कार है।

जो अपने उदररूपी विवरमें रखकर स्वयं उसकी सभी प्रकारसे रक्षा करती है, उस परा प्रकृतिस्वरूपा जननीदेवीको नमस्कार है। मातः ! आपने बड़े कष्टसे मुझे अपने उदर-प्रदेशमें धारण किया, आपके अनुग्रहसे मुझे यह संसार देखनेको मिला, आपको बार-बार नमस्कार है। पृथिवीपर जितने तीर्थ और सागर आदि हैं उन सबकी स्वरूपभूता आपको अपनी कल्याण-प्राप्तिके लिये मैं नमस्कार करता हूँ। जिन गुरुदेवके प्रसादसे मैंने यशस्करी विद्या प्राप्त की है,

उन भवसागरके सेतुस्वरूप शिवरूप गुरुदेवको मेरा नमस्कार है। अग्रजन्मन् ! वेद और वेदाङ्ग-शास्त्रोंके तत्त्व आपमें प्रतिष्ठित हैं। आप सभी प्राणियोंके आधार हैं, आपको मेरा नमस्कार है। ब्राह्मण सम्पूर्ण संसारके चलते-फिरते परम पावन तीर्थस्वरूप हैं। अतः हे विष्णुरूपी भूदेव ! आप मेरा पाप नष्ट करें, आपको मेरा नमस्कार है।

द्विजो ! जैसे पिता श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पिताके बड़े-छोटे भाई और अपने बड़े भाई भी पिताके समान ही मान्य एवं पूज्य हैं। आचार्य ब्रह्माकी, पिता प्रजापतिकी, माता पृथ्वीकी और भाई अपनी ही मूर्ति हैं। पिता मेरुस्वरूप एवं वसिष्ठ-स्वरूप सनातन धर्ममूर्ति हैं। ये ही प्रत्यक्ष देवता हैं, अतः इनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। इसी प्रकार पितामह एवं पितामही (दादा-दादी)-के भी पूजन-वन्दन, रक्षण, पालन और सेवनकी अत्यन्त महिमा है। इनकी सेवाके पुण्योंकी तुलनामें कोई नहीं है, क्योंकि ये माता-पिताके भी परम पूज्य हैं। (अध्याय ६)

पुराण-श्रवणकी विधि तथा पुराण-वाचककी महिमा

श्रीसूतजी बोले—ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने पुराण-श्रवणकी जिस विधिको मुझसे कहा था, उसे मैं आपको सुना रहा हूँ, आप सुनें।

इतिहास-पुराणोंके भक्तिपूर्वक सुननेसे ब्रह्महत्या

आदि सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है, जो प्रातः-सायं तथा रात्रिमें पवित्र होकर पुराणोंका श्रवण करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर संतुष्ट हो जाते हैं*। प्रातःकाल इसके पढ़ने और सुननेवालेसे

या कुक्षिविवरे कृत्वा स्वयं रक्षति सर्वतः । नमामि जननीं देवीं परां प्रकृतिरूपिणीम् ॥
कृच्छ्रेण महता देव्या धारितोऽहं यथोदरे । त्वत्प्रसादाज्जगददृष्टं मातर्नित्यं नमोऽस्तु ते ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरादीनि सर्वशः । वसन्ति यत्र तां नौमि मातरं भूतिहेतवे ॥
गुरुदेवप्रसादेन लब्ध्या विद्यायशस्करी । शिवरूप नमस्तस्मै संसारार्णवसेतवे ॥
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् । आधारः सर्वभूतानामग्रजन्मन् नमोऽस्तु ते ॥
ब्राह्मणो जगतां तीर्थं पावनं परमं यतः । भूदेव हर मे पापं विष्णुरूपिन् नमोऽस्तु ते ॥

(मध्यमपर्व १ । ६ । ६-१४)

* इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्याद्विजोत्तमाः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्याशतं च यत् ॥
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोत्तिः । तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा ॥

(मध्यमपर्व १ । ७ । ३-४)

ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं तथा सायंकालमें भगवान् विष्णु और रातमें भगवान् शंकर संतुष्ट होते हैं। पुराण-श्रवण करनेवालेको शुक्ल वस्त्र धारण कर कृष्ण-मृगचर्म तथा कुशके आसनपर बैठना चाहिये। आसन न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा। पहले देवता और गुरुकी तीन प्रदक्षिणा करे, तदनन्तर दिक्पालोंको नमस्कार करे। फिर ओंकारमें अधिष्ठित देवताओंको नमस्कार करे एवं शाश्वत धर्ममें अधिष्ठित धर्मशास्त्र-ग्रन्थोंको भी नमस्कार करे।

श्रोताका मुख दक्षिण दिशाकी ओर और वाचकका मुख उत्तरकी ओर हो। पुराण और महाभारत कथाकी यही विधि कही गयी है। हरिवंश, रामायण और धर्मशास्त्रके श्रवणकी इससे विपरीत विधि कही गयी है। अतः निर्दिष्ट विधिसे सुनना या पढ़ना चाहिये। देवालय या तीर्थोंमें इतिहास-पुराणके वाचनके समय सर्वप्रथम उस स्थान और उस तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करना चाहिये। अनन्तर पुराणादिका वाचन करना चाहिये। माहात्म्यके श्रवणसे गोदानका फल मिलता है। गुरुकी आज्ञासे माता-पिताका अभिवादन करना चाहिये। ये वेदके समान, सर्वधर्ममय तथा सर्वज्ञानमय हैं। अतः द्विजश्रेष्ठ! माता-पिताकी सेवासे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

पुराणादि पुस्तकोंका हरण करनेवाला नरकको प्राप्ति होता है। वेदादि ग्रन्थों तथा तान्त्रिक मन्त्रोंको स्वयं लिखकर उनका वाचन न करे। वाचकोंको चाहिये कि वेदमन्त्रोंका विपरीत अर्थ न बतलायें और न वेदमन्त्रोंका अशुद्ध पाठ करें। क्योंकि ये दोनों अत्यन्त पवित्र हैं, ऐसा करनेपर उन्हें पावमानी ऋचाओंका सौ बार जप करना चाहिये। पुराणादिके प्रारम्भ, मध्य और अवसानमें तथा मन्त्रमें प्रणवका उच्चारण करना चाहिये।

देवनिर्मित पुस्तकको त्रिदेव-स्वरूप समझकर

गन्ध-पुष्पादिसे उसकी पूजा करनी चाहिये। ग्रन्थके बाँधनेवाले (धागा) सूत्रको नागराज वासुकिका स्वरूप समझना चाहिये। इनका सम्मान न करनेपर दोष होता है। अतः उसका कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये। ग्रन्थके पत्रोंको भगवान् ब्रह्मा, अक्षरोंको जनार्दन, अक्षरोंमें लगी मात्राओंको अव्यय प्रकृति, लिपिको महेश तथा लिपिकी मात्राओंको सरस्वती समझना चाहिये।

पुराण-वाचकको चाहिये कि पुराण-संहिताओंमें परिणित सभी व्यास, जैमिनि आदि महर्षियों तथा शंकर, विष्णु आदि देवताओंको आदि, मध्य और अवसानमें नमस्कार करे। इनका स्मरण कर धर्मशास्त्रार्थवेत्ता विप्रको पुराणादिका एकाग्रचित्त हो पाठ करना चाहिये। वाचकको स्पष्टाक्षरोंमें उच्चारण करते हुए सुन्दर ध्वनिमें सभी प्रकरणोंके तात्त्विक अर्थोंको स्पष्ट बतलाना चाहिये। पुराणादि-धर्मसंहिताके श्रवणसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विशेषतः अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करते हैं एवं सभी कामनाओंको भी प्राप्त कर लेते हैं तथा सभी पापोंसे मुक्त होकर बहुत-से पुण्योंकी प्राप्ति कर लेते हैं।

जो वाचक सदा सम्पूर्ण ग्रन्थके अर्थ एवं तात्पर्यको सम्यक् रूपसे जानता है, वही उपदेश करनेके योग्य है और वही विप्र व्यास कहा जाता है। ऐसे वाचक विप्र जिस नगर या ग्राममें रहते हैं, वह पुण्यक्षेत्र कहा जाता है। वहाँके निवासी धन्य तथा सफल-आत्मा हैं, कृतार्थ हैं एवं उनके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

जैसे सूर्यरहित दिन, चन्द्रशून्य रात्रि, बालकोंसे शून्य गृह तथा सूर्यके बिना ग्रहोंकी शोभा नहीं होती, वैसे ही व्याससे रहित सभाकी भी शोभा नहीं होती।

श्रीसूतजी बोले—द्विजोत्तम! गुरुको चाहिये

कि अध्यात्मविषयक पुराणका अध्यापन ज्ञानी, धार्मिक, पवित्र, भक्त, शान्त, वैष्णव, क्रोधरहित तथा जितेद्रिय शिष्यको कराये। अन्यायसे धनार्जन करनेवाले, निर्भय, दाम्भिक, द्वेषी, निरर्थक और मन्थर गतिवाले एवं सेवारहित, यज्ञ न करनेवाले, पुरुषत्वहीन, कठोर, क्रुद्ध, कृपण, व्यसनी तथा निन्दक शिष्यको दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। पुत्र-पौत्र आदिके अतिरिक्त नम्र व्यक्तिको भी विद्या देनी चाहिये। विद्याको अपने साथ लेकर मर जाना अच्छा है, किंतु अनधिकारी व्यक्तिको विद्या नहीं देनी चाहिये। विद्या कहती है कि मुझे भक्तिहीन, दुर्जन तथा दुष्टात्मा व्यक्तिको प्रदान मत करो, मुझे अप्रमादी, पवित्र, ब्रह्मचारी, सार्थक तथा विधिज्ञ

सज्जनको ही दो। यदि निषिद्ध व्यक्तिको श्रेष्ठ विद्याधन दिया जाता है तो दाता और ग्रहणकर्ता—इन दोनोंमेंसे एक स्वल्प समयमें ही यमपुरी चला जाता है। पढ़नेवालेको चाहिये कि वह आध्यात्मिक, वैदिक, अलौकिक विद्या पढ़ानेवालेको प्रथम सादर प्रणाम कर अध्ययन करे। कर्मकाण्डका अध्ययन बिना ज्योतिषज्ञानके नहीं करना चाहिये। जो विषय शास्त्रोंमें नहीं कहे गये हैं और जो म्लेच्छोंद्वारा कथित हैं, उनका कभी भी अभ्यास नहीं करना चाहिये। जो स्वयं धर्माचरण कर धर्मका उपदेश करता है, वही ज्ञान देनेवाला पिता एवं गुरु-स्वरूप है तथा ऐसे ज्ञानदाताका ही धर्म प्रवर्तित होता है। (अध्याय ७-८)

पूर्त-कर्म-निरूपण

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो! युगान्तरमें ब्रह्माने जिस अन्तर्वेदि और बहिर्वेदिकी बात बतलायी है, वह द्वापर और कलियुगके लिये अत्यन्त उत्तम मानी गयी है। जो कर्म ज्ञानसाध्य है, उसे अन्तर्वेदिकर्म कहते हैं। देवताकी स्थापना और पूजा बहिर्वेदि (पूर्त)-कर्म है। वह बहिर्वेदिकर्म दो प्रकारका है—कुआँ, पोखरा, तालाब आदि खुदवाना और ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना तथा गुरुजनोंकी सेवा।

निष्कामभावपूर्वक किये गये कर्म तथा व्यसनपूर्वक किया गया हरिस्मरणादि श्रेष्ठ कर्म अन्तर्वेदि-कर्मोंके अन्तर्गत आते हैं, इनके अतिरिक्त अन्य कर्म बहिर्वेदिकर्म कहलाते हैं। धर्मका कारण राजा होता है, इसलिये राजाको धर्मका पालन करना चाहिये और राजाका आश्रय लेकर प्रजाको भी बहिर्वेदि (पूर्त)-कर्मोंका पालन करना चाहिये। यों तो बहिर्वेदि (पूर्त)-कर्म सतासी प्रकारके कहे गये हैं, फिर भी इनमें तीन प्रधान हैं—

देवताका स्थापन, प्रासाद और तड़ाग आदिका निर्माण। इसके अतिरिक्त गुरुजनोंकी पूजापूर्वक पितृपूजा, देवताओंका अधिवासन और उनकी प्रतिष्ठा, देवता-प्रतिमा-निर्माण तथा वृक्षारोपण आदि भी पूर्त-कर्म हैं।

देवताओंकी प्रतिष्ठा उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ-भेदसे तीन प्रकारकी होती है। प्रतिष्ठामें पूजा, हवन तथा दान आदि ये तीन कर्म प्रधान हैं। तीन दिनोंमें सम्पन्न होनेवाले प्रतिष्ठा-विधानोंमें अट्टाईस देवताओंकी पूजा तथा जापकरूपमें सोलह ब्राह्मण रखकर प्रतिष्ठा करानी चाहिये। प्रतिष्ठाकी यह उत्तम विधि कही गयी है। ऐसा करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। मध्यम प्रतिष्ठा-विधिमें यजन करनेवाले चार विद्वान् ब्राह्मण तथा तेर्इस देवता होते हैं। इसमें नवग्रह, दिक्षापाल, वरुण, पृथ्वी, शिव आदि देवताओंकी एक दिनमें ही पूजा सम्पन्न कर देवताकी प्रतिष्ठा की जाती है। जो मात्र गणपति, ग्रह-दिक्षापाल-वरुण और शिवकी अर्चना कर प्रतिष्ठ-

विधान किया जाता है, वह कनिष्ठ विधि है। क्षुद्र देवताओंकी भी प्रतिमाएँ नाना प्रकारके वृक्षोंकी लकड़ियोंसे बनायी जाती हैं।

नवीन तालाब, बावली, कुण्ड और जल-पाँसरा आदिका निर्माण कर संस्कार-कार्यके लिये गणेशादि-देवपूजन तथा हवनादि कार्य करने चाहिये। तदनन्तर उनमें वापी, पुष्करिणी (नदी) आदिका पवित्र जल तथा गङ्गाजल डालना चाहिये।

एकसठ हाथका प्रासाद उत्तम तथा इससे आधे प्रमाणका मध्यम और इसके आधे प्रमाणसे निर्मित प्रासाद कनिष्ठ माना जाता है। ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवालेको देवताओंकी प्रतिमाके मानसे प्रासादका निर्माण करना चाहिये। नूतन तडागका निर्माण करनेवाला अथवा जीर्ण तडागका नवीन रूपमें निर्माण करनेवाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुलका उद्घार कर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वापी, कूप, तालाब, बगीचा तथा जलके निर्गम-स्थानको जो व्यक्ति बार-बार स्वच्छ या संस्कृत करता है, वह मुक्तिरूप उत्तम फल प्राप्त करता है। जहाँ विप्रों एवं देवताओंका निवास हो, उनके मध्यवर्ती स्थानमें वापी, तालाब आदिका निर्माण मानवोंको करना चाहिये। नदीके तटपर और श्मशानके समीप उनका निर्माण न करे। जो मनुष्य वापी, मन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा नहीं करता, उसे अनिष्टका भय होता है तथा वह पापका भागी भी होता है। अतः जनसंकुल गाँवोंके समीप बड़े तालाब, मन्दिर, कूप आदिका निर्माण कर उनकी प्रतिष्ठा शास्त्रविधिसे करनी चाहिये। उनके शास्त्रीय विधिसे प्रतिष्ठित होनेपर उत्तम फल प्राप्त होते हैं। अतएव प्रयत्नपूर्वक मनुष्य न्यायोपार्जित धनसे शुभ मुहूर्तमें शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक प्रतिष्ठा करे। भगवान्‌के कनिष्ठ, मध्यम या श्रेष्ठ मन्दिरको बनानेवाला व्यक्ति विष्णुलोकको प्राप्त होता है और क्रमिक मुक्तिको प्राप्त करता है।

जो व्यक्ति गिरे हुए या गिर रहे अर्थात् जीर्ण मन्दिरका रक्षण करता है, वह समस्त पुण्योंका फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति विष्णु, शिव, सूर्य, ब्रह्मा, दुर्गा तथा लक्ष्मीनारायण आदिके मन्दिरोंका निर्माण करता है, वह अपने कुलका उद्घार कर कोटि कल्पतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके बाद वहाँसे मृत्युलोकमें आकर राजा या पूज्यतम धनी होता है। जो भगवती त्रिपुरसुन्दरीके मन्दिरमें अनेक देवताओंकी स्थापना करता है, वह सम्पूर्ण विश्वमें स्मरणीय हो जाता है और स्वर्गलोकमें सदा पूजित होता है। जलकी महिमा अपरम्परा है। परोपकार या देव-कार्यमें एक दिन भी किया गया जलका उपयोग मातृकुल, पितृकुल, भार्याकुल तथा आचार्यकुलकी अनेक पीढ़ियोंको तार देता है। उसका स्वयंका भी उद्घार हो जाता है। अविमुक्त दशार्णव तीर्थमें देवार्चन करनेसे अपना उद्घार होता है तथा अपने पितृ-मातृ आदि कुलोंको भी वह तार देता है। जलके ऊपर तथा प्रासाद (देवालय)-के ऊपर रहनेके लिये घर नहीं बनवाना चाहिये। प्रतिष्ठित अथवा अप्रतिष्ठित शिवलिङ्गको कभी उखाड़ना नहीं चाहिये। इसी प्रकार अन्य देव-प्रतिमाओं और पूजित देववृक्षोंको चालित नहीं करना चाहिये। उसे चालित करनेवाले व्यक्तिको रौरव नरककी प्राप्ति होती है, परंतु यदि नगर या ग्राम उजड़ गये हों, अपना स्थान किसी कारण छोड़ना पड़े या विप्लव मचा हो तो उसकी पुनः प्रतिष्ठा बिना विचारके करनी चाहिये।

शुभ मुहूर्तके अभावमें देवमन्दिर तथा देववृक्ष आदि स्थापित नहीं करने चाहिये। बादमें उन्हें हटानेपर ब्रह्महत्याका दोष लगता है। देवताओंके मन्दिरके सामने पुष्करिणी आदि बनाने चाहिये। पुष्करिणी बनानेवाला अनन्त फल प्राप्तकर ब्रह्मलोकसे पुनः नीचे नहीं आता। (अध्याय ९)

प्रासाद, उद्यान आदिके निर्माणमें भूमि-परीक्षण तथा वृक्षारोपणकी महिमा

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! देवमन्दिर, तडाग आदिके निर्माण करनेमें सबसे पहले प्रमाणानुसार गृहीत की गयी भूमिका संशोधन कर दस हाथ अथवा पाँच हाथके प्रमाणमें बैलोंसे उसे जुतवाना चाहिये । देवमन्दिरके लिये गृहीत भूमिको सफेद बैलोंसे तथा कूप, बांधीचे आदिके लिये काले बैलोंसे जुतवाये । यदि वह भूमि ग्रह-यागके लिये हो तो उसे जुतवानेकी आवश्यकता नहीं, मात्र उसे स्वच्छ कर लेना चाहिये । उस पूर्वोक्त स्थानको तीन दिन जुतवाना चाहिये । फिर उसमें पाँच प्रकारके धान्य बोने चाहिये । देवपक्षमें तथा उद्यानके लिये सात प्रकारके धान्य वपन करने चाहिये । मूँग, उड्ढ, धान, तिल तथा साँवा—ये पाँच ब्रीहिगण हैं । मसूर और मटर या चना मिलानेसे सात ब्रीहिगण होते हैं । (यदि ये बीज तीन, पाँच या सात रातोंमें अङ्कुरित हो जाते हैं तो उनके फल इस प्रकार जानने चाहिये—तीन रातवाली भूमि उत्तम, पाँच रातवाली भूमि मध्यम तथा सात रातवाली भूमि कनिष्ठ है । कनिष्ठ भूमिको सर्वथा त्याग देना चाहिये ।) श्वेत, लाल, पीली और काली—इन चार वर्णोंवाली पृथ्वी क्रमशः ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये प्रशंसित मानी गयी है । प्रासाद आदिके निर्माणमें पहले भूमिकी परीक्षा कर लेनी चाहिये । उसकी एक विधि इस प्रकार है—अरनिमात्र (लगभग एक हाथ लम्बा) बिल्वकाष्ठको बारह अंगुलके गड्ढमें, गाड़कर, उसके भूमिसे ऊपरवाले भागमें चारों ओर चार लकड़ियाँ लगाकर

उन्हें ऊनसे लपेटकर तेलसे भिंगो ले । इन्हें चार बत्तियोंके रूपमें दीपककी भाँति प्रज्वलित करे । पूर्व तथा पश्चिमकी ओर बत्ती जलती रहे तो शुभ तथा दक्षिण एवं उत्तरकी ओरकी जलती रहे तो अशुभ माना गया है । यदि चारों बत्तियाँ बुझ जायें या मन्द हो जायें तो विपत्तिकारक है^१ । इस प्रकार सम्यक्-रूपसे भूमिकी परीक्षा कर उस भूमिको सूत्रसे आवेष्टित तथा कीलितकर वास्तुका पूजन करे । तदनन्तर वास्तुबलि देकर भूमि खोदनेवाले खनित्रकी भी पूजा करे । वास्तुके मध्यमें एक हाथके पैमानेमें भूमिको घी, मधु, स्वर्णमिश्रित जल तथा रत्नमिश्रित जलसे ईशानाभिमुख होकर लीप दे, फिर खोदते समय ‘आ ब्रह्मन्^२’ इस मन्त्रका उच्चारण करे । जो वास्तुदेवताका बिना पूजन किये प्रासाद, तडाग आदिका निर्माण करता है, यमराज उसका आधा पुण्य नष्ट कर देते हैं ।

अतः प्रासाद, आराम, उद्यान, महाकूप, गृहनिर्माणमें पहले वास्तुदेवताका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये । जहाँ स्तम्भकी आवश्यकता हो वहाँ साल, खैर, पलास, केसर, बेल तथा बकुल—इन वृक्षोंसे निर्मित यूप कलियुगमें प्रशस्त माने गये हैं । यदि वापी, कूप आदिका विधिहीन खनन एवं आप्र आदि वृक्षोंका विधिहीन रोपण करे तो उसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, अपितु केवल अधोगति ही मिलती है । नदीके किनारे, श्मशान तथा अपने घरसे दक्षिणकी ओर तुलसीवृक्षका रोपण न करे, अन्यथा यम-यातना भोगनी पड़ती

१—भूमि-परीक्षा, वास्तु-विधान तथा प्रासाद आदिकी प्रतिष्ठा आदिपर विस्तृत विचार समराङ्गणसूत्रधार, वास्तुराजवल्लभ, वृहत्संहिता, शिल्परत्न, गृहरत्नभूषण आदि ग्रन्थोंमें हुआ है । मत्स्य, अग्नि तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें भी इसकी चर्चा आयी है । इस विद्याका संक्षिप्त उल्लेख ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, श्रौतसूत्रों एवं मनुस्मृति ३ । ८९ आदिमें भी है । वास्तुविद्याके मुख्य प्रवर्तक एवं ज्ञाता विश्वकर्मा और मय दानव हैं ।

२—आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इष्वव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्नी धेनुवोऽढानद्वानाशुः सप्तिः पुरस्थिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

है। विधिपूर्वक वृक्षोंका रोपण करनेसे उसके पत्र, पुष्प तथा फलके रज-रेणुओं आदिका समागम उसके पितरोंको प्रतिदिन तृप्ति करता है।

जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देनेवाले वृक्षोंका रोपण करता है या मार्गमें तथा देवालयमें वृक्षोंको लगाता है, वह अपने पितरोंको बड़े-बड़े पापोंसे तारता है और रोपणकर्ता इस मनुष्य-लोकमें महती कीर्ति तथा शुभ परिणामको प्राप्त करता है और अतीत तथा अनागत पितरोंको स्वर्गमें जाकर भी तारता ही रहता है। अतः द्विजगण! वृक्ष लगाना अत्यन्त शुभदायक है। जिसको पुत्र नहीं है, उसके लिये वृक्ष ही पुत्र हैं, वृक्षरोपणकर्ताके लौकिक-पारलौकिक कर्म वृक्ष ही करते रहते हैं तथा स्वर्ग प्रदान करते हैं। यदि कोई अश्वत्थ-वृक्षका आरोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाख पुत्रोंसे भी बढ़कर है। अतएव अपनी सद्वितिके लिये कम-से-कम एक या दो अथवा तीन अश्वत्थ-वृक्ष लगाना ही चाहिये। हजार, लाख, करोड़ जो भी मुक्तिके साधन हैं, उनमें एक अश्वत्थ-वृक्ष लगानेकी बराबरी नहीं कर सकते।

अशोक-वृक्ष लगानेसे कभी शोक नहीं होता, प्लक्ष (पाकड़)-वृक्ष उत्तम स्त्री प्रदान करवाता है। ज्ञानरूपी फल भी देता है। बिल्व-वृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। जामुनका वृक्ष धन देता है, तेंदूका वृक्ष कुलवृद्धि करता है। दाढ़िम (अनार)- का वृक्ष स्त्री-सुख प्राप्त करता है। बकुल पाप-नाशक, वंजुल (तिनिश) बल-बुद्धिप्रद है। धातकी (धव) स्वर्ग प्रदान करता है। वटवृक्ष मोक्षप्रद, आम्रवृक्ष अभीष्ट कामनाप्रद और गुवाक (सुपारी)- का वृक्ष सिद्धिप्रद है। बल्वल, मधूक (महुआ) तथा अर्जुन-वृक्ष सब प्रकारका अन्न प्रदान करता है। कदम्ब-वृक्षसे विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तिंतिडी (इमली)-का वृक्ष धर्मदूषक माना गया है। शमी-

वृक्ष रोग-नाशक है। केसरसे शत्रुओंका विनाश होता है। श्वेत वट धनप्रदाता, पनस (कटहल)-वृक्ष मन्द बुद्धिकारक है। मर्कटी (केंवाच) एवं कदम-वृक्षके लगानेसे संततिका क्षय होता है।

शीशम, अर्जुन, जयन्ती, करवीर, बेल तथा पलाश-वृक्षोंके आरोपणसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। विधिपूर्वक वृक्षका रोपण करनेसे स्वर्ग-सुख प्राप्त होता है और रोपणकर्ताके तीन जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ वृक्षोंका रोपण करनेवाला ब्रह्मारूप और हजार वृक्षोंका रोपण करनेवाला विष्णुरूप बन जाता है। वृक्षके आरोपणमें वैशाख मास श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ अशुभ है। आषाढ़, श्रावण तथा भाद्रपद ये भी श्रेष्ठ हैं। आश्विन, कार्तिकमें वृक्ष लगानेसे विनाश या क्षय होता है। श्वेत तुलसी प्रशस्त मानी गयी है। अश्वत्थ, वटवृक्ष और श्रीवृक्षका छेदन करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मघाती कहलाता है। वृक्षच्छेदी व्यक्ति मूक और सैकड़ों व्याधियोंसे युक्त होता है। तिंतिडीके बीजोंको इक्षुदण्डसे पीसकर उसे जलमें मिलाकर सींचनेसे अशोककी तथा नारियलके जल एवं शहद-जलसे सींचनेसे आम्रवृक्षकी वृद्धि होती है। अश्वत्थ-वृक्षके मूलसे दस हाथ चारों ओरका क्षेत्र पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र माना गया है और उसकी छाया जहाँतक पहुँचती है तथा अश्वत्थ-वृक्षके संसर्गसे बहनेवाला जल जहाँतक पहुँचता है, वह क्षेत्र गङ्गाके समान पवित्र माना गया है।

सूतजी पुनः बोले—विप्रश्रेष्ठ ! तान्त्रिक पद्धतिके अनुसार सभी प्रतिष्ठादि कार्योंमें शुद्ध दिन ही लेना चाहिये। वृक्षोंके उद्यानमें कुआँ अवश्य बनवाना चाहिये। तुलसी-वनमें कोई याग नहीं करना चाहिये। तालाब, बड़े बाग तथा देवस्थानके मध्य सेतु नहीं बनवाना चाहिये। परंतु देवस्थानमें तडाग बनवाना चाहिये। शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठामें अन्य देवोंकी स्थापना

नहीं करनी चाहिये। इसमें देश-काल (और शैवागमों)-की मर्यादाके अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके विपरीत आचरण करनेपर आयुका ह्रास होता है। द्विजगण! तालाब, पुष्करिणी तथा उद्यान आदिका जो परिमाण बताया गया हो,

यदि उससे कम पैमानेपर ये बनाये जायें तो दोष है, किंतु दस हाथके परिमाणमें हों तो कोई दोष नहीं है। यदि वे दो हजार हाथोंसे अधिक प्रमाणमें बनाये गये हों तो उनकी प्रतिष्ठा विधिपूर्वक अवश्य करनी चाहिये। (अध्याय १०-११)

देव-प्रतिमा-निर्माण-विधि

सूतजी बोले!—ब्राह्मणो! अब मैं प्रतिमाका शास्त्रसम्मत लक्षण कहता हूँ। उत्तम लक्षणोंसे रहित प्रतिमाका पूजन नहीं करना चाहिये। पाषाण, काष्ठ, मृत्तिका, रत्न, ताम्र एवं अन्य धातु—इनमेंसे किसीकी भी प्रतिमा बनायी जा सकती है*। उनके पूजनसे सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। मन्दिरके मापके अनुसार शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न प्रतिमा बनवानी चाहिये। घरमें आठ अङ्गुलसे अधिक ऊँची मूर्तिका पूजन नहीं करना चाहिये। देवालयके द्वारकी जो ऊँचाई हो उसे आठ भागोंमें विभक्त कर तीन भागके मापमें पिण्डिका तथा दो भागके मापमें देव-प्रतिमा बनाये। चौरासी अङ्गुल (साढ़े तीन हाथ)—की प्रतिमा वृद्धि करनेवाली होती है। प्रतिमाके मुखकी लम्बाई बारह अङ्गुल होनी चाहिये। मुखके तीन भागके प्रमाणमें चिबुक, ललाट तथा नासिका होनी चाहिये। नासिकाके बराबर ही कान और ग्रीवा बनानी चाहिये। नेत्र दो अङ्गुल-प्रमाणके बनाने चाहिये। नेत्रके मानके तीसरे भागमें आँखकी तारिका बनानी चाहिये। तारिकाके तृतीय भागमें सुन्दर दृष्टि बनानी चाहिये। ललाट, मस्तक तथा ग्रीवा—ये तीनों बराबर मापके हों।

सिरका विस्तार बत्तीस अङ्गुल होना चाहिये। नासिका, मुख और ग्रीवासे हृदय एक सीधमें होना चाहिये। मूर्तिकी जितनी ऊँचाई हो उसके आधेमें कटि-प्रदेश बनाना चाहिये। दोनों बाहु, जंघा तथा ऊरु परस्पर समान हों। टखने चार अङ्गुल ऊँचे बनाने चाहिये। पैरके अँगूठे तीन अङ्गुलके हों और उसका विस्तार छः अङ्गुलका हो। अँगूठेके बराबर ही तर्जनी होनी चाहिये। शेष अङ्गुलियाँ क्रमशः छोटी हों तथा सभी अङ्गुलियाँ नखयुक्त बनाये। पैरकी लम्बाई चौदह अङ्गुलमें बनानी चाहिये। अधर, ओष्ठ, वक्षःस्थल, भ्रू, ललाट, गण्डस्थल तथा कपोल भरे-पूरे सुडौल सुन्दर तथा मांसल बनाने चाहिये, जिससे प्रतिमा देखनेमें सुन्दर मालूम हो। नेत्र विशाल, फैले हुए तथा लालिमा लिये हुए बनाने चाहिये।

इस प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न प्रतिमा शुभ और पूज्य मानी गयी है। प्रतिमाके मस्तकमें मुकुट, कण्ठमें हार, बाहुओंमें कटक और अंगद पहनाने चाहिये। मूर्ति सर्वाङ्ग-सुन्दर, आकर्षक तथा तत्त्व अङ्गोंके आभूषणोंसे अलंकृत होनी चाहिये। भगवान्‌की प्रतिमामें देवकलाओंका आधान होनेपर भगवत्प्रतिमा प्रत्येकको अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेती है।

* मत्स्यपुराणमें प्रतिमा-निर्माणके लिये निम्न वस्तुओंको ग्राह्य बतलाया है—

सौवर्णी राजती वापि ताप्री रत्नमयी तथा। शैलीदारुमयी चापि लौहसीसमयी तथा॥

रीतिकाधातुयुक्ता वा ताप्रकांस्यमयीतथा। शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते॥ (२५८। २०-२१)

सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, रत्न, पत्थर, देवदारु, लोहा-सीसा, पीतल और काँसा-मिश्रित अथवा शुभ काष्ठोंकी बनी हुई देवप्रतिमा प्रशस्त मानी गयी है।

और अभीष्ट वस्तुका लाभ कराती है।

जिसका मुखमण्डल दिव्य प्रभासे जगमगा रहा हो, कानोंमें चित्र-विचित्र मणियोंके सुन्दर कुण्डल तथा हाथोंमें कनक-मालाएँ और मस्तकपर सुन्दर केश सुशोभित हों, ऐसी भक्तोंको वर देनेवाली, स्नेहसे परिपूर्ण, भगवतीकी सौम्य कैशोरी प्रतिमाका निर्माण कराये। भगवती विधिपूर्वक अर्चना करनेपर प्रसन्न होती हैं और उपासकोंके मनोरथोंको पूर्ण करती हैं।

नव ताल (साढ़े चार हाथ)-की विष्णुकी प्रतिमा बनवानी चाहिये। तीन तालकी वासुदेवकी, पाँच तालकी नृसिंह तथा हयग्रीवकी, आठ तालकी

नारायणकी, पाँच तालकी महेशकी, नव तालकी भगवती दुर्गाकी, तीन-तीन तालकी लक्ष्मी और सरस्वतीकी तथा सात तालकी भगवान् सूर्यकी प्रतिमा बनवानेका विधान है।

भगवान्‌की मूर्तिकी स्थापना तीर्थ, पर्वत, तालाब आदिके समीप करनी चाहिये अथवा नगरके मध्यभागमें या जहाँ ब्राह्मणोंका समूह हो, वहाँ करनी चाहिये। इनमें भी अविमुक्त आदि सिद्ध क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठा करनेवालेके पूर्वापर अनन्त कुलोंका उद्घार हो जाता है। कलियुगमें चन्दन, अगर, बिल्व, श्रीपर्णिक तथा पद्मकाष्ठ आदि काष्ठोंके अभावमें मृणमयी मूर्ति बनवानी चाहिये। (अध्याय १२)

कुण्ड-निर्माण एवं उनके संस्कारकी विधि और ग्रह-शान्तिका माहात्म्य

सूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ! अब मैं यज्ञकुण्डोंके निर्माण एवं उनके संस्कारकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ। कुण्ड दस प्रकारके होते हैं—
 (१) चौकोर, (२) वृत्त, (३) पद्म, (४) अर्धचन्द्र,
 (५) योनिकी आकृतिका, (६) चन्द्राकार,
 (७) पञ्चकोण, (८) सप्तकोण (९) अष्टकोण और
 (१०) नौ कोणोंवाला।

सबसे पहले भूमिका संशोधन कर भूमिपर पड़े हुए तृण, केश आदि हटा देने चाहिये। फिर उस भूमिपर भस्म और अंगारे घुमाकर भूमि-शुद्धि करनी चाहिये, तदनन्तर उस भूमिपर जल-सिंचनकर बीजारोपण करे और सात दिनके बाद कुण्ड-निर्माणके लिये खनन करना चाहिये। तत्पश्चात् अभीष्ट उपर्युक्त दस कुण्डोंमेंसे किसीका निर्माण करना चाहिये। कुण्ड-निर्माणार्थ विधिवत् नाप-जोखके लिये सूत्रका उपयोग करे। कामना-भेदसे कुण्ड भी अनेक आकारके होते हैं। कुण्डके अनुरूप ही मेखला भी बनायी जाती है। यज्ञोंमें आहुतियोंकी संख्याका भी अलग-अलग विधान है। विधि-

प्रमाणके अनुसार आहुति देनी चाहिये। मानरहित हवन करनेसे कोई फल नहीं मिलता। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको मानका पूर्ण ज्ञान रखकर ही कुण्डका विधिवत् निर्माण कर यज्ञानुष्ठान करना चाहिये।

जिस यज्ञका जितना मान होता है, उसी मानकी ही योजना करनी चाहिये। पचास आहुतियोंका मान सामान्य है, इसके बाद सौ, हजार, अयुत, लक्ष और कोटि होम भी होते हैं। बड़े-बड़े यज्ञ सम्पत्ति रहनेपर हो सकते हैं या राजा-महाराजा कर सकते हैं, मनुष्य अपने-अपने प्राक्तन कर्मके अनुसार सुख-दुःखका उपभोग करता है तथा शुभाशुभ-फल ग्रहोंके अनुसार भोगता है। अतः शान्ति-पुष्टि-कर्ममें ग्रहोंकी शान्ति प्रयत्नपूर्वक परम भक्तिसे करनी चाहिये। दिव्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी-सम्बन्धी बड़े-बड़े अद्भुत उत्पातोंके होनेपर शुभाशुभ फल देनेवाली ग्रह-शान्ति करनी चाहिये। इन अवसरोंपर अयुत होम करना चाहिये। काष्य-कर्म या शान्ति-पुष्टि के लिये ग्रहोंका भक्तिपूर्वक नित्य पूजन एवं हवन करना चाहिये। कलिमें

ग्रहोंके लिये लक्ष एवं कोटि होमका विधान है। गृहस्थको आधिकारिक कर्म नहीं करना चाहिये।

कुण्डोंका शास्त्रानुसार संस्कार करना चाहिये। बिना संस्कार किये होम करनेपर अर्थ-हानि होती है। अतः संस्कार करके होमादि क्रियाएँ करनी चाहिये।

कुण्डोंके स्थानका ओंकारपूर्वक अवेक्षण, कुशके जलसे प्रोक्षण, त्रिशूलीकरण तथा सूत्रसे आवेष्टित करना, कीलित करना, अग्निजिह्वाकी भावना करना एवं अग्न्याहरण आदि अठारह संस्कार होते हैं। शूद्रके घरसे अग्नि कभी न लाये। स्त्रीके द्वारा भी अग्नि नहीं मङ्गवानी चाहिये। शुद्ध एवं पवित्र व्यक्तिद्वारा अग्नि ग्रहण करना चाहिये। तदनन्तर अग्निका संस्कार करे और उसे अपने अभिमुख रखे। अग्नि-बीज (रं) और शिव-बीज (शं)-से उसका प्रोक्षण करे और शिव-शक्तिका ध्यान करे, इससे अभीष्ट सिद्धिकी प्राप्ति होती है। उसके बाद वायुके सहारे अग्नि प्रज्वलित करे। देवी भगवतीका और भगवान्‌का अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदिसे पूजन करे। अग्नि-पूजनमें इस मन्त्रका उपयोग करे—

‘पितृपिङ्गल दह दह पच पच सर्वज्ञापय स्वाहा।’

यज्ञदत्तमुनिने अग्निकी तीन जिह्वाएँ बतलायी हैं—हिरण्या, कनका तथा कृष्णा*। समिधा-भेदसे जिन जिह्वा-भेदोंका वर्णन है, उनका उन्हींमें विनियोग करना चाहिये। बहुरूपा, अतिरूपा और सात्त्विका—इनका योग-कर्ममें विनियोग होता है। आज्यहोममें हिरण्या, त्रिमधु (दूध, चीनी और मधु—इन तीनोंके समाहार) -से हवन करनेपर कर्णिका, शुद्ध क्षीरसे

हवन करनेपर रक्ता, नैत्यिक कर्ममें प्रभा, पुष्पहोममें बहुरूपा, अन्न और पायससे हवन करनेमें कृष्णा, इक्षुहोममें पद्मरागा, पद्महोममें सुवर्णा और लोहिता, बिल्वपत्रसे हवन करनेपर श्वेता, तिल-होममें धूमिनी, काष्ठ होममें करालिका, पितृहोममें लोहितास्या, देवहोममें मनोजवा नामकी अग्निज्वाला कही गयी है। जिन-जिन समिधाओंसे हवन किया जाता है, उन-उन समिधाओंमें ‘वैश्वानर’ नामक अग्निदेव स्थित रहते हैं।

अग्निके मुखमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक आहुति पड़नेपर अग्नि देवता सभी प्रकारका अभ्युदय करते हैं। मुखके अतिरिक्त शेष स्थानोंपर आहुति देनेसे अनिष्ट फल होता है। अग्निकी जिह्वाएँ विशेषरूपसे घृताहुतिमें हिरण्या एवं अन्यान्य आहुतियोंमें गणना, वक्रा, कृष्णाभा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अतिरूपिका नामसे प्रसिद्ध हैं। कुण्डके उदरमें अर्थात् मध्यमें आहुतियाँ देनी चाहिये। इधर-उधर नहीं देनी चाहिये। चन्दन, अगर, कपूर, पाटला तथा यूथिका (जूही)-के समान अग्निसे प्रादुर्भूत गन्ध सभी प्रकारका कल्याणकारक होता है।

यदि अग्निकी ज्वाला छिन्न-वृत्त-रूपमें उठती हो तो मृत्युभय होता है और धनका क्षय होता है। अग्नि बुझ जाने तथा अत्यधिक धुआँ होनेपर भी महान् अनिष्ट होता है। ऐसी स्थितियोंमें प्रायश्चित्त करना चाहिये। पहले अद्वाईस आहुतियाँ देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। अनन्तर घीसे मूल मन्त्रद्वारा पचीस आहुतियाँ देनी चाहिये। तीनों कालोंमें महास्नान करे तथा श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। (अध्याय १३—१५)

* प्रकारान्तरसे विश्वमूर्ति, स्फुलिङ्गनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहितास्या, करालास्या तथा काली—ये भी सात प्रकारकी अग्निजिह्वाएँ कही गयी हैं।

अग्नि-पूजन-विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! नित्य-नैमित्तिक यागादिकी समाप्तिमें हवन हो जानेपर भगवान् अग्निदेवकी षोडश उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये । अग्निको वायुद्वारा प्रदीप कर पीठस्थ देवताओंकी पूजा कर हाथमें लाल फूल ले निम्न मन्त्र पढ़कर ध्यान करे—

इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्धीर्भिर्धारयन्तं वरान्तम् ।

हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ॥

(मध्यमपर्व १। १६। ३)

‘भगवान् अग्निदेवता अपने हाथोंमें उत्तम इष्ट (यज्ञपात्र), शक्ति, स्वस्तिक और अभय-मुद्रा धारण किये हैं, देदीप्यमान सुवर्ण-सदृश उनका

स्वरूप है, कमलके ऊपर विराजमान हैं, तीन नेत्र हैं तथा वे जटाओं और मुकुटसे सुशोभित हैं ।’

मण्डपके पूर्व आदि द्वारदेशोंमें कामदेव, इन्द्र, वराह तथा कार्तिकेयको आवाहित कर स्थापित करे । तदनन्तर आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा गन्धादि उपचारोंसे पूजन कर आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करे । फिर सुवर्ण-वर्णवाले निर्मल, प्रज्वलित, सर्वतोमुख, महाजिह्वा तथा महोदर भगवान् अग्निदेवकी आकाशरूपमें पूजा करे । अग्निकी जिह्वाओंका भी ध्यान करे । इसके बाद भगवान् अग्निदेवका विविध उपचारोंसे पूजन करे* ।

(अध्याय १६)

* सर्वप्रथम निम्नलिखित मन्त्रसे तीन पुष्पगुच्छोंद्वारा अग्निदेवको आसन प्रदान करे—

आसन-मन्त्र—त्वमादिः सर्वभूतानां संसारान्वतारकः । परमज्योतीरूपस्त्वमासनं सफलीकुरु ॥

संसार-रूपी सागरसे उद्धार करनेवाले, सम्पूर्ण प्राणियोंमें आदि, परम ज्योतिः—स्वरूप है अग्निदेव ! आप इस आसनको ग्रहण कर मुझे सफल बनायें । अनन्तर करबद्ध प्रार्थना करे—

प्रार्थना-मन्त्र—वैश्वानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन । स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥

हे हव्यवाहन वैश्वानरदेव ! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, आपका स्वागत है, आपको नमस्कार है, आप शान्ति प्रदान करें ।

पाद्य-मन्त्र—नमस्ते भगवन् देव आपोनारायणात्मक । सर्वलोकहितार्थाय पाद्यं च प्रतिगृह्णताम् ॥

नर-नारायणस्वरूप है भगवान् वैश्वानरदेव ! आपको नमस्कार है । आप समस्त संसारके हितके लिये इस पाद्य-जलको ग्रहण करें ।

अर्घ्य-मन्त्र—नारायण परं धाम ज्योतीरूप सनातन । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥

हे विश्वरूप ! आप ज्योतीरूप हैं, आप ही सनातन, परम धाम एवं नारायण हैं, आपको नमस्कार है, आप मेरे द्वारा दिये गये इस अर्घ्यको ग्रहण करें ।

आचमनीय-मन्त्र—जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति यः सदा । तस्मै प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे ॥

जो आदित्यरूपसे सम्पूर्ण संसारको नित्य प्रकाशित करते रहते हैं, ऐसे उन जातवेदा तथा प्रकाशस्वरूप भगवान् वैश्वानरको नमस्कार है । हे अग्निदेव ! इस आचमनीय जलको आप ग्रहण करें ।

स्नानीय-मन्त्र—धनञ्जय नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन । स्नानीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये ॥

सभी पापोंका नाश करनेवाले हे धनञ्जयदेव ! आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये मेरे द्वारा दिये गये इस स्नानीय जलको आप ग्रहण करें ।

अङ्गप्रोक्षण एवं वस्त्र-मन्त्र—हुताशन महाबाहो देवदेव सनातन । शरणं ते प्रगच्छामि देहि मे परमं पदम् ॥

हे देवदेव सनातन महाबाहु हुताशन ! मैं आपकी शरण हूँ, मुझे आप परम पद प्रदान करें (मेरे द्वारा प्रदत्त इस अङ्गप्रोक्षण एवं वस्त्रको आप स्वीकार करें) ।

अलंकार-मन्त्र—ज्योतिषं ज्योतीरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत । मया दत्तमलंकारमलंकुरु नमोऽस्तु ते ॥

अपने स्थानसे कभी च्युत न होनेवाले हे अग्निदेव ! आपका न आदि है न अन्त । आप ज्योतियोंके परमज्योतीरूप हैं, आपको मेरा नमस्कार है । मेरे दिये गये इस अलंकारको आप अलंकृत करें ।

गन्ध-मन्त्र—देवीदेवा मुदं यान्ति यस्य सम्यक्समागमात् । सर्वदोषोपशान्त्यर्थं गन्धोऽयं प्रतिगृह्णताम् ॥

हे देव ! आपके सम्यक् संनिधानसे सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं । सम्पूर्ण दोषोंकी शान्तिके लिये मेरे द्वारा दिये गये इस गन्धको आप ग्रहण करें ।

विविध कर्मोंमें अग्निके नाम तथा होम-द्रव्योंका वर्णन

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं शास्त्रसम्मत-विधिके अनुसार किये गये विविध यज्ञोंमें अग्निके नामोंका वर्णन करता हूँ। शतार्ध-होममें, पाँच सौ संख्यातककी आहुतिवाले यज्ञोंमें अग्निको काश्यप कहा गया है। इसी प्रकार आज्य-होममें विष्णु, तिल-यागमें वनस्पति, सहस्र-यागमें ब्राह्मण, अयुत-यागमें हरि, लक्ष-होममें वहि, कोटि-होममें हुताशन, शान्तिक कर्मोंमें वरुण, मारण-कर्ममें अरुण, नित्य-होममें अनल, प्रायश्चित्तमें हुताशन तथा अन्न-यज्ञमें लोहित नाम कहा गया है। देवप्रतिष्ठामें लोहित, वास्तुयाग, मण्डप तथा पद्मक-यागमें प्रजापति, प्रपायागमें नाग, महादानमें हविर्भुक्, गोदानमें रुद्र, कन्यादानमें योजक तथा तुला-पुरुष-दानमें धातारूपसे अग्निदेव स्थित रहते हैं। इसी प्रकार वृषोत्सर्गमें अग्निका सूर्य, वैश्वदेवकर्ममें पावक, दीक्षाग्रहणमें जनार्दन, उत्पीडनमें काल, शवदाहमें कव्य, पर्णदाहमें यम, अस्थिदाहमें शिखण्डक, गर्भधानमें मरुत्, सीमन्तमें पिङ्गल, पुंसवनमें इन्द्र, नामकरणमें पार्थिव, निष्क्रमणमें हाटक, प्राशनमें शुचि, चूडाकरणमें षडानन, व्रतोपदेशमें समुद्रव, उपनयनमें वीतिहोत्र, समावर्तनमें

धनञ्जय, उदरमें जठर, समुद्रमें बडवानल, शिखामें विभु तथा स्वरादि शब्दोंमें सरीसृप नाम है। अश्वाग्निका मन्थर, रथाग्निका जातवेदस्, गजाग्निका मन्दर, सूर्याग्निका विन्ध्य, तोयाग्निका वरुण, ब्राह्मणाग्निका हविर्भुक्, पर्वताग्निका नाम क्रतुभुक् है। दावाग्निको सूर्य कहा जाता है। दीपाग्निका नाम पावक, गृह्णाग्निका धरणीपति, घृताग्निका नल और सूतिकाग्निका नाम राक्षस है।

जिन द्रव्योंका होममें उपयोग किया जाता है, उनका निश्चित प्रमाण होता है। प्रमाणके बिना किया गया द्रव्योंका होम फलदायक नहीं होता। अतः शास्त्रके अनुसार प्रमाणका परिज्ञान कर लेना चाहिये। धी, दूध, पञ्चगव्य, दधि, मधु, लाजा, गुड़, ईख, पत्र-पुष्प, सुपारी, समिध, ब्रीहि, डंठलके साथ जपापुष्प और केसर, कमल, जीवन्ती, मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), नारियल, कूष्माण्ड, ककड़ी, गुरुच, तिंदुक, तीन पत्तोंवाली दूब आदि अनेक होम-द्रव्य कहे गये हैं। भूर्जपत्र, शमी तथा समिधा प्रादेशमात्रके होने चाहिये। बिल्वपत्र तीन पत्रयुक्त, किंतु छिन्न-भिन्न नहीं होना चाहिये।

पुष्प-मन्त्र—विष्णुस्त्वं हि ब्रह्मा च ज्योतिषां गतिरीश्वर। गृहण पुष्पं देवेश सानुलेपं जगद् भवेत्॥

हे देवेश ! आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा ज्योतियोंकी गति हैं और आप ही ईश्वर हैं। आप इस पुष्पको ग्रहण करें, जिससे सारा संसार पुष्पगच्छसे सुवासित हो जाय।

धूप-मन्त्र—देवतानां पितृणां च सुखमेकं सनातनम्। धूपोऽयं देवदेवेश गृह्णतां मे धनञ्जयः ॥

हे देवदेवेश धनञ्जय ! आप देवताओं और पितरोंके सुख प्राप्त करनेमें एकमात्र सनातन आधार हैं। आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस धूपको ग्रहण करें।

दीप-मन्त्र—त्वमेकः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च। परमात्मा पराकारः प्रदीपः प्रतिगृह्णताम् ॥

परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें व्यास हैं। आपकी आकृति परम उत्कृष्ट है। आप इस दीपकको ग्रहण करें।

नैवेद्य-मन्त्र—नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रभवे जातवेदसे। सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्यं प्रतिगृह्णताम् ॥

हे यज्ञपति जातवेदा ! आप शक्तिशाली हैं तथा समस्त संसारका कल्याण करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। मेरे द्वारा प्रदत्त इस नैवेद्यको आप ग्रहण करें। परम अन्नस्वरूप मधु भी नैवेद्यके रूपमें निवेदित करे तथा यज्ञसूत्र भी अर्पित करे। अन्तमें समस्त कर्म भगवान् अग्निदेवको निवेदित कर दे—

हुताशन नमस्तुभ्यं नमस्ते रुक्मवाहन। लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे ॥

हे हुताशनदेव ! आपको नमस्कार है, रुक्मवाहन लोकनाथ ! आपको नमस्कार है, हे जातवेदा ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

इनमें शास्त्र-निर्दिष्ट प्रमाणसे न्यूनता या अधिकता नहीं होनी चाहिये। अभीष्ट-प्राप्तिके निमित्त किये

जानेवाले शान्तिकर्म शास्त्रोक्त रीतिसे सम्पन्न होने चाहिये। (अध्याय १७-१८)

यज्ञ-पात्रोंका स्वरूप और पूर्णाहुतिकी विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! यज्ञक्रियाके उपयोगमें आनेवाली स्तुवाके निर्माणमें—श्रीपर्णी, शिंशापा, क्षीरी (दूधवाले वृक्ष), बिल्व और खदिरके काष्ठ प्रशस्त माने गये हैं। याग-क्रियामें इनसे बने स्तुवाके उपयोगसे सिद्धि प्राप्त होती है। देव-प्रतिष्ठामें आँवला, खदिर और केसरके वृक्षको भी स्तुवाके लिये शास्त्रज्ञोंने उत्तम कहा है। स्तुवा प्रतिष्ठाकार्यमें, सम्प्राशन तथा संस्कार-कर्ममें और यज्ञादि कार्योंमें प्रयुक्त होता है। स्तुवाके निर्माणमें बिल्व-काष्ठ ग्रहण करना चाहिये, परंतु उसके ग्रहणके समय रिक्ता आदि तिथियाँ न हों। उस काष्ठको ग्रहण करनेवाला व्यक्ति पहले उपवास करे और मद्य, मांस आदि सभी वस्तुओंका परित्याग कर दे, स्त्री-सम्पर्कसे भी दूर रहे। एक काष्ठसे स्तुवा और स्तुक् दोनोंका निर्माण किया जा सकता है। इनका निर्माण शास्त्रोक्त विधिके अनुसार करना चाहिये। दर्वी अर्थात् करछुलका निर्माण स्वर्ण या ताँबेसे किया जाना चाहिये। यदि काष्ठसे करछुल बनानी हो तो गंभारी-वृक्ष, तेंदूका वृक्ष और दूधवाले वृक्षके काष्ठसे बारह अङ्गुलकी बनानी चाहिये। उसका नीचेका मण्डल दो अङ्गुलका होना चाहिये। यज्ञ-साधनमें यह उपयोगी है। ताँबेकी करछुल चालीस तोले, प्रायः आधा किलोकी होती है और उसका मण्डल पाँच अङ्गुलका तथा लम्बाई आठ हाथकी होती है। यही दर्वी (करछुल) पायस-निर्माणमें उपयोगी है। आज्य-शोधनके लिये दस तोलेकी ताप्रमयी करछुल होती है। इसके अभावमें पीपलके काष्ठसे सोलह अङ्गुलके मापमें दर्वी (करछुल) बनाये। आज्य-स्थाली ताँबेकी

या मिट्टीकी भी हो सकती है।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! अब मैं पूर्णाहुतिकी विधि बतला रहा हूँ, इसके अनुष्ठानसे यज्ञ पूर्ण होता है। अतएव पूर्णाहुति विधिपूर्वक करनी चाहिये। पूर्णाहुतिके बाद यज्ञमें आवाहित किये गये देवताओंको अर्घ्य देना चाहिये।

यदि यज्ञ अपूर्ण रहे तो यजमान श्रीविहीन हो जाता है और यज्ञ पूर्ण फलप्रद नहीं होता। स्तुवामें चरु रखकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। यज्ञ सम्पन्न हो जानेपर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर यजमान घरमें प्रवेश कर कुल-देवताओंकी प्रार्थना करे—प्रतिष्ठा-यागमें पूर्णाहुतिके समय ‘सप्त ते०’ (यजु० १७।७९), ‘देहि मे०’ (यजु० ३।५०), ‘पूर्णा दर्विं०’ (यजु० ३।४९) तथा ‘पुनन्तु०’ (यजु० १९।३९) इन मन्त्रोंका पाठ करे तथा नित्य-नैमित्तिक यागमें ‘पुनन्तु०,’ ‘पूर्णा दर्विं०’, ‘सप्त ते०’ तथा ‘देहि मे०’—का पाठ करे। विद्वानोंको इनमें अपने कुल-परम्पराका भी विचार करना चाहिये। पूर्णाहुति खड़ा होकर सम्पन्न करना चाहिये, बैठकर नहीं। ग्रहहोम तथा शतहोममें एक पूर्णाहुति देनी चाहिये। सहस्रयागमें दो, अयुत-होममें चार, सहस्र पुष्पहोममें एक, मृदु पुष्प-होममें एक, शत इक्षु-होममें दो, गर्भाधान, अन्नप्राशन, सीमन्तोन्नयन संस्कारोंमें और प्रायश्चित्तादि कर्म तथा नैमित्तिक वैश्वदेव-यागमें एक पूर्णाहुति देनेका विधान है।

मन्त्रोच्चारणमें ऋषि-छन्द, विनियोगादिका प्रयोग करना चाहिये। यदि इनका प्रयोग न किया जाय

तो फल-प्राप्तिमें न्यूनता होती है। 'सप्त ते०' इस ब्राह्मण-मन्त्रके कौण्डन्य ऋषि, जगती छन्द और अग्नि देवता हैं। 'देहि मे०' इस मन्त्रके प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और प्रजापति देवता हैं। 'पूर्णा दर्कि०' इस मन्त्रके शतक्रतु ऋषि, अनुष्टुप् छन्द एवं अग्नि देवता हैं। 'पुनन्तु०' इस मन्त्रके पवन ऋषि, जगती छन्द तथा देवता अग्नि हैं।

इस रीतिसे तत्तद् मन्त्रोंके उच्चारणके समय ऋषि, छन्द एवं देवताका स्मरण करना चाहिये। जप-कालमें मन्त्रोंकी संख्या अवश्य पूरी करनी चाहिये। निर्दिष्ट संख्याके बिना किया गया जप फलदायी नहीं होता। अयुत-होम, लक्ष-होम और कोटि-होममें जिन ऋत्विक् ब्राह्मणोंका वरण किया जाय, वे शान्त एवं काम-क्रोधरहित हों। ऋत्विजोंकी संख्या अभीष्ट होमानुसार करनी चाहिये। प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजाकर एवं दक्षिणा प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक याग-कर्म करनेवाला व्यक्ति वसु, आदित्य और मरुदगणोंके द्वारा शिवलोकमें पूजित होता है तथा अनेक कल्पोंतक वहाँ

निवास कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। जो किसी कामनाके बिना अर्थात् निष्काम-भावपूर्वक ईश्वरार्पण-बुद्धिसे लक्ष-होम करता है, वह अपने अभीष्टको प्राप्त कर परमपद प्राप्त कर लेता है। पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन, भार्यार्थी भार्या और कुमारी शुभ पतिको प्राप्त करती है। राज्यभृष्ट राज्य तथा लक्ष्मीकी कामनावाला व्यक्ति अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जो व्यक्ति निष्कामभावपूर्वक कोटि-होम करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। ब्रह्माने स्वयं बतलाया है कि कोटि-होम लक्ष-होमसे सौ गुना श्रेष्ठ है। ऋत्विज् ब्राह्मणोंके अभावमें आचार्य भी होता बन सकता है। आसनोंमें कुशासन प्रशस्त माना गया है।

देवता पद्मासनपर स्थित रहते हैं और वास भी करते हैं, अतः पद्मासनस्थ होकर ही अर्चना करनी चाहिये। 'देवो भूत्वा देवान् यजेत्' इस न्यायके अनुसार पद्मासनस्थ देवताओंका अर्चन पद्मासनस्थ होकर ही करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो सम्पूर्ण फल यक्षिणी हरण कर लेती है। (अध्याय १९—२१)

॥ प्रथम भाग सम्पूर्ण ॥



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

मध्यमपर्व (द्वितीय भाग)

यज्ञादि कर्मोंके मण्डल-निर्माणका विधान तथा क्रौञ्चादि पक्षियोंके दर्शनका फल

सूतजीने कहा—ब्राह्मणगण ! अब मैं आपलोगोंसे पुराणोंमें वर्णित मण्डल-निर्माणके विषयमें कहूँगा । बुद्धिमान् व्यक्ति हाथसे नापकर मण्डलका माप निश्चित करे । फिर उसे तत्त्व स्थानोंमें विधि-विहित लाल आदि रंग भरे । उनमें देवताओंके अस्त्र-विशेष बाहर, मध्य और कोणमें लिखकर प्रदर्शित करे । शम्भु, गौरी, ब्रह्मा, राम और कृष्ण आदिका अनुक्रमसे निर्देश करे । फिर सीमा-रेखाको एक अङ्गुल ऊँचा उन-उन अर्ध-भागोंसे युक्त करे । शिव और विष्णुके महायागमें शम्भुसे प्रारम्भ कर देवताओंकी परिकल्पना—ध्यान करे । प्रतिष्ठामें रामपर्यन्त, जलाशयमें कृष्णपर्यन्त और दुर्गायागमें ब्रह्मादिकी परिकल्पना करे । मण्डलका निर्माण अधम ब्राह्मण एवं शूद्र न करे । सूतजीने पुनः कहा—अब मैं क्रौञ्चका स्वरूप बतलाता हूँ । सभी शास्त्रोंमें उसका उल्लेख मिलता है जो गोपनीय है । यह क्रौञ्च (पक्षी-विशेष)-महाक्रौञ्च, मध्य-क्रौञ्च और कनिष्ठ-क्रौञ्च-भेद तीन प्रकारका

वर्णित है । इसका दर्शन सैकड़ों जन्मोंमें किये गये पापोंको नष्ट करता है । मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौञ्च और कपिको घरमें, खेतमें और वृक्षपर भूलसे भी देख ले तो उसको नमस्कार करे, ऐसा करनेसे दर्शकके सैकड़ों ब्रह्महत्याजनित पाप नष्ट हो जाते हैं । उनके पोषणसे कीर्ति मिलती है और दर्शनसे धन तथा आयु बढ़ती है । मयूर ब्रह्माका, वृषभ सदाशिवका, सिंह दुर्गाका, क्रौञ्च नारायणका, बाघ त्रिपुरसुन्दरी लक्ष्मीका रूप है । स्नानकर यदि प्रतिदिन इनका दर्शन किया जाय तो ग्रहदोष मिट जाता है । इसलिये प्रयत्नपूर्वक इनका पोषण करना चाहिये । सभी यज्ञोंमें सर्वतोभद्रमण्डल सभी प्रकारकी पुष्टि प्रदान करता है । सर्वशक्तिमान् ईश्वरने साधकोंके हितके लिये उसका प्रकाश किया है । सम्पूर्ण स्मार्त-यागोंमें सर्वतोभद्रमण्डलका विशेषरूपसे निर्माण किया जाता है और तत्-तत् स्थानोंमें तत्-तत् रंगोंसे पूरित किया जाता है ।

(अध्याय १-२)

यज्ञादि कर्ममें दक्षिणाका माहात्म्य, विभिन्न कर्मोंमें पारिश्रमिक व्यवस्था और कलश-स्थापनका वर्णन

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! शास्त्रविहित यज्ञादि कार्य दक्षिणारहित एवं परिमाणविहीन कभी नहीं करना चाहिये । ऐसा यज्ञ कभी सफल नहीं होता । जिस यज्ञका जो माप बतलाया गया है, उसीके अनुसार विधान करना चाहिये । मानरहित यज्ञ करनेवाले व्यक्ति नरकमें जाते हैं । आचार्य, होता, ब्रह्मा तथा जितने भी सहयोगी हों, वे सभी

विधिज्ञ हों ।

अस्सी वराटों (कौड़ियों)-का एक पण होता है । सोलह पणोंका एक पुराण कहा जाता है, सात पुराणोंकी एक रजतमुद्रा तथा आठ रजतमुद्राओंकी एक स्वर्णमुद्रा कही जाती है, जो यज्ञ आदिमें दक्षिणा दी जाती है । बड़े उद्यानोंकी प्रतिष्ठा-यज्ञमें दो स्वर्णमुद्राएँ, कूपोत्सर्गमें आधी स्वर्णमुद्रा (निष्क),

तुलसी एवं आमलकी-यागमें एक स्वर्णमुद्रा (निष्क) दक्षिणारूपमें विहित है। लक्ष-होममें चार स्वर्ण-मुद्रा, कोटि-होम, देव-प्रतिष्ठा तथा प्रासादके उत्सर्गमें अठारह स्वर्ण-मुद्राएँ दक्षिणारूपमें देनेका विधान है। तडाग तथा पुष्करिणी-यागमें आधी-आधी स्वर्णमुद्रा देनी चाहिये। महादान, दीक्षा, वृषोत्सर्ग तथा गया-श्राद्धमें अपने विभवके अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये। महाभारतके श्रवणमें अस्सी रत्ती तथा ग्रहयाग, प्रतिष्ठाकर्म, लक्षहोम, अयुतहोम तथा कोटिहोममें सौ-सौ रत्ती सुवर्ण देना चाहिये। इसी प्रकार शास्त्रोंमें निर्दिष्ट सत्पात्र व्यक्तिको ही दान देना चाहिये, अपात्रको नहीं। यज्ञ, होममें द्रव्य, काष्ठ, घृत आदिके लिये शास्त्र-निर्दिष्ट विधिका ही अनुसरण करना चाहिये। यज्ञ, दान तथा व्रतादि कर्मोंमें दक्षिणा (तत्काल) देनी चाहिये। बिना दक्षिणाके ये कार्य नहीं करने चाहिये। ब्राह्मणोंका जब वरण किया जाय तब उन्हें रल, सुवर्ण, चाँदी आदि दक्षिणारूपमें देना चाहिये। वस्त्र एवं भूमि-दान भी विहित हैं। अन्यान्य दानों एवं यज्ञोंमें दक्षिणा एवं द्रव्योंका अलग-अलग विधान है। विधानके अनुसार नियत दक्षिणा देनेमें असमर्थ होनेपर यज्ञ-कार्यकी सिद्धिके लिये देव-प्रतिमा, पुस्तक, रल, गाय, धान्य, तिल, रुद्राक्ष, फल एवं पुष्प आदि भी दिये जा सकते हैं। सूतजी पुनः बोले—ब्राह्मणो! अब मैं पूर्णपात्रका स्वरूप बतलाता हूँ। उसे सुनें। काम्य-होममें एक मुष्टिके पूर्णपात्रका विधान है। आठ मुष्टी अन्नको एक कुञ्जिका कहते हैं। इसी प्रमाणसे पूर्णपात्रोंका निर्माण करना चाहिये। उन पात्रोंको अलग कर द्वार-प्रदेशमें स्थापित करे।

कुण्ड और कुइमलोंके निर्माणके पारिश्रमिक इस प्रकार हैं—चौकोर कुण्डके लिये रौप्यादि,

सर्वतोभद्रकुण्डके लिये दो रौप्य, महासिंहासनके लिये पाँच रौप्य, सहस्रार तथा मेरुपृष्ठकुण्डके लिये एक बैल तथा चार रौप्य, महाकुण्डके निर्माणमें द्विगुणित स्वर्णपाद, वृत्तकुण्डके लिये एक रौप्य, पद्मकुण्डके लिये वृषभ, अर्धचन्द्रकुण्डके लिये एक रौप्य, योनिकुण्डके निर्माणमें एक धेनु तथा चार माशा स्वर्ण, शैवयागमें तथा उद्यापनमें एक माशा स्वर्ण, इष्टिकाकरणमें प्रतिदिन दो पण पारिश्रमिक देना चाहिये। खण्ड-कुण्ड-(अर्ध गोलाकार-) निर्माताको दस वराट (एक वराट बराबर अस्सी कौड़ी), इससे बड़े कुण्डके निर्माणमें एक काकिणी (माशेका चौथाई भाग), सात हाथके कुण्ड-निर्माणमें एक पण, बृहत्कूपके निर्माणमें प्रतिदिन दो पण, गृह-निर्माणमें प्रतिदिन एक रत्ती सोना, कोष्ठ बनवाना हो तो आधा पण, रंगसे रँगानेमें एक पण, वृक्षोंके रोपणमें प्रतिदिन डेढ़ पण पारिश्रमिक देना चाहिये। इसी तरह पृथक् कर्मोंमें अनेक रीतिसे पारिश्रमिकका विधान किया गया है। यदि नापित सिरसे मुण्डन करे तो उसे दस काकिणी देनी चाहिये। स्त्रियोंके नख आदिके रङ्गनके लिये काकिणीके साथ पण भी देना चाहिये। धानके रोपणमें एक दिनका एक पण पारिश्रमिक होता है। तैल और क्षारसे वर्जित वस्त्रकी धुलाईके लिये एक पण पारिश्रमिक देना चाहिये। इसमें वस्त्रकी लम्बाईके अनुसार कुछ वृद्धि भी की जा सकती है। मिट्टीके खोदनेमें, कुदाल चलानेमें, इक्षुदण्डके निष्ठीडन तथा सहस्र पुष्प-चयनमें दस-दस काकिणी पारिश्रमिक देना चाहिये। छोटी माला बनानेमें एक काकिणी, बड़ी माला बनानेमें दो काकिणी देना चाहिये। दीपकका आधार काँसे या पीतलका होना चाहिये। इन दोनोंके अभावमें मिट्टीका भी आधार बनाया जा सकता है*।

* भविष्यपुराणका यह अध्याय इतिहासकी दृष्टिसे बड़े महत्वका है। केवल कौटिल्य अर्धशास्त्र और शुक्रनीतिसे ही भारतकी प्राचीन

सूतजी पुनः बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं कलशोंके विषयमें निश्चित मत प्रकट करता हूँ, जिसका उपयोग करनेसे मङ्गल होता है और यात्रामें सिद्धि प्राप्त होती है। कलशमें सात अङ्ग अथवा पाँच अङ्ग होते हैं। कलशमें केवल जल भरनेसे ही सिद्धि नहीं होती, इसमें अक्षत और पुष्पोंसे देवताओंका आवाहन कर उनका पूजन भी करना चाहिये—ऐसा न करनेसे पूजन निष्फल हो जाता है। वट, अश्वत्थ, ध्व-वृक्ष और बिल्व-वृक्षके पल्लवोंको कलशके ऊपर रखें*। कलश सोना, चाँदी, ताँबा या मृत्तिकाके बनाये जाते हैं। कलशका निर्माण

अपनी सामर्थ्यके अनुसार करें। कलश अभेद्य, निश्छिद्र, नवीन, सुन्दर एवं जलसे पूरित होना चाहिये। कलशके निर्माणके विषयमें भी निश्चित प्रमाण बतलाया गया है। बिना मानके बना हुआ कलश उपयुक्त नहीं माना गया है। जहाँ देवताओंका आवाहन-पूजन किया जाय, उन्हींकी संनिधिमें कलशकी स्थापना करनी चाहिये। व्यतिक्रम करनेपर फलका अपहरण राक्षस कर लेते हैं। स्वस्तिक बनाकर उसके ऊपर निर्दिष्ट विधिसे कलश स्थापित कर वरुणादि देवताओंका आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये। (अध्याय ३—५)

चतुर्विध मास-व्यवस्था एवं मलमास-वर्णन

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं (विभिन्न प्रकारके) मासोंका वर्णन करता हूँ। मास चार प्रकारके होते हैं—चान्द्र, सौर, सावन तथा नाक्षत्र। शुक्ल प्रतिपदासे लेकर अमावास्यातकका मास चान्द्र-मास कहा जाता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तिमें प्रवेश करनेका समय सौर-मास कहलाता है। पूरे तीस दिनोंका सावन-मास होता है। अश्विनीसे लेकर रेवतीपर्यन्त नाक्षत्र-मास होता है। सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक जो दिन होता है, उसे सावन-दिन कहते हैं। एक तिथिमें चन्द्रमा जितना भोग करता है, वह चान्द्र-दिवस कहलाता है। राशिके तीसवें भागको सौर-दिन कहते हैं। दिन-रातको मिलाकर अहोरात्र होता है। किसी भी तिथिको लेकर तीस-दिन बाद आनेवाली तिथितकका समय सावन-मास होता है। प्रायश्चित्त, अन्नप्राशन तथा मन्त्रोपासनामें, राजाके कर-ग्रहणमें, मुद्राओं एवं पारिश्रमिकका पता चलता है। अन्य किसी पुराण या धार्मिक ग्रन्थोंमें इनका कोई संकेत नहीं किया गया है। गीताप्रेससे प्रकाशित 'मार्क्षवाद और रामराज्य' पुस्तकके पारिश्रमिकवाले प्रकरणमें इसपर पूरा विचार किया गया है तथा 'कल्याण' सन् १९६४ ई॰ के अङ्कमें भी इसपर विचार प्रकट किया गया है।

व्यवहारमें, यज्ञमें तथा दिनकी गणना आदिमें सावन-मास ग्राह्य है। सौर-मास विवाहादि-संस्कार, यज्ञ-ब्रत आदि सत्कर्म तथा स्नानादिमें ग्राह्य है। चान्द्र-मास पार्वण, अष्टकाश्राद्ध, साधारण श्राद्ध, धार्मिक कार्यों आदिके लिये उपयुक्त है। चैत्र आदि मासोंमें तिथिको लेकर जो कर्म विहित हैं, वे चान्द्र-माससे करने चाहिये। सोम या पितृगणोंके कार्य आदिमें नाक्षत्र-मास प्रशस्त माना गया है। चित्रा नक्षत्रके योगसे चैत्री पूर्णिमा होती है, उससे उपलक्षित मास चैत्र कहा जाता है। चैत्र आदि जो बारह चान्द्र-मास हैं, वे तत्-तत्-नक्षत्रके योगसे तत्-तत्-नामवाले होते हैं।

जिस महीनेमें पूर्णिमाका योग न हो, वह प्रजा, पशु आदिके लिये अहितकर होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नित्य तिथिका भोग करते हैं। जिन तीस दिनोंमें संक्रमण न हो, वह मलिम्लुच,

* प्रचलित परम्परामें आम, पीपल, बरगद, प्लक्ष (पाकड़) तथा उदुम्बर (गूलर)—ये पञ्च-पल्लव कहे गये हैं।

मलमास या अधिक मास (पुरुषोत्तम मास) कहलाता है, उसमें सूर्यकी कोई संक्रान्ति नहीं होती। प्रायः अढाई वर्ष (बत्तीस मास)-के बाद यह मास आता है। इस महीनेमें सभी तरहकी प्रेत-क्रियाएँ तथा सपिण्डन-क्रियाएँ की जा सकती हैं। परंतु यज्ञ, विवाहादि कार्य नहीं होते। इसमें तीर्थस्नान, देव-दर्शन, व्रत-उपवास आदि, सीमन्तोन्नयन, ऋतुशान्ति, पुंसवन और पुत्र आदिका मुख-दर्शन किया जा सकता है। इसी तरह शुक्रास्तमें भी ये क्रियाएँ की जा सकती हैं। राज्याभिषेक भी मलमासमें हो सकता है। व्रतारम्भ, प्रतिष्ठा,

चूडाकर्म, उपनयन, मन्त्रोपासना, विवाह, नूतन-गृह-निर्माण, गृह-प्रवेश, गौ आदिका ग्रहण, आश्रमान्तरमें प्रवेश, तीर्थ-यात्रा, अभिषेक-कर्म, वृषोत्सर्ग, कन्याका द्विरागमन तथा यज्ञ-यागादि—इन सबका मलमासमें निषेध है। इसी तरह शुक्रास्त एवं उसके वार्धक्य और बाल्यत्वमें भी इनका निषेध है। गुरुके अस्त एवं सूर्यके सिंह राशिमें स्थित होनेपर अधिक मासमें जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें नहीं करना चाहिये। कर्क राशिमें सूर्यके आनेपर भगवान् शयन करते हैं और उनके तुलाराशिमें आनेपर निद्राका त्याग करते हैं। (अध्याय ६)

काल-विभाग, तिथि-निर्णय एवं वर्षभरके विशेष पर्वों तथा तिथियोंके पुण्यप्रद कृत्य

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! देव-कर्म या पैतृक-कर्म कालके आधारपर ही सम्पन्न होते हैं और कर्म भी नियत समयपर किये जानेपर पूर्णरूपेण फलप्रद होते हैं। समयके बिना की गयी क्रियाओंका फल तीनों कालों तथा लोकोंमें भी प्राप्त नहीं होता। अतः मैं कालके विभागोंका वर्णन करता हूँ।

यद्यपि काल अमूर्तरूपमें एक तथा भगवान्का ही अन्यतम स्वरूप है तथापि उपाधियोंके भेदसे वह दीर्घ, लघु आदि अनेक रूपोंमें विभक्त है। तिथि, नक्षत्र, वार तथा रात्रिका सम्बन्ध आदि जो कुछ है, वे सभी कालके ही अङ्ग हैं और पक्ष, मास आदि रूपसे वर्षान्तरोंमें भी आते-जाते रहते हैं तथा वे ही सब कर्मोंके साधन हैं। समयके बिना कोई भी स्वतन्त्ररूपसे कर्म करनेमें समर्थ नहीं। धर्म या अधर्मका मुख्य द्वार काल ही है। तिथि आदि काल-विशेषोंमें निषिद्ध और विहित कर्म बताये गये हैं। विहित कर्मोंका पालन करनेवाला स्वर्ग प्राप्त करता है और विहितका

त्याग कर निषिद्ध कर्म करनेसे अधोगति प्राप्त करता है। पूर्वाह्नव्यापिनी तिथिमें वैदिक क्रियाएँ करनी चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्याह्नव्यापिनी तिथिमें और पार्वण-श्राद्ध अपराह्न-व्यापिनी तिथिमें करना चाहिये। वृद्धिश्राद्ध आदि प्रातःकालमें करने चाहिये। ब्रह्माजीने देवताओंके लिये तिथियोंके साथ पूर्वाह्नकाल दिया है और पितरोंको अपराह्न। पूर्वाह्नमें देवताओंका अर्चन करना चाहिये।

तिथियाँ तीन प्रकारकी होती हैं—खर्वा, दर्पा और हिंसा। लघुत्तम होनेवाली खर्वा, तिथिवृद्धि दर्पा तथा तिथिहानि हिंसा कही जाती है। इनमें खर्वा और दर्पा आगेकी लेनी चाहिये और हिंसा (क्षय-तिथि) पूर्वमें लेनी चाहिये। शुक्ल पक्षमें परा लेनी चाहिये और कृष्ण पक्षमें पूर्वा। भगवान् सूर्य जिस तिथिको प्राप्त कर उदित होते हैं, वह तिथि स्नान-दान आदि कृत्योंमें उचित है। यदि अस्त-समयमें भगवान् सूर्य दस घटीपर्यन्त रहते हैं तो वह तिथि रात-दिन समझनी चाहिये।

शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्षमें खर्वा या दर्पा तिथिके अस्तपर्यन्त सूर्य रहे तो पितृकार्यमें वही तिथि ग्राह्य है। दो दिनमें मध्याह्नकालव्यापिनी तिथि होनेपर अस्तपर्यन्त रहनेवाली प्रथम तिथि श्राद्ध आदिमें विहित है। द्वितीया तृतीयासे तथा चतुर्थी पञ्चमीसे युक्त हों तो ये तिथियाँ पुण्यप्रद मानी गयी हैं और उसके विपरीत होनेपर पुण्यका ह्रास करती हैं। षष्ठी पञ्चमीसे एवं अष्टमी सप्तमीसे विद्ध हो तथा दशमीसे एकादशी, त्रयोदशीसे चतुर्दशी और चतुर्दशीसे अमावास्या विद्ध हो तो उनमें उपवास नहीं करना चाहिये, अन्यथा पुत्र, कलत्र और धनका ह्रास होता है। पुत्र-भार्यादिसे रहित व्यक्तिका यज्ञमें अधिकार नहीं है। जिस तिथिको लेकर सूर्य उदित होते हैं, वह तिथि स्नान, अध्ययन और दानके लिये श्रेष्ठ समझनी चाहिये। कृष्ण पक्षमें जिस तिथिमें सूर्य अस्त होते हैं, वह स्नान, दान आदि कर्मोंमें पितरोंके लिये उत्तम मानी जाती है।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! अब मैं ब्रह्माजीद्वारा बतलायी गयी श्रेष्ठ तिथियोंका वर्णन करता हूँ। आश्विन, कार्तिक, माघ और चैत्र इन महीनोंमें स्नान, दान और भगवान् शिव तथा विष्णुका पूजन दस गुना फलप्रद होता है। प्रतिपदा तिथिमें अग्निदेवका यजन और हवन करनेसे सभी तरहके धान्य और ईप्सित धन प्राप्त होते हैं। यदि शुक्ल पक्षमें द्वितीया तिथि बृहस्पतिवारसे युक्त हो तो उस तिथिमें विधिपूर्वक भगवान् अग्निदेवका पूजन और नक्तव्रत करनेसे इच्छित ऐश्वर्य प्राप्त होता है। मिथुन (आषाढ़) और कर्क (श्रावण) राशिके सूर्यमें जो द्वितीया आये, उसमें उपवास करके भगवान् विष्णुका पूजन करनेवाली स्त्री कभी विधवा नहीं होती। अशून्य-शयन द्वितीया

(श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया तिथि) -को गन्ध, पुष्प, वस्त्र तथा विविध नैवेद्योंसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा करनी चाहिये। (इस व्रतसे पति-पत्नीका परस्पर वियोग नहीं होता।) वैशाख शुक्ल पक्षकी तृतीयामें गङ्गाजीमें स्नान करनेवाला सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वैशाख मासकी तृतीया स्वाती नक्षत्र और माघकी तृतीया रोहिणीयुक्त हो तथा आश्विन-तृतीया वृष्णराशिसे युक्त हो तो उसमें जो भी दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है। विशेषरूपसे इनमें हविष्यान् एवं मोदक देनेसे अधिक लाभ होता है तथा गुड़ और कर्पूरसे युक्त जलदान करनेवालेकी विद्वान् पुरुष अधिक प्रशंसा करते हैं, वह मनुष्य ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। यदि बुधवार और श्रवणसे युक्त तृतीया हो तो उसमें स्नान और उपवास करनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है। भरणी नक्षत्रयुक्त चतुर्थीमें यमदेवताकी उपासना करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिलती है। भाद्रपदकी शुक्ला चतुर्थी शिवलोकमें पूजित है। कार्तिक और माघ मासके ग्रहणोंमें स्नान, जप, तप, दान, उपवास और श्राद्ध करनेसे अनन्त फल मिलता है। चतुर्थीमें सम्पूर्ण विश्वोंके नाश तथा इच्छापूर्तिके लिये भगवान् गणेशकी पूजा मोदक आदिसे भक्तिपूर्वक करनी चाहिये।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीमें द्वार-देशके दोनों ओर गोमयसे नागोंकी रचना कर दूध, दही, सिन्दूर, चन्दन, गङ्गाजल एवं सुगन्धित द्रव्योंसे नागोंका पूजन करना चाहिये। नागोंका पूजन करनेवालोंके कुलमें निर्भयता रहती है एवं प्राणोंकी रक्षा भी होती है। श्रावण कृष्ण पञ्चमीको घरके आँगनमें नीमके पत्तोंसे मनसादेवीकी पूजा करनेसे कभी सर्पभय नहीं होता। भाद्रपदकी षष्ठीमें स्नान, दान आदि करनेसे अनन्त पुण्य

होता है। विप्रगणो! माघ और कार्तिककी षष्ठीमें ब्रत करनेसे इहलोक और परलोकमें असीम कीर्ति प्राप्त होती है। शुक्ल पक्षकी सप्तमीमें यदि संक्रान्ति पड़े तो उसका नाम महाजया या सूर्यप्रिया होती है। भाद्रपदकी सप्तमी अपराजिता है। शुक्ल या कृष्ण पक्षकी षष्ठी या सप्तमी रविवारसे युक्त हो तो वह ललिता नामकी तिथि पुत्र-पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाली और महान् पुण्यदायिनी है।

आश्विन एवं कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें अष्टादशभुजाका पूजन करना चाहिये। आषाढ़ और श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें चण्डिकादेवीका प्रातःकाल स्नान करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन कर रात्रिमें अभिषेक करना चाहिये। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें अशोक-पुष्पसे मृण्मयी भगवती देवीका अर्चन करनेसे सम्पूर्ण शोक निवृत्त हो जाते हैं। श्रावण मासमें अथवा सिंह-संक्रान्तिमें रोहिणीयुक्त अष्टमी हो तो उसकी अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। प्रतिमासकी नवमीमें देवीकी पूजा करनी चाहिये। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको शुद्ध आहारपूर्वक रहनेवाले ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी दशमी गङ्गादशहरा कहलाती है। आश्विनकी दशमी विजया और कार्तिककी दशमी महापुण्या कहलाती है।

एकादशीब्रत करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इस ब्रतमें दशमीको जितेन्द्रिय होकर एक ही बार भोजन करना चाहिये। दूसरे दिन एकादशीमें उपवास कर द्वादशीमें पारणा करनी चाहिये। द्वादशी तिथि द्वादश पापोंका हरण करती है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें अनेक पुष्पादि सामग्रियोंसे कामदेवकी पूजा करे। इसे अनङ्ग-त्रयोदशी कहा जाता है। चैत्र मासके कृष्ण

पक्षकी अष्टमी शनिवार या शतभिषा नक्षत्रसे युक्त हो तो गङ्गामें स्नान करनेसे सैकड़ों सूर्यग्रहणका फल प्राप्त होता है। इसी मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी यदि शनिवार या शतभिषासे युक्त हो तो वह महावारुणी-पर्व कहलाता है। इसमें किया गया स्नान, दान एवं श्राद्ध अक्षय होता है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी दम्भभंजिनी कही जाती है। इस दिन धतूरेकी जड़में कामदेवका अर्चन करना चाहिये, इससे उत्तम स्थान प्राप्त होता है। अनन्त-चतुर्दशीका ब्रत सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। इसे भक्तिपूर्वक करनेसे मनुष्य अनन्त सुख प्राप्त करता है। प्रेत-चतुर्दशी (यम-चतुर्दशी)-को तपस्वी ब्राह्मणोंको भोजन और दान देनेसे मनुष्य यमलोकमें नहीं जाता। फाल्गुन मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रिके नामसे प्रसिद्ध है और वह सम्पूर्ण अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेवाली है। इस दिन चारों पहरोंमें स्नान करके भक्तिपूर्वक शिवजीकी आराधना करनी चाहिये। चैत्रमासकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र तथा गुरुवारसे युक्त हो तो वह महाचैत्री कही जाती है। वह अनन्त पुण्य प्रदान करनेवाली है। इसी प्रकार विशाखादि नक्षत्रसे युक्त वैशाखी, महाज्येष्ठी आदि बारह पूर्णिमाएँ होती हैं। इनमें किये गये स्नान, दान, जप, नियम आदि सत्कर्म अक्षय होते हैं और ब्रतीके पितर संतृप्त होकर अक्षय विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। हरिद्वारमें महावैशाखीका पर्व विशेष पुण्य प्रदान करता है। इसी प्रकार शालग्राम-क्षेत्रमें महाचैत्री, पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें महाज्येष्ठी, शृङ्खल-क्षेत्रमें महाषाढ़ी, केदारमें महाश्रावणी, बदरिकाक्षेत्रमें महाभाद्री, पुष्कर तथा कान्यकुञ्जमें महाकार्तिकी, अयोध्यामें महामार्गशीर्षी तथा महापौष्णी, प्रयागमें महामाघी तथा नैमित्तारण्यमें महाफाल्गुनी

पूर्णिमा विशेष फल देनेवाली है। इन पर्वोंमें जो भी शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, वे अक्षय हो जाते हैं। आश्विनकी पूर्णिमा कौमुदी कही गयी है, इसमें चन्द्रोदय-कालमें विधिपूर्वक लक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक अमावास्याको तर्पण और श्राद्धकर्म अवश्य करना चाहिये। कार्तिक

मासके कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें प्रदोषके समय लक्ष्मीका सविधि पूजन कर उनकी प्रीतिके लिये दीपोंको प्रज्वलित करना चाहिये एवं नदीतीर, पर्वत, गोष्ठ, शमशान, वृक्षमूल, चौराहा, अपने घरमें और चत्वरमें दीपोंको सजाना चाहिये।

(अध्याय ७-८)

गोत्र-प्रवर आदिके ज्ञानकी आवश्यकता

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! गोत्र-प्रवरकी परम्पराको जानना अत्यन्त आवश्यक होता है, इसलिये अपने-अपने गोत्र या प्रवरको पिता, आचार्य तथा शास्त्रद्वारा जानना चाहिये। गोत्र-प्रवरको जाने बिना किया गया कर्म विपरीत फलदायी होता है। कश्यप, वसिष्ठ, विश्वामित्र, आङ्गिरस, च्यवन, मौकुन्य, वत्स, कात्यायन, अगस्त्य आदि अनेक गोत्रप्रवर्तक ऋषि हैं। गोत्रोंमें एक, दो, तीन, पाँच आदि प्रवर होते हैं। समान

गोत्रमें विवाहादि सम्बन्धोंका निषेध है। अपने गोत्र-प्रवरादिका ज्ञान शास्त्रान्तरोंसे कर लेना चाहिये^१।

वास्तवमें देखा जाय तो सारा जगत् महामुनि कश्यपसे उत्पन्न हुआ है। अतः जिन्हें अपने गोत्र और प्रवरका ज्ञान नहीं है, उन्हें अपने पिताजीसे ज्ञान कर लेना चाहिये। यदि उन्हें मालूम न हो तो स्वयंको काश्यप^२ गोत्रीय मानकर उनका प्रवर लगाकर शास्त्रानुसार कर्म करना चाहिये।

(अध्याय ९)

वास्तु-मण्डलके निर्माण एवं वास्तु-पूजनकी संक्षिप्त विधि^३

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं वास्तु-मण्डलका संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। पहले भूमिपर अङ्कुरोंका रोपण करके भूमिकी परीक्षा कर ले।

तदनन्तर उत्तम भूमिके मध्यमें वास्तु-मण्डलका निर्माण करे। वास्तु-मण्डलके देवता पैतालीस हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) शिखी, (२) पर्जन्य,

१-गोत्र-प्रवर-निर्णयपर 'गोत्र-प्रवर-निवन्ध-कदम्ब' आदि कई स्वतन्त्र निवन्ध ग्रन्थ हैं। मत्स्यपुराणके अध्याय १९५-२०५ तकमें विस्तारसे यह विषय आया है तथा स्कन्दपुराणके माहेश्वरखण्ड एवं ब्रह्मखण्डमें भी इसपर विचार किया गया है।

२-सबके लिये एकमात्र परमात्मा ही परमकल्याणार्थ ध्येय-ज्ञेय हैं और कश्यपनन्दन सूर्यके रूपमें वे प्रत्यक्षरूपसे संसारका पालन, संचालन—उष्णा तथा प्रकाशके रूपमें, फिर वायु—प्राणके रूपमें समस्त प्राणियोंके जीवन बने हैं। इसलिये सभी वैष्णव और संन्यासी अपनेको अच्युत-गोत्रीय ही मानते हैं। प्राचीन परम्पराके अनुसार वेदाध्ययनमें वैदिक शाखा, सूत्र, ऋषि, गोत्र और प्रवरका ज्ञान आवश्यक था। यह विषय आश्वलायन गृहासूत्रमें भी निर्दिष्ट है।

३-जिस भूमिपर मनुष्यादि प्राणी निवास करते हैं, उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह, देवप्रासाद, ग्राम, नगर, पुर, दुर्ग आदि अनेक भेद हैं। इसपर वास्तुराजवल्लभ, समराङ्गणसूत्रधार, बृहत्संहिता, शिल्परत्न, गृहरत्नभूषण, हयशीर्षपाञ्चरात्र तथा कपिलपाञ्चरात्र आदि ग्रन्थोंमें पूर्ण विचार किया गया है। पुराणोंमें मत्स्य, अग्नि तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें भी यह महत्वपूर्ण विषय आया है। 'कल्याण' के देवताङ्कमें भी वास्तु-चक्रादिके विषयमें सामग्री संकलित की गयी है। वास्तुके आविर्भावके विषयमें मत्स्यपुराणमें आया है कि अन्धकासुरके वधके समय भगवान् शंकरके ललाटसे जो स्वेदबिन्दु गिरे उनसे एक भयंकर आकृतिवाला पुरुष प्रकट हुआ। जब वह त्रिलोकीका भक्षण करनेके लिये उदय हुआ, तब शंकर आदि देवताओंने उसे पृथ्वीपर सुलाकर वास्तुदेवता (वास्तुपुरुष) -के रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसके शरीरमें सभी

(३) जयन्त, (४) कुलिशायुध, (५) सूर्य, (६) सत्य, (७) वृष, (८) आकाश, (९) वायु, (१०) पूषा, (११) वितथ, (१२) गुहा, (१३) यम, (१४) गन्धर्व, (१५) मृगराज, (१६) मृग, (१७) पितृगण, (१८) दौवारिक, (१९) सुग्रीव, (२०) पुष्पदन्त, (२१) वरुण, (२२) असुर, (२३) पशु, (२४) पाश, (२५) रोग, (२६) अहि, (२७) मोक्ष, (२८) भल्लाट, (२९) सोम, (३०) सर्प, (३१) अदिति, (३२) दिति, (३३) अप्, (३४) सावित्रि, (३५) जय, (३६) रुद्र, (३७) अर्यमा, (३८) सविता, (३९) विवस्वान्, (४०) विबुधाधिप, (४१) मित्र, (४२) राजयक्षमा, (४३) पृथ्वीधर, (४४) आपवत्स तथा (४५) ब्रह्मा।

इन पैतालीस देवताओंके साथ ही वास्तु-मण्डलके बाहर ईशानकोणमें चरकी, अग्निकोणमें विदारी, नैऋत्यकोणमें पूतना तथा वायव्यकोणमें पापराक्षसीकी स्थापना करनी चाहिये। मण्डलके पूर्व दिशामें स्कन्द, दक्षिणमें अर्यमा, पश्चिममें जृम्भक तथा उत्तरमें पिलिपिच्छकी स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तु-मण्डलमें तिरपन देवी-देवताओंकी स्थापना होती है। इन सभीका अलग-अलग मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। मण्डलके बाहर ही पूर्वादि दस दिशाओंमें दस दिक्षाल देवताओं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्दृति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्तकी भी यथास्थान पूजा कर उन्हें बलि (नैवेद्य) निवेदित करनी चाहिये। वास्तु-मण्डलकी रेखाएँ श्वेत वर्णसे तथा मध्यमें कमल लाल वर्णसे अनुरङ्गित करना चाहिये। शिखी आदि पैतालीस

देवताओंने बास किया। इसीलिये वह वास्तुदेवता कहलाया। देवताओंने उसे पूजित होनेका बर भी प्रदान किया। वास्तुदेवताकी पूजाके लिये वास्तुप्रतिमा तथा वास्तुचक्र बनाया जाता है। वास्तुचक्र प्रायः ४९ से लेकर एक सहस्र पदात्मक होता है। भिन्न-भिन्न अवसरोंपर भिन्न-भिन्न वास्तुचक्रोंका निर्माण कर उनमें देवताओंका आवाहन, स्थापन एवं पूजन किया जाता है। चौंसठ पदात्मक तथा इक्यासी पदात्मक वास्तुचक्रके पूजनकी परम्परा विशेषरूपसे प्रचलित है। इस सभी वास्तुचक्रके भेदोंमें प्रायः इन्द्रादि दस दिक्षालोंके साथ शिखी आदि पैतालीस देवताओंका पूजन किया जाता है तथा उन्हें पायसान्न बलि प्रदान की जाती है। वास्तुकलशमें वास्तुदेवता (वास्तोप्ति)-की पूजा कर उनसे सर्वविधि शान्ति एवं कल्याणकी प्रार्थना की जाती है।

देवताओंके कोष्ठकोंको रक्तादि रंगोंसे अनुरङ्गित करना चाहिये। गृह, देवमन्दिर, महाकूप आदिके निर्माणमें तथा देव-प्रतिष्ठा आदिमें वास्तु-मण्डलका निर्माण कर वास्तुमण्डलस्थ देवताओंका आवाहन कर उनका पूजन आदि करना चाहिये। पवित्र स्थानपर लिपी-पुती डेढ़ हाथके प्रमाणकी भूमिपर पूर्वसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्षिण दस-दस रेखाएँ खींचे। इससे इक्यासी कोष्ठकके वास्तुपद-चक्रका निर्माण होगा। इसी प्रकार ९-९ रेखाएँ खींचनेसे चौंसठ पदका वास्तुचक्र बनता है।

वास्तु-मण्डलमें जिन देवताओंका उल्लेख किया गया है, उनका ध्यान और पूजन अलग-अलग मन्त्रसे किया जाता है। उल्लिखित देवताओंकी तुष्टिके लिये विधिके अनुसार स्थापना तथा पूजा करके हवन-कार्य सम्पन्न करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणोंको सुवर्ण आदि दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिये।

वास्तु-यागादिमें एक विस्तृत मण्डलके अन्तर्गत योनि तथा मेखलाओंसे समन्वित एक कुण्ड और वास्तु-वेदीका विधिके अनुसार निर्माण करना चाहिये। मण्डलके ईशानकोणमें कलश स्थापित कर गणेशजीका एवं कुण्डके मध्यमें विष्णु दिक्षाल और ब्रह्मा आदिका तत्तद् मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे। तदनन्तर वास्तुपुरुषका ध्यान इस प्रकार करे—वास्तुदेवता श्वेतवर्णके चार भुजावाले शान्तस्वरूप और कुण्डलोंसे अलंकृत हैं। हाथमें पुस्तक, अक्षमाला, वरद एवं अभय-मुद्रा धारण किये हुए

देवताओंने बास किया। इसीलिये वह वास्तुदेवता कहलाया। देवताओंने उसे पूजित होनेका बर भी प्रदान किया। वास्तुदेवताकी पूजाके लिये वास्तुप्रतिमा तथा वास्तुचक्र बनाया जाता है। वास्तुचक्र प्रायः ४९ से लेकर एक सहस्र पदात्मक होता है। भिन्न-भिन्न अवसरोंपर भिन्न-भिन्न वास्तुचक्रोंका निर्माण कर उनमें देवताओंका आवाहन, स्थापन एवं पूजन किया जाता है। चौंसठ पदात्मक तथा इक्यासी पदात्मक वास्तुचक्रके पूजनकी परम्परा विशेषरूपसे प्रचलित है। इस सभी वास्तुचक्रके भेदोंमें प्रायः इन्द्रादि दस दिक्षालोंके साथ शिखी आदि पैतालीस देवताओंका पूजन किया जाता है तथा उन्हें पायसान्न बलि प्रदान की जाती है। वास्तुकलशमें वास्तुदेवता (वास्तोप्ति)-की पूजा कर उनसे सर्वविधि शान्ति एवं कल्याणकी प्रार्थना की जाती है।

हैं। पितरों और वैश्वानरसे युक्त हैं तथा कुटिल भ्रूसे सुशोभित हैं। उनका मुख भयंकर है। हाथ जानुपर्यन्त लम्बे हैं^१। ऐसे वास्तुपुरुषका विधिके अनुसार पूजन कर उन्हें स्नान कराये। 'वास्तोष्टते' यह वास्तुदेवताके पूजनका मुख्य मन्त्र है^२। पूजाकी जितनी सामग्री है, उसे प्रोक्षणद्वारा शुद्ध कर ले। आसनकी शुद्धि कर गणेश, सूर्य, इन्द्र और आधारशक्तिरूप पृथ्वी तथा ब्रह्माका पूजन करे। तदनन्तर हाथमें श्वेत चन्दनयुक्त श्वेत पुष्प लेकर विष्णुरूप वास्तुपुरुषका ध्यान कर उन्हें आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क आदि प्रदान करे और विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करे।

विद्वान् ब्राह्मणको चाहिये कि कुण्ड और वास्तुवेदीके मध्यमें कलशकी स्थापना करे। कलशमें पर्वतके शिखर, गजशाला, वल्मीक, नदीसंगम, राजद्वार, चौराहे तथा कुशके मूलकी—यह सात प्रकारकी मिट्टी छोड़े। साथ ही उसमें इन्द्रवल्ली (पारिजात), विष्णुक्रान्ता (कृष्ण शङ्खपुष्पी), अमृती (आमलकी), त्रपुष (खीरा), मालती, चम्पक

तथा ऊर्वारुक (ककड़ी)—इन वनस्पतियोंको छोड़े। पारिभद्र (नीम)-के पत्रोंसे कलशके कण्ठका परिवेष्टन करे और कलशके मुखमें फणाकाररूपमें पञ्चपल्लवोंकी स्थापना करे। उसके ऊपर श्रीफल, बीजपूर, नारिकेल, दाढ़िम, धात्री तथा जम्बूफल रखे। कलशमें सुवर्णादि पञ्चरत्न छोड़े। गन्ध-पुष्पादि पञ्चोपचारोंसे कलशका पूजन करे। कलशमें वरुणका आवाहन करे। कलशका स्पर्श करते हुए उसमें समस्त समुद्रों, तीर्थों, गङ्गादि नदियों तथा पवित्र जलाशयों आदिके पवित्र जलकी भावना कर, उनका आवाहन करे। कलश-स्थापनके अनन्तर तिल, चावल, मध्वाज्य तथा दही, दूध आदिसे यथाविधि वास्तु-होम करे। वास्तु-हवनके समय वास्तु-देवताके मन्त्रका जप करे। अनन्तर वास्तु-मण्डलके समस्त देवताओंको पायसान्न, कृशरान्न आदि पृथक्-पृथक् क्रमशः बलि निवेदित करे। सभी देवताओंको उन्हींके अनुरूप पताका भी प्रदान करे। अपनी सामर्थ्यके अनुसार मन्त्र-जप और वास्तुपुरुषस्तवका पाठ करें। भगवान्

१-श्वेतं चतुर्भुजं शान्तं कुण्डलाद्यैरलंकृतम् । पुस्तकं चाक्षमालां च वराभयकरं परम्॥

पितृवैश्वानरोपेतं कुटिलभ्रूपशोभितम् । करालवदनं चैव आजानुकरलम्बितम्॥ (मध्यमपर्व २। ११। ११-१२)

२-पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

वास्तोष्टते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवानः । यत् त्वेमहे प्रति तत्रो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

(ऋू७। ५४। १)

हे वास्तुदेव ! हम आपके सच्चे उपासक हैं, इसपर आप पूर्ण विश्वास करें और हमारी स्तुति-प्रार्थनाओंको सुनकर हम सभी उपासकोंको आधि-व्याधिमुक्त कर दें तथा जो हम अपने धन-ऐश्वर्यकी कामना करते हैं, आप उसे भी परिपूर्ण कर दें, साथ ही इस वास्तुक्षेत्र या गृहमें निवास करनेवाले हमारे स्त्री-पुत्रादि-परिवार-परिजनोंके लिये कल्याणकारक हों एवं हमारे अधीनस्थ गौ, अश्वादि सभी चतुष्पद प्राणियोंको भी कल्याण करें।

३-भगवान् शंकरके द्वारा की गयी 'ब्रह्मस्तव' नामकी विष्णु-स्तुति इस प्रकार है—

विष्णुजिष्णुविर्भुर्यज्ञो यज्ञियो यज्ञपालकः । नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो हुताशनः ॥

यज्ञेशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः । आदिदेवो जगत्कर्ता मण्डलेशो महीधरः ॥

पद्मनाभो हृषीकेशो दाता दामोदरो हरिः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मणः प्रीतिवर्धनः ॥

भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यवाक्यो धृत्वः शूचिः । सन्यासी शास्त्रतत्त्वजस्त्रिपञ्चशद्गुणात्मकः ॥

विदारी विनयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतप्रभः । यज्ञस्त्वं हि वषट्कारस्त्वमोक्तारस्त्वमग्नयः ॥

त्वं स्वधा त्वं हि स्वाहा त्वं सुधा च पुरुषोत्तमः ।

शंकरने भगवान् विष्णुस्वरूप वास्तोष्यतिकी इस स्तुतिको कहा है। इसका जो प्रयत्नपूर्वक निरन्तर पाठ करता है, उसे अमरता प्राप्त हो जाती है और जो हृत्कमलके मध्य निवास करनेवाले भगवान् अच्युत-विष्णुका ध्यान करता है, वह वैष्णवी सिद्धि प्राप्त करता है। यज्ञकर्मकी पूर्णतामें आचार्यको पयस्विनी गौ तथा सुवर्ण दक्षिणामें दे, अन्य ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण प्रदान करे। प्राजापत्य और स्विष्टकृत् हवन करे। आचार्य और ऋत्विज् मिलकर यजमानपर कलशके जलसे अभिषेक करें। पूर्णहृति देकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। ब्राह्मणोंकी

आज्ञा लेकर यजमान घरमें प्रवेश करे, अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराये। दीन, अन्ध और कृपणोंका अपनी शक्तिके अनुसार सम्मान करे। फिर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करे। उस दिन भोजनमें दूध, कसैले पदार्थ, भुने हुए शाक तथा करेला आदि निषिद्ध पदार्थोंका उपयोग न करे। शाल्यन, मूली, कटहल, आम, मधु, घी, गुड़, सेंधा नमकके साथ मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), बदरीफल, धात्रीफल एवं तिल और मरिच आदिसे बने पदार्थ भोजनमें प्रशस्त कहे गये हैं।

(अध्याय १०—१३)

कुशकण्डका-विधान तथा अग्नि-जिह्वाओंके नाम

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं याग-विशेषोंमें स्वगृह्णाग्नि-विधि कह रहा हूँ। अपनी वेदादि शाखाके अनुकूल ही गृह्णाग्नि-विधि करनी चाहिये। दूसरेकी शाखाके विधानसे याग-विशेषोंका अनुष्ठान करनेपर भयकी प्राप्ति होती है और कीर्तिका नाश होता है। पुत्र, कन्या और आगे उत्पन्न होनेवाले पुत्रादि गृह्णनामसे कहे जाते हैं। यजमानके जितने दायाद होते हैं, वे सब गृह्णनामसे कहे जाते हैं। उनके संस्कार, याग और शान्तिकर्म-क्रियाओंमें अपने गृह्णाग्निसे ही अनुष्ठान करना चाहिये। आचार्यद्वारा विहित कल्पको दक्षस्मृतिमें कहा गया है। आचार्य इन कर्मोंमें तीन कुशाओंका परिग्रहण करता है। जिस मन्त्रसे कुशा ग्रहण करता है, उसके ऋषि दक्ष, जगती छन्द और विष्णु देवता हैं। पृथ्वीके शोधनमें 'भूरसि' (यजु० १३। १८) इस मन्त्रका विनियोग करे। इस मन्त्रके ऋषि सुवर्ण हैं, गायत्री और

जगती छन्द तथा सूर्य देवता हैं। अनन्तर उन तीन कुशाओंको तर्जनी तथा अँगूठेसे पकड़कर ईशानकोणसे लेकर दक्षिण होते हुए ईशानकोणतक वलयाकृतिमें घुमाये तथा उनसे भूमिका मार्जन करे। यही परिसमूहन-क्रिया है। 'मा नस्तोके' (यजु० १६। १६) इस मन्त्रके द्वारा गोमयसे भूमिका उपलेपन करे। तदनन्तर (खैरकी लकड़ीसे बने स्पयके द्वारा) रेखाकरण करे। पूरबसे पश्चिमकी ओर तीन रेखाएँ खींचे। पहली रेखा दक्षिणकी ओर अनन्तर उत्तरकी ओर बढ़े। इसके विपरीत करनेपर अमङ्गल होता है। इसके बाद अङ्गुष्ठ तथा अनामिकासे उन तीनों रेखाओंसे मिट्टी निकाले, इसे उद्धरण कहा जाता है। इस समय 'मित्रावरुणाभ्यां' (यजु० ७। २३) इत्यादि मन्त्रोंका स्मरण करे। अनन्तर कुशपुष्पोदक अथवा पञ्चगव्य या पञ्चरत्नोदक अथवा पञ्चपल्लवोंके जलसे अभ्युक्षण (अभिसिञ्चन) करे। अनन्तर

नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च । अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज ॥

ब्रह्मस्तवमिमं प्रोक्तं महादेवेन भापितम् । प्रयत्नाद् यः पठेत्रित्यमृतत्वं स गच्छति ॥

ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं हृत्पद्मामध्ये स्वयमाव्यवस्थितम् ।

उपासकानां प्रभुमेकमीश्वरं ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥ (मध्यमपर्व २। १२। १५६—१६३)

कर्मसाधनभूत लौकिक स्मार्त अथवा श्रौताग्निका आनयन करे और अपने सामने स्थापित करे। इस क्रियामें 'मे गृह्णामि' इस मन्त्रका पाठ करे। 'क्रव्यादमग्निं' (यजु० ३५। १९) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए लायी गयी अग्निमेंसे कुछ आग दक्षिण दिशाकी ओर फेंक दे, यह 'क्रव्यादाग्नि' कही गयी है। क्रव्यादाग्निका ग्रहण न करे। 'संसरक्ष०' इस मन्त्रसे उस अग्निका आवाहन करे। तदनन्तर 'वैश्वानर०' (यजु० २६। ७) इस मन्त्रसे कुण्ड आदिमें अग्नि-स्थापन करे। 'बध्नासि०' इस मन्त्रसे अग्निकी प्रदक्षिणा करे तथा अग्निदेवको नमस्कार करे। अग्निके दक्षिणमें वरण किये गये ब्रह्माको कुशके आसनपर 'ब्रह्मन् इह उपविश्यताम्' कहकर बैठाये। उस समय 'ब्रह्म जज्ञानं' (यजु० १३। ३) तथा 'दोग्धी धेनुः०' इन दो मन्त्रोंका पाठ करे। अग्निके उत्तरभागमें प्रणीता-पात्रको स्थापित करे। 'इमं मे वरुण०' (यजु० २१। १) इस मन्त्रसे प्रणीता-पात्रको जलसे भर दे। इसके अनन्तर कुण्डके चारों ओर कुश-परिस्तरण करे और काष्ठ (समिधा), ब्रीहि, अन्न, तिल, अपूप, भृङ्गराज, फल, दही, दूध, पनस, नारिकेल, मोदक आदि यज्ञ-सम्बन्धी प्रयोज्य पदार्थोंको यथास्थान स्थापित करे। विकंकतवृक्षकी लकड़ीसे बनी सुवा तथा शमी, शमीपत्र, चरुस्थाली आदि भी स्थापित करे। प्रणीता-पात्रका स्पर्श होम-कालमें नहीं करना चाहिये। स्नान-कुम्भको यज्ञपर्यन्त स्थिर रखना चाहिये। प्रादेशमात्रके दो पवित्रक बनाकर प्रोक्षणी-पात्रमें स्थापित करे। प्रणीता-पात्रके जलसे प्रोक्षणी-पात्रमें तीन बार जल डाले। प्रोक्षणी-पात्रको बायें हाथमें रखकर मध्यमा तथा अङ्गुष्ठसे पवित्रक ग्रहण कर 'पवित्रं ते०' (ऋ० ९। ८३। १) इस मन्त्रसे तीन बार जल छिड़के, स्थापित पदार्थोंका प्रोक्षण करे और

प्रोक्षणी-पात्रको प्रणीता-पात्रके दक्षिण-भागमें यथास्थान रख दे। प्रादेशमात्रके अन्तरमें आज्यस्थाली रखे। धीको अग्निमें तपाये, धीमेंसे अपद्रव्योंका निरसन करे। इसके बाद पर्यग्निकरण करे। एक जलते हुए आगके अंगारेको लेकर आज्यस्थाली और चरुस्थालीके ऊपर भ्रमण कराये। इस समय 'कुलायिनी०' (यजु० १४। २) इस मन्त्रका पाठ करे। अनन्तर सुवाको दायें हाथमें ग्रहण कर अग्निपर तपाये। सम्मार्जन-कुशाओंसे सुवाको मूलसे अग्रभागकी ओर सम्मार्जित करे। इसके बाद प्रणीताके जलसे तीन बार प्रोक्षण करे। पुनः सुवाको आगपर तपाये और प्रोक्षणीके उत्तरकी ओर रख दे। आज्यपात्रको सामने रख ले। पवित्रीसे धीका तीन बार उत्प्लवन कर ले। पवित्रीसे ईशानसे आरम्भकर दक्षिणावर्त होते हुए ईशानपर्यन्त पर्युक्षण करे। अनन्तर अग्निदेवका इस प्रकार ध्यान करे—'अग्नि देवताका रक्त वर्ण है, उनके तीन मुख हैं, वे अपने बायें हाथमें कमण्डलु तथा दाहिने हाथमें सुवा ग्रहण किये हुए हैं।' ध्यानके अनन्तर सुवा लेकर हवन करे।

इस प्रकार स्वगृह्योक्त विधिके द्वारा ब्रह्मा तथा ऋत्विजोंका वरण करना चाहिये। कुशकण्डका-कर्म करके अग्निका पूजन करे। आधार, आज्यभाग, महाव्याहति, प्रायश्चित्त, प्राजापत्य तथा स्विष्टकृत् हवन करे। प्रजापति और इन्द्रके निमित्त दी गयी आहुतियाँ आधारसंज्ञक हैं। अग्नि और सोमके निमित्त दी जानेवाली आहुतियाँ आज्यभाग कहलाती हैं। 'भूर्भुवः स्वः'—ये तीन महाव्याहतियाँ हैं। 'अयाश्चाग्ने०' इत्यादि पाँच मन्त्र प्रायश्चित्त-संज्ञक हैं। एक प्राजापत्य आहुति तथा एक स्विष्टकृत् आहुति—इस प्रकार होममें चौदह आहुतियाँ नित्य-संज्ञक हैं। इस प्रकार चतुर्दश आहुत्यात्मक हवन कर कर्म-निमित्तक देवताको उद्देश्यकर प्रधान

हवन करना चाहिये । अग्निकी सात जिह्वाएँ कही गयी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) हिरण्य, (२) कनका, (३) रक्ता, (४) आरक्ता, (५) सुप्रभा,

(६) बहुरूपा तथा (७) सती । इन जिह्वा-देवियोंके ध्यान करनेसे सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है ।
(अध्याय १४—१६)

अधिवासनकर्म एवं यज्ञकर्ममें उपयोग्य उत्तम ब्राह्मण तथा धर्मदेवताका स्वरूप

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! देव-प्रतिष्ठाके पहले दिन देवताओंका अधिवासन करना चाहिये और विधिके अनुसार अधिवासनके पदार्थ—धान्य आदिकी प्रतिष्ठा कर यूप आदिको भी स्थापित कर लेना चाहिये । कलशके ऊपर गणेशजीकी स्थापना कर दिक्षाल और ग्रहोंका पूजन करना चाहिये । तड़ाग तथा उद्यानकी प्रतिष्ठामें प्रधानरूपसे ब्रह्माकी, शान्ति-यागमें तथा प्रपायागमें वरुणकी, शैव-प्रतिष्ठामें शिवकी और सोम, सूर्य तथा विष्णु एवं अन्य देवताओंका भी पाद्य-अर्घ्य आदिसे अर्चन करना चाहिये । 'द्वृपदादिक्व' (यजु० २०। २०) इस मन्त्रसे पहले प्रतिमाको स्नान कराये । स्नानके अनन्तर मन्त्रोद्घारा गन्ध, फूल, फल, दूर्वा, सिंदूर, चन्दन, सुगन्धित तैल, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, वस्त्र आदि उपचारोंसे पूजन करे । मण्डपके अंदर प्रधान देवताका आवाहन करे और उसीमें अधिवासन करे । सुरक्षा-कर्मियोंद्वारा उस स्थानकी सुरक्षा करवाये । तदनन्तर आचार्य, यजमान और ऋत्विक् मधुर पदार्थोंका भोजन करें । बिना अधिवासन-कर्म सम्पन्न किये देव प्रतिष्ठाका कोई फल नहीं होता । नित्य, नैमित्तिक, अथवा काम्य कर्मोंमें विधिके अनुसार कुण्ड-मण्डपकी रचना कर हवनकार्य करना चाहिये ।

ब्राह्मणो ! यज्ञकार्यमें अनुष्टानके प्रमाणसे आठ होता, आठ द्वारपाल और आठ याजक ब्राह्मण होने चाहिये । ये सभी ब्राह्मण शुद्ध, पवित्र तथा उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न वेदमन्त्रोंमें पारङ्गत होने चाहिये । एक जप करनेवाले जापकका भी वरण करना चाहिये । ब्राह्मणोंकी गन्ध, माल्य, वस्त्र तथा

दक्षिणा आदिके द्वारा विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये । उत्तम सर्वलक्षणसम्पन्न तथा विद्वान् ब्राह्मण न मिलनेपर किये गये यज्ञका उत्तम फल प्राप्त नहीं होता । ब्राह्मण वरणके समय गोत्र और नामका निर्देश करे । तुलापुरुषके दानमें, स्वर्णपर्वतके दानमें, वृषोत्सर्गमें एवं कन्यादानमें गोत्रके साथ प्रवरका भी उच्चारण करना चाहिये । मृत भार्यावाला, कृपण, शूद्रके घरमें निवास करनेवाला, बौना, वृषलीपति, बन्धुद्वेषी, गुरुद्वेषी, स्त्रीद्वेषी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, भग्नदन्त, दाम्भिक, प्रतिग्राही, कुनखी, व्यभिचारी, कुष्ठी, निद्रालु, व्यसनी, अदीक्षित, महाब्रणी, अपुत्र तथा केवल अपना ही भरण-पोषण करनेवाला—ये सब यज्ञके पात्र नहीं हैं । ब्राह्मणोंके वरण एवं पूजनके मन्त्रोंके भाव इस प्रकार हैं—आचार्यदेव ! आप ब्रह्मकी मूर्ति हैं । इस संसारसे मेरी रक्षा करें । गुरो ! आपके प्रसादसे ही यह यज्ञ करनेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है । चिरकालतक मेरी कीर्ति बनी रहे । आप मुझपर प्रसन्न होवें, जिससे मैं यह कार्य सिद्ध कर सकूँ । आप सब भूतोंके आदि हैं, संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाले हैं । ज्ञानरूपी अमृतके आप आचार्य हैं । आप यजुर्वेदस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । ऋत्विग्गणो ! आप षडङ्ग वेदोंके ज्ञाता हैं, आप हमारे लिये मोक्षप्रद हों । मण्डलमें प्रवेश करके उन ब्राह्मणोंको अपने-अपने स्थानोंपर क्रमशः आदरसे बैठाये । वेदीके पश्चिम भागमें आचार्यको बैठाये, कुण्डके अग्र-भागमें ब्रह्माको बैठाये । होता, द्वारपाल आदिको भी यथास्थान आसन दे । यजमान उन आचार्य आदिको सम्बोधित कर प्रार्थना करे कि

आप सब नारायणस्वरूप हैं। मेरे यज्ञको सफल बनायें। यजुर्वेदके तत्त्वार्थको जाननेवाले ब्रह्मरूप आचार्य! आपको प्रणाम है। आप सम्पूर्ण यज्ञकर्मके साक्षीभूत हैं। ऋषवेदार्थको जाननेवाले इन्द्ररूप ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। इस यज्ञकर्मकी सिद्धिके लिये ज्ञानरूपी मङ्गलमूर्ति भगवान् शिवको नमस्कार है। आप सभी दिशाओं-विदिशाओंसे इस यज्ञकी रक्षा करें। दिक्पालरूपी ब्राह्मणोंको नमस्कार है।

ब्रत, देवार्चन तथा यागादि कर्म संकल्पपूर्वक करने चाहिये। काम संकल्पमूलक और यज्ञ संकल्पसम्भूत हैं। संकल्पके बिना जो धर्माचरण करता है, वह कोई फल नहीं प्राप्त कर सकता।

गङ्गा, सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, रात्रि, दिन, सूर्य, सौम, यम, काल, पञ्च महाभूत—ये सब शुभाशुभ-कर्मके साक्षी हैं^१। अतएव विचारवान् मनुष्यको अशुभ कर्मोंसे विरत हो धर्मका आचरण करना चाहिये। धर्मदेव शुभ शरीरवाले एवं श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। वृषस्वरूप ये धर्मदेव अपने दोनों हाथोंमें वरद और अभय-मुद्रा धारण किये हैं। ये सभी प्राणियोंको सुख देते हैं और सज्जनोंके लिये एकमात्र मोक्षके कारण हैं। इस प्रकारके स्वरूपवाले भगवान् धर्मदेव सत्पुरुषोंके लिये कल्याणकारी हों तथा सदा सबकी रक्षा करें^२।

(अध्याय १७-१८)

प्रतिष्ठा-मुहूर्त एवं जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! ऋषियोंने देवता आदिकी प्रतिष्ठामें माघ, फाल्गुन आदि छः मास नियत किये हैं। जबतक भगवान् विष्णु शयन नहीं करते, तबतक प्रतिष्ठा आदि कार्य करने चाहिये। शुक्र, गुरु, बुध तथा सौम—ये चार वार शुभ हैं। जिस लग्नमें शुभ ग्रह स्थित हों एवं शुभ ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो, उस लग्नमें प्रतिष्ठा करनी चाहिये। तिथियोंमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा तिथियाँ उत्तम हैं। प्राण-प्रतिष्ठा एवं जलाशय आदि कार्य प्रशस्त शुभ मुहूर्तमें ही करने चाहिये। देवप्रतिष्ठा और बड़े यागोंमें सोलह हाथका एवं चार द्वारोंसे युक्त मण्डपका निर्माण करके उसके दिशा-विदिशाओंमें शुभ्र ध्वजाएँ फहरानी चाहिये। पाकड़, गूलर, पीपल तथा बरगदके तोरण चारों द्वारोंपर पूर्वादि क्रममें बनाये। मण्डपको मालाओं आदिसे अलंकृत करे। दिक्पालोंकी पताकाएँ

उनके वर्णोंके अनुसार बनवानी चाहिये। मध्यमें नीलवर्णकी पताका लगानी चाहिये। ध्वज-दण्ड यदि दस हाथका हो तो पताका पाँच हाथकी बनवानी चाहिये। मण्डपके द्वारोंपर कदली-स्तम्भ रखना चाहिये तथा मण्डपको सुसज्जित करना चाहिये। मण्डपके मध्यमें एवं कोणोंमें वेदियोंकी रचना करनी चाहिये। योनि और मेखलामण्डित कुण्डका तथा वेदीपर सर्वतोभद्र-चक्रका निर्माण करना चाहिये। कुण्डके ईशान-भागमें कलशकी स्थापना कर उसे माला आदिसे अलंकृत करना चाहिये।

यजमान पञ्चदेव एवं यज्ञेश्वर नारायणको नमस्कार कर प्रतिष्ठा आदि क्रियाका संकल्प करके ब्राह्मणोंसे इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करे—‘मैं इस पुण्य देशमें शास्त्रोक्त-विधिसे जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा करूँगा। आप सभी मुझे इसके लिये आज्ञा प्रदान करें।’ ऐसा कहकर मातृ-श्राद्ध एवं वृद्धि-श्राद्ध सम्पन्न

१-गङ्गा चादित्यचन्द्रौ च द्यौर्भूमि रात्रिवासरौ॥

सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥ (मध्यमर्पण २। १८। ४३-४४)

२-धर्मः शुभ्रवपुः सिताम्बधरः कार्योर्धर्वदेशे वृषो हस्ताभ्यामभयं वरं च सततं रूपं परं यो दधत्।

सर्वप्राणिसुखावहः कृतधियां मोक्षकहेतुः सदा सोऽयं पातु जगन्ति चैव सततं भूयात् सतां भूतये॥ (मध्यमर्पण २। १८। ४५)

करे। भेरी आदिके मङ्गलमय वाद्योंके साथ मण्डपमें षोडशाक्षर 'हरे राम हरे राम राम हरे हरे।' आदि मन्त्र लिखे एवं इन्द्रादि दिक्पाल देवताओं तथा उनके आयुधों आदिका भी यथास्थान चित्रण करे। फिर आचार्य और ब्रह्माका वरण करे। वरणके अनन्तर आचार्य तथा ब्रह्मा यजमानसे प्रसन्न हो उसके सर्वविध कल्याणकी कामना करके 'स्वस्ति' ऐसा कहे। अनन्तर सप्तलीक यजमानको सर्वोषधियोंसे 'आपो हि ष्टा०' (यजु० ११।५०) इस मन्त्रद्वारा ब्रह्मा, ऋत्विक् आदि स्नान करायें। यव, गोधूम, नीवार, तिल, साँवा, शालि, प्रियंगु और ब्रीहि—ये आठ सर्वोषधि कहे गये हैं। आचार्याद्वारा अनुज्ञात सप्तलीक यजमान शुक्ल वस्त्र तथा चन्दन आदि धारणकर पुरोहितको आगेकर मङ्गल-घोषके साथ पुत्र-पौत्रादिसहित पश्चिमद्वारसे यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करे। वहाँ वेदीकी प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे। ब्राह्मणकी आज्ञाके अनुसार यजमान निश्चित आसनपर बैठे। ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचन करें। अनन्तर यजमान पाँच देवोंका पूजन करे। फिर सरसों आदिसे विघ्रकर्ता भूतोंका अपसर्पण कराये। यजमान अपने बैठनेके आसनका पुष्ट-चन्दनसे अर्चन करे। अनन्तर भूमिका हाथसे स्पर्शकर इस प्रकार कहे—'पृथ्वीमाता! तुमने लोकोंको धारण किया है और तुम्हें विष्णुने धारण किया है। तुम मुझे धारण करो और मेरे आसनको पवित्र करो*'। फिर सूर्यको अर्घ्य देकर गुरुको हाथ जोड़कर प्रणाम करे। हृदयकमलमें इष्ट देवताका ध्यान कर तीन प्राणायाम करे। ईशान दिशामें कलशके ऊपर विघ्रराज गणेशजीकी गन्ध, पुष्ट, वस्त्र तथा विविध नैवेद्य आदिसे 'गणानां त्वा०' (यजु० २३। १९) मन्त्रसे पूजन करे। अनन्तर 'आ ब्रह्मन्०' (यजु० २२। २२) इस मन्त्रसे ब्रह्माजीकी, 'तद्विष्णोः०' (यजु० ६। ५) इस मन्त्रसे भगवान्०

विष्णुकी पूजा करे। फिर वेदीके चारों ओर सभी देवताओंको स्व-स्व स्थानपर स्थापित कर उनका पूजन करे। इसके बाद 'राजाधिराजाय प्रसहा०' इस मन्त्रसे भूशुद्धि कर श्वेत पद्मासनपर विराजमान, शुद्धस्फटिक तथा शङ्ख, कुन्द एवं इन्दुके समान उज्ज्वल वर्ण, किरीट-कुण्डलधारी, श्वेत कमल, श्वेत माला और श्वेत वस्त्रसे अलंकृत, श्वेत गन्धसे अनुलिप, हाथमें पाश लिये हुए, सिद्ध गन्धर्वों तथा देवताओंसे स्तूयमान, नागलोककी शोभारूप, मकर, ग्राह, कूर्म आदि नाना जलचरोंसे आवृत, जलशायी भगवान् वरुणदेवका ध्यान करे। ध्यानके अनन्तर पञ्चाङ्गन्यास करे। अर्घस्थापन कर मूलमन्त्रका जप करे तथा उस जलसे आसन, यज्ञ-सामग्री आदिका प्रोक्षण करे। फिर भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे। अनन्तर ईशानकोणमें भगवान् गणेश, अग्निकोणमें गुरुपादुका तथा अन्य देवताओंका यथाक्रम पूजन करे। मण्डलके मध्यमें शक्ति, सागर, अनन्त, पृथ्वी, आधारशक्ति, कूर्म, सुमेरु तथा मन्दर और पञ्चतत्त्वोंका साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। पूर्व दिशामें कलशके ऊपर श्वेत अक्षत और पुष्ट लेकर भगवान् वरुणदेवका आवाहन करे। वरुणको आठ मुद्रा दिखाये। गायत्रीसे स्नान कराये तथा पाद्य, अर्घ्य, पुष्टाङ्गलि आदि उपचारोंसे वरुणका पूजन करे। ग्रहों, लोकपालों, दस दिक्पालों तथा पीठपर ब्रह्मा, शिव, गणेश और पृथ्वीका गन्ध, चन्दन आदिसे पूजन करे। पीठके ईशानादि कोणोंमें कमला, अम्बिका, विश्वर्कर्मा, सरस्वती तथा पूर्वादि द्वारोंमें उनचास मरुदण्डोंका पूजन करे। पीठके बाहर पिशाच, राक्षस, भूत, बेताल आदिकी पूजा करे। कलशपर सूर्यादि नवग्रहोंका आवाहन एवं ध्यानकर पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, अक्षत, पुष्ट, नैवेद्य तथा बलि आदिद्वारा मन्त्रपूर्वक उनकी पूजा करे और उनकी पताकाएँ उन्हें निवेदित करे।

* पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ॥

त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु। (मध्यमपर्व २। २०। २३-२४)

विधिपूर्वक सभी देवताओंका पूजन कर शतरुद्रियका पाठ करना चाहिये। हवन करनेके समय वारुणसूक्त, रात्रिसूक्त, रौद्रसूक्त, पवमानसूक्त, पुरुषसूक्त, शाक्तसूक्त, अग्निसूक्त, सौरसूक्त, ज्येष्ठसाम, वामदेवसाम, रथन्तरसाम तथा रक्षोघ्न आदि सूक्तोंका पाठ करना चाहिये। अपने गृह्योक्त-विधिसे कुण्डोंमें अग्नि प्रदीप कर हवन करना चाहिये। जिस देवका यज्ञ होता है अथवा जिस देवताकी प्रतिष्ठा हो उसे प्रथम आहुतियाँ देनी चाहिये। अनन्तर तिल, आज्य, पायस, पत्र, पुष्प, अक्षत तथा समिधा आदिसे अन्य देवताओंके मन्त्रोंसे उन्हें आहुतियाँ देनी चाहिये।

पञ्चदिवसात्मक प्रतिष्ठायागमें प्रथम दिन देवताओंका आवाहन एवं स्थापन करना चाहिये। दूसरे दिन पूजन और हवन, तीसरे दिन बलि-प्रदान, चौथे दिन चतुर्थीकर्म और पाँचवें दिन नीराजन करना चाहिये। नित्यकर्म करनेके अनन्तर ही नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। इसीसे कर्मफलकी प्राप्ति होती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सर्वप्रथम प्रतिष्ठाप्य देवताका सर्वोषधिमिश्रित जलसे ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रोंके पाठपूर्वक महास्नान तथा मन्त्राभिषेक कराये, तदनन्तर चन्दन आदिसे उसे अनुलिप्त करे। तत्पश्चात् आचार्य आदिकी पूजा कर उन्हें अलंकृत कर गोदान करे। फिर मङ्गल-घोषपूर्वक तालाबमें जल छोड़नेके लिये संकल्प करे। इसके बाद उस तालाबके जलमें नागयुक्त वरुण, मकर, कच्छप आदिकी अलंकृत प्रतिमाएँ छोड़े। वरुणदेवकी विशेषरूपसे पूजा कर उन्हें अर्घ्य निवेदित करे। पुनः उसी तालाबके जल, सप्तमृत्तिका-मिश्रित जल, तीर्थजल, पञ्चामृत, कुशोदक तथा पुष्पजल आदिसे वरुणदेवको स्नान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान

करे। सभी देवताओंको बलि प्रदान करे। मङ्गलघोषके साथ नीराजन कर प्रदक्षिणा करे। एक वेदीपर भगवान् वरुण तथा पुष्करिणीदेवीकी यथाशक्ति स्वर्ण आदिकी प्रतिमा बनाकर भगवान् वरुणदेवके साथ देवी पुष्करिणीका विवाह कराकर उन्हें वरुणदेवके लिये निवेदित कर दे। एक काष्ठका यूप जो यजमानकी ऊँचाईके बराबर हो, उसे अलंकृत कर तड़ागके ईशान दिशामें मन्त्रपूर्वक गाड़कर स्थिर कर दे। प्रासादके ईशानकोणमें, प्रपाके दक्षिण भागमें तथा आवासके मध्यमें यूप गाड़ना चाहिये। इसके अनन्तर दिक्पालोंको बलि प्रदान करे। ब्राह्मणोंको भोजन एवं दक्षिणा प्रदान करे।

उस तड़ागके जलके मध्यमें 'जलमातृभ्यो नमः' ऐसा कहकर जलमातृकाओंका पूजन करे और मातृकाओंसे प्रार्थना करे कि मातृका देवियो! तीनों लोकोंके चराचर प्राणियोंकी संतुस्तिके लिये यह जल मेरे द्वारा छोड़ा गया है, यह जल संसारके लिये आनन्ददायक हो। इस जलाशयकी आपलोग रक्षा करें। ऐसी ही मङ्गल-प्रार्थना भगवान् वरुणदेवसे भी करे। अनन्तर वरुणदेवको बिम्ब, पद्म तथा नागमुद्राएँ दिखाये। ब्राह्मणोंको उस जलाशयका जल भी दक्षिणाके रूपमें प्रदान करे। अनन्तर तर्पण कर अग्निकी प्रार्थना करे। स्वयं भी उस जलका पान करे। पितरोंको अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर पुनः वरुणदेवकी प्रार्थना कर, जलाशयकी प्रदक्षिणा करे। फिर ब्राह्मणोंद्वारा वेद-ध्वनियोंके उच्चारणपूर्वक यजमान अपने घरमें प्रवेश करे और ब्राह्मणों, दीनों, अस्थों, कृपणों तथा कुमारिकाओंको भोजन कराकर संतुष्ट करे एवं भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे।

(अध्याय १९—२१)

॥ मध्यमपर्व, द्वितीय भाग सम्पूर्ण ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

मध्यमपर्व (तृतीय भाग)

उद्यान-प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! उद्यान आदिकी प्रतिष्ठामें जो कुछ विशेष विधि है, अब उसे बता रहा हूँ, आपलोग सुनें। सर्वप्रथम एक चौकोर मण्डलकी रचना कर उसपर अष्टदल कमल बनाये। मण्डलके ईशानकोणमें कलशकी स्थापना कर उसपर भगवान् गणनाथ और वरुणदेवकी पूजा करे। तदनन्तर मध्यम कलशमें सूर्यादि ग्रहोंका पूजन करे। फिर पश्चिमादि द्वारदेशोंमें ब्रह्मा और अनन्त तथा मध्यमें वरुणकी पूजा करे। जलपूरित कलशमें भगवान् वरुणका आवाहन करते हुए कहे—‘वरुणदेव ! मैं आपका आवाहन करता हूँ। विभो ! आप हमें स्वर्ग प्रदान करें।’ तदनन्तर पूर्वभागमें मन्दरगिरिकी स्थापना कर तोरणपर विष्वक्सेनकी पूजा करे और कर्णिका-देशमें भगवान् वासुदेवका पूजन करे। भगवान् वासुदेव शुद्ध स्फटिकके सदृश हैं। वे अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स-चिह्न और कौस्तुभमणि सुशोभित है तथा मस्तक सुन्दर मुकुटसे अलंकृत है। उनके दक्षिण भागमें भगवती कमला, वाम भागमें पुष्टिदेवी विराजमान हैं। सुर, असुर, सिद्ध, किन्नर, यक्ष आदि उनकी स्तुति करते हैं। ‘विष्णो रराट०’ (यजु० ५ । २१) इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। उनके साथमें संकर्षणादि-व्यूह और विमला आदि शक्तियोंकी धूप, दीप आदि उपचारोंसे अर्चना कर प्रार्थना करे। उनके सामने घीका दीप जलाये और गुग्गुलका धूप प्रदान कर घृतमिश्रित खीरका नैवेद्य लगाये। कर्णिकाके दक्षिणकी ओर कमलके

ऊपर स्थित सोमका ध्यान करे। उनका वर्ण शुक्ल है, वे शान्तस्वरूप हैं, वे अपने हाथोंमें वरद और अभय-मुद्रा धारण किये हैं एवं केयूरादि धारण करनेके कारण अत्यन्त शोभित हैं। ‘इमं देवा०’ (यजु० ९ । ४०) इस मन्त्रसे इनकी पूजा कर इन्हें घृतमिश्रित भातका नैवेद्य अर्पण करे। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, जयन्त, आकाश, वरुण, अग्नि, ईशान, तत्पुरुष तथा वायुकी पूजा करे। कर्णिकाके वाम भागमें शुक्ल वर्णवाले महादेवका ‘त्र्यम्बकं०’ (यजु० ३ । ६०) इस मन्त्रसे पूजन कर नैवेद्य आदि प्रदान करे। भगवान् वासुदेवके लिये हविष्यसे आठ, सोमके लिये अद्वाईस तथा शिवके लिये दो खीरकी आहुतियाँ दे। गणेशजीको घीकी एक आहुति दे। ब्रह्मा एवं वरुणके लिये एक-एक आहुति और ग्रहों एवं दिक्पालोंके लिये विहित समिधाओं तथा घीसे एक-एक आहुतियाँ दे।

अग्निकी सात जिह्वाओं—कराली, धूमली, श्वेता, लोहिता, स्वर्णप्रभा, अतिरिक्ता और पद्मारागाको भी मन्त्रोंसे घृत एवं मधुमिश्रित हविष्यद्वारा एक-एक आहुति प्रदान करे। इसी प्रकार अग्नि, सोम, इन्द्र, पृथ्वी और अन्तरिक्षके निमित्त मधु और क्षीरयुक्त यवोंसे एक-एक आहुतियाँ प्रदान करे। फिर गन्ध-पुष्पादिसे उनकी पृथक्-पृथक् पूजा करके रुद्रसूक्त तथा सौरसूक्तका जप करे। अनन्तर यूपको भलीभाँति स्नान कराकर और उसका मार्जन कर उसे उद्यानके मध्य भागमें गढ़ दे। यूपके प्रान्त-भागमें सोम तथा वनस्पतिके लिये ध्वजाओंको लगा दे। ‘कोऽदात्कस्मा०’ (यजु० ७ । ४८) इस

मन्त्रसे वृक्षोंका कर्णवेध संस्कार करे। एक तीखी सूझसे वृक्षके दक्षिण तथा वाम भागके दो पत्तोंका छेदन करे। नवग्रहोंकी तृसिके लिये लड्डु आदिका भोग लगाये तथा बालक और कुमारियोंको मालपूआ खिलाये। रंजित सूत्रोंसे उद्यानके वृक्षोंको आवेषित करे। उन वृक्षोंको जलादिका प्राशन कराये और यह प्रार्थना-मन्त्र पढ़े—

वृक्षाग्रात् पतितस्यापि आरोहात् पतितस्य च।
मरणे वास्ति भङ्गे वा कर्ता पापैर्न लिप्यते ॥

(मध्यमपर्व ३।१।३१)

तात्पर्य यह कि विधिपूर्वक उद्यान आदिमें लगाये गये वृक्षके ऊपरसे यदि कोई गिर जाय, गिरकर मर जाय या अस्थि टूट जाय तो उस पापका भागी वृक्ष लगानेवाला नहीं होता।

उद्यानके निमित्त पूजा आदि कर्म करनेवाले आचार्यको स्वर्ण, धान, गाय तथा दक्षिणा प्रदान कर उनकी प्रदक्षिणा करे। ऋत्विक्‌को भी स्वर्ण, रजत आदि दक्षिणामें दे। ब्रह्माको भी दक्षिणा देकर संतुष्ट करे एवं अन्य सदस्योंको भी प्रसन्न करे। अनन्तर यजमान स्थापित अधिकलशके जलसे स्नान करे। सूर्यास्तसे पूर्व ही पूर्णाहुति सम्पन्न करे। सम्पूर्ण कार्य पूर्णकर अपने घर जाय और विप्रोंके द्वारा वहाँ बल, काम, हयग्रीव, माधव, पुरुषोत्तम, वासुदेव, धनाध्यक्ष और नारायण—इन सबका विधिवत् स्मरण कर पूजन कराये और पञ्चगव्यमिश्रित दधि-भातका नैवेद्य समर्पित करे।

बल आदि देवताओंकी पूजा करनेके पश्चात् दक्षिणकी ओर 'स्योना पृथिवी' (यजु० ३५। २१) इस मन्त्रसे पृथ्वीदेवीका पूजन करे। मधुमिश्रित पायसानका नैवेद्य अर्पित करे। पृथ्वीदेवी शुद्ध

काञ्चन वर्णकी आभासे युक्त हैं। हाथमें वरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं। सम्पूर्ण अलंकारोंसे अलंकृत हैं। घरके वाम भागमें विश्वकर्माका यजन करे। 'विश्वकर्मन्०' (ऋ० १०। ८१। ६) यह मन्त्र उनके पूजनमें विनियुक्त है। भगवान् विश्वकर्माका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान है, ये शूल और टंकको धारण करनेवाले हैं तथा शान्तस्वरूप हैं। इन्हें मधु और पिण्ठकी बलि दे। अनन्तर कौम्बाण्डसूक्त तथा पुरुषसूक्तका पाठ करे। इसी पृथ्वी-होम-कर्ममें मधु और पायस-युक्त हविष्यसे आठ आहुतियाँ दे तथा अन्य देवताओंको एक-एक आहुति दे।

उद्यानके चारों ओर अथवा बीच-बीचमें उद्यानकी रक्षाके लिये मेड़ोंका निर्माण करे, जिन्हें धर्मसेतु कहा जाता है। उद्यानकी दृढ़ताके लिये विशेष प्रबन्ध करे। धर्मसेतुका निर्माण कर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

पिच्छिले पतितानां च उच्छ्रेतेनाङ्गसंगतः ॥
प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम् ।
ये चात्र प्राणिनः सन्ति रक्षां कुर्वन्ति सेतवः ।
वेदागमेन यत्पुण्यं यथैव हि समर्पितम् ॥

(मध्यमपर्व ३।१।४४—४६)

तात्पर्य यह कि यदि कोई व्यक्ति इस धर्मसेतु (मेड़)-पर चलते समय गिर जाय, फिसल जाय तो इस धर्मसेतुके निर्माणका कोई पाप मुझे न लगे। क्योंकि इस धर्मसेतुका निर्माण मैंने धर्मकी अभिवृद्धिके लिये ही किया है। इस स्थानपर आनेवाले प्राणियोंकी ये धर्मसेतु रक्षा करते हैं। वेदाध्ययन आदिसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य इस धर्म-सेतुके निर्माण करनेपर प्राप्त होता है। (अध्याय १)

गोचर-भूमि के उत्सर्ग तथा लघु उद्यानोंकी प्रतिष्ठा-विधि

[भारतमें पहले सभी ग्राम-नगरोंकी सभी दिशाओंमें कुछ दूरतक गोचर-भूमि रहती थी। उसमें गये स्वच्छन्द-रूपसे चरती थीं और वह भूमि सर्वसामान्यके भी घूमने-फिरनेके उपयोगमें आती थी। छोटे-छोटे बालक भी उसमें क्रीड़ा करते थे। यह प्रथा अभी कुछ दिनों पहलेतक थी, पर अब वह सर्वथा लुप्त हो गयी है, इससे गो-धनकी बड़ी हानि हुई है। जिसका फल प्रकृति अनावृष्टि, भीषण महर्घता (महँगी), दुष्कालकी स्थिति, भूकम्प, महायुद्ध और सर्वत्र निर्दोष लोगोंकी हत्याके रूपमें परोक्ष तथा प्रत्यक्ष-रूपसे दे रही है। इसकी निवृत्तिका एकमात्र समाधान है प्राचीन पुराणोक्त सदाचार, गो-सेवा और आस्तिकतापूर्ण आध्यात्मिक दृष्टिका पुनः अनुसंधान और अनुसरण करना। भला, आजकी दशासे, जहाँ किसीको भी किसी भी स्थितिमें तनिक भी शान्ति नहीं है, इससे अधिक और चिन्ताकी बात क्या हो सकती है। इस दृष्टिसे यह अध्याय विशेष महत्वका है और सभी पाठकोंको अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने ग्राम-नगरोंके चतुर्दिक् गोचरका या गो-प्रचार-भूमिका उत्सर्ग कर गो-संरक्षणमें हाथ बँटाना चाहिये।—सम्पादक]

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं गोचर-भूमि के विषयमें बता रहा हूँ, आप सुनें। गोचर-भूमि के उत्सर्ग-कर्ममें सर्वप्रथम लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुकी विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। इसी तरह ब्रह्मा, रुद्र, करालिका, वराह, सोम, सूर्य और महादेवजीका क्रमशः विविध उपचारोंसे पूजन करे। हवन-कर्ममें लक्ष्मीनारायणको तीन-तीन आहुतियाँ धीसे दे। क्षेत्रपालोंको मधुमिश्रित एक-एक लाजाहुति दे। गोचरभूमिका उत्सर्ग करके विधानके अनुसार यूपकी स्थापना करे तथा उसकी अर्चना करे। वह यूप तीन हाथका ऊँचा और नागफणोंसे युक्त होना चाहिये। उसे एक हाथसे भूमि के मध्यमें गाड़ना चाहिये। अनन्तर 'विश्वेषां' (ऋ० १०। २। ६) इस मन्त्रका उच्चारण करे और 'नागाधिपतये नमः', 'अच्युताय नमः' तथा 'भौमाय नमः' कहकर यूपके लिये लाजा निवेदित करे। 'मयि गृह्णाम्य' (यजु० १३। १) इस मन्त्रसे रुद्रमूर्तिस्वरूप उस यूपकी पञ्चोपचार-पूजा करे। आचार्यको अन्न, वस्त्र और दक्षिणा दे तथा होता एवं अन्य ऋत्विजोंको भी अभीष्ट दक्षिणा दे। इसके बाद उस गोचरभूमिमें रत्न छोड़कर इस मन्त्रको पढ़ते हुए गोचरभूमिका उत्सर्ग कर दे—

शिवलोकस्तथा गावः सर्वदेवसुपूजिताः ॥
गोभ्य एषा मया भूमिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना ।

(मध्यमपर्व ३। २। १२-१३)

'शिवलोकस्वरूप यह गोचरभूमि, गोलोक तथा गौएँ सभी देवताओंद्वारा पूजित हैं, इसलिये कल्याणकी कामनासे मैंने यह भूमि गौओंके लिये प्रदान कर दी है।'

इस प्रकार जो समाहित-चित्त होकर गौओंके लिये गोचरभूमि समर्पित करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। गोचरभूमिमें जितनी संख्यामें तृण, गुल्म उगते हैं, उतने हजारों वर्षतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। गोचरभूमिकी सीमा भी निश्चित करनी चाहिये। उस भूमिकी रक्षाके लिये पूर्वमें वृक्षोंका रोपण करे। दक्षिणमें सेतु (मेड़) बनाये। पश्चिममें कँटीले वृक्ष लगाये और उत्तरमें कूपका निर्माण करे। ऐसा करनेसे कोई भी गोचरभूमिकी सीमाका लङ्घन नहीं कर सकेगा। उस भूमिको जलधारा और घाससे परिपूर्ण करे। नगर या ग्रामके दक्षिण दिशामें गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। जो व्यक्ति किसी अन्य प्रयोजनसे गोचरभूमिको जोतता, खोदता या नष्ट करता है, वह अपने कुलोंको पातकी बनाता है और अनेक ब्रह्म-हत्याओंसे आक्रान्त हो जाता है।

जो भलीभाँति दक्षिणाके साथ गोचर्म-भूमिका* दान करता है, वह उस भूमिमें जितने तृण हैं, उतने समयतक स्वर्ग और विष्णुलोकसे च्युत नहीं होता। गोचरभूमि छोड़नेके बाद ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे। वृषोत्सर्गमें जो भूमि-दान करता है, वह प्रेतयोनिको प्राप नहीं होता। गोचर-भूमिके उत्सर्गके समय जो मण्डप बनाया जाता है, उसमें भगवान् वासुदेव और सूर्यका पूजन तथा तिल, गुड़की आठ-आठ आहुतियोंसे हवन करना चाहिये। 'देहि मे' (यजु० ३।५०) इस मन्त्रसे मण्डपके ऊपर चार शुक्ल घट स्थापित करे। अनन्तर सौर-सूक्त और वैष्णव-सूक्तका पाठ करे। आठ वटपत्रोंपर आठ दिक्पाल देवताओंके चित्र या प्रतिमा बनाकर उन्हें पूर्वादि आठ दिशाओंमें स्थापित करे और पूर्वादि दिशाओंके अधिपतियों—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्वृति आदिसे गोचरभूमिकी रक्षाके लिये प्रार्थना करे। प्रार्थनाके बाद चारों वर्णोंकी, मृग एवं पक्षियोंकी अवस्थितिके लिये विशेषरूपसे भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नताके लिये गोचरभूमिका उत्सर्जन करना चाहिये। गोचरभूमिके नष्ट-भ्रष्ट हो जानेपर, घासके जीर्ण हो जानेपर तथा पुनः घास उगानेके लिये पूर्ववत् प्रतिष्ठा करनी चाहिये, जिससे गोचरभूमि अक्षय बनी रहे। प्रतिष्ठाकार्यके निमित्त भूमिके खोदने आदिमें कोई जीव-जन्तु मर जाय तो उससे मुझे पाप न लगे, प्रत्युत धर्म ही हो और इस गोचरभूमिमें निवास करनेवाले मनुष्यों, पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओंका आपके अनुग्रहसे निरन्तर कल्याण हो ऐसी भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। अनन्तर

गोचरभूमिको त्रिगुणित पवित्र धागेद्वारा सात बार आवेष्टित कर दे। आवेष्टनके समय 'सुत्रामाणं पृथिवीं' (ऋ० १०। ६३। १०) इस ऋचाका पाठ करे। अनन्तर आचार्यको दक्षिणा दे। मण्डपमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये। दीन, अन्ध एवं कृपणोंको संतुष्ट करे। इसके बाद मङ्गल-ध्वनिके साथ अपने घरमें प्रवेश करे। इसी प्रकार तालाब, कुआँ, कूप आदिकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये, विशेषरूपसे उसमें वरुणदेवकी और नागोंकी पूजा करनी चाहिये।

ब्राह्मणो! अब मैं छोटे एवं साधारण उद्यानोंकी प्रतिष्ठाके विषयमें बता रहा हूँ। इसमें मण्डल नहीं बनाना चाहिये। बल्कि शुभ स्थानमें दो हाथके स्थण्डलपर कलश स्थापित करना चाहिये। उसपर भगवान् विष्णु और सोमकी अर्चना करनी चाहिये। केवल आचार्यका वरण करे। सूर्यसे वृक्षोंको आवेष्टित कर पुष्प-मालाओंसे अलंकृत करे। अनन्तर जलधारासे वृक्षोंको सींचे। पाँच ब्राह्मणोंको भोजन कराये। वृक्षोंका कर्णवेध संस्कार करे और संकल्पपूर्वक उनका उत्सर्जन कर दे। मध्य देशमें यूप स्थापित करे और दिशा-विदिशाओं तथा मध्य देशमें कदली-वृक्षका रोपण करे एवं विधानपूर्वक धीसे होम करे। फिर स्विष्टकृत् हवन कर पूर्णाहुति दे। वृक्षके मूलमें धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्पाल और यक्षकी पूजा करे तथा आचार्यको संतुष्ट करे। दक्षिणामें गाय दे। सब कार्य विधानके अनुसार परिपूर्ण कर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे।

(अध्याय २-३)

* गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितः। तदगोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाधनाशनम् ॥

जिस गोचरभूमिमें सौ गायें और एक बैल स्वतन्त्र रूपसे विचरण करते हों, वह भूमि गोचर्म-भूमि कहलाती है। ऐसी भूमिका दान करनेसे सभी पापोंका नाश होता है। अन्य वृहस्पति, वृद्धहारीत, शातातप आदि स्मृतियोंके मतसे प्रायः ३,००० हाथ लम्बी-चौड़ी भूमिकी संज्ञा गोचर्म है।

अश्वत्थ, पुष्करिणी तथा जलाशयके प्रतिष्ठाकी विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! अश्वत्थ-वृक्षकी प्रतिष्ठा करनी हो तो उसकी जड़के पास दो हाथ लम्बी-चौड़ी एक वेदीका निर्माण कर चन्दन आदिसे प्रोक्षित करे । उसपर कमलकी रचना कर अर्घ्य प्रदान करे । प्रथम दिनकी रात्रिमें ‘तद्विष्णोः०’ (यजु० ६।५) इस मन्त्रद्वारा कलश-स्थापन कर गन्ध, चन्दन, दूर्वा तथा अक्षत समर्पण करे । चन्दन-लिस श्वेत सूत्रोंसे कलशोंको आवेष्टित करे । प्रथम कलशके ऊपर गणेशजीका, दूसरे कलशपर ब्रह्माजीका पूजन करे । दिशाओंमें दिक्पाल और वृक्षके मूलमें नवग्रहोंका पूजन-अर्चन करे । वृक्षके मूलमें विष्णु, मध्यमें शंकर तथा आगे ब्रह्माकी पूजा कर हवन करे । पिष्टकान्त-बलि दे । आचार्यको दक्षिणा देकर वृक्षको जलधारासे सींचे, उसकी प्रदक्षिणा करे और भगवान् सूर्यको अर्घ्य निवेदित कर घर आ जाय ।

बावली आदिकी प्रतिष्ठामें प्रथम भूतशुद्धि करके सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे । तदनन्तर गणेश, गुरुपादुका, जय और भद्रका समाहित होकर पूजन करे । मण्डलके मध्यमें आधार-शक्ति, अनन्त तथा कूर्मकी पूजा करे । चन्द्र, सूर्य आदिका भी मण्डलमें पूजन करे । दूसरे पात्रमें पुष्पादि उपचारोंसे भगवान् वरुणका पूजन करे । कमलके पूर्वादि पत्रोंमें इन्द्रादि दिक्पालोंकी, उनके आयुधोंकी तथा मध्यमें ब्रह्माकी पूजा करे । ‘भूर्भुवः स्वः’ इन तत्त्वोंकी भी पूजा करे । मण्डलके उत्तर भागमें नागरूप अनन्तकी पूजा करे । इसके बाद हवन करे । प्रथम आहुति वरुणदेवको दे फिर दिक्पालों, नारायण, शिव, दुर्गा, गणेश, ग्रहों और ब्रह्माको प्रदान करे । स्विष्टकृत् हवन करके बलि प्रदान करे । एक अष्टदल कमलके ऊपर वरुणकी रजत-प्रतिमा स्थापित करे और पुष्करिणी (बावली)-

की प्रतिमा स्वर्णकी बनाये तथा उसका पूजनकर जलाशयमें छोड़ दे । जलाशयके मध्यमें नैका आरोपित करे । जलाशयके बीचमें ऋत्विक् होम करे । शेषनागकी मूर्ति भी जलाशयमें छोड़ दे । सम्पूर्ण कार्योंको सम्पन्न कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे । जलाशयमें मकर, ग्राह, मीन, कूर्म एवं अन्य जलचर प्राणी तथा कमल, शैवाल आदि भी छोड़े । अनन्तर जलाशयकी प्रदक्षिणा करे । लावा और सीपी भी छोड़े । दूधकी धारा भी दे । पुष्करिणीको चारों ओरसे रक्तसूत्रसे आवेष्टित करे । दीनोंको संतुष्ट कर घरमें प्रवेश करे ।

ब्राह्मणो ! अब मैं नलिनी (जिस तालाबमें कमल हो,) वापी तथा हृद (गहरे जलाशय)-की प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि बतला रहा हूँ । इन सबकी प्रतिष्ठा करनेके पहले दिन भगवान् वरुणदेवकी सुवर्ण-प्रतिमा बनाकर ‘आपो हि ष्टा०’ (यजु० ११।५०) इस मन्त्रसे उसका जलाधिवास करे, अनन्तर एक सौ कमल-पुष्पोंसे प्रतिमाका पुष्पाधिवास करे । तत्पश्चात् मण्डलमें आकर पूर्वमुख बैठे और कलशपर गणेश, वरुण, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्यकी पूजा करे । वरुणके लिये धी और पायसकी आहुति दे । अन्य देवताओंको स्तुवाद्वारा एक-एक आहुति प्रदान कर पायस-बलि दे । फिर नलिनी-वापी आदिका संकल्पपूर्वक उत्सर्जन कर दे । मध्यमें यूपकी स्थापना करे । तदनन्तर गोदान दे और दक्षिणा प्रदान करे । पूर्णाहुतिके अनन्तर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे और अपने घरमें प्रवेश करे ।

द्विजो ! अब मैं वृक्षोंके प्रतिष्ठा-विधानका वर्णन करता हूँ । वृक्षकी स्थापना कर सूत्रसे परिवेष्टिकरे, फिर उसके पश्चिम भागमें कलश-स्थापना

करे। कलशमें ब्रह्मा, सोम, विष्णु और वनस्पतिका पूजन करे। अनन्तर तिल और यवसे आठ-आठ आहुतियाँ दे। कदली-वृक्ष तथा यूपका उत्सर्जन करे, फिर लगाये गये वृक्षके मूलमें धर्म, पृथ्वी,

दिशा, दिव्यपाल एवं यक्षकी पूजा करे तथा आचार्यको संतुष्ट करे। आचार्यको गोदान दे, दक्षिणा प्रदान करे। वृक्ष-पूजनके बाद भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। (अध्याय ४-८)

वट, बिल्व तथा पूगीफल आदि वृक्ष-युक्त उद्यानकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! वट-वृक्षकी प्रतिष्ठामें वृक्षके दक्षिण दिशामें उसकी जड़के पास तीन हाथकी एक वेदी बनाये और उसपर तीन कलश स्थापित करे। उन कलशोंपर क्रमशः गणेश, शिव तथा विष्णुकी पूजा कर चरुसे होम करे। वट-वृक्षको त्रिगुणित रक्त सूत्रोंसे आवेष्टित करे। बलिमें यव-क्षीर प्रदान करे और यूपस्तम्भ आरोपित करे। वट-वृक्षके मूलमें यक्ष, नाग, गन्धर्व, सिद्ध और मरुदगणोंकी पूजा करे। इस प्रकार सम्पूर्ण क्रियाएँ विधिके अनुसार पूर्ण करे।

बिल्व-वृक्षकी प्रतिष्ठामें पहले दिन वृक्षका अधिवासन करे। त्र्यम्बकं०' (यजु० ३। ६०) इस मन्त्रसे वृक्षको पवित्र स्थानपर स्थापित कर 'सुनावमा०' (यजु० २१। ७) इस मन्त्रसे गन्धोदक्षिणा उसे स्नान कराये। 'मे गृह्णामि०' इस मन्त्रसे वृक्षपर अक्षत चढ़ाये। 'कथा नश्चित्र०' (यजु० २७। ३९) इस मन्त्रसे धूप, वस्त्र तथा माला चढ़ाये। तदनन्तर रुद्र, विष्णु, दुर्गा और धनेश्वर—कुबेरका पूजन करे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शास्त्रानुसार नित्यक्रियासे निवृत्त होकर घरमें सात ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। फिर बिल्वके मूलप्रदेशमें

दो हाथकी वर्तुलाकार वेदीका निर्माण करे। उसको गेरु तथा सुन्दर पुष्प-चूर्णादिसे रञ्जित कर उसपर अष्टदल-कमलकी रचना करे। वृक्षको लाल सूत्रसे पाँच, सात या नौ बार वेष्टित करे। वृक्ष-मूलमें उत्तराभिमुख होकर ब्रीहि रोपे तथा शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, शेष, अनन्त, इन्द्र, वनपाल, सोम, सूर्य तथा पृथ्वी—इनका क्रमशः पूजन करे। तिल और अक्षतसे हवन करे तथा घी एवं भातका नैवेद्य दे। यक्षोंके लिये उड़द और भातका भोग लगाये। ग्रहोंकी तुष्टिके लिये बाँसके पात्रपर नैवेद्य दे। बिल्व-वृक्षको दक्षिण दिशासे दूधकी धारा प्रदान करे। यूपका आरोपण करे, वृक्षका कर्णवेध-संस्कार करे और भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे।

यदि सौ हाथकी लम्बाई-चौड़ाईका उद्यान हो, जिसमें सुपारी या आम्र आदिके फलदायक वृक्ष लगे हों तो ऐसे उद्यानकी प्रतिष्ठामें वास्तुमण्डलकी रचना कर वास्तु आदि देवताओंका पूजन करके यजन-कर्म करे। विशेषरूपसे विष्णु एवं प्रजापति आदि देवताओंका पूजन करे। हवनके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। (अध्याय ९-११)

मण्डप, महायूप और पौंसले आदिकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—द्विजगणो ! अब मैं यागादिके निर्मित निर्मित होनेवाले मण्डपोंकी प्रतिष्ठा-विधि बतलाता हूँ। वह मण्डप शिलामय हो या काष्ठमय अथवा तृण-पत्रादिसे निर्मित हो। ऐसी स्थितिमें अधिवासनके प्रारम्भमें शुभ-लग्न-मुहूर्तमें घट-स्थापन करे। उस कलशपर सूर्य, सोम और विष्णुकी अर्चना करे। ‘आपो हि ष्टा०’ (यजु० ११।५०) इस मन्त्रद्वारा कुशोदकसे तथा ‘आप्यायस्व०’ (यजु० १२।११४) इस मन्त्रद्वारा सुगन्ध-जलसे प्रोक्षण करे। ‘गन्धद्वारा०’ (श्रीसूक्त ९) इस ऋचासे चन्दन, सिन्दूर, आलता और अङ्गन समर्पण करे। फिर दूसरे दिन प्रातः वृद्धि-श्राद्ध करे। शुभ लक्षणवाले मण्डपमें दिक्षालोंकी स्थापना करे। मध्यमें वेदीके ऊपर मण्डल चित्रित करे। उसमें सूर्य, सोम, विष्णुकी तथा कलशपर गणेश, नवग्रह आदिकी पूजा करे। सूर्यके लिये १०८ बार पायस-होम करे। विष्णु और सोमका उद्देश्य कर बारह आहुतियाँ एवं पायस-बलि दे। वास्तु-देवताका पूजन करे और उनको अर्घ्य देकर विधिवत् आहुति प्रदान करे, फिर उस मण्डलको संकल्पपूर्वक योग्य ब्राह्मणके लिये समर्पित कर दे। उसे विधिवत् दक्षिणा दे और सूर्यके लिये अर्घ्य प्रदान करे। तृण-मण्डपमें विशेषरूपसे वासुदेवके साथ भगवान् सूर्यकी पूजा करे। एक घटके ऊपर वरदायक भगवान् गणेशजीकी पूजा कर विसर्जन करे। ईशानकोणमें यूप स्थापित कर सभी दिशाओंमें ध्वजा फहराये।

ब्राह्मणो ! अब मैं चार हाथसे लेकर सोलह हाथके प्रमाणमें निर्मित महायूपकी एवं पौंसला

तथा कुएँ आदिकी प्रतिष्ठा-विधि बतला रहा हूँ। इनकी प्रतिष्ठामें गर्ग-त्रिआत्र यज्ञ करना चाहिये। पौंसलेके पश्चिम भागमें श्वेत कुम्भपर भगवान् वरुणको स्थापित कर ‘गायत्री’ मन्त्र तथा ‘आपो हि ष्टा०’ (यजु० ११।५०) इन मन्त्रोंसे उन्हें स्नान कराना चाहिये। उसके बाद गन्ध, तेल, पुष्प और धूप आदिसे मन्त्रपूर्वक उनकी अर्चना कर उन्हें वस्त्र, नैवेद्य, दीप तथा चन्दन आदि निवेदित करना चाहिये। प्रतिष्ठाके अन्तमें श्राद्ध कर एक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराना चाहिये। आठ हाथका एक मण्डप बनाकर उसमें कलशकी स्थापना करे। उसपर नारायणके साथ वरुण, शिव, पृथ्वी आदिका तत्त्व भी उन्हें पूजन करे, उसके बाद स्थालीपाक-विधानसे हवनके लिये कुशकण्डका करे। भगवान् वरुणका पूजन कर स्तुवाद्वारा उन्हें ‘वरुणस्य०’ (यजु० ४।३६) इत्यादि मन्त्रोंसे दस आहुतियाँ प्रदान करे। अन्य देवताओंके लिये क्रमशः एक-एक आहुति दे। उसके बाद स्विष्टकृत् हवन करे और अग्निकी सप्तजिह्वाओंके नामसे चरुका हवन करे। तदनन्तर सभीको नैवेद्य और बलि प्रदान करे। इसके पश्चात् संकल्प-वाक्य पढ़कर कूपका उत्सर्जन कर दे। ब्राह्मणोंको पयस्त्विनी गाय एवं दक्षिणा प्रदान करे। यदि छोटे कूपकी प्रतिष्ठा करनी हो तो गणेश तथा वरुणदेवताकी कलशके ऊपर विधिवत् पूजा करनी चाहिये। लाल सूत्रसे कलशको वेष्टित करना चाहिये। यूप स्थापित करनेके पश्चात् संकल्पपूर्वक कूपका उत्सर्जन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको विधिवत् सम्मानपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिये। (अध्याय १२-१३)

पुष्पवाटिका तथा तुलसीकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! पुष्पवाटिकाकी प्रतिष्ठामें तीन हाथकी एक वेदीका निर्माण कर उसपर घटकी स्थापना करे । पुष्पाधिवाससे एक दिन पूर्व ब्राह्मण-भोजन कराये । कलशपर गणेश, सूर्य, सोम, अग्निदेव तथा नारायणका आवाहन कर पूजन करे । वेदीपर मधु तथा पायससे हवन करे । ईशानकोणमें विधिवत् यूपका समारोपण कर उसके मूलमें गुरुवारके दिन गेहूँओंका रोपण कर उन्हें संचे । वाटिकाको रक्त सूत्रसे आवेष्टित करे । वाटिकाके पुष्प-वृक्षोंका कर्णवेध कराकर उन्हें कुशोदकसे स्नान कराये और ब्राह्मणोंको धान्य, यव और गेहूँ दक्षिणारूपमें प्रदान करे और वाटिकाको जलधारासे संचे ।

तुलसीकी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें विधिपूर्वक करनी चाहिये । प्रतिष्ठाके लिये शुद्ध दिन अथवा एकादशी तिथि होनी चाहिये । रात्रिमें घटकी स्थापना कर विष्णु, शिव, सोम, ब्रह्मा तथा इन्द्रका पूजन करे । गायत्री-मन्त्र तथा पूर्वोक्त देवताओंके मन्त्रोद्वारा उन्हें स्नान कराये । 'कथा नश्तित्रः' (यजु० २७।३९) इस मन्त्रसे गन्ध, 'अःशुना०' (यजु० २०।२७) इस मन्त्रसे इत्र, 'त्वां गन्धर्वां०' (यजु० १२।९८) तथा 'मा नस्तोके०' (यजु० १६।१६) आदि मन्त्रोंसे पुष्प, 'श्रीश्वते०' (यजु० ३१।२२) तथा 'वैश्वदेवी०' (यजु० १९।४४) इन मन्त्रोंसे दूर्वा, 'रूपेण वो०' (यजु० ७।४५) इस मन्त्रसे दर्पण और 'याः फलिनीर्या०' (यजु० १२।८९) इस मन्त्रसे फल अर्पण करे तथा

'समिद्धो०' (यजु० २९।१) इस मन्त्रसे अज्ञन लगाये । तुलसीको पीले सूत्रसे आवेष्टित कर उसके चारों ओर दूध और जलकी धारा दे । कलश तथा तुलसीको वस्त्रसे भलीभाँति आच्छादित कर घर आ जाय । दूसरे दिन 'तद्विष्णोः०' (यजु० ६।५) इस मन्त्रसे सुहागिनी स्त्रियोंद्वारा मङ्गल-गानपूर्वक उसे स्नान कराये । मातृ-पूजापूर्वक वृद्धि-श्राद्ध करे । गन्ध आदि पदार्थोद्वारा आचार्य, होता और ब्रह्मा आदिका वरण करे । दस हाथके मण्डपमें गोलाकार वेदीका निर्माण करे और वहाँ भगवान् नारायणका पूजन करे । वेदीके मध्य ग्रह, लोकपाल, सूर्य और मरुदगणोंकी पूजा करे । कलशके चारों ओर रुद्र और वसुओंका पूजन करे । कुश-कण्डिका करके तिल-यवसे हवन करे । विष्णुको उद्दिष्ट कर १०८ आहुतियाँ दे । अन्य देवताओंको यथाशक्ति आहुति प्रदान करे । यूप स्थापित कर चरुकी बलि दे । चतुर्दिक् कदली-स्तम्भ स्थापित कर ध्वजाएँ फहराये । दक्षिणामें स्वर्ण, तिल-धान्य एवं पर्यस्वनी गाय प्रदान करे । तुलसीको क्षीरधारा दे ।

कुछ ऐसे भी वृक्ष हैं, जिनकी प्रतिष्ठा नहीं होती । जैसे—जयन्ती, सोमवृक्ष, सोमवट, पनस (कटहल), कदम्ब, निम्ब, कनकपाटला, शाल्मलि, निम्बक, बिम्ब, अशोक आदि । इनके अतिरिक्त भद्रक, शमीकोण, चंडातक, बक तथा खदिर आदि वृक्षोंकी प्रतिष्ठा तो करनी चाहिये, किंतु इनका कर्णवेध-संस्कार नहीं करना चाहिये ।

(अध्याय १४—१७)

एकाह-प्रतिष्ठा तथा काली आदि देवियोंकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो! कलियुगमें अल्प सामर्थ्यवान् व्यक्ति देवता आदिकी प्रतिष्ठा एक दिनमें भी कर सकता है। जिस दिन प्रतिष्ठा करनी हो उसी दिन विद्वान् ब्राह्मण घृताधिवास कराये। जब सूर्यभगवान् उत्तरायणके हों, तब प्रतिष्ठादि कार्य करने चाहिये। शरत्काल व्यतीत हो जानेपर वसन्त-ऋतुमें यज्ञका आरम्भ करना चाहिये। नारायण आदि मूर्तियोंके बत्तीस भेद हैं। गजानन आदि देवताओंकी प्रतिष्ठा विहित कालमें ही करनी चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर आध्युदयिक कर्म करे। अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। फिर यज्ञ-गृहमें प्रवेश करे। वहाँ प्रत्येक कुम्भके ऊपर भगवान् गणेश, नवग्रह तथा दिक्षालोंका विधिवत् पूजन करे। वेदीपर भगवान् विष्णु और उनके परिवारका पूजन करे। सर्वप्रथम भगवान् विष्णुको विभिन्न तीर्थ, समुद्र, नदियों आदिके जल, पञ्चमृत, पञ्चगव्य, सप्त-मृत्तिकामिश्रित जल, तिलके तेल, कषाय-द्रव्य और पुष्पोदकसे स्नान कराये। तुलसी, आम्र, शमी, कमल तथा करबीरके पत्र-पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। इसके बाद मूर्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न करे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक हवन करे। ब्राह्मणोंको दक्षिणाद्वारा संतुष्टकर पूर्णाहुति प्रदान करे।

ब्राह्मणो! अब मैं काली आदि महाशक्तियोंकी प्रतिष्ठा एवं अधिवासनकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ। प्रतिष्ठाके पूर्व दिन देवीकी प्रतिमाका अधिवासन कर आध्युदयिक श्राद्ध करे। सर्वप्रथम

भगवतीकी प्रतिमाको कमलयुक्त जलसे, फिर पञ्चगव्यसे स्नान कराये। कुम्भके ऊपर भगवती दुर्गाकी अर्चना करे। तदनन्तर मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा करे। बिल्व-पत्र और बिल्व-फलोंसे सौ आहुतियाँ दे। दक्षिणामें सुवर्ण प्रदान करे। भगवती कालिका और ताराकी प्रतिमाओंका अलग-अलग अर्चन करे। भगवतीको नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे तीन दिनतक स्नान कराये और नैवेद्य अर्पण करे। ताँबेके कलशपर तीन दिनतक प्रातःकालमें देवीकी अर्चना करे, फिर कन्याओंद्वारा सुगन्धित जलसे भगवतीको स्नान कराये। आठवें दिन भी रात्रिमें विशेष पूजन करे एवं पायस-होम करे।

आगमोंके अनुसार शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठामें तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराये और विशेषरूपसे भगवान्‌की प्रतिमाका अधिवासन करे। नित्य-क्रिया करके आध्युदयिक श्राद्ध करे। दूसरे दिन प्रातः आचार्यका वरण करे। विधिके अनुसार प्रतिमाको स्नान कराकर शिवलिङ्गका परिवारके साथ पूजन करे। विधिपूर्वक तिलमयी या स्वर्णमयी अथवा साक्षात् गौका दान करे। हवनकी समाप्तिपर शुद्ध घृतसे वसुधारा प्रदान करे। इसी तरह सूर्य, गणेश, ब्रह्मा आदि देवताओं तथा वाराही एवं त्रिपुरादेवी और भुवनेश्वरी, महामाया, अम्बिका, कामाक्षी, इन्द्राक्षी तथा अपराजिता आदि महाशक्तियोंकी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा भी विधिपूर्वक करनी चाहिये और रात्रि-जागरण कर महान् उत्सव करना चाहिये। देवीकी प्रतिष्ठामें कुमारी-पूजन भी करना चाहिये।

(अध्याय १८-१९)

दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्षजन्य उत्पात तथा उनकी शान्तिके उपाय^१

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं विविध प्रकारके अपशकुनों, उत्पातों एवं उनके फलोंका वर्णन कर रहा हूँ। आपलोग सावधान होकर सुनें। जिस व्यक्तिकी लग्न-कुण्डली अथवा गोचरमें पाप-ग्रहोंका योग हो तो उसकी शान्ति करानी चाहिये। दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम—ये तीन प्रकारके उत्पात होते हैं। ग्रह, नक्षत्र आदिसे जो अनिष्टकी आशंका होती है वह दिव्य उत्पात कहलाता है। उल्कापात, दिशाओंका दाह (मण्डलोंका उदय, सूर्य-चन्द्रके इर्द-गिर्द पड़नेवाले धेरेका दिखायी देना), आकाशमें गन्धर्वनगरका दर्शन, खण्डवृष्टि, अनावृष्टि या अतिवृष्टि आदि अन्तरिक्षजन्य उत्पात हैं। जलाशयों, वृक्षों, पर्वतों तथा पृथ्वीसे प्रकट होनेवाले भूकम्प आदि उत्पात भौम उत्पात कहलाते हैं। अन्तरिक्ष एवं दिव्य उत्पातोंका प्रभाव एक सप्ताहतक रहता है। इसकी शान्तिके लिये तत्काल उपाय करना चाहिये अन्यथा वे बहुत कालतक प्रभावी रहते हैं। देवताओंका हँसना, रुधिर-स्राव होना, अकस्मात् बिजली एवं वज्रका गिरना, हिंसा और निर्दयताका बढ़ना, सर्पोंका आरोहण करना—ये सब दैव दुर्निमित्त हैं। मेघसे उत्पन्न वृष्टि केवल शिलातलपर ही गिरे तो एक सप्ताहके अंदर उत्पन्न प्राणी नष्ट हो जाते हैं। एक राशिपर शनि, मंगल और सूर्य—ये पापग्रह स्थित हो जायें और पृथ्वी अकस्मात् धुएँसे ढकी दीखे तो भारी जनसंहारकी सम्भावना होती है। यदि बृहस्पति अपनी राशिका अतिचार^२ करे और शनि वहाँ स्थित न हो तो राज्य-नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। यदि सूर्य कुछ समयतक न दिखायी दे और दिशाओंमें दाह

होने लगे, धूमकेतु दिखायी दे और बार-बार भूकम्प होता हो तथा राजाके जन्म-दिनमें इन्द्रधनुष दिखायी पड़े तो वह उसके लिये भारी दुर्निमित्त है। भयंकर आँधी-तूफान आ जाय, ग्रहोंका आपसमें युद्ध दिखलायी दे, तीन महीनेमें ही दूसरा ग्रहण लग जाय अथवा उल्कापात हो, आकाश और भूमिपर मेढ़क दौड़ने लगें, हल्दीके समान पीली वृष्टि हो, पत्थरोंमें सिंह और बिल्लीकी आकृति दिखलायी पड़े तो राष्ट्रमें दुर्धिक्ष और राजाका विनाश होता है। चैत्रमें अथवा कुम्भके सूर्यमें (फाल्गुन मासमें) नदीका वेग अकस्मात् बहुत बढ़ जाय तो राष्ट्रमें विप्लव होता है। ये सब सूर्यजन्य अद्भुत उत्पात हैं। हवन आदिद्वारा इनकी शान्ति करानी चाहिये। 'आ कृष्णोन्' (यजु० ३३। ४३) इस सूर्यमन्त्रद्वारा हवन कराना चाहिये। धान्यादिका निस्सार हो जाना, गौओंका निस्तेज हो जाना, कुओंका जल सहसा सूख जाना—ये सब भी सूर्यजनित उत्पात हैं, इनकी शान्तिके लिये कमल-पुष्पोंसे एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिये। विकृत पक्षी, पाण्डुवर्ण कपोत, श्वेत उल्लू, काला कौआ और कराकुल पक्षी यदि घरमें गिरें तो उस घरमें महान् उत्पात मच जाता है। गलेकी मालाएँ आपसमें टकराने लगें, सद्यः उत्पन्न बालकको दाँत हो, देवताओंकी मूर्तियाँ हँसती हों, मूर्तियोंमें पसीना दीख पड़े और घड़ेमें अथवा घरमें सर्प और मण्डूकका प्रसव हो जाय तो उस घरकी गृहिणी छः मासके अंदर नष्ट हो जाती है। घरपर या वृक्षपर बिजली कड़कड़ाकर गिरने और आगकी ज्वालाएँ दिखायी देनेपर महान् उत्पात होता है। इन सबकी

१-इन उत्पातोंका तथा इनकी शान्तियोंका विस्तृत विधान आर्थर्वण शान्तिकल्प एवं अर्थर्वपरिशिष्टादिमें दिया गया है। मत्स्यपुराणके २२८ से २३८ तकके अध्यायोंमें भी यह विषय विवेचित है।

२-एक राशिका भोगकाल समाप्त हुए बिना तीव्रगतिसे आगे चला जाना। यह स्थिति केवल मंगलसे लेकर शनितकके ग्रहोंकी होती है।

शान्तिके लिये रविवारके दिन भगवान् सूर्यकी प्रसन्नता-हेतु उनकी पूजा करे। तिल एवं पायसकी दस हजार आहुतियाँ प्रदान करे। गो-दान करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। इससे शीघ्र शान्ति होती है। अचानक ध्वज, चामर, छत्र तथा सिंहासनसे विभूषित रथपर राजाका दिखलायी देना तथा स्त्री-पुरुषोंकी लड़ाई—ये भी महान् उत्पात हैं। पृथ्वीका काँपना, पहाड़ोंका टकराना, कोयल और उल्लूका रोना आदि सुनायी पड़े तो राजा, मन्त्री, राजपुत्र, हाथी आदि विनष्ट होते हैं।

ताड़ एवं सुपारीके वृक्ष एक साथ उत्पन्न हो जायें तो उस घरमें रहनेवालोंपर विपत्तिकी सम्भावना होती है। दूसरे वृक्षोंमें अन्य वृक्षोंके फूल-फल लगे हुए दीखें तो ये सोमग्रहजन्य उत्पात हैं। इसकी शान्तिके लिये सोमवारके दिन सोमके निमित्त दधि, मधु, घृत तथा पलाश आदिसे 'इमं देवा०' (यजु० ९। ४०) इस मन्त्रसे एक हजार आहुतियाँ दे और चरुसे भी हवन करे।

उड़द और जौकी ढेरियाँ सहसा लुप्त हो जायें, दही, दूध, घी और पक्कान्नोंमें रुधिर दिखलायी पड़े, एकाएक घरमें आग-जैसा लगना दिखायी दे, बिना बादलके ही बिजली चमकने लगे, घरके सभी पशु तथा मनुष्य रुग्ण-से दिखायी पड़ें तो मङ्गल ग्रहसे उत्पन्न उत्पात समझने चाहिये। इनसे राजा, अमात्य तथा घरके स्वामियोंका विनाश होता है। ऐसे भयंकर उपद्रवोंको देखकर मङ्गलकी शान्तिके लिये दही, मधु, घीसे युक्त खैर और गूलरकी समिधासे 'अग्निर्मूर्धा०' (यजु० ३। १२) इस मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणामें लाल वस्तुएँ देनी चाहिये तथा सोने या ताँबेकी मङ्गलकी प्रतिमा बनाकर दानमें देनी चाहिये। इससे शान्ति होती है।

गौएँ यदि घरमें पूँछ उठाकर स्वयं दौड़ने लगें और कुत्ते तथा सूअर घरपर चढ़ने लगें तो उस घरकी स्त्रियोंको भीषण क्लेशकी आशंका होती है। गृहस्वामीका पूर्णतः मिथ्यावादी होना तथा राजाका वाद-विवादमें फँसना, घरमें गौओंका चिल्लाना, पृथ्वीका हिलना, घरमें मेढ़क तथा साँपका जन्म लेना—ये सभी उत्पात बुधग्रहजन्य हैं। इसमें राज्य तथा घरके नष्ट होनेकी सम्भावना होती है। इन उत्पातोंकी शान्तिके लिये बुधवारके दिन बुधग्रहके उद्देश्यसे दही, मधु, घी तथा अपार्मार्गकी समिधा एवं चरुसे 'उद्बुद्ध्यस्व०' (यजु० १५। ५४) इस मन्त्रद्वारा दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। बुधकी सुवर्णकी प्रतिमा तथा पर्यस्विनी गाय ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये।

पशुओंका असमयमें समागम और उनसे यमल संततियोंकी उत्पत्ति, जौ, ब्रीहि आदिका सहसा लुप्त हो जाना, गृहस्तम्भका सहसा टूटना, आँगनमें बिल्ली तथा मेढ़कका नखोंसे जमीन कुरेदना और इनका घरपर चढ़ना, ये सभी दोष जहाँ दिखायी दें, वहाँ छः महीनेके भीतर ही घरका विनाश होता है—कोई प्राणी मर जाता है या कुटुम्बमें कलह होता है तथा अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। बिल्व-वृक्षपर गृध्र और गृध्रीका एक साथ दिखलायी देना राजाके लिये विभ्रमकारक तथा प्रासादके लिये हानिकारक होता है। इस दोषसे अमात्यवर्ग राजाके विपरीत हो जाता है। ये सभी बृहस्पतिजनित दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये बृहस्पतिके निमित्त शान्ति-होम करना चाहिये तथा पर्यस्विनी गाय एवं स्वर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमाका दान करना चाहिये।

राक्षसद्वारा घड़ेका जल पीनेका आभास होना; सिंह, शर्करा, तेल, चाँदी, ताण्डवनृत्य, उड़द-

भात, धान्य आदिका आभास होना; घरमें ताँबा, काँसा, लोहा, सीसा तथा पीतल आदिका रखा दिखायी देनेका आभास होना; ऐसे उत्पातपर धनके नाश होनेकी सम्भावना रहती है और अनेक व्याधियाँ होती हैं, राजा भयंकर उपद्रव तथा बन्धनमें पड़ जाता है। गौ, अश्व तथा सेवकोंका विनाश होता है। दन्तपंक्तिको छोड़कर दाँतोंके ऊपर दाँतोंका निकलना, शलाकाके समान दाँत निकलना—ये भी दोषकारक हैं। बर्तनोंमें, घड़ोंमें यदि बादलके गरजनेकी आवाज सुनायी दे तो गृहस्वामीपर विपत्तिकी सम्भावना होती है—ये शुक्रग्रहजनित दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये शुक्रवारके दिन दही, मधु, घृतयुक्त शमीपत्रसे हवन करे तथा दो सफेद वस्त्र, पयस्विनी श्वेत गौ और सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमाका दान करना चाहिये।

मन्दिरकी जमीन यदि रक्त वर्णकी अथवा पुष्पित दिखलायी दे तो वहाँ भी उत्पातकी सम्भावना होती है। आकाशमें जलती हुई आग दिखायी दे तो स्त्री-पुरुषोंकी हानि और राष्ट्रमें विप्लवकी सम्भावना होती है। सभी ओषधियाँ और सस्य रसविहीन हो जायें; हाथी, घोड़े, मतवाले होकर हिंसक हो जायें; राजाके लिये नगर तथा गाँवमें सभी शत्रु हो जायें; गौ, महिष आदि पशु अनायास उत्पात मचाने लगें; घरके दरवाजेमें गोह और शंखिनी प्रवेश करे तो अशुभ समझना चाहिये; इससे राज-पीड़ा और धन-हानि होती है। ये सभी उत्पात शनिग्रहजनित समझने चाहिये। इनकी शान्तिके लिये विविध सस्यों तथा समिधाओंसे शनिवारके दिन 'शं नो देवी०' (यजु० ३६। १२) इस मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये और चरुसे भी हवन करना चाहिये। नीली सवत्सा पयस्विनी गाय, दो वस्त्र, सोना, चाँदी, शनिकी

प्रतिमा आदि दक्षिणामें ब्राह्मणको देनी चाहिये।

बादलके गरजे बिना लाल-पीली शिलावृष्टिका दिखलायी देना, बिना हवाके वृक्षका हिलना-डुलना दिखलायी देना, इन्द्रध्वज तथा इन्द्रधनुषका गिरना, दिनमें सियारोंका तथा रात्रिमें उलूकका रोना, एक बैलका दूसरे बैलके ककुदपर मुँह रखकर रँभाना, ऐसे दोष होनेपर देशमें पापकी वृद्धि होती है तथा राजा राज्य एवं धर्मसे च्युत हो जाता है। गौ और ब्राह्मणमें परस्पर द्वन्द्व मच जाता है, वाहन नष्ट हो जाते हैं। यदि आकाशमें ध्वजकी छाया दिखलायी पड़े तो राष्ट्रमें महान् विप्लव होता है। यदि जलमें जलती हुई आग दिखलायी दे और सिर अथवा शरीरपर बिजली गिर जाय तो उसका जीवन दुर्लभ हो जाता है। दरवाजोंके किनारेपर अथवा स्तम्भपर अग्नि अथवा धूम दिखलायी दे तो मृत्युका भय होता है। आकाशमें वज्राधात, अग्निकी ज्वालाके मध्य धुआँ, नगरके मध्य किसी अनहोनी घटनाका दिखलायी देना, शव ले जाते समय उस शवका उठकर बैठ जाना; स्थापित लिङ्गका गमन करना; भूकम्प, आँधी-तूफान, उल्कापात होना; बिना समय वृक्षोंमें फल-फूल लगना—ये सभी उत्पात राहुजन्य हैं। इनकी शान्तिके लिये दही, मधु, धी, दूब, अक्षत आदिसे 'कया नश्चित्र०' (यजु० २७। ३९) इस मन्त्रद्वारा रविवारके दिन दस हजार आहुतियाँ राहुके लिये दे, चरुसे भी हवन करे। पयस्विनी कपिला गौ, अतसी, तिल, शंख और युग्मवस्त्र ब्राह्मणको दानमें दे। वारुणहोम भी करे। इससे सारे दोष-पाप नष्ट हो जाते हैं।

यदि जम्बूक, गृध्र, कौए आदि भीषण ध्वनि करते हों तथा भयंकर नृत्य करते हों तो मृत्युकी आशंका होती है, जलती हुई आगके समान

धूमकेतुका दिखलायी पड़ना, जमीनका खिसकना मालूम होना—ऐसी स्थितिमें राजा पीड़ित होता है, राज्यमें अकाल पड़ता है तथा अनेक प्रकारके अनिष्ट होते हैं। इनकी शान्तिके लिये स्वर्णछत्रयुक्त सात घोड़ोंसे युक्त सूर्यमण्डप बनाकर ब्राह्मणको दान करे। बिल्वपत्र भी दे, ऐन्द्र मन्त्रसे हवन करे। यदि अकस्मात् शाल, ताल, अक्ष, खदिर, कमल आदि घरके अंदर ही उत्पन्न हों तो ये सभी केतुग्रहजन्य दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये 'त्र्यम्बकं' (यजु० ३।६०) इस मन्त्रसे दही, मधु, घृतसे दस हजार आहुतियाँ दे तथा चरु भी प्रदान करे। नीली सवत्सा पयस्विनी गाय, वस्त्र, केतुकी प्रतिमा आदि ब्राह्मणको दान करे।

दक्षिण दिशामें अपनी छाया अपने पैरके एकदम समीप आ जाय और छायामें दो या पाँच सिर दिखलायी दें अथवा छिन्न-भिन्न रूपमें सिर दिखलायी दे तो देखनेवालेकी सप्ताहके भीतर ही मृत्युकी आशंका होती है। कौआ, बिल्ली, तोता तथा कपोतका मैथुन दिखलायी दे तो ये दुर्निमित्त

राहुजन्य उत्पात हैं। इनकी शान्तिके लिये शनिवारके दिन शनिके निमित्त दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। अर्क-पुष्पसे शनिकी पूजा करे तथा चरुसे सौ बार आहुति दे। वाम और दक्षिणके क्रमसे यदि बाहु, पैर तथा आँखमें स्पन्दन हो तो इससे मृत्युका भय होता है। यह सोमग्रहजनित दुर्निमित्त है। पुस्तक, यज्ञोपवीत, चरु तथा इन्द्र-ध्वजमें आग लग जाय तो यह सूर्यजन्य दुर्निमित्त है। इसकी शान्तिके लिये सूर्यके निमित्त त्रिमधुयुक्त कनेरके पुष्पोंसे आहुतियाँ देनी चाहिये। जिन ग्रहोंका दुर्निमित्त दिखलायी दे, उसकी शान्तिके लिये ग्रहों तथा उसके अधिदेवता और प्रत्यधिदेवताके निमित्त भी विधिपूर्वक पूजन-हवन-स्तवन, दान आदि करना चाहिये। विधिके अनुसार क्रिया न करनेसे दोष होता है। अतः ये सभी शान्त्यादिकर्म शास्त्रोक्त विधानके अनुसार ही करने चाहिये। इससे शान्ति प्राप्त होती है और सर्वविध कल्याण-मङ्गल होता है।

(अध्याय २०)



॥ मध्यमपर्व, तृतीय भाग सम्पूर्ण ॥



॥ भविष्यपुराणान्तर्गत मध्यमपर्व सम्पूर्ण ॥



॥ ३० श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्रतिसर्गपर्व (प्रथम खण्ड)

[वास्तवमें भविष्यपुराणके भविष्य नामकी सार्थकता प्रतिसर्गपर्वमें ही चरितार्थ हुई दीखती है। वंशानुकीर्तन सभी पुराणोंका मुख्य लक्षण है—‘वंशानुकीर्तनं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।’ यह विषय सभी पुराणोंमें प्राप्त होता है। भविष्यपुराणमें तो कई स्थानोंपर आया है, पर प्रतिसर्गपर्वने आधुनिक इतिहासका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अरबी-फारसी और उर्दूमें इतिहासको तवारीख (तारीख) कहते हैं। सभी घटनाओंका उल्लेख तारीख (तिथि, वर्ष) क्रमपूर्वक हुआ है। अंग्रेजीमें भी इतिहासका सही नाम ‘क्रानिकिल्स’ है। भारतीय दृष्टिमें कालका प्रवाह अनन्त है। एक सृष्टिके बाद दूसरी सृष्टिमें कल्प-महाकल्प लगे हुए हैं—जैसे—‘इहाँ बसत मोहि सुनु खग इसा। बीते कल्प सात अरु बीसा ॥’ इसलिये किसी एक कल्पका ही वर्णन एक पुराणमें सम्भव होता है। प्रतिसर्गपर्व अपनेको वाराह-कल्पमें वैवस्वत मन्वन्तरका ही इतिहास-निर्देशक बतला रहा है और बड़ी सावधानीसे सत्ययुग, त्रेतायुग आदिके दीर्घयु राजाओंके राज्य आदिका उल्लेख कर रहा है। बादमें कलियुगी राजाओंके वंशका भी वर्णन करता है। प्रस्तुत विवरणमें नामोंकी विशेष शुद्धिके लिये वाल्मीकीय रामायण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवतके साथ अन्य ग्रन्थों एवं ऐतिहासिक, पौराणिक कोषोंसे भी सहायता ली गयी है।—सम्पादक]

सत्ययुगके राजवंशका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

‘भगवान् नर-नारायणके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके सखा नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीलाओंको प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उनके चरित्रोंका वर्णन करनेवाले वैदव्यासको नमस्कार कर अष्टादश पुराण, रामायण और महाभारत आदि जय नामसे व्यपदिष्ट ग्रन्थोंका वाचन करना चाहिये।’

महामुनि आचार्य शौनकजीने पूछा—मुने ! ब्रह्माकी आयुके उत्तरार्धमें भविष्य नामके महाकल्पमें प्रथम वर्षके तीसरे दिन वैवस्वत नामक मन्वन्तरके अद्वैतस्वें सत्ययुगमें कौन-कौन राजा हुए ? आप उनके चरित्र तथा राज्यकालका वर्णन करें।

सूतजी बोले—श्वेतवाराहकल्पमें ब्रह्माके वर्षके तीसरे दिन सातवें मुहूर्तके प्रारम्भ होनेपर महाराज वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने सरयू नदीके तटपर दिव्य सौ वर्षोंतक तपस्या की और उनकी छोंकसे उनके पुत्ररूपमें राजा इक्ष्वाकुका जन्म हुआ।

ब्रह्माके वरदानसे उन्होंने दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति की। राजा इक्ष्वाकु भगवान् विष्णुके परम भक्त थे। उन्होंकी कृपासे उन्होंने छत्तीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र विकुक्षि हुए, अपने पिता इक्ष्वाकुसे सौ वर्ष कम अर्थात् पैंतीस हजार नौ सौ वर्षोंतक राज्य करके वे स्वर्ग पथार गये। उनके पुत्र रिपुञ्जय हुए और उन्होंने भी पिता विकुक्षिसे सौ वर्ष कम अर्थात् पैंतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र ककुत्स्थ हुए। उन्होंने पैंतीस हजार सात सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र अनेना हुए, उन्होंने पैंतीस हजार छः सौ वर्षोंतक राज्य किया। अनेनाके पुत्र पृथु नामसे विख्यात हुए। उन्होंने पैंतीस हजार पाँच सौ वर्षोंतक राज्य किया और उनके पुत्र विष्वगश्च हुए, उन्होंने पैंतीस हजार चार सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र अद्रि हुए, उन्होंने पैंतीस हजार तीन सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र भद्राश्व हुए, जिन्होंने पैंतीस हजार दो सौ वर्षोंतक राज्य किया। राजा भद्राश्वके पुत्र युवनाश्व हुए, उन्होंने पैंतीस

हजार एक सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र श्रावस्त हुए। (इन्होंने श्रावस्ती नामकी नगरी बसायी थी।) उस समय सत्ययुगमें समग्र भारतवर्षमें धर्म अपने तप, शौच, दया तथा सत्य चारों चरणोंसे* विद्यमान था। इन सभी इक्ष्वाकुवंशी राजाओंने उदयाचलसे अस्ताचलपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर नीति एवं धर्मपूर्वक राज्य किया। महाराज श्रावस्तने तैनीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र बृहदश्व हुए, उन्होंने चौंतीस हजार नौ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र कुवलयाश्व हुए, उन्होंने चौंतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया।

महाराज कुवलयाश्वके पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् तैनीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र निकुम्भक हुए, उन्होंने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् बत्तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र संकटाश्व हुए, उन्होंने एक हजार वर्ष कम अर्थात् इकतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र प्रसेनजित् हुए, उन्होंने तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। इसके बाद रवणाश्व हुए, उन्होंने उनतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र मान्धाता हुए, उन्होंने अपने पितासे एक सौ वर्ष कम अर्थात् उनतीस हजार सात सौ वर्षोंतक राज्य किया। महाराज मान्धाताके पुत्र पुरुकुत्स हुए, उन्होंने उनतीस हजार छः सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र त्रिंशदश्व हुए, उनके रथमें तीस श्रेष्ठ घोड़े जुते रहते थे, इसीलिये वे त्रिंशदश्वके नामसे विख्यात हुए। राजा त्रिंशदश्वके पुत्र अनरण्य हुए, उन्होंने अद्वाईस हजार वर्षोंतक शासन किया। महाराज

अनरण्यके पुत्र पृष्ठदश्व हुए, वे छः हजार वर्षोंतक राज्य करके अन्तमें पितृलोकको चले गये। अनन्तर हर्यश्व नामके राजा हुए, उन्होंने राजा पृष्ठदश्वसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् पाँच हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र वसुमान् हुए, उन्होंने उनसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् चार हजार वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर उनको त्रिधन्वा नामका पुत्र हुआ, उसने अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् तीन हजार वर्षोंतक राज्य किया। तबतक भारतमें सत्ययुगका द्वितीय पाद समाप्त हो गया।

महाराज त्रिधन्वाके पुत्र त्रिव्यारुणि हुए, वे अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् दो हजार वर्षोंतक राज्य करके स्वर्ग चले गये। उनके पुत्र त्रिशंकु हुए और उन्होंने मात्र एक हजार वर्ष राज्य किया। छद्मके कारण राजा त्रिशंकु हीनताको प्राप्त हुए। उनके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, इन्होंने बीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र रोहित हुए उन्होंने पिताके समान ही राज्य किया। उनके पुत्रका नाम हारीत था। राजा हारीतने भी पिताके समान ही दीर्घकालतक राज्य किया। उनके पुत्र चंचुभूप हुए। पिताके तुल्य वर्षोंतक उन्होंने राज्य किया। उनके पुत्र विजय हुए। इन्होंने भी पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र रुक हुए, उन्होंने भी पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। ये सभी राजा विष्णुभक्त थे एवं इनकी सेना बहुत विशाल थी। उनके राज्यमें मणि-स्वर्णकी समृद्धि तथा प्रचुर धन-सम्पत्ति सभीको सुलभ थी। उस समय सत्ययुगका पूर्ण धर्म विद्यमान था।

सत्ययुगके तृतीय चरणके मध्यमें राजा रुरुकके पुत्र महाराज सगर हुए। वे शिवभक्त तथा सदाचार-

* मनुस्मृति (१। ८६)-में तप, ज्ञान, यज्ञ तथा दान—ये धर्मके चार पाद बताये गये हैं।

सम्पन्न थे। उनके (एक रानीसे उत्पन्न साठ हजार) पुत्र सागर नामसे प्रसिद्ध हुए। मुनियोंने तीस हजार वर्षोंतक उनका राज्य-काल माना है। (कपिल मुनिके शापसे) सगर-पुत्र नष्ट हो गये। दूसरी रानीसे असमंजस नामका एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र अंशुमान् हुए। उनके दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए जिनके द्वारा पृथ्वीपर लायी गयी गङ्गा भागीरथी नामसे प्रसिद्ध हुई। भगीरथके पुत्र श्रुतसेन हुए। महाराज सगरसे श्रुतसेनतक सभी राजा शैव थे। श्रुतसेनके पुत्र नाभाग तथा नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष अत्यन्त प्रसिद्ध विष्णुभक्त हुए, जिनकी रक्षामें सुदर्शनचक्र रात-दिन नियुक्त रहता था। तबतक भारतमें सत्ययुगका तीसरा चरण समाप्त हो चुका था।

सत्ययुगके चतुर्थ चरणमें महाराज अम्बरीषके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए, उनके पुत्र अयुताश्व, अयुताश्वके पुत्र ऋतुपर्ण, उनके पुत्र सर्वकाम तथा उनके पुत्र कल्माषपाद हुए। कल्माषपादके पुत्र सुदासको वसिष्ठजीके आशीर्वादसे मदयन्तीसे उत्पन्न अश्मक (सौदास) नामका पुत्र प्राप्त हुआ। सौदासतकके ये सात राजा वैष्णव कहे गये हैं। गुरुके शापसे सौदासने अङ्गोंसहित अपना सम्पूर्ण राज्य गुरुको समर्पित कर दिया। गोकर्ण लिङ्ग-भक्त शैव कहा जाता है। राजा अश्मकके पुत्र हरिवर्मा साधुओंके पूजक थे। उनके पुत्र दशरथ (प्रथम) हुए, उनके पुत्र दिलीप (प्रथम) हुए, उनके पुत्र विश्वासह हुए, उन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके अधर्म-आचरणके कारण उस समय सौ

वर्षोंतक भयंकर अनावृष्टि हुई, जिससे उनका राज्य विनष्ट हो गया और रानीके आग्रह करनेपर महर्षि वसिष्ठने यत्कर यज्ञके द्वारा खट्वाङ्ग नामक पुत्र उत्पन्न किया। राजा खट्वाङ्गने शस्त्र धारण कर इन्द्रकी सहायतासे तीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर देवताओंसे वर प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। उनके पुत्र दीर्घबाहु हुए, उन्होंने बीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र सुदर्शन हुए। महामनीषी सुदर्शनने राजा काशीराजकी पुत्रीसे विवाह कर देवीके प्रसादसे राजाओंको जीतकर धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भरतखण्डपर पाँच हजार वर्षोंतक राज्य किया।

एक दिन स्वप्रमें महाकालीने राजा सुदर्शनसे कहा—‘वत्स! तुम अपनी पत्नीके साथ तथा महर्षि वसिष्ठ आदिसे समन्वित होकर हिमालयपर जाकर निवास करो; क्योंकि शीघ्र ही भीषण झङ्घावातके प्रभावसे भरतखण्डका प्रायः क्षय हो जायगा। पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओंके अनेक उपद्वीप झङ्घावातोंके कारण समुद्रके गर्तमें विलीन-से हो गये हैं। भारतवर्षमें भी आजके सातवें दिन भीषण झङ्घावात आयेगा।’ स्वप्नमें भगवतीद्वारा प्रलयका निर्देश पाकर महाराज सुदर्शन प्रधान राजाओं, वैश्यों तथा ब्राह्मणों और अपने परिकरोंके साथ हिमालयपर चले गये और भारतका बड़ा-सा भूभाग समुद्री-तूफान आदिके प्रभावसे नष्ट हो गया। सम्पूर्ण प्राणी विनष्ट हो गये और सारी पृथ्वी जलमग्न हो गयी। पुनः कुछ समयके अनन्तर भूमि स्थलरूपमें दिखलायी देने लगी। (अध्याय १)



त्रेतायुगके सूर्य एवं चन्द्र-राजवंशोंका वर्णन

सूतजी बोले—महामुने ! वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिमें बृहस्पतिवारके दिन महाराज सुदर्शन अपने परिकरोंके साथ हिमालयपर्वतसे पुनः अयोध्या लौट आये । मायादेवीके प्रभावसे अयोध्यापुरी पुनः विविध अन्न-धनसे परिपूर्ण एवं समृद्धिसम्पन्न हो गयी । महाराज सुदर्शनने^१ दस हजार वर्षोंतक राज्यकर नित्यलोकको प्राप्त किया । उनके पुत्र दिलीप (द्वितीय) हुए, उन्हें नन्दिनी गौके वरदानसे श्रेष्ठ रघु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा दिलीपने दस हजार वर्षोंतक भलीभाँति राज्य किया । दिलीपके बाद पिताके ही समान महाराज रघुने भी राज्य किया । भृगुनन्दन ! त्रेतामें ये सूर्यवंशी क्षत्रिय रघुवंशी नामसे प्रसिद्ध हुए । ब्राह्मणके वरदानसे उनके अज नामक पुत्र हुआ, उन्होंने भी पिताके समान ही राज्य किया । उनके पुत्र महाराज दशरथ (द्वितीय) हुए, दशरथके पुत्ररूपमें (भगवान् विष्णुके अवतार) स्वयं राम उत्पन्न हुए । उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया । श्रीरामके पुत्र कुशने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया । कुशके पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके पुत्र नल^२ हुए, जो शक्तिके परम उपासक थे । नलके पुत्र नभ, नभके पुत्र पुण्डरीक, उनके पुत्र क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक और देवानीकके पुत्र अहीनग तथा अहीनगके पुत्र कुरु हुए । इन्होंने त्रेतामें सौ योजन विस्तारका कुरुक्षेत्र बनाया । कुरुके पुत्र पारियात्र, उनके बलस्थल, बलस्थलके पुत्र उक्थ, उनके वज्रनाभि, वज्रनाभिके पुत्र शङ्खनाभि और उनके व्युत्थनाभि हुए । व्युत्थनाभिके पुत्र विश्वपाल, उनके स्वर्णनाभि और स्वर्णनाभिके पुत्र पुष्पसेन

हुए । पुष्पसेनके पुत्र ध्रुवसन्धि तथा ध्रुवसन्धिके पुत्र अपवर्मा हुए । अपवर्माके पुत्र शीघ्रगन्ता, शीघ्रगन्ताके पुत्र मरुपाल और उनके पुत्र प्रसुश्रुत हुए । प्रसुश्रुतके पुत्र सुसंधि हुए । उन्होंने पृथ्वीके एक छोरसे दूसरे छोरतक राज्य किया । उनके पुत्र अमर्षण हुए । उन्होंने पिताके समान राज्य किया । उनके पुत्र महाश्व, महाश्वके पुत्र बृहद्वल और इनके पुत्र बृहदैशान हुए । बृहदैशानके पुत्र मुरुक्षेप, उनके वत्सपाल और उनके पुत्र वत्सव्यूह हुए । वत्सव्यूहके पुत्र राजा प्रतिव्योम हुए । उनके पुत्र देवकर और उनके पुत्र सहदेव हुए । सहदेवके पुत्र बृहदश्व, उनके भानुरत्न तथा भानुरत्नके सुप्रतीक हुए । उनके मरुदेव^३ और मरुदेवके पुत्र सुनक्षत्र हुए । सुनक्षत्रके पुत्र केशीनर, उनके पुत्र अन्तरिक्ष और अन्तरिक्षके पुत्र सुवर्णाङ्गि हुए । सुवर्णाङ्गिके पुत्र अमित्रजित्, उनके पुत्र बृहद्राज और बृहद्राजके पुत्र धर्मराज हुए । धर्मराजके पुत्र कृतञ्जय और उनके पुत्र रणञ्जय हुए । रणञ्जयके पुत्र सञ्जय, उनके पुत्र शाक्यवर्धन और शाक्यवर्धनके पुत्र क्रोधदान हुए । क्रोधदानके पुत्र अतुलविक्रम, उनके पुत्र प्रसेनजित् और प्रसेनजित्के पुत्र शूद्रक हुए । शूद्रकके पुत्र सुरथ हुए । ये सभी महाराज रघुके वंशज तथा देवीकी आराधनामें रत रहते थे । यज्ञ-यागादिमें तत्पर रहकर अन्तमें इन सभी राजाओंने स्वर्गलोक प्राप्त किया । जो बुद्धके वंशज हुए, वे सब पूर्ण शुद्ध क्षत्रिय नहीं थे ।

त्रेतायुगके तृतीय चरणके प्रारम्भसे नवीनता आ गयी । देवराज इन्द्रने रोहिणी-पति चन्द्रमाको पृथ्वीपर भेजा । चन्द्रमाने तीर्थराज प्रयागको अपनी राजधानी

१-राजा सुदर्शनकी विस्तृत कथा देवीभागवतके तृतीय स्कन्धमें प्राप्त होती है ।

२-ये नल दमयन्तीके पति अत्यन्त प्रसिद्ध महाराज नलसे भिन्न हैं ।

३-अन्य सभी पुराणोंमें सूर्यवंशका यहींतक वर्णन है । पुराणोंके अनुसार मरु देवापिके साथ कलाप ग्राममें निवासकर साधना कर रहे हैं, किंतु इस पुराणके अनुसार सूर्यवंशका वर्णन सुदूर आगेतक हुआ है, जो प्रायः कलियुगतक पहुँच जाता है ।

बनाया। वे भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहे। भगवती महामायाकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने सौ यज्ञ किये और अद्वारह हजार वर्षोंतक राज्यकर वे पुनः स्वर्गलोक चले गये। चन्द्रमाके पुत्र बुध हुए। बुधका विवाह इलाके साथ विधिपूर्वक हुआ, जिससे पुरुषरवाकी उत्पत्ति हुई। राजा पुरुषरवाने चौदह हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनको भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर रहनेवाला आयु नामका एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज आयु छत्तीस हजार वर्षोंतक राज्यकर गन्धर्वलोकको प्राप्त करके पुनः स्वर्गमें देवताके समान आनन्द भोग रहे हैं। आयुके पुत्र हुए नहुष, जिन्होंने अपने पिताके समान ही धर्मपूर्वक पृथ्वीपर राज्य किया। तदनन्तर उन्होंने इन्द्रत्वको प्राप्तकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर लिया। फिर बादमें महर्षि दुर्वासाके शापसे^१ राजा नहुष अजगर हो गये। इनके पुत्र ययाति हुए। ययातिके पाँच पुत्र हुए, जिनमेंसे तीन पुत्र म्लेच्छ देशोंके शासक हो गये^२। शेष दो पुत्रोंने आर्यत्वको प्राप्त किया। उनमें यदु ज्येष्ठ थे और पुरु कनिष्ठ। उन्होंने तपोबल तथा भगवान् विष्णुके प्रसादसे एक लाख वर्षोंतक राज्य किया, अनन्तर वे वैकुण्ठ चले गये।

यदुके पुत्र क्रोष्टुने साठ हजार वर्षोंतक राज्य किया। क्रोष्टुके पुत्र वृजिनघ्न हुए, उन्होंने बीस हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनको स्वाहार्चन नामका एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र चित्ररथ हुए और उनके अरविन्द हुए। अरविन्दको विष्णुभक्तिपरायण श्रवस् नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके तामस हुए, तामसके उशन नामका पुत्र हुआ। उनके पुत्र शीतांशुक हुए तथा शीतांशुकके पुत्र

कमलांशु हुए। उनके पुत्र पारावत हुए, उन्हें ज्यामघ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्यामघके पुत्र विदर्भ हुए। उनको क्रथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके पुत्र कुन्तिभोज हुए। कुन्तिभोजने पातालमें निवास करनेवाली पुरु दैत्यकी पुत्रीसे विवाह किया, जिससे वृषपर्वण नामका पुत्र हुआ। उनके पुत्र मायाविद्य हुए, जो देवीके भक्त थे। उन्होंने प्रयागके प्रतिष्ठानपुर (झूँसी)-में दस हजार वर्षोंतक राज्य किया फिर वे स्वर्ग सिधार गये। मायाविद्यके पुत्र जनमेजय (प्रथम) हुए और उनका पुत्र प्रचिन्वान् हुआ। प्रचिन्वान्-के पुत्र प्रवीर हुए। उनके पुत्र नभस्य हुए, नभस्यके पुत्र भवद और उनके सुद्युम्न नामका पुत्र हुआ। सुद्युम्नके पुत्र, बाहुगर, उनके पुत्र संयाति और संयातिके पुत्र धनयाति हुए। धनयातिके पुत्र ऐन्द्राश्व, उनके पुत्र रन्तीनर और रन्तीनरके पुत्र सुतपा हुए। सुतपाके पुत्र संवरण हुए, जिन्होंने हिमालय पर्वतपर तपस्या करनेकी इच्छा की और सौ वर्षोंतक तपस्या करनेपर भगवान् सूर्यने अपनी तपती नामकी कन्यासे इनका विवाह कर दिया। संतुष्ट होकर राजा संवरण सूर्यलोक चले गये। तदनन्तर कालके प्रभावसे त्रेतायुगका अन्त समय उपस्थित हो गया, जिससे चारों समुद्र उमड़ आये और प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। दो वर्षोंतक पृथ्वी पर्वतोंसहित समुद्रमें बिलीन रही। झंझावातोंके प्रभावसे समुद्र सूख गया, फिर महर्षि अगस्त्यके तेजसे भूमि स्थलीभूत होकर दीखने लगी और पाँच वर्षके अंदर पृथ्वी वृक्ष, दूर्वा आदिसे सम्पन्न हो गयी। भगवान् सूर्यदेवकी आज्ञासे महाराज संवरण महारानी तपती, महर्षि वसिष्ठ और तीनों वर्णोंके लोगोंके साथ पुनः पृथ्वीपर आ गये। (अध्याय २)

१-महाभारत आदिमें ये अगस्त्य ऋषिके शापसे अजगर हुए थे।

२-इनका पूरा विवरण मत्स्यपुराणके प्रारम्भिक अध्यायोंमें प्राप्त होता है।

द्वापरयुगके चन्द्रवंशीय राजाओंका वृत्तान्त

महर्षि शौनकने पूछा—लोमहर्षणजी! आप यह बताइये कि महाराज संवरण* किस समय पृथ्वीपर आये और उन्होंने कितने समयतक राज्य किया तथा द्वापरमें कौन-कौन राजा हुए, यह सब भी बतायें।

सूतजी बोले—महर्षे! महाराज संवरण भाद्रपदके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी तिथिको शुक्रवारके दिन मुनियोंके साथ प्रतिष्ठानपुर (झूँसी)-में आये। विश्वकर्मने वहाँ एक ऐसे विशाल प्रासादका निर्माण किया, जो ऊँचाईमें आधा कोस या डेढ़ किलोमीटरके लगभग था। महाराज संवरणने पाँच योजन या बीस कोसके क्षेत्रमें प्रतिष्ठानपुरको अत्यन्त सुन्दरता एवं स्वच्छतापूर्वक बसाया। एक ही समयमें (चन्द्रमाके पुत्र) बुधके वंशमें उत्पन्न प्रसेन और यदुवंशीय राजा सात्वत शूरसेन मधुरा (मथुरा)-के शासक हुए। म्लेच्छवंशीय श्मश्रुपाल (दाढ़ी रखनेवाला) मरुदेश (अरब, ईरान और ईराक)- के शासक हुए। क्रमशः प्रजाओंके साथ राजाओंकी संख्या बढ़ती गयी। राजा संवरणने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। इसके बाद उनके पुत्र अर्चाज्ञ हुए, उन्होंने भी दस हजार वर्षोंतक शासन किया। उनके पुत्र सूर्यजापीने पिताके शासनकालके आधे समयतक राज्य किया। उनके पुत्र सौरयज्ञपरायण सूर्ययज्ञ हुए। उनके पुत्र आदित्यवर्धन, आदित्यवर्धनके पुत्र द्वादशात्मा और उनके पुत्र दिवाकर हुए। इन्होंने भी प्रायः अपने पितासे कुछ कम ही दिनोंतक राज्य किया। दिवाकरके पुत्र प्रभाकर और प्रभाकरके पुत्र भास्वदात्मा हुए। भास्वदात्माके पुत्र विवस्वज्ञ, उनके पुत्र हरिदश्वार्चन और उनके पुत्र वैकर्तन हुए। वैकर्तनके पुत्र अर्केष्टिमान्, उनके पुत्र मार्तण्डवत्सल और मार्तण्डवत्सलके पुत्र मिहिरार्थ

तथा उनके अरुणपोषण हुए। अरुणपोषणके पुत्र द्युमणि, द्युमणिके पुत्र तरणियज्ञ और उनके पुत्र मैत्रेष्टिवर्धन हुए। मैत्रेष्टिवर्धनके पुत्र चित्रभानूर्जक, उनके वैरोचन और वैरोचनके पुत्र हंसन्यायी हुए। उनके पुत्र वेदप्रवर्धन, वेदप्रवर्धनके पुत्र सावित्र और इनके पुत्र धनपाल हुए। धनपालके पुत्र म्लेच्छहन्ता, म्लेच्छहन्ताके आनन्दवर्धन, इनके धर्मपाल और धर्मपालके पुत्र ब्रह्मभक्त हुए। उनके पुत्र ब्रह्मेष्टिवर्धन, उनके पुत्र आत्मप्रपूजक हुए और उनके परमेष्ठी नामक पुत्र हुए। परमेष्ठीके पुत्र हैरण्यवर्धन, उनके धातृयाजी, उनके विधातृप्रपूजक और उनके पुत्र द्वुहिणक्रतु हुए। द्वुहिणक्रतुके पुत्र वैरंच्य, उनके पुत्र कमलासन और कमलासनके पुत्र शमवर्ती हुए। शमवर्तीके पुत्र श्राद्धदेव और उनके पितृवर्धन, उनके सोमदत्त और सोमदत्तके पुत्र सौमदत्ति हुए। सौमदत्तिके पुत्र सोमवर्धन, उनके अवतंस, अवतंसके पुत्र प्रतंस और प्रतंसके पुत्र परातंस हुए। परातंसके पुत्र अयतंस, उनके पुत्र समातंस, उनके पुत्र अनुतंस और अनुतंसके पुत्र अधितंस हुए। अधितंसके अभितंस, उनके पुत्र समुत्तंस, उनके तंस और तंसके पुत्र दुष्यन्त हुए।

महाराज दुष्यन्तकी पत्नी शकुन्तलासे भरत नामके पुत्र हुए, जो सदा सूर्यदेवकी पूजामें तत्पर रहते थे। महाराज भरतने महामाया भगवतीकी कृपासे सम्पूर्ण पृथ्वीपर छत्तीस हजार वर्षोंतक चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें राज्य किया और उनके पुत्र महाबल हुए। महाबलके पुत्र भरद्वाज हुए। भरद्वाजके पुत्र मन्युमान् हुए, जिन्होंने अद्वारह हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनके पुत्र बृहत्क्षेत्र, उनके पुत्र सुहोत्र और सुहोत्रके पुत्र वीतिहोत्र हुए, इन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य

* इनकी विस्तृत कथा महाभारतके आदिपर्व (अ० ९४)-में विस्तारसे, किंतु १७२ तक प्रायः आती रही है।

किया। वीतिहोत्रके पुत्र यज्ञहोत्र, यज्ञहोत्रके पुत्र शक्रहोत्र हुए। इन्द्रदेवने प्रसन्न होकर इन्हें स्वर्ग प्रदान किया। उस समय अयोध्यामें महाबली प्रतापेन्द्र नामक राजा हुए, उन्होंने दस हजार वर्षोंतक भारतपर शासन किया। इनके पुत्र मण्डलीक हुए। मण्डलीकके पुत्र विजयेन्द्र, विजयेन्द्रके पुत्र धनुर्दीप हुए।

महाराज शक्रहोत्र इन्द्रकी आज्ञासे घृताचीके साथ पुनः भूतलपर आये और उन्होंने राजा धनुर्दीपको जीतकर पृथ्वीपर शासन किया। शक्रहोत्रके घृताचीसे हस्ती नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हस्तीने ऐरावत हाथीके बच्चेपर आरूढ़ होकर पश्चिममें अपने नामसे हस्तिना नामक नगरीका निर्माण किया। यह दस योजन विस्तृत है तथा स्वर्गङ्गाके तटपर अवस्थित है। वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षोंतक निवासकर राज्य किया। महाराज हस्तीके पुत्र अजमीढ़, अजमीढ़के पुत्र रक्षपाल, रक्षपालके पुत्र सुशम्यर्ण और उनके पुत्र कुरु हुए। इन्द्रके वरदानसे वे सदेह स्वर्ग चले गये।

उस समय मथुरामें सात्वत-वंशमें वृष्णि नामके एक महाबली राजा हुए। उन्होंने भगवान् विष्णुके वरदानसे पाँच हजार वर्षोंतक सम्पूर्ण राज्यको अपने अधीन रखा। राजा वृष्णिके पुत्र निरावृत्ति हुए, निरावृत्तिके पुत्र दशारी, दशारीके पुत्र वियामुन और वियामुनके पुत्र जीमूत और इनके पुत्र विकृति हुए। विकृतिके पुत्र भीमरथ, उनके पुत्र नवरथ और नवरथके दशरथ हुए। उनके पुत्र शकुनि, उनके कुशुभ्म और कुशुभ्मके पुत्र देवरथ हुए। देवरथके पुत्र देवक्षेत्र, उनके पुत्र मधु और मधुके पुत्र नवरथ और उनके कुरुवत्स हुए। इन सभी लोगोंने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। कुरुवत्सके पुत्र अनुरथ, उनके पुरुहोत्र और पुरुहोत्रके पुत्र विचित्राङ्ग हुए, उनके सात्वतवान्

और उनके पुत्र भजमान हुए। उनके पुत्र विदूरथ, उनके सुरभक्त और सुरभक्तके सुमना हुए। इन सभीने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। सुमनाके पुत्र ततिक्षेत्र, उनके स्वायम्भुव, उनके हरिदीपक और हरिदीपकके देवमेधा हुए। इन सभीने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। देवमेधाके पुत्र सुरपाल हुए।

द्वापरके तृतीय चरणके समाप्त होनेपर देवराज इन्द्रकी आज्ञासे आयी सुकेशी नामकी अप्सराके स्वामी कुरु राजा हुए। इन्होंने कुरुक्षेत्रका निर्माण किया जो बीस योजन विस्तृत है। विद्वानोंने उसे पुण्यक्षेत्र बताया है। महाराज कुरुने बारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। इनके पुत्र जहु, जहुके सुरथ और सुरथके पुत्र विदूरथ हुए। विदूरथके पुत्र सार्वभौम, इनके जयसेन और उनके पुत्र अर्णव हुए। महाराज अर्णवका शासन-क्षेत्र चारों समुद्रतक था और इन्होंने अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। अर्णवके पुत्र अयुतायु हुए, जिन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। अयुतायुके पुत्र अक्रोधन, उनके ऋक्ष, उनके पुत्र भीमसेन और भीमसेनके पुत्र दिलीप हुए। इन सभी राजाओंने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। दिलीपके पुत्र प्रतीप हुए, इन्होंने पाँच हजार वर्षोंतक शासन किया। प्रतीपके पुत्र शन्तनु हुए और उन्होंने एक हजार वर्षोंतक राज्य किया, उन्हें विचित्रवीर्य नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जिन्होंने दो सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र पाण्डु हुए, उन्होंने पाँच सौ वर्षोंतक राज्य किया, उनके पुत्र युधिष्ठिर हुए, उन्होंने पचास वर्षोंतक राज्य किया। सुयोधन (दुर्योधन)-ने साठ वर्षोंतक राज्य किया और कुरुक्षेत्रमें (युधिष्ठिरके भाई भीमसेन)-के द्वारा उसकी मृत्यु हुई।

प्राचीन कालमें दैत्योंका देवताओंद्वारा भारी संहार

हुआ था। वे ही सब दैत्य शन्तनुके राज्यमें पुनः भूलोकमें उत्पन्न हुए। दुर्योधनकी विशाल सेनाके भारसे परिव्यास वसुन्धरा इन्द्रकी शरणमें गयी, तब भगवान् श्रीहरिका अवतार हुआ। सौंरि वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भसे उन्होंने अवतार लिया। वे एक सौ पैंतीस वर्षोंतक^१ पृथ्वीपर रहकर उसके बाद गोलोक चले गये। भगवान् श्रीकृष्णका अवतार द्वापरके चतुर्थ चरणके अन्तमें हुआ था।

इसके बाद हस्तिनापुरमें अभिमन्युके पुत्र परीक्षितने राज्य किया। परीक्षितके राज्य करनेके बाद उनके पुत्र जनमेजयने राज्य किया। तदनन्तर उनके पुत्र महाराज शतानीक पृथ्वीके शासक हुए। उनके पुत्र यज्ञदत्त (सहस्रानीक) हुए। उनके पुत्र निश्चक्र^२ (निचक्नु) हुए। उनके पुत्र उष्ट्र (उष्ण)- पाल हुए। उनके पुत्र चित्ररथ और

चित्ररथके पुत्र धृतिमान् और उनके पुत्र सुषेण हुए, सुषेणके पुत्र सुनीथ, उनके मखपाल, उनके चक्षु और चक्षुके पुत्र सुखवन्त (सुखावल) हुए। सुखवन्तके पुत्र पारिप्लव हुए। पारिप्लवके पुत्र सुनय, सुनयके पुत्र मेधावी, उनके नृपञ्जय और उनके पुत्र मदु हुए। मृदुके पुत्र तिगमज्योति, उनके बृहद्रथ और उनके पुत्र वसुदान हुए। इनके पुत्र शतानीक हुए, उनके पुत्र उदयन, उदयनके अहीनर, अहीनरके निरमित्र तथा निरमित्रके पुत्र क्षेमक हुए। महाराज क्षेमक राज्य छोड़कर कलापग्राम चले गये। उनकी मृत्यु म्लेच्छोंके द्वारा हुई। नारदजीके उपदेश एवं सत्प्रयाससे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम प्रद्योत हुआ। राजा प्रद्योतने म्लेच्छ-यज्ञ किया, जिसमें म्लेच्छोंका विनाश हुआ। (अध्याय ३)

म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन तथा म्लेच्छ-भाषा आदिका संक्षिप्त परिचय

शौनकने पूछा—त्रिकालज्ञ महामुने! उस प्रद्योतने कैसे म्लेच्छ-यज्ञ किया? मुझे यह सब बतलायें।

श्रीसूतजीने कहा—महामुने! किसी समय क्षेमकके पुत्र प्रद्योत हस्तिनापुरमें विराजमान थे। उस समय नारदजी वहाँ आये। उनको देखकर प्रसन्न हो राजा प्रद्योतने विधिवत् उनकी पूजा की। सुखपूर्वक बैठे हुए मुनिने राजा प्रद्योतसे कहा—‘म्लेच्छोंके द्वारा मारे गये तुम्हारे पिता यमलोकको चले गये हैं। म्लेच्छ-यज्ञके प्रभावसे उनकी नरकसे मुक्ति होगी और उन्हें स्वर्गीय गति प्राप्त होगी। अतः तुम म्लेच्छ-यज्ञ करो।’

यह सुनकर राजा प्रद्योतकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। तब उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर कुरुक्षेत्रमें म्लेच्छ-यज्ञको तत्काल आरम्भ करा दिया। सोलह योजनमें चतुष्कोण यज्ञ-कुण्डका निर्माण कर देवताओंका आवाहन कर उस राजाने म्लेच्छोंका हनन किया। ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर अभिषेक कराया। इस यज्ञके प्रभावसे उनके पिता क्षेमक स्वर्गलोक चले गये। तभीसे राजा प्रद्योत सर्वत्र पृथ्वीपर म्लेच्छहन्ता (म्लेच्छोंको मारनेवाले) नामसे प्रसिद्ध हो गये। उनका पुत्र वेदवान् नामसे प्रसिद्ध हुआ।

१—विभिन्न पुराणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्थितिकालका उल्लेख कुछ अन्तरसे प्राप्त होता है, विशेषकर महाभारत, भागवत, हरिवंश, विष्णुपुराण तथा ब्रह्मवैर्तपुराण और गर्गसंहितामें भी उनका विस्तृत चरित्र प्राप्त होता है। अधिकांश स्थलोंपर उनका स्थितिकाल एक सौ पचीस वर्ष ही निर्दिष्ट है।

२—इनके शासनकालमें ही गङ्गा हस्तिनापुरके अधिकांश भागको बहा ले गयीं। अतः इन्होंने कौशम्बीको राजधानी बनाया, जो प्रयागसे चार योजन पश्चिम थीं। (विष्णुपुराण अंश ४। अ० २१)

म्लेच्छरूपमें स्वयं कलिने ही राज्य किया था। अनन्तर कलिने अपनी पत्नीके साथ नारायणकी पूजाकर दिव्य स्तुति की; स्तुतिसे प्रसन्न होकर नारायण प्रकट हो गये। कलिने उनसे कहा—‘हे नाथ! राजा वेदवान्‌के पिता प्रद्योतने मेरे स्थानका विनाश कर दिया है और मेरे प्रिय म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया है।’

भगवान्‌ने कहा—कले! कई कारणोंसे अन्य युगोंकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ हो। अनेक रूपोंको धारणकर मैं तुम्हारी इच्छाको पूर्ण करूँगा। आदम नामका पुरुष और हव्यवती (हौवा) नामकी पत्नीसे म्लेच्छवंशोंकी वृद्धि करनेवाले उत्पन्न होंगे। यह कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये और कलियुगको इससे बहुत आनन्द हुआ। उसने नीलाचल पर्वतपर आकर कुछ दिनोंतक निवास किया।

राजा वेदवान्‌को सुनन्द नामका पुत्र हुआ और बिना संततिके ही वह मृत्युको प्राप्त हुआ। इसके बाद आर्यावर्त देश सभी प्रकार क्षीण हो गया और धीरे-धीरे म्लेच्छोंका बल बढ़ने लगा। तब नैमिषारण्यनिवासी अठासी हजार ऋषि-मुनि हिमालयपर चले गये और वे बदरी-क्षेत्रमें आकर भगवान् विष्णुकी कथा-वार्तामें संलग्न हो गये।

सूतजीने पुनः कहा—मुने! द्वापरयुगके सोलह हजार वर्ष शेष कालमें आर्य-देशकी भूमि अनेक कीर्तियोंसे समन्वित रही; पर इतने समयमें कहीं शूद्र और कहीं वर्णसंकर राजा भी हुए। आठ हजार दो सौ दो वर्ष द्वापरयुगके शेष रह जानेपर यह भूमि म्लेच्छ देशके राजाओंके प्रभावमें आने लग गयी। म्लेच्छोंका आदि पुरुष आदम, उसकी स्त्री हव्यवती (हौवा) दोनों इन्द्रियोंका दमनकर ध्यानपरायण रहते थे। ईश्वरने प्रदान नगरके पूर्वभागमें

चार कोसवाला एक रमणीय महावनका निर्माण किया। पापवृक्षके नीचे जाकर कलियुग सर्परूप धारणकर हौवाके पास आया। उस धूर्त कलिने हौवाको धोखा देकर गूलरके पत्तोंमें लपेटकर दूषित वायुयुक्त फल उसे खिला दिया, जिससे विष्णुकी आज्ञा भंग हो गयी। इससे अनेक पुत्र हुए, जो सभी म्लेच्छ कहलाये। आदम पत्नीके साथ स्वर्ग चला गया। उसका श्वेत नामसे विष्ण्यात श्रेष्ठ पुत्र हुआ, जिसकी एक सौ बारह वर्षकी आयु कही गयी है। उसका पुत्र अनुह हुआ, जिसने अपने पितासे कुछ कम ही वर्ष शासन किया। उसका पुत्र कीनाश था, जिसने पितामहके समान राज्य किया। महल्लल नामका उसका पुत्र हुआ, उसका पुत्र मानगर हुआ। उसको विरद नामका पुत्र हुआ और अपने नामसे नगर बसाया। उसका पुत्र विष्णुभक्तिपरायण हनूक हुआ। फलोंका हवन कर उसने अध्यात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया। म्लेच्छधर्मपरायण वह सशरीर स्वर्ग चला गया। इसने द्विजोंके आचार-विचारका पालन किया और देवपूजा भी की, फिर भी वह विद्वानोंके द्वारा म्लेच्छ ही कहा गया। मुनियोंके द्वारा विष्णुभक्ति, अग्निपूजा, अहिंसा, तपस्या और इन्द्रियदमन—ये म्लेच्छोंके धर्म कहे गये हैं। हनूकका पुत्र मतोच्छिल हुआ। उसका पुत्र लोमक हुआ, अन्तमें उसने स्वर्ग प्राप्त किया। तदनन्तर उसका न्यूह नामका पुत्र हुआ, न्यूहके सीम, शम और भाव—ये तीन पुत्र हुए। न्यूह आत्मध्यानपरायण तथा विष्णुभक्त था। किसी समय उसने स्वप्नमें विष्णुका दर्शन प्राप्त किया और उन्होंने न्यूहसे कहा—‘वत्स! सुनो, आजसे सातवें दिन प्रलय होगा। हे भक्तश्रेष्ठ! तुम सभी लोगोंके साथ नावपर चढ़कर अपने जीवनकी

रक्षा करना। फिर तुम बहुत विख्यात व्यक्ति बन जाओगे। भगवान्‌की बात मानकर उसने एक सुदृढ़ नौकाका निर्माण कराया, जो तीन सौ हाथ लम्बी, पचास हाथ चौड़ी और तीस हाथ ऊँची थी और सभी जीवोंसे समन्वित थी। विष्णुके ध्यानमें तत्पर होता हुआ वह अपने वंशजोंके साथ उस नावपर चढ़ गया। इसी बीच इन्द्रदेवने चालीस दिनोंतक लगातार मेघोंसे मूसलधार वृष्टि करायी। सम्पूर्ण भारत सागरोंके जलसे प्लावित हो गया। चारों सागर मिल गये, पृथ्वी ढूब गयी, पर हिमालय पर्वतका बदरी-क्षेत्र पानीसे ऊपर ही रहा, वह नहीं ढूब पाया। अद्वासी हजार ब्रह्मवादी मुनिगण, अपने शिष्योंके साथ वहीं स्थिर और सुरक्षित रहे। न्यूह भी अपनी नौकाके साथ वहीं आकर बच गये। संसारके शेष सभी प्राणी विनष्ट हो गये। उस समय मुनियोंने विष्णुमायाकी स्तुति की।

मुनियोंने कहा—‘महाकालीको नमस्कार है, माता देवकीको नमस्कार है, विष्णुपत्नी महालक्ष्मीको, राधादेवीको और रेवती, पुष्पवती तथा स्वर्णवतीको नमस्कार है। कामाक्षी, माया और माताको नमस्कार है। महावायुके प्रभावसे, मेघोंके भयंकर शब्दसे एवं उग्र जलकी धाराओंसे दारुण भय उत्पन्न हो गया है। भैरव! तुम इस भयसे हम किंकरोंकी रक्षा करो।’ देवीने प्रसन्न होकर जलकी वृद्धिको तुरंत शान्त कर दिया हिमालयकी प्रान्तवर्ती शिषिणा नामकी भूमि एक वर्षमें जलके हट जानेपर स्थलके रूपमें दीखने लगी। न्यूह अपने वंशजोंके साथ उस भूमिपर आकर निवास करने लगा।

शौनकने कहा—मुनीश्वर! प्रलयके बाद इस समय जो कुछ वर्तमान है, उसे अपनी दिव्य दृष्टिके

प्रभावसे जानकर बतलायें।

सूतजी बोले—शौनक! न्यूह नामका पूर्वनिर्दिष्ट म्लेच्छ राजा भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लीन रहने लगा, इससे भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उसके वंशकी वृद्धि की। उसने वेद-वाक्य और संस्कृतसे बहिर्भूत म्लेच्छ-भाषाका विस्तार किया और कलिकी वृद्धिके लिये ब्राह्मी* भाषाको अपशब्दवाली भाषा बनाया और उसने अपने तीन पुत्रों—सीम, शम तथा भावके नाम क्रमशः सिम, हाम तथा याकूत रख दिये। याकूतके सात पुत्र हुए—जुम्र, माजूज, मादी, यूनान, तुवलोम, सक तथा तीरास। इन्हींके नामपर अलग-अलग देश प्रसिद्ध हुए। जुम्रके दस पुत्र हुए। उनके नामोंसे भी देश प्रसिद्ध हुए। यूनानकी अलग-अलग संतानें इलीश, तरलीश, कित्ती और हूदा—इन चार नामोंसे प्रसिद्ध हुईं तथा उनके नामसे भी अलग-अलग देश बसे। न्यूहके द्वितीय पुत्र हाम (शम)-से चार पुत्र कहे गये हैं—कुश, मिश्र, कूज तथा कनआँ। इनके नामपर भी देश प्रसिद्ध हैं। कुशके छः पुत्र हुए—सवा, हबील, सर्वत, उरगम, सवतिका और महाबली निमरूह। इनकी भी कलन, सिना, रोरक, अङ्कद, बावुन और रसनादेशक आदि संतानें हुईं। इतनी बातें ऋषियोंको सुनाकर सूतजी समाधिस्थ हो गये।

बहुत वर्षोंके बाद उनकी समाधि खुली और वे कहने लगे—‘ऋषियो! अब मैं न्यूहके ज्येष्ठ पुत्र राजा सिमके वंशका वर्णन करता हूँ म्लेच्छ राजा सिमने पाँच सौ वर्षोंतक भलीभाँति राज्य किया। अर्कन्सद उसका पुत्र था, जिसने चार सौ चौंतीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र सिंहल हुआ, उसने भी चार सौ साठ वर्षोंतक राज्य

* ब्राह्मीको लिपियोंका मूल माना गया है। राजा न्यूहके हृदयमें स्वयं प्रविष्ट होकर भगवान् विष्णुने उसकी वृद्धिको प्रेरित किया, इसलिये उसने अपनी लिपिको उलटी गतिसे दाहिनेसे बार्यों और प्रकाशित किया, जो उर्दू, अरबी, फारसी और हिन्दूकी लेखन-प्रक्रियामें देखी जाती है।

किया। उसका पुत्र इब्र हुआ, उसने पिताके समान ही राज्य किया। उसका पुत्र फलज हुआ, जिसने दो सौ चालीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र रऊ हुआ, उसने दो सौ सेंतीस वर्षोंतक राज्य किया। उसके जूज नामक पुत्र हुआ, पिताके समान ही उसने राज्य किया। उसका पुत्र नहूर हुआ, उसने एक सौ साठ वर्षोंतक राज्य किया। हे राजन्! अनेक शत्रुओंका भी उसने विनाश किया। नहूरका पुत्र ताहर हुआ, पिताके समान उसने राज्य किया। उसके अविराम, नहूर और हारन—ये तीन पुत्र हुए।

हे मुने! इस प्रकार मैंने नाममात्रसे म्लेच्छ राजाओंके वंशोंका वर्णन किया। सरस्वतीके शापसे ये राजा म्लेच्छ-भाषा-भाषी हो गये और आचारमें अधम सिद्ध हुए। कलियुगमें इनकी संख्याकी विशेष वृद्धि हुई, किंतु मैंने संक्षेपमें ही इन वंशोंका वर्णन किया। संस्कृत-भाषा भारतवर्षमें ही किसी तरह बची रही*। अन्य भागोंमें म्लेच्छ-भाषा ही आनन्द देनेवाली हुई।

सूतजी पुनः बोले— भार्गवतनय महामुने शौनक! तीन सहस्र वर्ष कलियुगके बीत जानेपर अवन्ती नगरीमें शङ्ख नामका एक राजा हुआ और म्लेच्छ देशमें शकोंका राजा राज्य करता था। इनकी अभिवृद्धिका कारण सुनो। दो हजार वर्ष कलियुगके बीत जानेपर म्लेच्छवंशकी अधिक वृद्धि हुई और

विश्वके अधिकांश भागकी भूमि म्लेच्छमयी हो गयी तथा भाँति-भाँतिके मत चल पड़े। सरस्वतीका तट ब्रह्मावर्त-क्षेत्र ही शुद्ध बचा था। मूशा नामका व्यक्ति म्लेच्छोंका आचार्य और पूर्व-पुरुष था। उसने अपने मतको सारे संसारमें फैलाया। कलियुगके आनेसे भारतमें देवपूजा और वेदभाषा प्रायः नष्ट हो गयी। भारतमें भी धीरे-धीरे प्राकृत और म्लेच्छ-भाषाका प्रचार प्रारम्भ हुआ। ब्रजभाषा और महाराष्ट्री—ये प्राकृतके मुख्य भेद हैं। यावनी और गुरुण्डिका (अंग्रेजी) म्लेच्छ-भाषाके मुख्य भेद हैं। इन भाषाओंके और भी चार लाख सूक्ष्म भेद हैं। प्राकृतमें पानीयको पानी और बुधुक्षाको भूख कहा जाता है। इसी तरहसे म्लेच्छ-भाषामें पितृको पैतर-फादर और भ्रातृको बादर-ब्रदर कहते हैं। इसी प्रकार आहुतिको आजु, जानुको जैनु, रविवारको संडे, फाल्गुनको फरवरी और षष्ठिको सिक्सटी कहते हैं। भारतमें अयोध्या, मथुरा, काशी आदि पवित्र सात पुरियाँ हैं, उनमें भी अब हिंसा होने लग गयी है। डाकू, शबर, भिल्ल तथा मूर्ख व्यक्ति भी आर्यदेश—भारतवर्षमें भर गये हैं। म्लेच्छदेशमें म्लेच्छ-धर्मको माननेवाले सुखसे रहते हैं। यही कलियुगकी विशेषता है। भारत और इसके द्वीपोंमें म्लेच्छोंका राज्य रहेगा, ऐसा समझकर हे मुनिश्रेष्ठ! आपलोग हरिका भजन करें। (अध्याय ४-५)

* पहले संस्कृतका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार था। बालीद्वीपमें अब भी इसका पूरा प्रचार है तथा सुमात्रा, जावा, जापान आदिमें कुछ अंशोंमें इसका प्रचार है। बोर्नियो, इंडोनेशिया, कम्बोडिया और चीनमें भी इसका बहुत पहले प्रचार था। बीचमें संस्कृतकी बहुत उपेक्षा हुई, पर जर्मन, रूस और ब्रिटेनके निवासियोंके सत्प्रयाससे अब पुनः इसका सभी विश्वविद्यालयोंमें अध्यापन होने लगा है। यों कहना चाहिये कि भारतमें ही इसकी उपेक्षा हो रही है। पाश्चात्योंकी वैज्ञानिक उन्नतिमें संस्कृतका ही मुख्य योगदान रहा है। यूरोपकी गोथ-भाषा संस्कृतसे बहुत मिलती थी। सभी सभ्य भाषाओंके व्याकरणोंपर संस्कृतके व्याकरणका बहुत प्रभाव है। मोनियरविलियम तथा राजटर्नरने अपने-अपने कोशोंमें इसके अनेक अद्भुत उदाहरण उपस्थित किये हैं।

काश्यपके उपाध्याय, दीक्षित आदि दस पुत्रोंका नामोल्लेख, मगधके राजवंश और बौद्ध राजाओंका तथा चौहान और परमार आदि राजवंशोंका वर्णन

शौनकजीने पूछा—महाराज ! ब्रह्मावर्तमें^१ म्लेच्छगण क्यों नहीं आ सके, इसका कारण बतायें ।

सूतजी बोले—मुने ! सरस्वतीके प्रभावसे वे सब वहाँ नहीं आ सके । वहाँ काश्यप नामके एक ब्राह्मण रहते थे । वे कलिके हजार वर्ष बीतनेपर देवताओंकी आज्ञासे स्वर्गलोकसे ब्रह्मावर्तमें आये । उनकी धर्म-पत्नीका नाम था आर्यावती । उससे काश्यपके दस पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं—उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्ड्य तथा चतुर्वेदी । वे अपने नामके अनुरूप गुणवाले थे । उनके पिता काश्यप, जो सभी ज्ञानोंसे समन्वित और सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता थे, उनके बीच रहकर उन्हें ज्ञान देते रहते थे । काश्यपने काश्मीरमें जाकर जगज्जननी सरस्वतीको रक्त पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य तथा पुष्पाङ्गलिके द्वारा संतुष्ट किया । देवीकी स्तुति करते हुए काश्यपने कहा—‘मातः ! शंकरप्रिये ! मुझपर आपकी करुणा क्यों नहीं होती ? देवि ! आप सारे संसारकी माता हैं, फिर मुझे जगत्‌से बाहर क्यों मानती हैं ? देवि ! देवताओंके लिये धर्मद्रोहियोंको आप क्यों नहीं मारती हैं ? म्लेच्छोंको मोहित कीजिये और उत्तम संस्कृत-भाषाका विस्तार कीजिये । अम्ब ! आप अनेक रूपोंको धारण करनेवाली हैं, हुंकारस्वरूपा हैं, आपने धूम्रलोचनको मारा है । दुर्गारूपमें आपने भयंकर दैत्योंको मारकर जगत्‌में सुख प्रदान किया है । मातः ! आप दम्भ, मोह तथा भयंकर गर्वका

नाशकर सुख प्रदान करें और दुष्टोंका नाश करें तथा संसारमें ज्ञान प्रदान करें ।’

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर सरस्वतीदेवीने उन काश्यप मुनिके मनमें निवासकर उन्हें ज्ञान प्रदान किया । वे मुनि मिश्र देशमें चले गये और उन्होंने वहाँ म्लेच्छोंको मोहित कर उन्हें द्विजन्मा बना लिया । सरस्वतीके अनुग्रहसे उन लोगोंके साथ सदा मुनिवृत्तिमें तत्पर मुनिश्रेष्ठ काश्यपने आर्यदेशमें निवास किया । उन आर्योंकी देवीके वरदानसे बहुत वृद्धि हुई । काश्यप मुनिका राज्यकाल एक सौ बीस वर्षतक रहा । राज्यपुत्र नामक देशमें आठ हजार शूद्र हुए । उनके राजा आर्य पृथु हुए । उनसे ही मागधकी उत्पत्ति हुई । मागध नामके पुत्रका अभिषेककर पृथु चले गये । यह सुनकर भृगुश्रेष्ठ शौनक आदि ऋषि प्रसन्न हो गये । फिर वे पौराणिक सूतको नमस्कार कर विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो गये । चार वर्षतक ध्यानमें रहकर वे उठे और नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंको सम्पन्न कर पुनः सूतजीके पास गये और बोले—‘लोमहर्षणजी ! अब आप मागध राजाओंका वर्णन करें । किन मागधोंने कलियुगमें राज्य किया, हे व्यासशिष्य ! आप हमें यह बतायें ।’

सूतजीने कहा—मगध-प्रदेशमें काश्यपपुत्र मागधने पितासे प्राप्त राज्यका भार वहन किया । उन्होंने आर्यदेशको अलग कर दिया । पाञ्चाल (पंजाब)-से पूर्वका देश मगध^२ देश कहा जाता है । मगधकी आगेय दिशामें कलिंग (उड़ीसा), दक्षिणमें अवन्तिदेश, नैऋत्यमें आनंद (गुजरात),

१-ब्रह्मावर्त मुख्यरूपसे गङ्गाका उत्तरी भाग है, जो विजनीरसे लेकर प्रयागतक और उत्तरमें नैमियारण्यतक फैला है ।

२-यहाँसे लेकर आगे उदयाश्तक मगधके राजवंशका वर्णन है, जिनकी राजधानी राजगृह थी ।

पश्चिममें सिन्धुदेश, वायव्य दिशामें कैकयदेश, उत्तरमें मद्रदेश और ईशानमें कुलिन्द देश है। इस प्रकार आर्यदेशका उन्होंने भेद किया। इस देशका नामकरण महात्मा मागधके पुत्रने किया था। अनन्तर राजाने यज्ञके द्वारा बलरामजीको प्रसन्न किया, इसके फलस्वरूप बलभद्रके अंशसे शिशुनागका जन्म हुआ, उसने सौ वर्षतक राज्य किया। उसे काकवर्मा नामका पुत्र हुआ, उसने नब्बे वर्षतक राज्य किया। उसे क्षेमधर्मा नामका पुत्र हुआ, उसने अस्सी वर्ष राज्य किया। उसका पुत्र क्षेत्रीजा हुआ, उसने सत्तर वर्षतक राज्य किया। उसके वेदमित्र नामक पुत्र हुआ, उसने साठ वर्षतक शासन किया। उसे अजातरिपु (अजातशत्रु) नामक पुत्र हुआ, उसने पचास वर्षतक राज्य किया। उसका पुत्र दर्भक हुआ, उसने चालीस वर्षतक राज्य किया। उसे उदयाश्वर^१ नामका पुत्र हुआ, उसने तीस वर्षतक शासन किया। उसका पुत्र नन्दवर्धन हुआ, उसने बीस वर्षतक शासन किया। नन्दवर्धनका पुत्र नन्द हुआ, उसने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। नन्दके प्रनन्द हुआ, जिसने दस वर्ष राज्य किया। उससे परानन्द हुआ, उसने अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक ही राज्य किया। उससे समानन्द हुआ, उसने बीस वर्ष राज्य किया। उससे प्रियानन्द हुआ, उसने भी पिताके समान वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र देवानन्द हुआ, उसने भी पिताके समान राज्य किया। देवानन्दका पुत्र यज्ञभंग हुआ, उसने अपने पिताके आधे वर्षोंतक (दस वर्ष) राज्य किया। उसका पुत्र

मौर्यनन्द और उसका पुत्र महानन्द हुआ। दोनोंने अपने-अपने पिताके समान वर्षोंतक राज्य किया। इसी समय कलिने हरिका स्मरण किया। अनन्तर प्रसिद्ध गौतम नामक देवताकी काश्यपसे उत्पत्ति हुई। उसने बौद्धधर्मको संस्कृतकर पट्टण नगर (कपिलवस्तु)-में प्रचार किया और दस वर्षतक राज्य किया^२। उससे शाक्यमुनिका जन्म हुआ, उसने भी बीस वर्षतक राज्य किया। उससे शुद्धोदन नामक पुत्र हुआ, उसने तीस वर्षतक शासन किया। उससे शक्यसिंहका जन्म हुआ। कलियुगके दो हजार वर्ष व्यतीत हो जानेके बाद शताद्रिमें उसने शासन किया। कलिके प्रथम चरणमें वेदमार्गको उसने विनष्ट कर दिया और साठ वर्षतक उसने राज्य किया। उस समय प्रायः सभी बौद्ध हो गये। विष्णुस्वरूप उसके राजा होनेपर जैसा राजा था, वैसी ही प्रजा हो गयी, क्योंकि विष्णुकी शक्तिके अनुसार ही जगत्‌में धर्मकी प्रवृत्ति होती है। जो मनुष्य मायापति हरिकी शरणमें जाते हैं, वे उनकी कृपाके प्रभावसे मोक्षके भागी हो जाते हैं। शक्यसिंहका पुत्र बुद्धसिंह हुआ, उसने तीस वर्ष राज्य किया। उसका पुत्र (शिष्य) चन्द्रगुप्त^३ हुआ, जिसने पारसीदेशके राजा सुलूब (सेल्यूक्स)-की पुत्रीके साथ विवाह कर यवन-सम्बन्धी बौद्धधर्मका प्रचार किया। उसने साठ वर्षतक शासन किया। चन्द्रगुप्तका पुत्र बिन्दुसार (बिम्बसार) हुआ। उसने भी पिताके समान राज्य किया। उसका पुत्र अशोक हुआ। उसी समय कान्यकुब्ज देशका एक ब्राह्मण आबू पर्वतपर

१-इसीने राजगृहसे हटाकर राजधानी गङ्गाके किनारे बसायी और उसका नाम पाटलिपुत्र या पटना पड़ा। इसके आगेरे राजागण पटनासे ही भारतका शासन करते थे।

२-यहाँसे आगे अब लिच्छवि राज्यवंशका वर्णन है, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी।

३-अब यहाँ फिर पाटलिपुत्रके राजवंशका वर्णन प्रारम्भ हुआ और यह चन्द्रगुप्त ही मौर्यवंशका पहला राजा था। जिसने भारतके साथ अन्य देशोंपर अधिकार किया था, जिन्हें बादमें अशोकने बौद्ध देश बना डाला। उन दिनों वे सभी देश भारतके ही उपनिवेश थे। जिसका यहाँ आगे वर्णन है। चन्द्रगुप्तने ही सेल्यूक्सकी पुत्रीसे शादी की थी।

चला गया और वहाँ उसने विधिपूर्वक ब्रह्महोत्र सम्पन्न किया। वेदमन्त्रोंके प्रभावसे यज्ञकुण्डसे चार क्षत्रियोंको उत्पत्ति हुई—प्रमर—परमार (सामवेदी), चपहानि—चौहान (कृष्णयजुर्वेदी), त्रिवेदी—गहरवार (शुक्ल यजुर्वेदी) और परिहारक (अथर्ववेदी) क्षत्रिय थे। वे सब ऐरावत-कुलमें

उत्पन्न गजोंपर आरूढ़ होते थे। इन लोगोंने अशोकके वंशजोंको अपने अधीन कर भारतवर्षके सभी बौद्धोंको नष्ट कर दिया।

अवन्त्में प्रमर—परमार राजा हुआ। उसने चार योजन विस्तृत अम्बावती नामक पुरीमें स्थित होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया। (अध्याय ६)

महाराज विक्रमादित्यके चरित्रका उपक्रम

सूतजी बोले—शौनक! चित्रकूट पर्वतके आसपासके क्षेत्र (प्रायः आजके पूरे बुन्देलखण्ड एवं बघेलखण्ड)-में परिहार नामका एक राजा हुआ। उसने रमणीय कलिंजर नगरमें रहकर अपने पराक्रमसे बौद्धोंको परास्त कर पूरी प्रतिष्ठा प्राप्त की। राजपूतानेके क्षेत्र (दिल्ली नगर)-में चपहानि—चौहान नामक राजा हुआ। उसने अति सुन्दर अजमेर नगरमें रहकर सुखपूर्वक राज्य किया। उसके राज्यमें चारों वर्ण स्थित थे। आनर्त (गुजरात)-देशमें शुक्ल नामक राजा हुआ, उसने द्वारकाको राजधानी बनाया।

शौनकजीने कहा—हे महाभाग! अब आप अग्रिवंशी राजाओंका वर्णन करें।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! इस समय मैं योगनिद्राके वशमें हो गया हूँ। अब आपलोग भी भगवान्‌का ध्यान करें। अब मैं थोड़ा विश्राम करूँगा। यह सुनकर मुनिगण भगवान् विष्णुके ध्यानमें लीन हो गये। लम्बे अन्तरालके बाद ध्यानसे उठकर सूतजी पुनः बोले—महामुने! कलियुगके सेंतीस सौ दस वर्ष व्यतीत होनेपर प्रमर नामक राजाने राज्य करना प्रारम्भ किया। उन्हें महामद (मुहम्मद) नामक पुत्र हुआ, जिसने पिताके शासन-कालके आधे समयतक राज्य किया। उसे देवापि नामक

पुत्र हुआ, उसने भी पिताके ही तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। उसे देवदूत नामक पुत्र हुआ, उसके गन्धर्वसेन नामक पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्षतक राज्य किया। वह अपने पुत्र शङ्खका अभिषेक कर वन चला गया। शङ्खने तीस वर्षतक राज्यभार सँभाला। उसी समय देवराज इन्द्रने वीरमती नामक एक देवाङ्गनाको पृथ्वीपर भेजा। शङ्खने वीरमतीसे गन्धर्वसेन नामक पुत्रलक्ष्मी को प्राप्त किया। पुत्रके जन्म-समयमें आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई और देवताओंने दुंदुभी बजायी। सुखप्रद शीतल-मन्द वायु बहने लगी। इसी समय अपने शिष्योंसहित शिवदृष्टि नामके एक ब्राह्मण तपस्याके लिये वनमें गये और शिवकी आराधनासे वे शिवस्वरूप हो गये।

तीन हजार वर्ष पूर्ण होनेपर जब कलियुगका आगमन हुआ, तब शकोंके विनाश और आर्यधर्मकी अभिवृद्धिके लिये वे ही शिवदृष्टि गुह्यकोंकी निवासभूमि कैलाससे भगवान् शंकरकी आज्ञा पाकर पृथ्वीपर विक्रमादित्य नामसे प्रसिद्ध हुए। वे अपने माता-पिताको आनन्द देनेवाले थे। वे बचपनसे ही महान् बुद्धिमान् थे। बुद्धिविशारद विक्रमादित्य पाँच वर्षकी ही बाल्यावस्थामें तप करने वनमें चले गये। बारह वर्षोंतक प्रयत्नपूर्वक तपस्या कर वे ऐश्वर्य-सम्पन्न हो गये। उन्होंने

अम्बावती नामक दिव्य नगरीमें आकर बत्तीस मूर्तियोंसे समन्वित, भगवान् शिवद्वारा अभिरक्षित रमणीय और दिव्य सिंहासनको सुशोभित किया। भगवती पार्वतीके द्वारा प्रेषित एक वैताल उनकी रक्षामें सदा तत्पर रहता था। उस बीर राजाने महाकालेश्वरमें जाकर देवाधिदेव महादेवकी पूजा की और अनेक व्यूहोंसे परिपूर्ण धर्म-सभाका निर्माण किया। जिसमें विविध मणियोंसे विभूषित अनेक धातुओंके स्तम्भ थे। शौनकजी! उसने अनेक लताओंसे पूर्ण, पुष्पान्वित स्थानपर अपने

दिव्य सिंहासनको स्थापित किया। उसने वेद-वेदाङ्ग-पारंगत मुख्य ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिवत् उनकी पूजाकर उनसे अनेक धर्म-गाथाएँ सुनीं। इसी समय वैताल नामक देवता ब्राह्मणका रूप धारण कर ‘आपकी जय हो’, इस प्रकार कहता हुआ वहाँ आया और उनका अभिवादन कर आसनपर बैठ गया। उस वैतालने राजासे कहा—‘राजन्! यदि आपको सुननेकी इच्छा हो तो मैं आपको इतिहाससे परिपूर्ण एक रोचक आख्यान सुनाता हूँ*’ इसे आप सुनें। (अध्याय ७)

॥ प्रतिसर्गपर्व, प्रथम खण्ड सम्पूर्ण ॥



* भारतवर्षमें विक्रमादित्य अत्यन्त प्रसिद्ध दानी, परोपकारी और सर्वाङ्ग-सदाचारी राजा हुए हैं। स्कन्द आदि पुराणों, वृहत्कथा और द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, सिंहासनबत्तीसी, कथासरित्सागर, पुरुष-परीक्षा आदि ग्रन्थोंमें इनका चरित्र वर्णित है। अब इधर कैम्बिजके इतिहासके दूसरे भागमें इनका चरित्र आया है। वैसे स्मिथ और रिफिन्स्टन आदिने अनेक विक्रमादित्योंकी चर्चा की है, पर ये महाराज विक्रमादित्य उज्ज्यनीके राजा थे और कालिदास, अमरसिंह, वराहमिहir, वैद्यराज धन्वन्तरि, घटकर्पर आदि नवरत्न इनकी ही राजसभाकी दिव्य विद्विभूतियाँ थे। जिनकी आगे-पीछे कोई उपमा नहीं है। राजा भोजसे लेकर बादशाह अकबरतक सभीने अपनी सभाको वैसे ही नवरत्नोंसे अलंकृत करनेका प्रयत्न किया था।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्रतिसर्गपर्व (द्वितीय खण्ड)

स्वामी एवं सेवककी परस्पर भक्तिका आदर्श *

(राजा रूपसेन तथा वीरवरकी कथा)

सूतजी बोले—महामुने ! एक बार रुद्रकिंकर वैतालने सर्वप्रथम भगवान् शंकरका ध्यान किया और फिर महाराज विक्रमादित्यसे इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—

राजन् ! अब आप एक मनोहर कथा सुनें। प्राचीन कालमें सर्वसमृद्धिपूर्ण वर्धमान नामक नगरमें रूपसेन नामका एक धर्मात्मा राजा रहता था। उसकी पतित्रता रानीका नाम विद्वन्माला था। एक दिन राजाके दरबारमें वीरवर नामका एक क्षत्रिय गुणी व्यक्ति अपनी पत्नी, कन्या एवं पुत्रके साथ वृत्तिके लिये उपस्थित हुआ। राजाने उसकी विनयपूर्ण बातोंको सुनकर प्रतिदिन एक सहस्र स्वर्णमुद्रा वेतन निर्धारित कर महलके सिंहद्वारपर रक्षकके रूपमें उसकी नियुक्ति कर ली। कुछ दिन बाद राजाने अपने गुसचरोंसे जब उसकी आर्थिक स्थितिका पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वह अपना अधिकांश द्रव्य यज्ञ, तीर्थ, शिव तथा विष्णुके मन्दिरोंमें आराधनादि कार्योंमें तथा साधु, ब्राह्मण एवं अनाथोंमें वितरित कर अत्यल्प शेषसे अपने परिजनोंका पालन करता है। इससे प्रसन्न होकर राजाने उसकी स्थायी नियुक्ति कर दी।

एक दिन जब आधी रातमें मूसलाधार वृष्टि, बादलोंकी गरज, बिजलीकी चमक एवं झङ्घावातसे रात्रिकी विभीषिका सीमा पार कर रही थी, उसी समय शमशानसे किसी नारीकी करुणक्रन्दन-ध्वनि

राजाके कानोंमें पड़ी। राजाने सिंहद्वारपर उपस्थित वीरवरसे इस रुदन-ध्वनिका पता लगानेके लिये कहा। जब वीरवर तलवार लेकर चला, तब राजा भी उसके भयकी आशंका तथा उसके सहयोगके लिये एक तलवार लेकर गुपरूपसे स्वयं उसके पीछे लग गया। वीरवरने शमशानमें पहुँचकर एक स्त्रीको वहाँ रोते देखा और उससे जब इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि ‘मैं इस राज्यकी लक्ष्मी—राष्ट्रलक्ष्मी हूँ—इसी मासके अन्तमें राजा रूपसेनकी मृत्यु हो जायगी। राजाकी मृत्यु हो जानेपर मैं अनाथ होकर कहाँ जाऊँगी’—इसी चिन्तासे मैं रो रही हूँ।

स्वामिभक्त वीरवरने राजाके दीर्घायु होनेका उससे उपाय पूछा। इसपर वह देवी बोली—‘यदि तुम अपने पुत्रकी बलि चण्डिकादेवीके सामने दे सको तो राजाके आयुकी रक्षा हो सकती है।’ फिर क्या था, वीरवर उलटे पाँव घर लौट आया और अपनी पत्नी, पुत्र तथा लड़कीको जगाकर उनकी सम्मति लेकर उनके साथ चण्डिकाके मन्दिरमें जा पहुँचा। राजा भी गुपरूपसे उसके पीछे-पीछे सर्वत्र चलता रहा। वीरवरने देवीकी प्रार्थना कर अपने स्वामीकी आयु बढ़ानेके लिये अपने पुत्रकी बलि चढ़ा दी। भाईका कटा सिर देखकर दुःखसे उसकी बहिनका हृदय विदीर्ण हो गया—वह मर गयी और इसी शोकमें उसकी

* भारतवर्षमें प्राचीन कालसे ‘वैताल-पञ्चविंशतिका’ या ‘वैतालपचीसी’ की कथाएँ, जो विक्रम-वैताल-संवादके रूपमें लोकमें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, उनका मूल भविष्यपुराण ही प्रतीत होता है। ये कथाएँ स्त्री-पुरुषोंके अमर्यादित एवं अनैतिक आकर्षणसे समन्वित होते हुए भी लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे शिक्षाप्रद भी हैं। अतः उनमेंसे कुछ कथाएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

माता भी चल बसी। वीरवर इन तीनोंका दाह-संस्कार कर स्वयं भी राजाकी आयुकी वृद्धिके लिये बलि चढ़ गया।

राजा छिपकर यह सब देख रहा था। उसने देवीकी प्रार्थना कर अपने जीवनको व्यर्थ बताते हुए अपना सिर काटनेके लिये ज्यों ही तलवार खींची, त्यों ही देवीने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—‘राजन्! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी आयु तो सुरक्षित हो ही गयी, अब तुम अपने इच्छानुसार वर माँग लो।’ राजाने देवीसे परिजनोंसहित वीरवरको जिलानेकी प्रार्थना की। ‘तथास्तु’ कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं। राजा प्रसन्न होकर चुपके-से वहाँसे चलकर अपने महलमें आकर लेट गया। इधर वीरवर भी चकित होता हुआ और देवीकी कृपा मानता हुआ अपने पुनर्जीवित परिवारको घरपर छोड़कर राजप्रासादके सिंहद्वारपर आकर खड़ा हो गया।

अनन्तर राजाने वीरवरको बुलाकर रातमें रोनेवाली नारीके रुदनका कारण पूछा तो वीरवरने कहा—‘राजन्! वह तो कोई चुड़ैल थी, मुझे देखते ही वह अदृश्य हो गयी। चिन्ताकी कोई बात नहीं है।’ वीरवरकी स्वामिभक्ति और धीरताको

देखकर राजा रूपसेन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपनी कन्याका विवाह वीरवरके पुत्रसे कर दिया तथा उसे अपना मित्र बना लिया। इतनी कथा कहकर वैताल शान्त हो गया। वैतालने राजा विक्रमसे फिर पूछा—‘राजन्! इस कथामें परस्पर सबने एक-दूसरेके लिये स्नेहवश अपने प्राणोंका उत्सर्ग किया, पर सबसे अधिक स्नेह और त्याग किसका था? यह आप बताइये।’

राजा बोले—यद्यपि सभीने अपने-अपने कर्तव्यका अद्भुत आदर्श उपस्थित किया, फिर भी राजाका स्नेह ही सबसे अधिक मान्य प्रतीत होता है, क्योंकि वीरवर राजसेवक था, उसे अपनी सेवाके प्रतिफलमें स्वर्णमुद्राएँ मिलती थीं, अतः उसने स्वर्णप्राप्तिकी दृष्टिसे अपना उत्सर्ग किया, वीरवरकी पत्नी पतिव्रता थी, धर्मस्नेही थी, इसलिये उसने अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। बहिनका अपने भाईमें प्रेम था, पुत्रका अपने पितामें स्नेह था, यह तो स्वभाववश होता ही है, किंतु राजा रूपसेनने महान् स्नेहका आदर्श उपस्थित किया, जो कि वे एक सामान्य सेवकके लिये भी अपना प्राणोत्सर्ग करनेको उद्यत हो गये, अतः उन्हींका स्नेहमय त्याग महान् त्याग है।

ब्राह्मण-पुत्री महादेवीकी कथा

वैतालने कहा—राजन्! उज्जयिनी नामकी नगरीमें चन्द्रवंशमें उत्पन्न महाबल नामसे विख्यात अत्यन्त बुद्धिमान् तथा वेदादि-शास्त्रोंका ज्ञाता एक राजा निवास करता था। उसका स्वामिभक्त हरिदास नामका एक दूत था। हरिदासकी पत्नी भक्तिमाला साधु पुरुषोंकी सेवामें तत्पर रहती थी। भक्तिमालाको सभी विद्याओंमें पारंगत कमलके समान नेत्रवाली अत्यन्त रूपवती एक कन्या उत्पन्न हुई, उसका नाम था महादेवी। एक दिन महादेवीने अपने

पिता हरिदाससे कहा—‘तात! आप मुझे ऐसे योग्य पुरुषको दीजियेगा, जो गुणोंमें मुझसे भी अधिक हो, अन्य किसीको नहीं।’ अपनी पुत्रीकी बात सुनकर हरिदास बड़ा प्रसन्न हुआ और ‘ऐसा ही होगा’—कहकर हरिदास राजसभामें आया और उसने राजाका अभिनन्दन किया। तदनन्तर राजाने कहा—‘हरिदास! तुम मेरे ससुर तैलंग देशके राजा हरिश्चन्द्रके पास जाओ और उनका कुशल-समाचार जानकर शीघ्र ही मुझे

बताओ।' हरिदास आज्ञा पाकर राजा हरिश्चन्द्रके पास गया और उसने उन्हें अपने स्वामी महाबलका कुशल-समाचार बतलाया। सारा कुशल-समाचार जानकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने हरिदाससे पूछा—'प्रभो! आप विद्वान् हैं, मुझे यह बतायें कि कलिका आगमन हो गया, यह कैसे मालूम होगा?

हरिदासने कहा—राजन्! जब वेदोंकी मर्यादाएँ नष्ट हो जायें और वेदोक्त धर्म विपरीत दिखलायी देने लगें, तब कलिका आगमन समझना चाहिये, साथ ही कलिके प्रिय म्लेच्छगण कहे गये हैं। अधर्म ही जिसका मित्र है, ऐसे कलिके द्वारा सभी देवताओंको अपमानित किया गया हो, तब कलिका आगमन समझना चाहिये। राजन्! पापकी स्त्रीका नाम है मृषा (असत्य), उसका पुत्र दुःख कहा गया है। दुःखकी स्त्री है दुर्गति, जो कलियुगमें घर-घरमें व्यास रहेगी। सभी राजा क्रोधके वशीभूत हो जायेंगे तथा सभी ब्राह्मण कामके दास हो जायेंगे। धनिक-वर्ग लोभके वशीभूत हो जायगा तथा शूद्रजन महत्त्वको प्राप्त करेंगे। स्त्रियाँ लज्जासे रहित होंगी और सेवक स्वामीके ही प्राण हरण करनेवाले होंगे। पृथ्वी निष्फल (सत्त्वशून्य) हो जायगी। ऐसी स्थितिमें समझना चाहिये कि कलिका आगमन हो गया है, किंतु कलियुगमें जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिकी शरणमें जायेंगे, वे ही आनन्दसे रह पायेंगे, अन्य कोई नहीं।

यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे बहुत-सी दक्षिणा देकर बिदा किया तथा राजा महाबलको सम्पूर्ण समाचार देकर अपने महलमें चला आया और वह विप्र भी अपने शिविरमें आ गया। उसी समय एक बुद्धिकोविद नामक बुद्धिमान् ब्राह्मण वहाँ आया और उसने अपनी विशिष्ट विद्याओंका हरिदासके

सामने प्रदर्शन किया—उस ब्राह्मणने मन्त्र जपकर देवीकी आराधना की और एक महान् आश्वर्यजनक शीघ्रग नामक विमान प्रकटकर हरिदासको दिखलाया। उसकी विद्याओंसे मुग्ध होकर हरिदासने उसे अपनी कन्याके योग्य समझकर उसका वरण कर लिया।

हरिदासका पुत्र था मुकुन्द। वह विद्याध्ययनके लिये अपने गुरुके यहाँ गया था, जब वह अपने गुरुसे विद्याओंको पढ़ चुका तो गुरुदक्षिणाके लिये प्रार्थना करने लगा। गुरुने उससे कहा—‘अरे मुकुन्द! सुनो, तुम गुरुदक्षिणाके रूपमें अपनी बहिन महादेवी मेरे दैवज्ञ पुत्र धीमान्को समर्पित कर दो।’ ‘ठीक है’—ऐसा कहकर मुकुन्द अपने घर आ गया।

इधर हरिदासकी पत्नी भक्तिमालाने द्रौणिशिष्य वामन नामक एक विप्रका जो शब्दवेधी बाण चलानेमें कुशल एवं शस्त्रविद्याका ज्ञाता था, उसकी विद्यासे प्रभावित होकर अपनी कन्याके लिये दक्षिणा, ताम्बूल आदिके द्वारा पूजित कर उसका वरण कर लिया।

समय आनेपर पिता, पुत्र तथा माताद्वारा वरण किये गये तीनों गुणवान् ब्राह्मण महादेवी नामवाली उस कन्याको प्राप्त करनेके लिये हरिदासके यहाँ आ पहुँचे। इसी बीच एक राक्षस अपनी मायासे उस कन्या महादेवीका हरण कर विन्ध्यपर्वतपर चला गया। यह समाचार जानकर ये तीनों कन्यार्थी दुःखी होकर रोने लगे। जब उनमेंसे गुरुपुत्र धीमान् नामक दैवज्ञ विद्वान् ब्राह्मणसे कन्याका पता पूछा गया तो उसने बतलाया कि वह कन्या विन्ध्यपर्वतपर राक्षसद्वारा हरण कर ले जायी गयी है। तदनन्तर उस कन्याकी प्राप्तिके लिये द्वितीय बुद्धिकोविद नाम ब्राह्मणने अपने द्वारा बनाये गये आकाशचारी विमानपर उन दोनों

विप्रोंको बैठाकर विन्ध्यपर्वतपर पहुँचाया। तब शब्दवेधी बाणोंको चलानेमें निपुण वामन नामक तीसरे ब्राह्मणने धनुषपर बाणका संधान किया और बाणसे उस राक्षसको मार डाला। वे तीनों कन्या महादेवीको प्राप्त कर उसी विमानमें बैठकर उज्जियनीमें वापस लौट आये।

वहाँ पहुँचकर तीनों ब्राह्मण अपने-अपने कार्यका महत्व बताते हुए कन्याके वास्तविक अधिकारी होनेके लिये परस्परमें विवाद करने लगे, यह निर्णय नहीं हो सका कि कन्याका विवाह किसके साथ हो।

वैतालने राजा विक्रमसे पूछा—राजन्! आप

बतलायें कि इन तीनोंमें विवाहका अर्थात् कन्या प्राप्त करनेका अधिकारी कौन है?

राजा विक्रमादित्यने कहा—जिस विद्वान् गुरुके पुत्र ज्योतिषी ब्राह्मणने कन्याका यह पता बताया कि वह राक्षसद्वारा चुराकर विन्ध्यपर्वतपर पहुँचायी गयी है, वह ब्राह्मण कन्याके लिये पितृतुल्य है और जिस दूसरे ब्राह्मण बुद्धिकोविदने अपने मन्त्रबलद्वारा उत्पन्न विमानसे महादेवी नामकी कन्याको यहाँ पहुँचाया, वह भाईके समान है, किंतु जिस वामन नामक ब्राह्मण युवकने शब्दवेधी बाणोंसे राक्षसके साथ युद्ध कर उसे मार गिराया, वही वीर ब्राह्मण इस कन्याको प्राप्त करनेका योग्य अधिकारी है।

समान-वर्णमें विवाह-सम्बन्धका औचित्य

(त्रिलोकसुन्दरीकी कथा)

वैताल पुनः बोला—राजन्! अब मैं एक दूसरी कथा सुनाता हूँ। चम्पापुरी (भागलपुर) नामकी एक प्रसिद्ध नगरी थी, वहाँ चम्पकेश नामका एक बलवान् और धनुर्धारी राजा रहता था। उसकी रानीका नाम था सुलोचना। उसके त्रिलोकसुन्दरी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका मुख चन्द्रमाके समान, भौंहें धनुषकी प्रत्यञ्चाके समान, नेत्र मृगके समान तथा शब्द कोकिलके समान थे। राजन्! उस बालासे देवता भी विवाह करना चाहते थे, अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या? उसके स्वयंवरमें लोकविश्रुत सभी राजा तथा देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर, धर्मराज और यम आदि देवता भी मनुष्यका शरीर धारण करके आये। उनमेंसे इन्द्रदत्तने कन्याके पिता राजा चम्पकसे कहा—‘राजन्! मैं सभी शास्त्रोंमें कुशल हूँ रूपवान् एवं मनोरम हूँ, अतः आप अपनी पुत्रीको मुझे समर्पित कर दें।’ दूसरे धर्मदत्तने कहा—‘राजन्! मैं धनुर्विद्यामें कुशल एवं मनोरम हूँ, आप अपनी

कन्या मुझे समर्पित करें।’ तीसरेने कहा—‘राजन्! मेरा नाम धनपाल है, मैं सभी प्राणियोंकी भाषा जानता हूँ, मैं गुणवान् और रूपवान् भी हूँ। आप अपनी कन्या मुझे समर्पित कर सुखी होइये।’ चौथेने कहा—‘राजन्! मैं सर्वकला-विशारद हूँ, प्रतिदिन अपने उद्योगसे पाँच रत्न प्राप्त करता हूँ, उनमेंसे पुण्यके लिये प्रथम रत्न, होमके लिये द्वितीय रत्न, आत्माके लिये तृतीय रत्न, पत्नीके लिये चतुर्थ रत्न तथा शेष अन्तिम रत्न भोजनके लिये व्यय करता हूँ। अतः आप अपनी कन्या मुझ सर्वकला-विशारदको प्रदान करें।’

यह सुनकर राजा आश्र्वयमें पड़ गया कि अपनी कन्या मैं किसे दूँ। वह कुछ निश्चय नहीं कर पाया। अन्तमें उसने सारी बातें कन्याको बतायीं और उससे पूछा कि तुम्हें इनमेंसे कौन-सा वर अभीष्ट है, पर कन्या त्रिलोकसुन्दरीने लज्जावश कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

वैतालने पूछा—राजन्! अब आप बतायें कि

उस कन्याके योग्य वर इनमेंसे कौन था ?

राजा बोला—रुद्रकिंकर ! वह रूपवती कन्या त्रिलोकसुन्दरी धर्मदत्तके योग्य है; क्योंकि इन्द्रदत्त वेदादि शास्त्रोंका ज्ञाता है, अतः वर्णसे वह द्विज कहा जायगा । भाषा जाननेवाला तथा धन-धान्यका विस्तार करनेवाला धनपाल वणिक् कहा जायगा ।

तृतीय जो कलाविद् है और रत्नोंका व्यापार करता है, वह शूद्र कहलायेगा । वैताल ! सर्वणके लिये ही कन्या योग्य होती है, अतः धनुर्वेद-शास्त्रमें जो निपुण धर्मदत्त है, वह वर्णसे क्षत्रिय कहलायेगा, इसलिये उस क्षत्रिय कन्याका विवाह धर्मदत्तके साथ ही किया जाना चाहिये ।

विषयी राजा राज्यके विनाशका कारण बनता है

(राजा धर्मवल्लभ और मन्त्री सत्यप्रकाशकी कथा)

वैतालने पुनः राजासे कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें रमणीय पुण्यपुर (पूना) नगरमें धर्मवल्लभ नामका एक राजा राज्य करता था । उसका मन्त्री सत्यप्रकाश था । मन्त्रीकी स्त्रीका नाम था लक्ष्मी । एक बार राजा धर्मवल्लभने मन्त्रीसे कहा—‘मन्त्रिवर ! आनन्दके कितने भेद हैं ? यह मुझे बताओ ।’ उसने कहा—‘महाराज ! आनन्द चार प्रकारके हैं— (१) ब्रह्मचर्याश्रमका आनन्द जो ब्रह्मानन्द है, वह श्रेष्ठ है । (२) गृहस्थाश्रमका विषयानन्द मध्यम है । (३) वानप्रस्थका धर्मानन्द सामान्य है और (४) संन्यासमें जो शिवानन्दकी प्राप्ति है, वह आनन्द उत्तमोत्तम है । राजन् ! इनमें गृहस्थाश्रमका विषयानन्द स्त्री-प्रधान है, क्योंकि गृहस्थाश्रममें स्त्रीके बिना सुख नहीं मिलता ।’

यह सुनकर राजा अपने अनुकूल धर्मपरायणा पत्नी प्राप्त करनेके लिये अन्य देशमें चला गया, किंतु उसे मनोऽनुकूल पत्नी नहीं प्राप्त हुई । तब उसने अपने मन्त्रीसे कहा—‘मेरे अनुरूप कोई स्त्री दृঁঢ়ো ।’ यह सुनकर मन्त्री विभिन्न देशोंमें गया । पर जब कहीं भी उसे राजाके योग्य स्त्री नहीं मिली तो वह सिन्धु देशमें आकर समुद्रकी

ओर बढ़ा । सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ सिन्धुको देखकर वह प्रसन्न हुआ । मन्त्री सत्यप्रकाशने समुद्रसे इस प्रकार प्रार्थना की—‘सभी रत्नोंके आलय, सिन्धुदेशके स्वामिन् ! आपको नमस्कार है । शरणागतवत्सल ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, गङ्गा आदि नदियोंके स्वामी जलाधीश ! आपको नमस्कार है । मेरे राजाके लिये आप उत्तम स्त्री-रत्न प्रदान करें । यदि ऐसा आप नहीं करेंगे तो मैं अपने प्राण यहीं दे दूँगा ।’ नदीपति सागर यह स्तुति सुनकर प्रसन्न हो गये और उसे जलमें विद्वुमके पत्तोंवाले, मुक्तारूपी फलसे समन्वित एक वृक्षको दिखाया, जिसके ऊपर मनोरमा, सुकुमारी एक सुन्दरी कन्या स्थित थी । पर कुछ ही क्षणोंमें देखते-ही-देखते वह कन्या वृक्षसहित पुनः जलमें लीन हो गयी ।

यह देखकर अतिशय आश्वर्यचकित होकर मन्त्री सत्यप्रकाश पुनः राजाके पास लौट आया और उसने सारी बातें राजाको सुनायीं । पुनः दोनों समुद्रके किनारे आये । राजाने भी मन्त्रीके समान ही कन्याको वृक्षपर बैठा देखा और राजाके देखते ही वह कन्या पूर्ववत् जलमें प्रविष्ट हो गयी । इस अद्भुत दृश्यको देखकर राजा भी समुद्रमें

प्रविष्ट हो गया तथा उसी कन्याके साथ पातालमें पहुँच गया और मन्त्री वापस लौट आया।

राजाने कहा—वरानने! मैं तुम्हारे लिये यहाँ आया हूँ। गान्धर्व विवाहसे मुझे प्राप्त करो। उसने हँसकर कहा—‘नृपश्रेष्ठ! जब कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथि आयेगी, तब मैं देवी-मन्दिरमें आकर तुम्हें मिलूँगी।’ राजा लौट आया और पुनः कृष्ण चतुर्दशीके दिन हाथमें तलवार लेकर देवीके मन्दिरमें गया। वह कन्या राजासे पूर्व ही मन्दिरमें पहुँच चुकी थी। उसी समय बकवाहन नामके एक राक्षसने आकर उस कन्याका स्पर्श किया। यह देखकर राजा क्रोधान्ध हो गया। उसने राक्षसका सिर तलवारसे काट दिया। पुनः उस कन्यासे कहा—‘भामिनि! तुम सत्य बताओ, यह कौन था और यहाँ कैसे आया?’ उसने कहा—‘राजन्! मैं विद्याधरकी कन्या हूँ। मेरा नाम मदवती है। मैं पिताजीकी प्रिय कन्या हूँ। एक बार मैं किसी समय वनमें गयी थी और भोजनके समय पितामाताके पास घरमें नहीं पहुँच सकी थी। मेरे पिताजीने ध्यानके द्वारा सारा वृत्तान्त जान लिया, उन्होंने मुझे शाप दे दिया कि मदवती! कृष्ण चतुर्दशीको तुमको राक्षस ग्रहण करेगा।’ जब मुझे शापकी बात मालूम हुई, तब मैंने रोते हुए पिताजीसे पूछा—‘देव! मेरी इस शापसे मुक्ति कब होगी?’ उन्होंने कहा—‘पुत्री! जब कृष्ण चतुर्दशीको कोई राजा तुम्हारा वरण करेगा, तब तुम्हारे शापकी निवृत्ति हो जायगी।’

मदवतीने कहा—राजन्! आपके अनुग्रहसे आज

मैं शापसे मुक्त हो गयी हूँ। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं अपने पिताके घर जाना चाहती हूँ। यह सुनकर राजाने कहा—‘तुम मेरे साथ मेरे घर चलो।’ इसके बाद मैं तुम्हें तुम्हारे पिताके पास ले चलूँगा।’ वह राजाकी बात मानकर राजाके महलमें आ गयी और राजासे उसका विवाह हो गया। उस राजाके नगरमें महान् उत्सव हुआ। मन्त्रीने देखा कि राजाके साथ एक दिव्य कन्या भी आयी है। कुछ दिनों बाद मन्त्री एकाएक मृत्युको प्राप्त हो गया।

वैतालने पूछा—राजन्! बताओ, उस मन्त्रीके मरनेमें क्या कारण है? क्या रहस्य है?

राजा विक्रमने कहा—मन्त्री सत्यप्रकाश राजाका मित्र और प्रजाका परम हितैषी था। उसके ही समुद्योगसे राजाको श्रेष्ठ मदवती नामकी विद्याधर-कन्या रानीके रूपमें प्राप्त हुई थी, किंतु मदवतीके साथ विवाहके बाद मन्त्री सत्यप्रकाशने देखा कि राजा मदवतीको पाकर विलासी होते जा रहे हैं। और राज्य एवं प्रजाकी उपेक्षा करने लगे हैं। दिन-रात विषय-सुखमें ही लिस रहने लगे हैं। यह देखकर उसने समझ लिया कि अब शीघ्र ही इस राज्यका विनाश होनेवाला है; क्योंकि जब राजा विषयी एवं स्वार्थी बन जाता है, तब राज्यका नाश अवश्य होता है। ऐसी स्थितिमें मेरी मन्त्रणाएँ भी व्यर्थ सिद्ध होंगी, अतः राज्यके विनाशको मैं अपनी आँखोंसे न देख सकूँ, इसलिये पहले ही मैं अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर देता हूँ। वैताल! यही समझकर मन्त्री सत्यप्रकाशने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया।

किये गये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है (हरिस्वामीकी कथा)

बैतालने पुनः कहा—राजन्! चूड़ापुर नामक एक रमणीय नगरमें चूड़ामणि नामका एक राजा राज्य करता था। उसकी विशालाक्षी नामकी पतिव्रता पत्नी थी। रानीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी आराधना की। उनकी कृपासे उसे कामदेवके समान एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ, जो देवताओंके अंशसे सम्भूत था। उसका नाम रखा गया हरिस्वामी। सभी सम्पत्तियोंसे समन्वित वह हरिस्वामी पृथ्वीपर देवताके समान सुख भोगने लगा। देवलमुनिके शापसे एक देवाङ्गना मानुषीरूपमें रूपलावण्यका नामसे उत्पन्न होकर राजकुमार हरिस्वामीकी पत्नी हुई। एक समय वह सुन्दरी अपने प्रासादमें आनन्दपूर्वक शश्यापर शयन कर रही थी। उस समय सुकल नामका एक गन्धर्व आया और उसने प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न उस रानीका अपहरण कर लिया। जब हरिस्वामी उठा, तब अपनी पत्नीको न देखकर उसे ढूँढ़ने लगा। उसके न मिलनेपर वह व्याकुल हो गया और नगर छोड़कर वनमें चला गया तथा सभी विषयोंका परित्याग कर एकमात्र भगवान् श्रीहरिके ध्यानमें लीन हो गया और भिक्षावृत्तिका आश्रय ग्रहण कर संन्यासी हो गया।

एक दिन वह संन्यासी (राजा हरिस्वामी) भिक्षा माँगनेके लिये एक ब्राह्मणके घर आया और ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक खीर बनाकर उसको दी। खीरका पात्र लेकर वह वहाँसे स्नान करने चला आया। खीरका पात्र उसने वटवृक्षपर रख दिया और स्वयं नदीमें स्नान करने लगा। उसी समय कहींसे एक सर्प आया और उसने उस खीरमें अपने मुँहसे विष उगल दिया। जब संन्यासी हरिस्वामी स्नानसे आकर खीर खाने लगा तो विषके प्रभावसे वह बेहोश

होने लगा और उस ब्राह्मणके पास आकर कहने लगा—‘अरे दुष्ट ब्राह्मण! तुम्हारे द्वारा दिये गये विषमय खीरको खाकर अब मैं मर रहा हूँ। इसलिये तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप लगेगा।’ यह कहकर वह संन्यासी मर गया और उसने अपनी तपस्याके प्रभावसे शिवलोकको प्राप्त किया।

बैतालने राजासे पूछा—राजन्! इनमें ब्रह्महत्याका पाप किसको लगेगा? यह मुझे बताओ।

राजाने कहा—विषधर नागने अज्ञानवश स्वभावतः उस पायसको विषमय कर दिया, अतः ब्रह्महत्याका पाप उसे नहीं होगा।

चूँकि संन्यासी बुभुक्षित था और भिक्षा माँगने ब्राह्मणके घर आया था, ब्राह्मणके लिये वह अतिथि देवस्वरूप था। अतः अतिथिधर्मका पालन करना उसके कुल-धर्मके अनुकूल ही था। उसने श्रद्धासे खीर बनाकर संन्यासीको निवेदित किया; ऐसेमें वह कैसे ब्रह्महत्याका भागी बन सकता है? यदि वह विष मिलाकर अन्न देता, तभी ब्रह्महत्या उसे लगती, क्योंकि अतिथिका अपमान भी ब्रह्महत्याके समान ही है। अतः ब्राह्मणको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। शेष बच गया वह संन्यासी। चूँकि अपने किये गये शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है। अतः वह संन्यासी अपने किसी जन्मान्तरीय कर्मवश कालकी प्रेरणासे स्वतः ही मरा, उसकी मृत्यु स्वाभाविक रूपसे ही हुई। इसमें किसीका दोष नहीं। पायसका भोजन करना तो मरनेमें केवल निमित्तमात्र ही था। अतः उसे भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। इस प्रकार इन तीनोंमें किसीको भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी।

जीवन-दानका आदर्श

(जीमूतवाहन और शङ्खचूड़की कथा)

रुद्रकिंकर वैतालने राजा विक्रमादित्यसे कहा—महाराज ! कान्यकुब्ज (कन्नौज)-में दानशील, सत्यवादी एवं देवी-पूजनमें तत्पर एक ब्राह्मण रहता था । वह प्रतिग्रहसे प्राप्त द्रव्यका दान कर देता था । एक बार शारदीय नवदुर्गाका व्रत आया । उसे दानमें कुछ भी द्रव्य प्राप्त नहीं हो सका, अतः वह बहुत चिन्तित हो गया, सोचने लगा, कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मुझे द्रव्यकी प्राप्ति हो । मैंने दुर्गा-पूजामें कन्याओंको निमन्त्रित किया है, अब उन्हें कैसे भोजन कराऊँगा । वह इसी चिन्तामें निमग्न हो रहा था कि देवीकी कृपासे उसे अनायास पाँच मुद्राएँ प्राप्त हो गयीं और उसीसे उसने व्रत सम्पन्न किया । उसने नौ दिनोंतक निराहार व्रत किया था । उस व्रतके प्रभावसे मरकर उसने देवस्वरूपको प्राप्त किया । फलतः वह विद्याधरोंका स्वामी जीमूतकेतु हुआ । वह हिमालय पर्वतके रम्य स्थानमें रहता था । वहाँ वह भक्तिपूर्वक कल्पवृक्षकी पूजा भी करता था । उस वृक्षके प्रभावसे उसे सभी कलाओंमें कुशल जीमूतवाहन नामका एक पुत्र प्राप्त हुआ ।

पूर्वजन्ममें वह जीमूतवाहन मध्यदेशका शूरसेन नामक राजा था । किसी समय वह राजा शूरसेन आखेटके लिये महर्षि वाल्मीकिकी निवासभूमि उत्पलावर्त नामक वनमें आया । वहाँ चैत्र शुक्ला नवमीको उसने विधिवत् रामजन्मका श्रीरामनवमी-उत्सव किया । उसने महर्षि वाल्मीकिकी कुटीमें रात्रि-जागरण भी किया । राममयी गाथाके श्रवणजन्य पुण्यके प्रभावसे वह शूरसेन राजा ही जीमूतकेतुके पुत्र-रूपमें जीमूतवाहन नामक विद्याधर हुआ ।

उस महात्मा जीमूतवाहनने भी कल्पवृक्षकी श्रद्धापूर्वक पूजा की । एक वर्षके भीतर ही प्रसन्न

होकर उस वृक्षने उससे वर माँगनेको कहा । इसपर जीमूतवाहनने कहा—‘महावृक्ष ! मेरा नगर आपकी कृपासे धन-धान्य-सम्पन्न हो जाय । कल्पवृक्षने नगरको पृथ्वीमें सर्वश्रेष्ठ कर दिया । वहाँ कोई भी ऐसा नहीं था जो कल्पवृक्षके प्रभावसे राजाके समान न हो गया हो । अनन्तर वे पिता और पुत्र दोनों तपस्याके लिये वनमें चले गये और अतिशय रमणीय मलयाचलपर कठोर तपस्या करने लगे ।’

राजन् ! एक दिन राजा मलयध्वजकी पुत्री कमलाक्षी शिवकी पूजाके लिये अपनी सखियोंके साथ शिव-मन्दिरमें आयी । उसी समय जीमूतवाहन भी पूजाके लिये मन्दिरमें पहुँचा । सभी अलंकारोंसे अलंकृत दिव्य राजकन्याको देखकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा जीमूतवाहनको जाग्रत् हुई तथा इसके लिये उसने प्रार्थना भी की । अन्तमें कन्याके पिता मलयध्वजने जीमूतवाहनसे उसका विवाह करा दिया ।

राजा मलयध्वजका पुत्र विश्वावसु एक दिन अपने बहनोई जीमूतवाहनके साथ गन्धमादन पर्वतपर गया । वहाँ उसने नर-नारायणको प्रणाम किया । उसी शिखरपर भगवान् विष्णुका वाहन गरुड आया । उस समय शङ्खचूड नागकी माता, जहाँ जीमूतवाहन था वहाँ विलाप कर रही थी । स्त्रीके करुणक्रन्दनको सुनकर दीनवत्सल जीमूतवाहन दुःखी होकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा । वृद्धाको आश्वासन देकर उसने पूछा—‘तुम क्यों रो रही हो ? तुम्हें क्या कष्ट है ?’ वह बोली—‘देव ! आज मेरा पुत्र गरुडका भक्ष्य बनेगा, उसके वियोगके कारण दुःखसे व्याकुल होकर मैं रो रही हूँ ।’ यह सुनकर राजा जीमूतवाहन गरुड-शिखरपर गया । गरुड उसे अपना भक्ष्य समझकर पकड़कर आकाशमें ले गया । जीमूतवाहनकी

पत्नी कमलाक्षी आकाशमें गरुडके द्वारा भक्षण किये जाते हुए अपने पतिको देखकर दुःखसे रोने लगी। परंतु बिना कष्टके खाये जाते उस जीमूतवाहनको मानव-रूपमें देखकर गरुड डर गया और जीमूतवाहनसे कहने लगा—‘तुम मेरे भक्ष्य क्यों बन गये?’ इसपर उसने कहा—‘शङ्खचूड नागकी माता बड़ी दुःखी थी, उसके पुत्रकी रक्षाके लिये मैं तुम्हारे पास आया।’ जब यह घटना शङ्खचूड नागको मालूम हुई तो दुःखी होकर वह शीघ्र ही गरुडके पास आया और कहने लगा—‘कृपासागर! आपके भोजनके लिये मैं उपस्थित हूँ। महामते! इस दिव्य मनुष्यको छोड़कर मुझे अपना आहार बनाइये।’ जीमूतवाहनकी महानता और परोपकारकी भावना देखकर गरुड अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने विद्याधर जीमूतवाहनको तीन वर दिये। ‘अब मैं आगेसे कभी शङ्खचूडके वंशजोंको नहीं खाऊँगा। श्रेष्ठ जीमूतवाहन! तुम विद्याधरोंकी नगरीमें श्रेष्ठ राज्य प्राप्त करोगे और एक लाख वर्षतक आनन्दका उपभोग कर वैकुण्ठ प्राप्त करोगे।’ इतना कहकर गरुड अन्तर्हित हो गया और जीमूतवाहनने पितासे राज्य प्राप्त किया

तथा अपनी पत्नी कमलाक्षीके साथ राज्य-सुख भोगकर अन्तमें वह वैकुण्ठलोकको चला गया।

वैतालने राजासे पूछा—भूपते! अब आप बताइये कि शङ्खचूड तथा जीमूतवाहन—इन दोनोंमें किसको महान् फल प्राप्त हुआ और दोनोंमें कौन अधिक साहसी था?

राजा बोला—वैताल! शङ्खचूडको ही महान् फल प्राप्त हुआ; क्योंकि उपकार करना तो राजाका स्वभाव ही होता है। राजा जीमूतवाहनने शङ्खचूडके लिये यद्यपि अपना जीवन देकर महान् त्याग एवं उपकार किया, उसीके फलस्वरूप गरुडने प्रसन्न होकर उसे राज्य एवं वैकुण्ठ-प्राप्तिका वर प्रदान किया, तथापि राजा होनेसे जीमूतवाहनका जीवन-दान (नागकी रक्षा करना) कर्तव्यकोटिमें आ जाता है। अतः उसका त्याग शङ्खचूडके त्याग एवं साहसके सामने महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता, परंतु शङ्खचूडने निर्भय होकर अपने शत्रु गरुडको अपना शरीर समर्पित कर एक महान् धर्मात्मा राजाके प्राण बचाये थे। अतः शङ्खचूड ही सबसे बड़े फलका अधिकारी प्रतीत होता है। वैताल राजाके इस उत्तरसे संतुष्ट हो गया।

साधनामें मनोयोगकी महत्ता (गुणाकरकी कथा)

वैतालने पुनः कहा—राजन्! उज्जयिनीमें महासेन नामका एक राजा था। उसके राज्यमें देवशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। देवशर्माका गुणाकर नामक एक पुत्र था, जो द्यूत, मद्य आदिका व्यसनी था। उस दुष्ट गुणाकरने पिताका सारा धन द्यूत आदिमें नष्ट कर दिया। उसके बन्धुओंने उसका परित्याग कर दिया। वह पृथ्वीपर इधर-उधर भटकने लगा। दैवयोगसे गुणाकर एक सिद्धके

आश्रममें आया, वहाँ कपर्दी नामके एक योगीने उसे कुछ खानेको दिया, किंतु भूखसे पीड़ित होते हुए भी उसने उस अन्नको पिशाच आदिसे दूषित समझकर ग्रहण नहीं किया। इसपर उस योगीने उसके आतिथ्यके लिये एक यक्षिणीको बुलाया। यक्षिणीने आकर गुणाकरका आतिथ्य-स्वागत किया। तदनन्तर वह कैलास-शिखरपर चली गयी। उसके वियोगसे विह्वल होकर गुणाकर पुनः

योगीके पास आया। योगीने यक्षिणीको आकृष्ट करनेवाली विद्या गुणाकरको प्रदान की और कहा—‘वत्स ! तुम चालीस दिनतक जलमें स्थित रहकर आधी रातमें इस शुभ मन्त्रका जप करो। ऐसा करनेपर यदि तुम मन्त्र सिद्ध कर लोगे तो मन्त्रकी शक्तिके प्रभावसे वह यक्षिणी तुम्हें प्राप्त हो जायगी। गुणाकरने वैसा ही किया, किंतु वह यक्षिणीको प्राप्त नहीं कर सका। अन्तमें विवश होकर योगीकी आज्ञासे अपने घर लौट आया। उसने अपने माता-पिताको नमस्कार कर वह रात्रि बितायी। दूसरे दिन प्रातः वह गुणाकर संन्यासियोंके एक मठमें गया और वहाँ शिष्य-रूपमें रहने लगा। पञ्चाग्रिके मध्यमें स्थित होकर उसने पवित्र हो यक्षिणीको प्राप्त करनेके लिये कपर्दीद्वारा बताये गये मन्त्रका पुनः जप करना प्रारम्भ किया, पर यक्षिणी फिर भी नहीं आयी, जिससे उसे बड़ा कष्ट हुआ।’

वैतालने ज्ञानविशारद राजासे पूछा—‘महाभाग ! गुणाकर अपनी प्रिया यक्षिणीको क्यों नहीं प्राप्त कर सका ?’

राजा बोला—रुद्रकिंकर ! साधककी सिद्धिके लिये तीन आवश्यक गुण होने चाहिये—मन, वाणी तथा शरीरका ऐकात्म्य। मन और वाणीकी एकतासे किया गया कर्म परलोकमें सुखप्रद होता है। वाणी

और शरीरसे किया गया कार्य सुन्दर होता है। वह इस जन्ममें आंशिक फल देता है और परलोकमें अधिक फलप्रद होता है। मन और शरीरके द्वारा किया गया कर्म दूसरे जन्ममें सिद्ध प्रदान करता है; परंतु मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंकी तन्मयतासे सम्पादित कर्म इस जन्ममें ही शीघ्र फल प्रदान करता है और अन्तमें मोक्ष भी प्रदान करता है। अतः साधकको कोई भी कार्य अत्यन्त मनोयोगसे करना चाहिये।

गुणाकरने यद्यपि दो बार बड़े कष्टपूर्वक मन्त्रका जप किया, किंतु दोनों ही बारकी साधनामें मनोयोगकी कमी रही। जलके भीतर तथा पञ्चाग्रि-सेवन आदिमें शरीरका योग रहा और वाणीसे जप भी होता रहा, किंतु गुणाकरका मन मन्त्रमें न लगकर यक्षिणीमें लगा हुआ था। इसी कारण उसे मन्त्र-शक्तिपर विश्वास भी न हो सका। शरीर और वाणीका योग होते हुए भी मनका योग न रहनेके कारण गुणाकर यक्षिणीको प्राप्त न कर सका, किंतु कर्म तो उसने किया ही था, फलतः परलोकमें वह यक्ष हुआ और यक्ष होकर यक्षिणीको प्राप्त किया। इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कार्यकी पूर्ण सिद्धिके लिये मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंका ही योग आवश्यक है। इनमें भी मनका योग परम आवश्यक है।

संतानमें समान-भाव रखें

(मझले पुत्रकी कथा)

वैतालने पुनः कहा—राजन् ! चित्रकूटमें रूपदत्त नामका एक विख्यात राजा रहता था। एक दिन वह एक मृगका पीछा करते हुए एक वनमें प्रविष्ट हो गया। मध्याह्नकालमें वह एक सरोवरके पास पहुँचा और वहाँ उसने अपनी सखीके साथ कमल-

पुष्ठोंका चयन करती हुई एक सुन्दर मुनि-कन्याको देखा। उसके श्रेष्ठ रूपको देखकर राजाने उसे अपनी रानी बनानेका निश्चय किया। वह कन्या भी राजाको देखकर प्रसन्न हुई। दोनों परस्पर प्रीतिपूर्वक एक-दूसरेको देखने लगे। उसकी सखीसे

राजाने जब उस कन्याका पता पूछा, तब उसने कहा कि यह एक मुनिकी धर्मपुत्री है। उसी समय उस कन्याके पिता वहाँ आ पहुँचे। मुनिको देखकर राजाने विनयपूर्वक उनसे पूछा—‘मुने! उत्तम धर्म क्या है?’ इसपर महामनीषी मुनि बोले—‘राजन्! असहायका पालन-पोषण, शरणागतकी रक्षा और दया करना यही मुख्य धर्म है। भयभीतको अभयदान देनेके समान कोई दान नहीं है। उद्घण्डोंको दण्ड देना चाहिये। पूज्यजनोंकी पूजा करनी चाहिये। गौ एवं ब्राह्मणमें नित्य आदरभाव रखना चाहिये। दण्ड देनेमें समानभाव रखना चाहिये, पक्षपात नहीं करना चाहिये। देवताकी पूजामें छल-छद्म एवं कपटको छोड़कर श्रद्धा-भक्तिरूपी सत्यका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। गुरु एवं श्रेष्ठ जनोंकी पूजामें इन्द्रिय-निग्रह एवं समाहितचित्तताका विशेष ध्यान रखना चाहिये। दान देते समय मृदुताका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। थोड़े-से भी हुए निन्द्य कर्मको बहुत बड़ा अपराध समझकर सर्वथा उससे विरत रहना चाहिये*।’

ऐसा कहकर उस मुनिने अपनी कन्याका विवाह राजकुमारके साथ कर दिया। राजा उसे लेकर अपनी राजधानीकी ओर चला। मार्गमें उसने एक वटवृक्षके नीचे विश्राम किया। उसी समय उसकी पत्नीको खा जानेके लिये एक राक्षस वहाँ आया और कहने लगा कि ‘तुम दोनोंने मेरा स्थान अपवित्र कर दिया है, अतः मैं तुमलोगोंको खा जाऊँगा।’ राजाके क्षमा माँगनेपर उसने पुनः कहा—‘यदि तुम किसी सात वर्षके ब्राह्मण-

बालकको मेरे खानेके लिये प्रस्तुत करो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।’ राजा राक्षसको वचन देकर अपनी पत्नीके साथ महलमें चला आया।

दूसरे दिन राजाने मन्त्रियोंको सब समाचार कह सुनाया। मन्त्रियोंके परामर्शपर राजाने एक ब्राह्मणको एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राएँ देकर उसके मध्यम पुत्रको राक्षसको समर्पित करनेके लिये राजी कर लिया। उस ब्राह्मणपुत्रने भी पिताके लिये अपना बलिदान देना स्वीकार कर लिया। यथासमय उसे लेकर सभी राक्षसके पास पहुँचे। ज्यों ही बलिदानका समय आया, त्यों ही वह ब्राह्मणका बालक पहले हँसा और फिर उच्च स्वरसे रोने लगा।

वैतालने पूछा—राजन्! बताओ कि मृत्युके समय वह ब्राह्मण-बालक पहले क्यों हँसा और बादमें फिर क्यों रोया?

राजाने कहा—वैताल! बड़ा पुत्र पिताको प्रिय होता है और छोटा पुत्र माताको प्रिय होता है। इसलिये माता-पितासे अपनेको उपेक्षित जानकर और अन्य कोई शरण्य न देखकर बड़ी आशासे मध्यम पुत्रने राजाकी शरण ग्रहण की, परंतु अपनी पत्नीका प्रिय चाहनेवाले उस निर्दयी राजा रूपदत्तके हाथमें मृत्युरूपी तलवार देखकर उस ब्राह्मणकुमारको पहले हँसी आ गयी और फिर मेरा यह उत्तम शरीर अधम राक्षसको प्राप्त होगा, यह सोचकर वह दुःखी होकर उच्च स्वरसे रोता हुआ पश्चात्ताप करने लगा। वैताल राजाके इस उत्तरसे बहुत प्रसन्न हुआ।

* तमुवाच मुनिर्धार्मान् दयाधर्मप्रयोगणम् । निर्भयस्य समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥
अनर्हान् दण्डमादद्यादर्हपूजाफलं भजेत् । मित्रा गोद्विजे नित्यं समता दण्डनिग्रहे ॥
सत्यता सुरपूजायां दमता गुरुपूजने । मृदुता दानसमये संतुष्टिर्निन्द्यकर्मणि ॥ (प्रतिसर्गपर्व २। १९। ५-७)

पढ़ो कम, समझो ज्यादा (चार मूर्खोंकी कथा)

वैतालने राजासे पुनः कहा—राजन्! रमणीय जयपुरमें वर्धमान नामका एक राजा था। उसके गाँवमें वेदवेदाङ्गपारंगत विष्णुस्वामी नामका एक ब्राह्मण निवास करता था। वह राधा-कृष्णका भक्त था। उसके चार पुत्र थे, जो विभिन्न व्यसनोंमें लगे रहते थे। वे जैसा निन्दित कर्म करते थे, वैसा ही उनका नाम भी निन्दित ही हो गया। पहला पुत्र द्यूतकर्मा था, दूसरा व्यभिचारी, तीसरा विषयी और चौथा नास्तिक था। संयोगसे दुर्भाग्यवश वे सभी निर्धन हो गये। एक बार वे सभी अपने पिता विष्णुशमकि पास गये। उन लोगोंने विनयपूर्वक उन्हें नमस्कार किया और कहा—‘पिताजी! हमलोगोंकी लक्ष्मी कैसे नष्ट हो गयी?’ पिताने कहा—‘द्यूतकर्मन्! द्यूतकर्म धनको नष्ट कर देता है। यह पापका मूल है। द्यूतकर्मसे व्यभिचार, चौर्य और निर्दयता आदि उत्पन्न होते हैं। यह महान् दुष्परिणामकारी है। द्यूतकर्म करनेके कारण तुम्हारे द्रव्यका नाश हुआ।’ यह सुनकर उसने कहा—‘पितृचरण! आप मुझे कृपया धन-प्राप्तिका सही मार्ग बतायें।’ पिताने कहा—‘तीर्थ और व्रतके प्रभावसे तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेंगे। तुम अपने माता-पिताकी बातोंपर ध्यान दो, उनका कहना मानो।’ तदनन्तर पिताने द्वितीय पुत्रसे कहा—‘पुत्र! तुम व्यभिचारी हो। वेश्याका संग बड़ा अशुभ है। तुम इस अशुभ कर्मको त्यागकर ब्रह्मचर्यपूर्वक ब्रह्मपरायण हो। ब्रह्मचर्यव्रत धारण करो।’ तृतीय पुत्र विषयीसे कहा—‘मांस और मदिरा सदा पापकी वृद्धिके कारण हैं, इनके द्वारा तुम चौर्य-कर्म करोगे और नरकगामी होगे, इसलिये

तुम ऐश्वर्यसम्पत्र जगत्पति, सर्वोत्तम भगवान् विष्णुके निमित्त द्रव्योंको समर्पितकर मौन होकर भोजन करो’ और अपने नास्तिक पुत्रसे कहा—‘तुम देवनिन्दा आदि नास्तिकभावको छोड़कर शुद्ध-आस्तिकमार्गका अवलम्बन करो, आत्मा शुद्ध-बुद्ध एवं नित्य है और महादेवी चण्डिका महाशक्ति हैं। सभी प्राणियोंके हृदय-गुहामें स्थित देवतागण परमात्माके अङ्ग हैं। उनका ज्ञान प्राप्तकर पापकी शान्तिके लिये उनकी पूजा करो।’

यह सुनकर वे चारों पुत्र अपने पिताके द्वारा निर्दिष्ट साधनोंमें प्रवृत्त हो गये और सुन्दर ज्ञानकी प्राप्तिके लिये सर्वेश्वर शिवकी आराधना भी करने लगे। भगवान् शंकरने वर्षभरमें उन्हें संजीवनी विद्या प्रदान कर दी। वे संजीवनी विद्या प्राप्त कर एक वनमें आये और वहाँ बिखरी व्याघ्रकी अस्थियोंपर विद्याकी परीक्षा करने लगे। प्रथम पुत्रने मरे हुए व्याघ्रकी अस्थियोंको एकत्र करके उसपर मन्त्रपूत जल छिड़का। उस मन्त्रके प्रभावसे वे अस्थियाँ पंजररूप हो गयीं। दूसरे व्यभिचारी पुत्रने उसपर मन्त्रपूत जल छिड़का, जिसके प्रभावसे वह पंजर मांस और रुधिरसे सम्पन्न हो गया। विषयी पुत्रने उसके ऊपर अभिमन्त्रित जल छिड़का। फलस्वरूप त्वचा और प्राण उसमें आ गये। सोये हुए व्याघ्रको जीवित करनेके लिये नास्तिक पुत्रने जल छिड़का। मन्त्रके प्रभावसे जीवित होनेपर उस व्याघ्रने उन सभीका भक्षण कर लिया।

वैतालने राजासे पूछा—राजन्! अब आप बतायें कि उन चारोंमें सबसे बड़ा मूर्ख कौन था?

राजा बोले—जिसने मरे हुए व्याघ्रको जिलाया,

वही सबसे बड़ा मूर्ख है। इस उत्तरसे वैताल अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

वैतालने पुनः राजा से कहा—राजा विक्रमादित्य! भगवान् शंकरकी आज्ञासे ही मैं तुम्हारे पास आया था। अनेक प्रकारके प्रश्नोत्तरोंके द्वारा मैंने तुम्हारी परीक्षा ली और तुमने सबका बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर दिया। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी भुजाओंमें मेरा निवास रहेगा, जिससे तुम पृथ्वीके समस्त शत्रुओंको जीत लोगे। दस्युओंके द्वारा सभी पुरियाँ, विविध क्षेत्र, नगर आदि नष्ट कर दिये गये हैं। इसलिये शास्त्रमें बताये गये परिमाणके आधारपर पुनः उनकी रचना करवाओ और न्यायपूर्वक पृथ्वीका शासन करो। तुम्हारे राज्यमें

पुनः धर्मकी स्थापना होगी।

इतना कहकर वह वैताल देवीकी आराधनाका निर्देश देकर वहाँ अन्तर्हित हो गया। राजा विक्रमादित्यने मुनियोंकी आज्ञासे अश्वमेध-यज्ञ किया और वह चक्रवर्ती राजा हुआ। धर्मपूर्वक राज्य करते हुए अन्तमें राजा विक्रमादित्यने स्वर्गलोक प्राप्त किया*।

राजा विक्रमादित्यके स्वर्गगमनको जानकर शौनकादि महर्षियोंने लोमहर्षण सूतजी महाराजसे पुनः इतिहास एवं पुराणकी पुण्यमयी कथाओंका श्रवण किया और फिर आनन्दित होते हुए वे सभी अपने-अपने स्थानोंकी ओर चले गये।

(अध्याय १—२३)



* इन्हीं राजा विक्रमादित्यने विक्रम-संवत्का प्रवर्तन किया था, जो भारतका मुख्य संवत् है।

सत्यनारायणब्रत-कथा

[भारतवर्षमें सत्यनारायणब्रत-कथा अत्यन्त लोकप्रिय है और जनता-जनार्दनमें इसका प्रचार-प्रसार भी सर्वाधिक है। भारतीय सनातन परम्परामें किसी भी माझलिक कार्यका प्रारम्भ भगवान् गणपतिके पूजनसे एवं उस कार्यकी पूर्णता भगवान् सत्यनारायणकी कथा-श्रवणसे समझी जाती है। वर्तमान समयमें भगवान् सत्यनारायणकी प्रचलित कथा स्कन्दपुराणके रेवाखण्डके नामसे प्रसिद्ध है, जो पाँच या सात अध्यायोंके रूपमें उपलब्ध है। भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वमें भी भगवान् सत्यनारायणब्रत-कथाका उल्लेख मिलता है, जो छः अध्यायोंमें प्राप्त है। यह कथा स्कन्दपुराणकी कथासे मिलती-जुलती होनेपर भी विशेष रोचक एवं श्रेष्ठ प्रतीत होती है। सत्यनारायणब्रत-कथाकी प्रसिद्धिके साथ अनेक शंका-समाधान भी इसपर होते रहते हैं तथा लोग यह भी पूछते हैं कि साधु वणिक्, काष्ठविक्रेता, शतानन्द ब्राह्मण, उल्कामुख, तुङ्गध्वज आदि राजाओंने कौन-सी कथाएँ सुनी थीं और वे कथाएँ कहाँ गयीं तथा इस कथाका प्रचार कबसे हुआ? इस सम्बन्धमें यही जानना चाहिये कि कथाके माध्यमसे मूल सत्-तत्त्व परमात्माका ही इसमें निरूपण हुआ है, जिसके लिये गीतामें 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' आदि शब्दोंमें यह स्पष्ट किया गया है कि इस मायामय दुःखद संसारकी वास्तविक सत्ता ही नहीं है। परमेश्वर ही त्रिकालाबाधित सत्य है और एकमात्र वही ज्ञेय, ध्येय एवं उपास्य है। ज्ञान-वैराग्य और अनन्य भक्तिके द्वारा वही साक्षात्कार करनेके योग्य है। भागवत (१०।२।२६)-में भी कहा गया है—

सत्यब्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।

सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

यहाँ भी सत्यब्रत और सत्यनारायणब्रतका तात्पर्य उन शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मासे ही है। इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोकमें—

अन्तर्भवेऽनन्तं भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः।

असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः॥ (श्रीमद्भा० १०।१४।२८)

—संसारमें मनीषियोंद्वारा सत्य-तत्त्वकी खोजकी बात निर्दिष्ट है, जिसे प्राप्तकर मनुष्य सर्वथा कृतार्थ हो जाता है और सभी आराधनाएँ उसीमें पर्यवसित होती हैं। निष्काम-उपासनासे सत्यस्वरूप नारायणकी प्राप्ति हो जाती है।

अतः श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन, कथा-श्रवण एवं प्रसाद आदिके द्वारा उन सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् सत्यनारायणकी उपासनासे लाभ उठाना चाहिये।—सम्पादक]

कथाका उपक्रम—

व्यासजी बोले—एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने पौराणिक श्रीसूतजीसे विनयपूर्वक पूछा—‘भगवन्! संसारके कल्याणके लिये आप यह बतलानेकी कृपा करें कि चारों युगोंमें कौन पूजनीय और कौन सेवनीय है तथा कौन सबके अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है? मानव अनायास ही किसकी आराधनाद्वारा अपनी मङ्गलमयी कामनाको प्राप्त कर सकता

है? ब्रह्मन्! आप ऐसे सत्य उपायको बतलायें जो मनुष्योंकी कीर्तिको बढ़ानेवाला हो।’ शौनकादि ऋषियोंद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीसूतजी भगवान् सत्यनारायणकी प्रार्थना करने लगे—

नवाभ्योजनेत्रं रमाकेलिपात्रं

चतुर्बाहुचामीकरं चारुगात्रम्।

जगत्वाणहेतुं रिपौ धूम्रकेतुं

सदा सत्यनारायणं स्तौमि देवम्॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२४।४)

(श्रीसूतजीने प्रार्थना करते हुए कहा—)

‘प्रफुल्लित नवीन कमलके समान नेत्रवाले, भगवती लक्ष्मीके क्रीडापात्र, चतुर्भुज, सुवर्णकान्तिके समान सुन्दर शरीरवाले, संसारकी रक्षा करनेके एकमात्र मूल कारण तथा शत्रुओंके लिये धूम्रकेतुस्वरूप भगवान् सत्यनारायणदेवकी मैं स्तुति करता हूँ।’

श्रीरामं सहलक्ष्मणं सकरुणं सीतान्वितं सात्त्विकं

वैदेहीमुखपद्मलुब्धमधुपं पौलस्त्यसंहारकम्।
वन्दे वन्द्यपदाम्बुजं सुरवरं भक्तानुकम्पाकरं

शत्रुघ्नेन हनुमता च भरतेनासेवितं राघवम्॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २४।५)

‘जो भगवान् करुणाके निधान हैं, जिनके चरणकमल वन्दनीय हैं, जो भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं, जो लक्ष्मणजीके साथ रहते हैं और माता श्रीसीतासे समन्वित हैं तथा माता वैदेही श्रीजनकनन्दिनीजीके मुख-कमलकी ओर स्निग्धभावसे देखते रहते हैं, उन शत्रुघ्न, हनुमान् तथा भरतसे सेवित, पुलस्त्यकुलका संहार करनेवाले, सत्स्वरूप सुरश्रेष्ठ राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी मैं वन्दना करता हूँ।’

सूतजीने कहा—ऋषियो! अब मैं आपसे श्रेष्ठ राजाओंके चरित्रोंसे सम्बद्ध एक इतिहासका वर्णन करता हूँ, उसे आपलोग श्रवण करें। यह पवित्र आख्यान कलियुगके सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, देवताओंद्वारा आभासित, ब्राह्मणोंद्वारा प्रकाशित, विद्वानोंको आनन्दित करनेवाला तथा विशेष रूपसे सत्संगके चर्चास्वरूप है*।

ऋषियो! एक समय योगी देवर्षि नारदजी सबके कल्याणकी कामनासे विविध लोकोंमें भ्रमण करते हुए इस मृत्युलोकमें आये। यहाँ

उन्होंने देखा कि अपने-अपने किये गये कर्मोंके अनुसार संसारके प्राणी नाना प्रकारके क्लेशों एवं दुःखोंसे दुःखी हैं और विविध आधि एवं व्याधिसे ग्रस्त हैं। यह देखकर उन्होंने सोचा कि कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे इन प्राणियोंके दुःखका नाश हो। ऐसा विचारकर वे विष्णुलोकमें गये। वहाँ उन्होंने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे अलंकृत, प्रसन्नमुख, शान्त, सनक-सनन्दन तथा सनत्कुमारादिसे संस्तुत भगवान् नारायणका दर्शन किया। उन देवाधिदेवका दर्शन कर नारदजी उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—‘वाणी और मनसे जिनका स्वरूप परे है और जो अनन्तशक्तिसम्पन्न हैं, आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं, ऐसे महान् आत्मा निर्गुणस्वरूप आप परमात्माको मेरा नमस्कार है। सभीके आदिपुरुष लोकोपकारपरायण, सर्वत्र व्यास, तपोमूर्ति आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।’

देवर्षि नारदकी स्तुति सुनकर भगवान् विष्णु बोले—देवर्षे! आप किस कारणसे यहाँ आये हैं? आपके मनमें कौन-सी चिन्ता है? महाभाग! आप सभी बातें बतायें। मैं उचित उपाय कहूँगा।

नारदजीने कहा—प्रभो! लोकोंमें भ्रमण करता हुआ मैं मृत्युलोकमें गया था, वहाँ मैंने देखा कि संसारके सभी प्राणी अनेक प्रकारके क्लेश-तापोंसे दुःखी हैं। अनेक रोगोंसे ग्रस्त हैं। उनकी वैसी दुर्दशा देखकर मेरे मनमें बड़ा कष्ट हुआ और मैं सोचने लगा कि किस उपायसे इन दुःखी प्राणियोंका उद्धार होगा? भगवन्! उनके कल्याणके लिये आप कोई श्रेष्ठ एवं सुगम उपाय बतलानेकी कृपा करें। नारदजीके इन वचनोंको सुनकर भगवान् नारायणने साधु-साधु शब्दोंसे उनका अभिनन्दन

* कलिकलुषविनाशं कामसिद्धिप्रकाशं सुरवरमुखभासं भूसुरेण प्रकाशम्।

विबुधबुधविलासं साधुचर्याविशेषं नृपतिवरचरित्रं भोः शृणुवेत्तिहासम्॥ (प्रतिसर्गपर्व २। २४।६)

किया और कहा—‘नारदजी! जिस विषयमें आप पूछ रहे हैं, उसके लिये मैं आपको एक सनातन व्रत बतलाता हूँ।’

भगवान् नारायण सत्ययुग और त्रेतायुगमें विष्णुस्वरूपमें फल प्रदान करते हैं और द्वापरमें अनेक रूप धारणकर फल देते हैं, परंतु कलियुगमें सर्वव्यापक भगवान् सत्यनारायण प्रत्यक्ष फल देते हैं, क्योंकि धर्मके चार पाद हैं—सत्य, शौच, तप और दान। इनमें सत्य ही प्रधान धर्म है। सत्यपर ही लोकका व्यवहार टिका है और सत्यमें ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है, इसलिये सत्यस्वरूप भगवान् सत्यनारायणका व्रत परम श्रेष्ठ कहा गया है।

नारदजीने पुनः पूछा—भगवन्! सत्यनारायणकी पूजाका क्या फल है और इसकी क्या विधि है? देव! कृपासागर! सभी बातें अनुग्रहपूर्वक मुझे बतायें।

श्रीभगवान् बोले—नारद! सत्यनारायणकी पूजाका फल एवं विधि चतुर्मुख ब्रह्मा भी बतलानेमें समर्थ नहीं हैं, किंतु संक्षेपमें मैं उसका फल तथा विधि बतला रहा हूँ, आप सुनें—

सत्यनारायणके व्रत एवं पूजनसे निर्धन व्यक्ति धनाढ्य और पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवान् हो जाता है। राज्यच्युत व्यक्ति राज्य प्राप्त कर लेता है, दृष्टिहीन व्यक्ति दृष्टिसम्पन्न हो जाता है, बंदी बन्धनमुक्त हो जाता है और भयार्त व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अधिक क्या? व्यक्ति जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसे वह सब प्राप्त हो जाती है। इसलिये मुने! मनुष्य-जन्ममें भक्तिपूर्वक सत्यनारायणकी अवश्य आराधना करनी चाहिये। इससे वह अपने अभिलिष्ट वस्तुको निःसंदेह शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

इस सत्यनारायणव्रतके करनेवाले व्रतीको चाहिये

कि वह प्रातः दन्तधावनपूर्वक स्नानकर पवित्र हो जाय। हाथमें तुलसी-मंजरीको लेकर सत्यमें प्रतिष्ठित भगवान् श्रीहरिका इस प्रकार ध्यान करे—

नारायणं	सान्द्रधनावदातं
चतुर्भुजं	पीतमहार्हवाससम्।
प्रसन्नवक्त्रं	नवकञ्जलोचनं
	सनन्दनाद्यैरुपसेवितं भजे ॥
	करोमि ते व्रतं देव सायंकाले त्वदर्चनम्।
	श्रुत्वा गाथां त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम्॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २४। २६-२७)

‘सधन मेघके समान अत्यन्त निर्मल, चतुर्भुज, अतिश्रेष्ठ पीले वस्त्रको धारण करनेवाले, प्रसन्नमुख, नवीन कमलके समान नेत्रवाले, सनक-सनन्दनादिसे उपसेवित भगवान् नारायणका मैं सतत चिन्तन करता हूँ। देव! मैं आपके सत्यस्वरूपको धारणकर सायंकालमें आपकी पूजा करूँगा। आपके रमणीय चरित्रको सुनकर आपके प्रसाद अर्थात् आपकी प्रसन्नताका मैं सेवन करूँगा।’

इस प्रकार मनमें संकल्पकर सायंकालमें विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। पूजामें पाँच कलश रखने चाहिये। कदली-स्तम्भ और बंदनवार लगाने चाहिये। स्वर्णमण्डित भगवान् शालग्रामको पुरुषसूक्त (यजु० ३१। १—१६) द्वारा पञ्चामृत आदिसे भलीभाँति स्नान कराकर चन्दन आदि अनेक उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनकी अर्चना करनी चाहिये। अनन्तर भगवान्को निम्र मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रणाम करना चाहिये—

नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि।
चतुःपदार्थदात्रे च नमस्तुभ्यं नमः ॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २४। ३०)

‘षडैश्वर्यरूप भगवान् सत्यदेवको नमस्कार है, मैं आपका सदा ध्यान करता हूँ। आप धर्म, अर्थ,

काम और मोक्ष—इस चतुर्विध पुरुषार्थको प्रदान करनेवाले हैं, आपको बार-बार नमस्कार है।'

इस मन्त्रका यथाशक्ति जपकर १०८ बार हवन करे। उसके दशांशसे तर्पण तथा उसके दशांशसे मार्जन कर भगवान्‌की कथाको सुनना चाहिये, जो छः अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। भगवान्‌की इस कथामें सत्य-धर्मकी ही मुख्यता है। कथा-श्रवणके अनन्तर भगवान्‌के प्रसादको चार भागोंमें विभक्तकर उसे भलीभाँति वितरण करे। प्रथम भाग आचार्यको दे, द्वितीय भाग अपने कुटुम्बको, तृतीय भाग श्रोताओंको और चतुर्थ भाग अपने लिये रखे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराये एवं स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। देवर्षे! इस विधिसे सत्यनारायणकी

पूजा करनी चाहिये। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सत्यनारायणकी पूजा करनेवाला व्रती सभी अभीष्ट कामनाओंको इसी जन्ममें प्राप्त कर लेता है। इस जन्ममें किये गये पुण्यफलको दूसरे जन्ममें भोगा जाता है और दूसरे जन्ममें किये गये कर्मोंका फल मनुष्यको यहाँ भोगना पड़ता है। श्रद्धापूर्वक किया गया सत्यनारायणका व्रत सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।

नारदजीने कहा—भगवन्! आज ही आपकी आज्ञासे भूमण्डलमें इस सत्यदेव-व्रतको मैं प्रतिष्ठित करूँगा। यह कहकर नारदजी तो पृथ्वीपर व्रतका प्रचार करने चले गये और भगवान् नारायणदेव अन्तर्धान हो काशीपुरीमें चले आये। (अध्याय २४)

[सत्यनारायणव्रत-कथाका प्रथम अध्याय]

सत्यनारायणव्रत-कथामें शतानन्द ब्राह्मणकी कथा

सूतजी बोले—ऋषियो! भगवान् नारायणने स्वयं कृपापूर्वक देवर्षि नारदजीद्वारा जिस प्रकार इस व्रतका प्रचार किया, अब मैं उस कथाको कहता हूँ आपलोग सुनें—

लोकप्रसिद्ध काशी नगरीमें एक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, जो विष्णुव्रतपरायण थे, वे गृहस्थ थे, दीन थे तथा स्त्री-पुत्रवान् थे। वे भिक्षा-वृत्तिसे अपना जीवन-यापन करते थे। उनका नाम शतानन्द था। एक समय वे भिक्षा माँगनेके लिये जा रहे थे। उन विनीत एवं अतिशय शान्त शतानन्दको मार्गमें एक वृद्ध ब्राह्मण दिखायी दिये, जो साक्षात् हरि ही थे। उन वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी श्रीहरिने ब्राह्मण शतानन्दसे पूछा—‘द्विजश्रेष्ठ! आप किस निमित्तसे कहाँ जा रहे हैं?’ शतानन्द बोले—‘सौम्य! अपने पुत्र-कलत्रादिके भरण-पोषणके लिये धन-याचनाकी

कामनासे मैं धनिकोंके पास जा रहा हूँ।’

नारायणने कहा—द्विज! निर्धनताके कारण आपने दीर्घकालसे भिक्षावृत्ति अपना रखी है, इसकी निवृत्तिके लिये सत्यनारायणव्रत कलियुगमें सर्वोत्तम उपाय है। इसलिये मेरे कथनके अनुसार आप कमलनेत्र भगवान् सत्यनारायणके चरणोंकी शरण-ग्रहण करें, इससे दारिद्र्य, शोक और सभी संतापोंका विनाश होता है तथा मोक्ष भी प्राप्त होता है।

करुणामूर्ति भगवान्‌के इन वचनोंको सुनकर ब्राह्मण शतानन्दने पूछा—‘ये सत्यनारायण कौन हैं?’

ब्राह्मणरूपधारी भगवान् बोले—नानारूप धारण करनेवाले, सत्यव्रत, सर्वत्र व्यास रहनेवाले तथा निरञ्जन वे देव इस समय विप्रका रूप धारणकर तुम्हारे सामने आये हैं। इस महान् दुःखरूपी संसार-सागरमें पड़े हुए प्राणियोंको तारनेके

लिये भगवान्‌के चरण नौकारूप हैं। जो बुद्धिमान् व्यक्ति हैं, वे भगवान्‌की शरणमें जाते हैं, किंतु विषयोंमें व्यास विषयबुद्धिवाले व्यक्ति भगवान्‌की शरणमें न जाकर इसी संसार-सागरमें पड़े रहते हैं^१। इसलिये द्विज! संसारके कल्याणके लिये विविध उपचारोंसे भगवान् सत्यनारायण-देवकी पूजा, आराधना तथा ध्यान करते हुए तुम इस व्रतको प्रकाशमें लाओ।

विप्ररूपधारी भगवान्‌के ऐसा कहते ही उस ब्राह्मण शतानन्दने मेघोंके समान नीलवर्ण, सुन्दर चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म लिये हुए और पीताम्बर धारण किये हुए, नवीन विकसित कमलके समान नेत्रवाले तथा मन्द-मन्द मधुर मुसकानवाले, वनमालायुक्त और भौंरोंके द्वारा चुम्बित चरण-कमलवाले पुरुषोत्तम भगवान् नारायणके साक्षात् दर्शन किये।

भगवान्‌की वाणी सुनने और उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेसे उस विप्रके सभी अङ्ग पुलकित हो उठे, आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उसने भूमिपर गिरकर भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और गद्द वाणीसे वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

संसारके स्वामी, जगत्के कारणके भी कारण, अनाथोंके नाथ, कल्याण-मङ्गलको देनेवाले, शरण देनेवाले, पुण्यरूप, पवित्र, अव्यक्त तथा व्यक्त होनेवाले और आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक

तीनों प्रकारके तापोंका समूल उच्छेद करनेवाले भगवान् सत्यनारायणको मैं प्रणाम करता हूँ। इस संसारके रचयिता सत्यनारायणदेवको नमस्कार है। विश्वके भरण-पोषण करनेवाले शुद्ध सत्त्वस्वरूपको नमस्कार है तथा विश्वका विनाश करनेवाले कराल महाकालस्वरूपको नमस्कार है। सम्पूर्ण संसारका मङ्गल करनेवाले आत्ममूर्तिस्वरूप है भगवन्! आपको नमस्कार है। आज मैं धन्य हो गया, पुण्यवान् हो गया, आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया, जो कि मन-वाणीसे अगम-अगोचर आपका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। मैं अपने भाग्यकी क्या सराहना करूँ। न जाने मेरे किस पुण्यकर्मका यह फल था, जो मुझे आपके दर्शन हुए। प्रभो! आपने क्रियाहीन इस मन्द-बुद्धिके शरीरको सफल कर दिया^२।

लोकनाथ! रमापते! किस विधिसे भगवान् सत्यनारायणका पूजन करना चाहिये, विभो! कृपाकर उसे भी आप बतायें। संसारको मोहित करनेवाले भगवान् नारायण मधुर वाणीमें बोले—‘विप्रेन्द्र! मेरी पूजामें बहुत अधिक धनकी आवश्यकता नहीं, अनायास जो धन प्राप्त हो जाय, उसीसे श्रद्धापूर्वक मेरा यजन करना चाहिये। जिस प्रकार मेरी स्तुतिसे, स्मृतिसे ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्र, अजामिल संकटसे मुक्त हो गये, इसी प्रकार इस व्रतके आश्रयसे मनुष्य तत्काल क्लेशमुक्त हो जाता है।’ इस व्रतकी विधिको सुनें—

अभीष्ट कामनाकी सिद्धिके लिये पूजाकी सामग्री

१- दुःखोदधिनिमग्रानं तरणिक्षरणौ हरे: । कुशला: शरणं यान्ति नेतरे विषयात्मिकाः ॥ (प्रतिसर्गपर्व २। २५। १०)

२- प्रणमामि जगन्नाथं जगत्कारणकारणम् । अनाथनाथं शिवदं शरण्यमनं शुचिम् ॥

अव्यक्तं व्यक्तां यातं तापत्रयविमोचनम् ॥

नमः सत्यनारायणायास्य कर्त्रें नमः शुद्धसत्त्वाय विश्वस्य विश्वस्य हर्त्रें नमस्ते जगन्मङ्गलायात्ममूर्ते ॥

धन्योऽस्यद्य कृती धन्यो भवोऽद्य सफलोमम । वाङ्मनोऽगोचरो यस्त्वं मम प्रत्यक्षमागतः ॥

दिष्टं किं वर्णयाम्याहो न जाने कस्य वा फलम् । क्रियाहीनस्य मन्दस्य देहोऽयं फलवान् कृतः ॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २५। १५-१९)

एकत्रकर विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। सवा सेरके लगभग गोधूम-चूर्णमें दूध और शक्कर मिलाकर, उस चूर्णको घृतसे युक्तकर हरिको निवेदित करना चाहिये, यह भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है। पञ्चामृतके द्वारा भगवान् शालग्रामको स्नान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूलादि उपचारोंसे मन्त्रोद्वारा उनकी अर्चना करनी चाहिये। अनेक मिष्ठान तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थों एवं ऋतुकालोद्भूत विविध फलों तथा फूलोंसे भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणों तथा स्वजनोंके साथ मेरी कथा, राजा (तुङ्गध्वज)-के इतिहास, भीलोंकी और वणिक (साधु)-की कथाको आदरपूर्वक श्रवण करना चाहिये। कथाके अनन्तर भक्तिपूर्वक सत्यदेवको प्रणामकर प्रसादका वितरण करना चाहिये। तदनन्तर भोजन करना चाहिये। मेरी प्रसन्नता द्रव्यादिसे नहीं, अपितु श्रद्धा-भक्तिसे ही होती है।

विप्रेन्द्र! इस प्रकार जो विधिपूर्वक पूजा करते हैं, वे पुत्र-प्रौत्र तथा धन-सम्पत्तिसे युक्त होकर श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करते हैं और अन्तमें मेरा सांनिध्य प्राप्त कर मेरे साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं। व्रती जो-जो कामना करता है, वह उसे अवश्य ही प्राप्त हो जाती है।

इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और वे ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर वे भिक्षाके लिये नगरकी ओर चले गये और उन्होंने मनमें यह निश्चय किया कि

'आज भिक्षामें जो धन मुझे प्राप्त होगा, मैं उससे भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा।'

उस दिन अनायास बिना माँगे ही उन्हें प्रचुर धन प्राप्त हो गया। वे आश्चर्यचकित हो अपने घर आये। उन्होंने सारा वृत्तान्त अपनी धर्मपत्रीको बताया। उसने भी सत्यनारायणके व्रत-पूजाका अनुमोदन किया। वह पतिकी आज्ञासे श्रद्धापूर्वक बाजारसे पूजाकी सभी सामग्रियोंको ले आयी और अपने बन्धु-बान्धवों तथा पड़ोसियोंको भगवान् सत्यनारायणकी पूजामें सम्मिलित होनेके लिये बुला ले आयी। अनन्तर शतानन्दने भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा की। कथाकी समाप्तिपर प्रसन्न होकर उनकी कामनाओंको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे भक्तवत्सल भगवान् सत्यनारायणदेव प्रकट हो गये। उनका दर्शन कर ब्राह्मण शतानन्दने भगवान्‌से इस लोकमें तथा परलोकमें सुख एवं पराभक्तिकी याचना की और कहा—'हे भगवन्! आप मुझे अपना दास बना लें।' भगवान् भी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये। यह देखकर कथामें आये सभी जन अत्यन्त विस्मित हो गये और ब्राह्मण भी कृतकृत्य हो गया। वे सभी भगवान्‌को दण्डवत् प्रणामकर आदरपूर्वक प्रसाद ग्रहणकर 'यह ब्राह्मण धन्य है, धन्य है', इस प्रकार कहते हुए अपने-अपने घर चले गये। तभीसे लोकमें यह प्रचार हो गया कि भगवान् सत्यनारायणका व्रत अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला, क्लेशनाशक और भोग-मोक्षको प्रदान करनेवाला है। (अध्याय २५)

[सत्यनारायणव्रत-कथाका द्वितीय अध्याय]

सत्यनारायणव्रत-कथामें राजा चन्द्रचूडका आख्यान

सूतजी बोले—ऋषियो! प्राचीन कालमें केदारखण्डके मणिपूरक नामक नगरमें चन्द्रचूड नामक एक धार्मिक तथा प्रजावत्सल राजा रहते थे। वे अत्यन्त शान्तस्वभाव, मृदुभाषी, धीर-प्रकृति तथा भगवान् नारायणके भक्त थे। विन्ध्यदेशके म्लेच्छगण उनके शत्रु हो गये। उस राजाका उन म्लेच्छोंसे अस्त्र-शस्त्रोद्घारा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें राजा चन्द्रचूडकी विशाल चतुरङ्गिणी सेना अधिक नष्ट हुई, किंतु कूट-युद्धमें निपुण म्लेच्छोंकी सेनाकी क्षति बहुत कम हुई। युद्धमें दम्भी म्लेच्छोंसे परास्त होकर राजा चन्द्रचूड अपना राष्ट्र छोड़कर अकेले ही वनमें चले गये। तीर्थाटनके बहाने इधर-उधर घूमते हुए वे काशीपुरीमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि घर-घर सत्यनारायणकी पूजा हो रही है और यह काशी नगरी द्वारकाके समान ही भव्य एवं समृद्धिशाली हो गयी है।

वहाँकी समृद्धि देखकर चन्द्रचूड विस्मित हो गये और उन्होंने सदानन्द (शतानन्द) ब्राह्मणके द्वारा की गयी सत्यनारायण-पूजाकी प्रसिद्धि भी सुनी, जिसके अनुसरणसे सभी शील एवं धर्मसे समृद्ध हो गये थे। राजा चन्द्रचूड भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनेवाले ब्राह्मण सदानन्द (शतानन्द)-के पास गये और उनके चरणोंपर गिरकर उनसे सत्यनारायण-पूजाकी विधि पूछी तथा अपने राज्यभृष्ट होनेकी कथा भी बतलायी और कहा—‘ब्रह्मन्! लक्ष्मीपति भगवान् जनार्दन जिस व्रतसे प्रसन्न होते हैं, पापके नाश करनेवाले उस व्रतको बतलाकर आप मेरा उद्घार करें।’

सदानन्द (शतानन्द) -ने कहा—राजन्! श्रीपति

भगवान्को प्रसन्न करनेवाला सत्यनारायण नामक एक श्रेष्ठ व्रत है, जो समस्त दुःख-शोकादिका शामक, धन-धान्यका प्रवर्धक, सौभाग्य और संततिका प्रदाता तथा सर्वत्र विजय-प्रदायक है। राजन्! जिस किसी भी दिन प्रदोषकालमें इनके पूजन आदिका आयोजन करना चाहिये। कदलीदलके स्तम्भोंसे मणिडत, तोरणोंसे अलंकृत एक मण्डपकी रचनाकर उसमें पाँच कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये और पाँच ध्वजाएँ भी लगानी चाहिये। व्रतीको चाहिये कि उस मण्डपके मध्यमें ब्राह्मणोंके द्वारा एक रमणीय वेदिकाकी रचना करवाये। उसके ऊपर स्वर्णसे मणिडत शिलारूप भगवान् नारायण (शालग्राम)-को स्थापित कर प्रेम-भक्तिपूर्वक चन्दन, पुष्प आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे। भगवान्का ध्यान करते हुए भूमिपर शयनकर सात रात्रि व्यतीत करे।

यह सुनकर राजा चन्द्रचूडने काशीमें ही भगवान् सत्यनारायणकी शीघ्र ही पूजा की। प्रसन्न होकर रात्रिमें भगवान् ने राजाको एक उत्तम तलवार प्रदान की। शत्रुओंको नष्ट करनेवाली तलवार प्राप्त कर राजा ब्राह्मणश्रेष्ठ सदानन्दको प्रणाम कर अपने नगरमें आ गये तथा छः हजार म्लेच्छ दस्युओंको मारकर उनसे अपार धन प्राप्त किया और नर्मदाके मनोहर तटपर पुनः भगवान् श्रीहरिकी पूजा की। वे राजा प्रत्येक मासकी पूर्णिमाको प्रेम और भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे भगवान् सत्यदेवकी पूजा करने लगे। उस व्रतके प्रभावसे वे लाखों ग्रामोंके अधिपति हो गये और साठ वर्षतक राज्य करते हुए अन्तमें उन्होंने विष्णुलोकको प्राप्त किया। (अध्याय २६)

[सत्यनारायणव्रत-कथाका तृतीय अध्याय]

सत्यनारायणब्रतके प्रसंगमें लकड़हारोंकी कथा

सूतजी बोले—ऋषियो! अब इस सम्बन्धमें सत्यनारायणब्रतके आचरणसे कृतकृत्य हुए भिल्लोंकी कथा सुनें। एक समयकी बात है, कुछ निषादगण वनसे लकड़ियाँ काटकर नगरमें लाकर बेचा करते थे। उनमेंसे कुछ निषाद काशीपुरीमें लकड़ी बेचने आये। उन्हींमेंसे एक बहुत प्यासा लकड़हारा विष्णुदास (शतानन्द)-के आश्रममें गया। वहाँ उसने जल पिया और देखा कि ब्राह्मणलोग भगवान्‌की पूजा कर रहे हैं। भिक्षुक शतानन्दका वैभव देखकर वह चकित हो गया और सोचने लगा—‘इतने दरिद्र ब्राह्मणके पास यह अपार वैभव कहाँसे आ गया? इसे तो आजतक मैंने अकिञ्चन ही देखा था। आज यह इतना महान् धनी कैसे हो गया?’ इसपर उसने पूछा—‘महाराज! आपको यह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हुआ और आपको निर्धनतासे मुक्ति कैसे मिली? यह बतानेका कष्ट करें, मैं सुनना चाहता हूँ।’

शतानन्दने कहा—भाई! यह सब सत्यनारायणकी आराधनाका फल है, उनकी आराधनासे क्या नहीं होता। भगवान् सत्यनारायणकी अनुकम्पाके बिना किंचित् भी सुख प्राप्त नहीं होता।

निषादने उनसे पूछा—महाराज! सत्यनारायण-भगवान्‌का क्या माहात्म्य है? इस ब्रतकी विधि क्या है? आप उनकी पूजाके सभी उपचारोंका वर्णन करें, क्योंकि उपकार-परायण संत-महात्मा अपने हृदयमें सबके लिये समान भाव रखते हैं, किसीसे कोई कल्याणकारी बात नहीं छिपाते^१।

शतानन्द बोले—एक समयकी बात है, केदारक्षेत्रके मणिपूरक नगरमें रहनेवाले राजा चन्द्रचूड़ मेरे आश्रममें आये और उन्होंने मुझसे

भगवान् सत्यनारायणब्रत-कथाके विधानको पूछा। हे निषादपुत्र! इसपर मैंने जो उन्हें बताया था, उसे तुम सुनो—

सकामभावसे अथवा निष्कामभावसे किसी भी प्रकार भगवान्‌की पूजाका मनमें संकल्पकर उनकी पूजा करनी चाहिये। सवा सेर गोधूमके चूर्णको मधु तथा सुगन्धित घृतसे संस्कृतकर नैवेद्यके रूपमें भगवान्‌को अर्पण करना चाहिये। भगवान् सत्यनारायण (शालग्राम)-को पञ्चमृतसे स्नान करकर चन्दन आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पायस, अपूप, संयाव, दधि, दुग्ध, ऋतुफल, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदिसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। यदि वैभव रहे तो और अधिक उत्साह एवं समारोहसे पूजा करनी चाहिये। भगवान् भक्तिसे जितना प्रसन्न होते हैं, उतना विपुल द्रव्योंसे प्रसन्न नहीं होते। भगवान् सम्पूर्ण विश्वके स्वामी एवं आसकाम हैं, उन्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, केवल भक्तोंके द्वारा श्रद्धासे अर्पित की हुई वस्तुको वे ग्रहण करते हैं। इसीलिये दुर्योधनके द्वारा की जानेवाली राजपूजाको छोड़कर भगवान्‌ने विदुरजीके आश्रममें आकर शाक-भाजी और पूजाको ग्रहण किया। सुदामाके तण्डुल-कणको स्वीकार कर भगवान्‌ने उन्हें मनुष्यके लिये सर्वथा दुर्लभ सम्पत्तियाँ प्रदान कर दीं। भगवान् केवल प्रीतिपूर्वक भक्तिकी ही अपेक्षा करते हैं। गोप, गृध, वणिक, व्याध, हनुमान्, विभीषणके अतिरिक्त अन्य वृत्रासुर आदि दैत्य भी नारायणके सांनिध्यको प्राप्त कर उनके अनुग्रहसे आज भी आनन्दपूर्वक रह रहे हैं^२।

१- साधूनां समचित्तानामुपकारवतां सताम् । न गोप्यं विद्यते किंचिदार्तानामार्तिनाशनम् ॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २७। ८)

२- न तुष्टेदद्रव्यसम्प्यरैर्भक्त्या केवलया यथा । भगवान् परितः पूर्णो न मानं वृत्यात् क्रचित् ॥
दुर्योधनकृतां त्यक्त्वा राजपूजां जनार्दनः । विदुरस्याश्रमे वासमातिथ्यं जगृहे विभुः ॥

निषादपुत्र ! मेरी बात सुनकर उस राजा चन्द्रचूडने पूजा-सामग्रियोंको एकत्रितकर आदरपूर्वक भगवान्‌की पूजा की; फलस्वरूप वे अपना नष्ट हुआ द्रव्य प्राप्तकर आज भी आनन्दित हो रहे हैं। इसलिये तुम भी भक्तिसे सत्यनारायणकी उपासना करो। इससे तुम इस लोकमें सुखको प्राप्त कर अन्तमें भगवान् विष्णुका सांनिध्य प्राप्त करोगे।

यह सुनकर वह निषाद कृतकृत्य हो गया। विप्रश्रेष्ठ शतानन्दको प्रणाम कर अपने घर जाकर उसने अपने साथियोंको भी हरि-सेवाका माहात्म्य बताया। उन सबने भी प्रसन्नचित्त हो श्रद्धापूर्वक यह प्रतिज्ञा की कि आज काष्ठको बेचकर हमलोगोंको जितना धन प्राप्त होगा, उससे अपने सभी बन्धु-

बास्थवोंके साथ श्रद्धा एवं विधिपूर्वक हम सत्यनारायणकी पूजा करेंगे। उस दिन उन्हें काष्ठ बेचनेसे पहलेकी अपेक्षा चौगुना धन मिला। घर आकर उन सबने सारी बात स्त्रियोंको बतायी और फिर सबने मिलकर आदरपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा की और कथाका श्रवण किया तथा भक्तिपूर्वक भगवान्‌का प्रसाद सबको वितरितकर स्वयं भी ग्रहण किया। पूजाके प्रभावसे पुत्र, पत्नी आदिसे समन्वित निषादगणोंने पृथ्वीपर द्रव्य और श्रेष्ठ ज्ञान-दृष्टिको प्राप्त किया। द्विजश्रेष्ठ ! उन सबने यथेष्ट भोगोंका उपभोग किया और अन्तमें वे सभी योगिजनोंके लिये भी दुर्लभ वैष्णवधामको प्राप्त हुए। (अध्याय २७)

[सत्यनारायणव्रत-कथाका चतुर्थ अध्याय]

सत्यनारायणव्रतके प्रसंगमें साधु वणिक् एवं जामाताकी कथा

सूतजी बोले—ऋषियो ! अब मैं एक साधु वणिक्‌की कथा कहता हूँ। एक बार भगवान् सत्यनारायणका भक्त मणिपूरक नगरका स्वामी महायशस्वी राजा चन्द्रचूड अपनी प्रजाओंके साथ व्रतपूर्वक सत्यनारायणभगवान्‌का पूजन कर रहा था, उसी समय रत्नपुर (रत्नसारपुर)-निवासी महाधनी साधु वणिक् अपनी नौकाको धनसे परिपूर्ण कर नदी-तटसे यात्रा करता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वहाँ उसने अनेक ग्रामवासियोंसहित मणि-मुक्तासे निर्मित तथा श्रेष्ठ वितानादिसे विभूषित पूजन-मण्डपको देखा, गीत-वाद्य आदिकी ध्वनि तथा वेदध्वनि भी वहाँ उसे सुनायी पड़ी। उस रम्य स्थानको देखकर साधु वणिक् ने अपने नाविकको

आदेश दिया कि यहाँपर नौका रोक दो। मैं यहाँके आयोजनको देखना चाहता हूँ। इसपर नाविकने वैसा ही किया। नावसे उत्तरकर उस वणिक्‌ने लोगोंसे जानकारी प्राप्त की और वह सत्यनारायण- भगवान्‌की कथा-मण्डपमें गया तथा वहाँ उसने उन सभीसे पूछा—‘महाशय ! आपलोग यह कौन-सा पुण्यकार्य कर रहे हैं ?’ इसपर उन लोगोंने कहा—‘हमलोग अपने माननीय राजाके साथ भगवान् सत्यनारायणकी पूजा-कथाका आयोजन कर रहे हैं। इसी व्रतके अनुष्ठानसे इन्हें निष्कण्टक राज्य प्राप्त हुआ है। भगवान् सत्यनारायणकी पूजासे धनकी कामनावाला द्रव्य-लाभ, पुत्रकी कामनावाला उत्तम पुत्र, ज्ञानकी कामनावाला ज्ञान-दृष्टि प्राप्त

सुदाम्स्ताण्डुलकणा जग्धा मानुष्वदुर्लभाः । सम्पदोऽदाद्वरिः प्रीत्या भक्तिमात्रमपेक्ष्यते ॥

गोपे गृध्रो वणिग्व्याधो हनुमान् सविभीषणः । येऽन्ये पापात्मका दैत्या वृत्रकायाधवादयः ॥

नारायणान्तिकं प्राप्य मोदतेऽद्यापि यद्वशाः ।

(प्रतिसर्गपर्व २। २७। १५—१९)

करता है और भयातुर मनुष्य सर्वथा निर्भय हो जाता है। इनकी पूजासे मनुष्य अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।'

यह सुनकर उसने गलेमें वस्त्रको कई बार लपेटकर भगवान् सत्यनारायणको दण्डवत् प्रणाम कर सभासदोंको भी सादर प्रणाम किया और कहा—‘भगवन्! मैं संततिहीन हूँ, अतः मेरा सारा ऐश्वर्य तथा सारा उद्यम सभी व्यर्थ है, हे कृपासागर! यदि आपकी कृपासे पुत्र या कन्या मैं प्राप्त करूँगा तो स्वर्णमयी पताका बनाकर आपकी पूजा करूँगा।’ इसपर सभासदोंने कहा—‘आपकी कामना पूर्ण हो।’ तदनन्तर उसने भगवान् सत्यनारायण एवं सभासदोंको पुनः प्रणामकर प्रसाद ग्रहण किया और हृदयसे भगवान्‌का चिन्तन करता हुआ वह साधु वणिक् सबके साथ अपने घर गया। घर आनेपर मङ्गलिक द्रव्योंसे स्त्रियोंने उसका यथोचित स्वागत किया। साधु वणिक् अतिशय आश्वर्यके साथ मङ्गलमय अन्तःपुरमें गया। उसकी पतिव्रता पली लीलावतीने भी उसकी स्त्रियोचित सेवा की। भगवान् सत्यनारायणकी कृपासे समय आनेपर बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित करनेवाली तथा कमलके समान नेत्रोंवाली उसे एक कन्या उत्पन्न हुई। इससे साधु वणिक् अतिशय आनन्दित हुआ और उस समय उसने पर्याप्त धनका दान किया। वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर उसने कन्याके जातकर्म आदि मङ्गलकृत्य सम्पन्न किये। उस बालिकाकी जन्मकुण्डली बनवाकर उसका नाम कलावती रखा। कलानिधि चन्द्रमाकी कलाके समान वह कलावती नित्य बढ़ने लगी। आठ वर्षकी बालिका गौरी, नौ वर्षकी रोहिणी, दस वर्षकी कन्या तथा उसके आगे (अर्थात्) बारह वर्षकी बालिका

प्रौढ़ा या रजस्वला कहलाती है*। समयानुसार कलावती भी बढ़ते-बढ़ते विवाहके योग्य हो गयी। उसका पिता कलावतीको विवाह-योग्य जानकर उसके सम्बन्धकी चिन्ता करने लगा।

काञ्चनपुर नगरमें एक शंखपति नामका वणिक् रहता था। वह कुलीन, रूपवान्, सम्पत्तिशाली, शील और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न था। अपनी पुत्रीके योग्य उस वरको देखकर साधु वणिक् ने शंखपतिका वरण कर लिया और शुभ लग्नमें अनेक माङ्गलिक उपचारोंके साथ अग्निके सांनिध्यमें वेद, वाद्य आदि ध्वनियोंके साथ यथाविधि कन्या उसे प्रदान कर दी, साथ ही मणि, मोती, मूँगा, वस्त्राभूषण आदि भी उस साधु वणिक् ने मङ्गलके लिये अपनी पुत्री एवं जामाताको प्रदान किये। साधु वणिक् अपने दामादको अपने घरमें रखकर उसे पुत्रके समान मानता था और वह भी पिताके समान साधु वणिक् का आदर करता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। साधु वणिक् ने भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनेका पहले यह संकल्प लिया था कि ‘संतान प्राप्त होनेपर मैं भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा’ पर वह इस बातको भूल ही गया। उसने पूजा नहीं की।

कुछ दिनोंके बाद वह अपने जामाताके साथ व्यापारके निमित्त सुदूर नर्मदाके दक्षिण तटपर गया और वहाँ व्यापारनिरत होकर बहुत दिनोंतक ठहरा रहा। पर वहाँ भी उसने सत्यदेवकी किसी प्रकार भी उपासना नहीं की और परिणामस्वरूप भगवान्‌के प्रकोपका भाजन बनकर वह अनेक संकटोंसे ग्रस्त हो गया। एक समय कुछ चोरोंने एक निस्तब्ध रात्रिमें वहाँके राजमहलसे बहुत-सा द्रव्य तथा मोतीकी मालाको चुरा लिया।

* अष्टवर्षी भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ॥

दशवर्षी भवेत् कन्या ततः प्रौढा रजस्वला । (प्रतिसर्गपर्व २। २८। २१-२२)

राजाने चोरीकी बात ज्ञात होनेपर अपने राजपुरुषोंको बुलाकर बहुत फटकारा और कहा कि 'यदि तुमलोगोंने चोरोंका पता लगाकर सारा धन यहाँ दो दिनोंमें उपस्थित नहीं किया तो तुम्हारी असावधानीके लिये तुम्हें मृत्यु-दण्ड दिया जायगा।' इसपर राजपुरुषोंने सर्वत्र व्यापक छान-बीन की, परंतु बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे उन चोरोंका पता नहीं लगा सके। फिर वे सभी एकत्रित होकर विचार करने लगे—'अहो! बड़े कष्टकी बात है, चोर तो मिला नहीं, धन भी नहीं मिला, अब राजा हमलोगोंको परिवारके साथ मार डालेगा। मरनेपर भी हमें प्रेत-योनि प्राप्त होगी। इसलिये अब तो यही श्रेयस्कर है कि 'हमलोग पवित्र नर्मदा नदीमें ढूबकर मर जायें। क्योंकि नर्मदाके प्रभावसे हमें शिवलोककी प्राप्ति होगी।' वे सभी राजपुरुष आपसमें ऐसा निश्चयकर नर्मदा नदीके तटपर गये। वहाँ उन्होंने उस साधु वणिक्को देखा और उसके कण्ठमें मोतीकी माला भी देखी। उन्होंने उस साधु वणिक्को ही चोर समझ लिया और वे सभी प्रसन्न होकर उन दोनों (साधु

वणिक् और उसके जामाता) -को धनसहित पकड़कर राजाके पास ले आये। भगवान् सत्यनारायण भी पूजा करनेमें असत्यका आश्रय लेनेके कारण वणिक्के प्रतिकूल हो गये थे। इसी कारण राजाने भी विचार किये बिना ही अपने सेवकोंको आदेश दिया कि इनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर खजानेमें जमा कर दो और इन्हें हथकड़ी लगाकर जेलमें डाल दो। सेवकोंने राजाज्ञाका पालन किया। वणिक्की बातोंपर किसीने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अपने जामाताके साथ वह वणिक् अत्यन्त दुःखित हुआ और विलाप करने लगा—'हा पुत्र! मेरा धन अब कहाँ चला गया, मेरी पुत्री और पत्नी कहाँ हैं? विधाताकी प्रतिकूलता तो देखो। हम दुःख-सागरमें निमग्न हो गये। अब इस संकटसे हमें कौन पार करेगा? मैंने धर्म एवं भगवान्‌के विरुद्ध आचरण किया। यह उन्हीं कर्मोंका प्रभाव है।' इस प्रकार विलाप करते हुए वे ससुर और जामाता कई दिनोंतक जेलमें भीषण संतापका अनुभव करते रहे।

(अध्याय २८)

[सत्यनारायणव्रत-कथाका पञ्चम अध्याय]

सत्य-धर्मके आश्रयसे सबका उद्धार (लीलावती एवं कलावतीकी कथा)

सूतजीने कहा—ऋषियो! आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीनों तापोंको हरण करनेवाले भगवान् विष्णुके मङ्गलमय चरित्रको जो सुनते हैं, वे सदा हरिके धाममें निवास करते हैं, किंतु जो भगवान्‌का आश्रय नहीं ग्रहण करते—उन्हें विस्मृत कर देते हैं, उन्हें कष्टमय नरक प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुकी पत्नीका नाम कमला (लक्ष्मी) है। इनके चार पुत्र हैं—धर्म, यज्ञ, राजा और चोर। ये सभी लक्ष्मी-प्रिय हैं अर्थात् ये लक्ष्मीकी

इच्छा करते हैं। ब्राह्मणों और अतिथियोंको जो दान दिया जाता है, वह धर्म कहा जाता है, उसके लिये धनकी आवश्यकता है। स्वाहा और स्वधाके द्वारा जो देवयज्ञ और पितृयज्ञ किया जाता है, वह यज्ञ कहा जाता है, उसमें भी धनकी अपेक्षा होती है। धर्म और यज्ञकी रक्षा करनेवाला राजा कहलाता है, इसलिये राजाको भी लक्ष्मी—धनकी अपेक्षा रहती है। धर्म और यज्ञको नष्ट करनेवाला चोर कहलाता है, वह भी धनकी इच्छासे चोरी करता

है। इसलिये ये चारों किसी-न-किसी रूपमें लक्ष्मीके किंकर हैं। परंतु जहाँ सत्य रहता है, वहीं धर्म रहता है और वहीं लक्ष्मी भी स्थिररूपमें रहती हैं।

वह वणिक् सत्य-धर्मसे च्युत हो गया था (उसने सत्यनारायणका ब्रत न कर प्रतिज्ञाभंग की थी)। इसीलिये राजाने उस वणिक्के घरसे भी सारा धन हरण करवा लिया और घरमें चोरी भी हो गयी। बेचारी उसकी पत्नी लीलावती एवं पुत्री कलावतीके साथ अपने वस्त्र-आभूषण तथा मकान बेचकर जैसे-तैसे जीवन-यापन करने लगी।

एक दिन उसकी कन्या कलावती भूखसे व्याकुल होकर किसी ब्राह्मणके घर गयी और वहाँ उसने ब्राह्मणको भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करते हुए देखा। जगन्नाथ सत्यदेवकी प्रार्थना करते हुए देखकर उसने भी भगवान्‌से प्रार्थना की—‘हे सत्यनारायणदेव! मेरे पिता और पति यदि घरपर आ जायँगे तो मैं भी आपकी पूजा करूँगी।’ उसकी बात सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—‘ऐसा ही होगा।’ इस प्रकार ब्राह्मणोंसे आश्वासनयुक्त आशीर्वाद प्राप्तकर वह अपने घर वापस आ गयी। रात्रिमें देरसे लौटनेके कारण माताने उससे डाँटते हुए पूछा कि ‘बेटी! इतनी राततक तुम कहाँ रही?’ इसपर उसने उसे प्रसाद देते हुए सत्यनारायणके पूजा-वृत्तान्तको बताया और कहा—‘माँ! मैंने वहाँ सुना कि भगवान् सत्यनारायण कलियुगमें प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं, उनकी पूजा मनुष्यगण सदा करते हैं। माँ! मैं भी उनकी पूजा करना चाहती हूँ, तुम मुझे आज्ञा प्रदान करो। मेरे पिता और स्वामी अपने घर आ जायँ, यही मेरी कामना है।’

रातमें ऐसा मनमें निश्चयकर प्रातः वह कलावती शीलपाल नामक एक वणिक्के घरपर धन प्राप्त करनेकी इच्छासे गयी और उसने कहा—‘बन्धो! थोड़ा धन दें, जिससे मैं भगवान् सत्यनारायणकी

पूजा कर सकूँ।’ यह सुनकर शीलपालने उसे पाँच अशर्फियाँ दीं और कहा—‘कलावती! तुम्हरे पिताका कुछ ऋण शेष था, मैं उन्हें ही वापस कर रहा हूँ, इसे देकर आज मैं उऋण हो गया।’ यह कहकर शीलपाल गया-तीर्थमें श्राद्ध करने चला गया। कन्याने अपनी माँ लीलावतीके साथ उस द्रव्यसे कल्याणप्रद सत्यनारायणब्रतका श्रद्धा-भक्तिसे विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। इससे सत्यनारायण- भगवान् संतुष्ट हो गये।

उधर नर्मदा-तटवासी राजा अपने राजमहलमें सो रहा था। रात्रिके अन्तिम प्रहरमें ब्राह्मण-वेषधारी भगवान् सत्यनारायणने स्वप्रमें उससे कहा—‘राजन्! तुम शीघ्र उठकर उन निर्देष वणिकोंको बन्धनमुक्त कर दो। वे दोनों बिना अपराधके ही बंदी बना लिये गये हैं। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।’ इतना कहकर वे अन्तर्हित हो गये। राजा निद्रासे सहसा जग उठा। वह परमात्माका स्मरण करने लगा। प्रातःकाल राजा अपनी सभामें आया और उसने अपने मन्त्रीसे देखे गये स्वप्रका फल पूछा। महामन्त्रीने भी राजासे कहा—‘राजन्! बड़े आश्र्यकी बात है, मुझे भी आज ऐसा ही स्वप्र दिखलायी पड़ा। अतः उस वणिक् और उसके जामाताको बुलाकर भलीभाँति पूछ-ताछ कर लेनी चाहिये।’ राजाने उन दोनोंको बंदी-गृहसे बुलवाया और पूछा—‘तुम दोनों कहाँ रहते हो और तुम कौन हो?’ इसपर साधु वणिकने कहा—‘राजन्! मैं रत्नपुरका निवासी एक वणिक् हूँ। मैं व्यापार करनेके लिये यहाँ आया था, पर दैववश आपके सेवकोंने हमें चोर समझकर पकड़ लिया। साथमें यह मेरा जामाता है। बिना अपराधके ही हमें मणि-मुक्ताकी चोरी लगी है। राजेन्द्र! हम दोनों चोर नहीं हैं। आप भलीभाँति विचार कर लें।’

उसकी बातें सुनकर राजाको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने उन्हें बन्धनमुक्त कर दिया। अनेक प्रकारसे उन्हें अलंकृत कर भोजन कराया और वस्त्र, आभूषण आदि देकर उनका सम्मान किया। साधु वणिकने कहा—‘राजन्! मैंने कारागारमें अनेक कष्ट भोगे हैं, अब मैं अपने नगर जाना चाहता हूँ आप मुझे आज्ञा दें।’ इसपर राजाने अपने कोषाध्यक्षके माध्यमसे साधु वणिककी नौका रत्नों आदिसे परिपूर्ण करवा दी। फिर वह साधु वणिक् अपने जामाताके साथ राजाद्वारा सम्मानित हो द्विगुणित धन लेकर रत्नपुरकी ओर चला।

साधु वणिकने अपने नगरके लिये प्रस्थान किया, पर भगवान् सत्यनारायणका पूजन वह उस समय भी भूल गया। भगवान् सत्यदेवने जो कलियुगमें तत्काल फल देते हैं, पुनः तपस्वीका रूप धारणकर वहाँ आकर उससे पूछा—‘साधो! तुम्हारी इस नौकामें क्या है?’ इसपर साधु वणिकने उत्तर दिया—‘आपको देनेके लिये कुछ भी धन मेरे पास नहीं है। नावमें केवल कुछ लताओंके पत्ते भरे पड़े हैं।’ साधु वणिकके ऐसा कहनेपर तपस्वीने कहा—‘ऐसा ही होगा।’ इतना कहकर तपस्वी अन्तर्धान हो गये। उनके ऐसा कहते ही नौकामें धनके बदले केवल पत्ते ही दीखने लगे। यह सब देखकर साधु अत्यन्त चकित एवं चिन्तित हो गया, उसे मूर्छा-सी आ गयी। वह अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा। वज्रपात होनेके समान वह स्तब्ध होकर सोचने लगा कि मैं अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरा धन कहाँ चला गया? जामाताके समझाने-बुझानेपर इसे तपस्वीका शाप समझकर वह पुनः उन्हीं तपस्वीकी शरणमें गया और गलेमें कपड़ा लपेटकर उन तपस्वीको प्रणाम कर कहा—‘महाभाग! आप कौन हैं? कोई गन्धर्व हैं या देवता हैं अथवा साक्षात् परमात्मा हैं?

प्रभो! मैं आपकी महिमाको लेशमात्र भी नहीं जानता। आप मेरे अपराधोंको क्षमा कर दें और मेरी नौकाके धनको पुनः पूर्ववत् कर दें।’ इसपर तपस्वीरूप भगवान् सत्यनारायणने कहा कि तुमने चन्द्रचूड राजाके सत्यनारायणके मण्डपमें ‘संततिके प्राप्त होनेपर भगवान् सत्यदेवकी पूजा करूँगा’—ऐसी प्रतिज्ञा की थी। तुम्हें कन्या प्राप्त हुई, उसका विवाह भी तुमने किया, व्यापारसे धन भी प्राप्त किया, बंदी-गृहसे तुम मुक्त भी हो गये, पर तुमने भगवान् सत्यनारायणकी पूजा कभी नहीं की। इससे मिथ्याभाषण, प्रतिज्ञालोप और देवताकी अवज्ञा आदि अनेक दोष हुए, तुम भगवान्का स्मरणतक भी नहीं करते। इसी कारण है मूढ़! तुम कष्ट भोग रहे हो। सत्यनारायणभगवान् सर्वव्यापी हैं, वे सभी फलोंको देनेवाले हैं। उनका अनादर कर तुम कैसे सुख प्राप्त कर सकते हो। तुम भगवान्को याद करो, उनका स्मरण करो। इसपर साधु वणिकको भगवान् सत्यनारायणका स्मरण हो आया और वह पश्चात्ताप करने लगा। उसके देखते-ही-देखते वहाँ वे तपस्वी भगवान् सत्यनारायणरूपमें परिवर्तित हो गये और तब वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

‘सत्यस्वरूप, सत्यसंध, सत्यनारायण भगवान् हरिको नमस्कार है। जिस सत्यसे जगत्की प्रतिष्ठा है, उस सत्यस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है। भगवन्! आपकी मायासे मोहित होनेके कारण मनुष्य आपके स्वरूपको जान नहीं पाता और इस दुःखरूपी संसार-समुद्रको सुख मानकर उसीमें लिस रहता है। धनके गर्वसे मैं मूढ़ होकर मदान्धकारसे कर्तव्य और अकर्तव्यकी दृष्टिसे शून्य हो गया। मैं अपने कल्याणको भी नहीं समझ पा रहा हूँ। मेरे दौरात्म्य-भावके लिये आप क्षमा करें। हे तपोनिधे! आपको नमस्कार है। कृपासागर! आप

मुझे अपने चरणोंका दास बना लें, जिससे मुझे आपके चरण-कमलोंका नित्य स्मरण होता रहे*।'

इस प्रकार स्तुति कर उस साधु वणिकूने एक लाख मुद्रासे पुरोहितके द्वारा घर आकर सत्यनारायणकी पूजा करनेके लिये प्रतिज्ञा की। इसपर भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—‘वत्स! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, तुम पुत्र-पौत्रसे समन्वित होकर श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर मेरे सत्यलोकको प्राप्त करोगे और मेरे साथ आनन्द प्राप्त करोगे।’ यह कहकर भगवान् सत्यनारायण अन्तर्हित हो गये और साधुने पुनः अपनी यात्रा प्रारम्भ की।

सत्यदेवभगवान्‌से रक्षित हो वह साधु वणिक् एक सप्ताहमें नगरके समीप पहुँच गया और उसने अपने आगमनका समाचार देनेके लिये घरपर दूत भेजा। दूतने घर आकर साधु वणिकूकी स्त्री लीलावतीसे कहा—‘जामाताके साथ सफलमनोरथ साधु वणिक् आ रहे हैं।’ वह साध्वी लीलावती कन्याके साथ सत्यनारायणभगवान्‌की पूजा कर रही थी। पतिके आगमनको सुनकर उसने पूजा वर्होंपर छोड़ दी और पूजाका शेष दायित्व अपनी पुत्रीको सौंपकर वह शीघ्रतासे नौकाके समीप चली आयी। इधर कलावती भी अपनी सखियोंके साथ सत्यनारायणकी जैसे-तैसे पूजा समाप्त कर बिना प्रसाद लिये ही अपने पतिको देखनेके लिये उतावली हो नौकाकी ओर चली गयी।

भगवान् सत्यनारायणके प्रसादके अपमानसे जामातासहित साधु वणिकूकी नौका जलके मध्य अलक्षित हो गयी। यह देखकर सभी दुःखमें निमग्न हो गये। साधु वणिक् भी मूर्च्छित हो

गया। कलावती भी यह देखकर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी और उसका सारा शरीर आँसुओंसे भींग गया। वह हवाके वेगसे हिलते हुए केलेके पत्तेके समान काँपने लगी। हा नाथ! हा कान्त! कहकर विलाप करने लगी और कहने लगी—‘हे विधाता! आपने मुझे पतिसे वियुक्त कर मेरी आशा तोड़ दी। पतिके बिना स्त्रीका जीवन अधूरा एवं निष्फल है।’ कलावती आर्तस्वरमें भगवान् सत्यनारायणसे बोली—‘हे सत्यसिन्धो! हे भगवान् सत्यनारायण! मैं अपने पतिके वियोगमें जलमें डूबनेवाली हूँ, आप मेरे अपराधोंको क्षमा करें। पतिको प्रकट कर मेरे प्राणोंकी रक्षा करें।’ (इस प्रकार जब वह अपने पतिके पादुकाओंको लेकर जलमें प्रवेश करनेवाली ही थी) उसी समय आकाशवाणी हुई—‘हे साधो! तुम्हारी पुत्रीने मेरे प्रसादका अपमान किया है। यदि वह पुनः घर जाकर श्रद्धापूर्वक प्रसादको ग्रहण कर ले तो उसका पति नौकासहित यहाँ अवश्य दीखेगा, चिन्ता मत करो।’ इसपर आश्वर्यचकित हो कलावतीने वैसा ही किया और उसे उसका पति पुनः अपनी नौकासहित दीखने लगा। फिर क्या था? सभी परस्पर आनन्दसे मिले और घर आकर साधु वणिकूने एक लाख मुद्राओंसे बड़े समारोहपूर्वक भगवान् सत्यदेवकी पूजा की और आनन्दसे रहने लगा। पुनः कभी भगवान् सत्यदेवकी उपेक्षा नहीं की। उस व्रतके प्रभावसे पुत्र-पौत्रसमन्वित अनेक भोगोंका उपभोग करते हुए सभी स्वर्गलोक चले गये। इस इतिहासको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनता है, वह भी विष्णुका

* सत्यरूपं सत्यसन्धं सत्यनारायणं हरिम् । यत्सत्यत्वेन जगतस्तं सत्यं त्वां नमाम्यहम्॥

त्वन्मायामोहितात्मानो न पश्यन्त्यात्मनः शुभम् । दुःखाभ्योधीं सदा मग्ना दुःखे च सुखमानिनः ॥

मूढोऽहं धनगर्वेण मदान्धीकृतलोचनः । न जाने स्वात्मनः क्षेमं कथं पश्यामि मूढधीः ॥

क्षमस्व मम दौरात्म्यं तपोधाम्रे हरे नमः । आज्ञापयात्मदास्यं मे येन ते चरणों स्मरे ॥

अत्यन्त प्रिय हो जाता है। अपनी मनःकामनाकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

सूतजी बोले—ऋषिगणो! मैंने सभी व्रतोंमें

श्रेष्ठ इस सत्यनारायणव्रतको कहा। ब्राह्मणके मुखसे निकला हुआ यह व्रत कलिकालमें अतिशय पुण्यप्रद है। (अध्याय २९)

[श्रीसत्यनारायणव्रत-कथाका षष्ठ अध्याय]

(सत्यनारायणव्रत-कथा सम्पूर्ण)

पितृशर्मा और उनके वंशज—व्याडि, पाणिनि और वररुचि आदिकी कथा

ऋषियोंने कहा—भगवन्! तीनों दुःखोंके विनाश करनेवाले व्रतोंमें सर्वश्रेष्ठ सत्यनारायणव्रतको हमलोगोंने सुना, अब आपसे हमलोग ब्रह्मचर्यका महत्त्व सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—ऋषियो! कलियुगमें पितृशर्मा नामका एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। वह वेदवेदाङ्गोंके तत्त्वोंको जाननेवाला था और पापकर्मोंसे डरता रहता था। कलियुगके भयंकर समयको देखकर वह बहुत चिन्तित हुआ। उसने सोचा कि किस आश्रमके द्वारा मेरा कल्याण होगा, क्योंकि कलिकालमें संन्यास-मार्ग दम्भ और पाखण्डके द्वारा खण्डित हो गया है, वानप्रस्थ तो समाप्त-सा ही है, बस, कहीं-कहीं ब्रह्मचर्य रह गया है, किंतु गार्हस्थ-जीवनका कर्म सभी कर्मोंमें श्रेष्ठ माना गया है। अतः इस घोर कलियुगमें मुझे गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये विवाह करना चाहिये। यदि भाग्यसे अपनी मनोवृत्तिके अनुसार आचरण करनेवाली स्त्री मिल जाती है, तब मेरा जन्म सफल एवं कल्याणकारी हो जायगा। इस प्रकार विचार करते हुए पितृशर्माने उत्तम पत्नी प्राप्त करनेके लिये विशेष्वरी जगन्माता भगवतीकी चन्दन आदिसे पूजा कर स्तुति प्रारम्भ की*।

पितृशर्माकी स्तुति सुनकर देवी प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने कहा—‘हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने तुम्हारी स्त्रीके रूपमें विष्णुयशा नामक ब्राह्मणकी कन्याको निर्दिष्ट किया है।’ तदनन्तर पितृशर्मा उस देवी ब्रह्मचारिणीसे विवाह करके मथुरामें निवास करते हुए गृहस्थ-धर्मानुसार जीवन-यापन करने लगा। चारों वेदोंको जाननेवाले उसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम थे—ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्वा। ऋक्के पुत्र व्याडि थे, जो न्याय-शास्त्र-विशारद थे। यजुष्के पुत्र लोकविश्रुत मीमांस हुए। सामके पुत्र पाणिनि हुए जो व्याकरण-शास्त्रमें पारंगत थे और अथर्वाके पुत्र वररुचि हुए।

एक समय वे चारों पितृशर्माके साथ मगध देशके अधिपति राजा चन्द्रगुप्तकी सभामें गये। अतिशय सम्मानपूर्वक राजाने उन लोगोंका पूजन कर पूछा—‘द्विजगण! कौन-सा ब्रह्मचर्यव्रत श्रेष्ठ है?’ इसपर व्याडिने कहा—‘महाराज! जो व्यक्ति उस परम पुरुषदेवकी न्यायपूर्वक आराधनामें तत्पर रहता है, वह श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है।’ मीमांसने कहा—‘राजन्! जो श्रेष्ठ व्यक्ति यज्ञमें ब्रह्मा आदि देवताओंका यजन करता है और रोचना आदिसे उनका अर्चन एवं तर्पण आदि करता है तथा

* नमः प्रकृत्यै सर्वायै कैवल्यायै नमो नमः । त्रिगुणैक्यस्वरूपायै तुरीयायै नमो नमः ॥

महत्त्वजनन्यै च द्वन्द्वकर्त्त्यै नमो नमः । ब्रह्मातार्नमस्तुभ्यं साहंकारपितामहि ॥

पृथग्गुणायै शुद्धायै नमो मातर्नमो नमः । विद्यायै शुद्धसत्त्वायै लक्ष्यं सत्त्वरजोमयि ॥

नमो मातरविद्यायै ततः शुद्धयै नमो नमः । काल्यै सत्त्वतमोभूत्यै नमो मातर्नमो नमः ॥

स्त्रियै शुद्धरजोमूर्त्यै नमस्त्रैलोक्यवासिनि । नमो रजस्तमोमूर्त्यै दुर्गायै च नमो नमः ॥ (प्रतिसर्गपर्व २। ३०। १०—१४)

भगवान्‌के प्रसादको ग्रहण करता है, वह ब्रह्मचारी है।' यह सुनकर पाणिनि कहा—'राजन्! उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरोंसे या परा, पश्यन्ती, मध्यमा वाणीसे शब्दब्रह्मका आराधक तथा लिङ्ग, धातु एवं गणोंसे समन्वित सूत्रपाठोंसे शब्दब्रह्मकी आराधना करनेवाला सच्चा ब्रह्मचारी है और वही ब्रह्मको प्राप्त करता है।' यह सुनकर वररुचिने कहा—'हे मगधाधिपते! जो व्यक्ति उपनीत होकर गुरुकुलमें निवास करता हुआ दण्ड, केश और नखधारी भिक्षार्थी वेदाध्ययनमें तत्पर रहते हुए गुरुकी आज्ञाके अनुसार गुरुके गृहमें निवास करता है, वह ब्रह्मचारी कहा गया है।'

इनके वचनोंको सुनकर पितृशर्मानि कहा कि

'जो गृहस्थ-धर्ममें रहता हुआ पितरों, देवताओं और अतिथियोंका सम्मान करता है और इन्द्रिय-संयमपूर्वक ऋतुकालमें ही भार्याका उपगमन करता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है।' यह सुनकर राजाने कहा—'स्वामिन्! कलिकालके लिये आपका ही कथन उचित, सुगम और उत्तम धर्म है, यही मेरा भी मत है।'

यह कहकर वह राजा पितृशर्माका शिष्य हो गया और उसने अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त किया। पितृशर्मा भी भगवान् श्रीहरिका ध्यान करते हुए हिमालय पर्वतपर जाकर योगध्यानपरायण हो गया।

(अध्याय ३०)

महर्षि पाणिनिका इतिवृत्त

ऋषियोंने पूछा—भगवन्! सभी तीर्थों, दानों आदि धर्मसाधनोंमें उत्तम साधन क्या है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य क्लेश-सागरको पार कर जाय और मुक्ति प्राप्त कर ले?

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें सामके एक श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनका नाम पाणिनि था। कणादके श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ शिष्योंसे वे पराजित एवं लज्जित होकर तीर्थाटनके लिये चले गये। प्रायः सभी तीर्थोंमें स्नान तथा देवता-पितरोंका तर्पण करते हुए वे केदार-क्षेत्रका जल पानकर भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर हो गये। पत्तोंके आहारपर रहते हुए वे सप्ताहान्तमें जल ग्रहण करते थे। फिर उन्होंने दस दिनतक जल ही ग्रहण किया। बादमें वे दस दिनोंतक केवल वायुके ही आहारपर रहकर भगवान् शिवका ध्यान करते रहे। इस प्रकार जब अट्टाईस दिन व्यतीत हो गये तो भगवान् शिवने प्रकट

होकर उनसे वर माँगनेको कहा। भगवान् शिवकी इस अमृतमय वाणीको सुनकर उन्होंने गद्द वाणीसे सर्वेश, सर्वलङ्घेश, गिरजावल्लभ हरकी इस प्रकार स्तुति की—

'महान् रुद्रको नमस्कार है। सर्वेश्वर सर्वहितकारी भगवान् शिवको नमस्कार है। अभ्य एवं विद्या प्रदान करनेवाले, नन्दीवाहन भगवान्‌को नमस्कार है। पापका विनाश करनेवाले तथा समस्त लोकोंके स्वामी एवं समस्त मायारूपी दुःखोंका हरण करनेवाले तेजःस्वरूप अनन्तमूर्ति भगवान् शंकरको नमस्कार है*'। देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मूल विद्या एवं परम शास्त्र-ज्ञान प्रदान करनेकी कृपा करें।

सूतजी बोले—यह सुनकर महादेवजीने प्रसन्न होकर 'अ इ उ ण्' आदि मङ्गलकारी सर्ववर्णमय सूत्रोंको उन्हें प्रदान किया। ज्ञानरूपी सरोवरके

* नमो रुद्राय महते सर्वेशाय हितैषिणे । नन्दीसंस्थाय देवाय विद्याभयकराय च॥

पापान्तकाय भर्गाय नमोऽनन्ताय वेधसे । नमो मायाहरेशाय नमस्ते लोकशंकर॥ (प्रतिसर्गपर्व २।३१।७-८)

सत्यरूपी जलसे जो राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाला है, उस मानसीर्थको प्राप्त करनेपर अर्थात् उस मानसीर्थमें अवगाहन करनेपर सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। यह महान् मानस-ज्ञान-तीर्थ ब्रह्मके साक्षात्कार करानेमें समर्थ है। पाणिने ! मैंने यह सर्वोत्तम तीर्थ तुम्हें प्रदान किया है, इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगे। यह कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्हित हो गये और पाणिनि अपने

घरपर आ गये। पाणिनि सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ और लिङ्गसूत्र-रूप व्याकरण शास्त्रका निर्माण कर परम निर्वाण प्राप्त किया*। अतः भार्गवश्रेष्ठ ! तुम मनोमय ज्ञानतीर्थका अवलम्बन करो। उन्होंसे कल्याणमयी सर्वोत्तम तीर्थमयी गङ्गा प्रकट हुई हैं। गङ्गासे बढ़कर उत्तम तीर्थ न कोई हुआ है और न आगे होगा।

(अध्याय ३१)

बोपदेवके चरित्र-प्रसंगमें श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

सूतजी बोले—महामुने शौनक ! तोताद्विमें एक बोपदेव नामके ब्राह्मण रहते थे। वे कृष्णभक्त और वेद-वेदाङ्गपारंगत थे। उन्होंने गोप-गोपियोंसे प्रतिष्ठित वृन्दावन-तीर्थमें जाकर देवाधिदेव जनार्दनकी आराधना की। एक वर्ष बाद भगवान् श्रीहरिने प्रसन्न होकर उन्हें अतिशय श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान किया। उसी ज्ञानके द्वारा उनके हृदयमें भागवती कथाका उदय हुआ। जिस कथाको श्रीशुकदेवजीने बुद्धिमान् राजा परीक्षितको सुनाया था, उस सनातनी मोक्ष-स्वरूपा कथाका बोपदेवने हरि-लीलामृत नामसे पुनः वर्णन किया। कथाकी समाप्तिपर जनार्दन भगवान् विष्णु प्रकट हुए और बोले ‘महामते ! वर माँगो।’ बोपदेवने अतिशय स्नेहमयी वाणीमें कहा—‘भगवन् ! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण संसारपर अनुग्रह करनेवाले हैं। आपसे देव, मनुष्य, पशु-पक्षी सभी निर्मित हुए हैं। नरकसे दुःखी प्राणी भी इस कलियुगमें आपके ही नामसे कृतार्थ होते हैं। महर्षि वेदव्यासरचित् श्रीमद्भागवतका ज्ञान तो आपने मुझे प्रदान किया है, पुनः यदि आप वर प्रदान करना चाहते हैं तो

उस भागवतका माहात्म्य मुझसे कहें।’

श्रीभगवान् बोले—बोपदेव ! एक समय भगवान् शंकर पार्वतीके साथ दम्भ और पाखण्डसे युक्त बौद्धोंके राज्य प्राप्त होनेपर काशीमें उत्तम भूमि देखकर वहाँ स्थित हो गये। भगवान् शंकरने आनन्दपूर्वक प्रणाम करते हुए कहा—‘हे सच्चिदानन्द ! हे विभो ! हे जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाले ! आपकी जय हो।’ इस प्रकारकी वाणी सुनकर पार्वतीने भगवान् शंकरसे पूछा—‘भगवन् ! आपके समान दूसरा अन्य देवता कौन है जिसे आपने प्रणाम किया।’ इसपर भगवान् शिवने कहा—‘महादेवि ! यह काशी परम पवित्र क्षेत्र है, यह स्वयं सनातन ब्रह्मस्वरूप है, यह प्रणाम करने योग्य है। यहाँ मैं ससाह-यज्ञ (भागवत-ससाह-यज्ञ) करूँगा।’ उस यज्ञ-स्थलकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरने चण्डीश, गणेश, नन्दी तथा गुह्यकोंको स्थापित किया और स्वयं ध्यानमें स्थित होकर माता पार्वतीसे सात दिनतक भागवती कथा कहते रहे। आठवें दिन पार्वतीको सोते देखकर उन्होंने पूछा कि ‘तुमने कितनी कथा

* सूत्रपाठं धातुपाठं गणपाठं तथैव च।

लिङ्गसूत्रं तथा कृत्वा परं निर्वाणमासवान्॥

सुनी।' उन्होंने कहा—'देव! मैंने अमृत-मन्थनपर्यन्त विष्णुचरित्रिका श्रवण किया।' इसी कथाको वहाँ वृक्षके कोटरमें स्थित शुकरूपी शुकदेव सुन रहे थे। अमृत-कथाके श्रवणसे वे अमर हो गये। मेरी इस आज्ञासे वह शुक साक्षात् तुम्हारे हृदयमें स्थित है। बोपदेव! तुमने इस दुर्लभ भागवत-माहात्म्यको मेरे द्वारा प्राप्त किया है। अब तुम

जाकर राजा विक्रमके पिता गन्धर्वसेनको नर्मदाके तटपर इसे सुनाओ। हरि-माहात्म्यका दान करना सभी दानोंमें उत्तम दान है। इसे विष्णुभक्त बुद्धिमान् सत्पात्रको ही सुनाना चाहिये। भूखेको अन्न-दान करना भी इसके समान दान नहीं है। यह कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्हित हो गये और बोपदेव बहुत प्रसन्न हो गये। (अध्याय ३२)

श्रीदुर्गासप्तशतीके आदिचरित्रिका माहात्म्य (व्याधकर्माकी कथा)

ऋषियोंने पूछा—सूतजी महाराज! अब आप हमलोगोंको यह बतलानेकी कृपा करें कि किस स्तोत्रके पाठ करनेसे वेदोंके पाठ करनेका फल प्राप्त होता है और पाप विनष्ट होते हैं।

सूतजी बोले—ऋषियो! इस विषयमें आप एक कथा सुनें। राजा विक्रमादित्यके राज्यमें एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था कामिनी। एक बार वह ब्राह्मण श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ करनेके लिये अन्यत्र गया हुआ था। इधर उसकी स्त्री कामिनी जो अपने नामके अनुरूप कर्म करनेवाली थी, पतिके न रहनेपर निन्दित कर्ममें प्रवृत्त हो गयी। फलतः उसे एक निन्द्य पुत्र उत्पन्न हुआ, जो व्याधकर्मा नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह भी अपने नामके अनुरूप कर्म करनेवाला था, धूर्त था तथा वेद-पाठसे रहित था। उस ब्राह्मणने अपनी स्त्री एवं पुत्रके निन्दित कर्म और पापमय आचरणको देखकर उन दोनोंको घरसे निकाल दिया तथा स्वयं धर्ममें तत्पर रहते हुए विन्ध्याचल पर्वतपर प्रतिदिन चण्डीपाठ करने लगा। जगदम्बाके अनुग्रहसे अन्तमें वह जीवन्मुक्त हो गया।

इधर वे दोनों माता-पुत्र (कामिनी और

व्याधकर्मा) पूर्वपरिचित निषादके पास चले गये और वहाँ निवास करने लगे। वहाँ भी वे दोनों अपने निन्दित आचरणको छोड़ न सके और इन्हीं बुरे कर्मोंसे धन-संग्रह करने लगे। व्याधकर्मा चौर्य-कर्ममें प्रवृत्त हो गया। ऐसे ही भ्रमण करते हुए दैवयोगसे एक दिन वह व्याधकर्मा देवीके मन्दिरमें पहुँचा। वहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ कर रहे थे। दुर्गापाठके आदिचरित्र (प्रथम चरित्र)-के किंचित् पाठमात्रके श्रवणसे उसकी दुष्टबुद्धि धर्ममय हो गयी। फलतः धर्मबुद्धिसम्पन्न उस व्याधकर्मने उस श्रेष्ठ विप्रका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और अपना सारा धन उन्हें दे दिया। गुरुकी आज्ञासे उसने देवीके मन्त्रका जप किया। बीजमन्त्रके प्रभावसे उसके शरीरसे पापसमूह कृमिके रूपमें निकल गये। तीन वर्षतक इस प्रकार जप करते हुए वह निष्पाप श्रेष्ठ द्विज हो गया। इसी प्रकार मन्त्र-जप और आदिचरित्रिका पाठ करते हुए उसे बारह वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर वह द्विज काशीमें चला आया। मुनि एवं देवोंसे पूजित महादेवी अन्नपूर्णाका उसने रोचनादि उपचारोंके द्वारा पूजन किया और

उनकी इस प्रकार स्तुति की—

नित्यानन्दकरी पराभ्यकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलपापवनकरी काशीपुराधीश्वरी।
नानालोककरी महाभ्यहरी विश्वभरी सुन्दरी
विद्यांदेहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी* ॥

(प्रतिसर्गपर्व २। ३३। २१)

इस स्तुतिका एक सौ आठ बार जपकर
ध्यानमें नेत्रोंको बंदकर वह वहीं सो गया। स्वप्नमें
उसके सम्मुख अन्नपूर्णा शिवा उपस्थित हुई और

उसे ऋग्वेदका ज्ञान प्रदान कर अन्तर्हित हो गयीं।
बादमें वह बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ विद्या प्राप्तकर
राजा विक्रमादित्यके यज्ञका आचार्य हुआ। यज्ञके
बाद योग धारणकर हिमालय चला गया।

हे विप्रो! मैंने आपलोगोंको देवीके पुण्यमय
आदिचरित्रके माहात्म्यको बतलाया, जिसके प्रभावसे
उस व्याधकर्मने ब्राह्मीभाव प्राप्तकर परमोत्तम
सिद्धिको प्राप्त कर लिया था।

(अध्याय ३३)

श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यमचरित्रिका माहात्म्य

(कात्यायन तथा मगधके राजा महानन्दकी कथा)

सूतजी बोले— शौनक! उज्जयिनी नगरीमें एक हिंसापरायण मद्य-मांस-भक्षी भीमवर्मा नामका क्षत्रिय रहता था। वह अतिशय हिंसा एवं अधर्मचरणके कारण भयंकर व्याधियोंसे ग्रस्त हो गया और युवावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो गयी। संयोगवश उसने कभी चण्डीपाठ भी कराया था। जिसके पुण्यके प्रभावसे इतना निकृष्ट पापी भी नरकमें नहीं गया। दूसरे जन्ममें वही राजनीतिपरायण मगधका विख्यात राजा महानन्द हुआ और उसे अपने पूर्वजन्मकी पूरी स्मृति थी। अतिशय समर्थ बुद्धिमान् कात्यायन (वररुचि)-का वह शिष्य हुआ। देवी महालक्ष्मीके बीजसहित मध्यमचरित्रिका राजा महानन्दको उपदेश देकर कात्यायन स्वयं

विन्ध्यपर्वतपर शक्ति-उपासनाके लिये चले गये। इधर राजा भी प्रतिदिन महालक्ष्मीकी कस्तूरी, चन्दन आदिसे पूजा कर श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यम-चरित्रिका पाठ करने लगा। बारह वर्ष व्यतीत होनेपर शक्तिकी उपासना करनेवाले कात्यायन पुनः अपने शिष्य महानन्दके पास आये और उन्होंने राजासे विधिपूर्वक लक्ष्चण्डीपाठ करवाया। फलस्वरूप सनातनी भगवती महालक्ष्मी प्रकट हुई और राजाको धर्म, अर्थ, कामसहित मोक्ष भी दे दिया। इस प्रकार महाभाग महानन्दने देवोंके समान अभीष्ट फलोंका उपभोग कर अन्तमें देवताओंसे नमस्कृत हो परम लोकको प्राप्त किया।

(अध्याय ३४)

* 'हे काशीपुरीकी अधीश्वरी अन्नपूर्णेश्वरी! आप नित्य आनन्ददायिनी हैं। शत्रुओंसे अभ्य प्रदान करनेवाली हैं तथा आप सौन्दर्यरत्नोंकी निधान और समस्त पापोंको नष्टकर पवित्र कर देनेवाली हैं। हे सुन्दरी! आप सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करनेवाली, महान्-महान् भयोंको दूर करनेवाली, विश्वका भरण-पोषण करनेवाली तथा सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाली हैं। हे मातः! आप मुझे विद्या प्रदान करें।'

श्रीदुर्गाससशतीके उत्तरचरित्रकी महिमाके प्रसंगमें योगाचार्य महर्षि पतञ्जलिका चरित्र

सूतजी बोले— अनेक धातुओंके द्वारा चित्रित रमणीय चित्रकूट पर्वतपर महाविद्वान् उपाध्याय पतञ्जलिमुनि रहते थे। वे वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ एवं गीता-शास्त्र-परायण थे। वे विष्णुके भक्त, सत्यवक्ता एवं व्याकरण-महाभाष्यके रचयिता भी माने गये हैं। एक समय वे शुद्धात्मा अन्य तीर्थोंमें गये। काशीमें उनका देवीभक्त कात्यायनके साथ शास्त्रार्थ हुआ। एक वर्षतक शास्त्रार्थ चलता रहा, अन्तमें पतञ्जलि पराजित हो गये। इससे लज्जित होकर उन्होंने सरस्वतीकी इस प्रकार आराधना की— नमो देव्यै महामूर्त्यै सर्वमूर्त्यै नमो नमः। शिवायै सर्वमाङ्गल्यै विष्णुमाये च ते नमः॥ त्वमेव श्रद्धा बुद्धिस्त्वं मेधा विद्या शिवंकरी। शान्तिर्वाणी त्वमेवासि नारायणि नमो नमः॥

(प्रतिसर्गपर्व २। ३५। ५-६)

‘महामूर्ति देवीको नमस्कार है। सर्वमूर्तिस्व-रूपिणीको नमस्कार है। सर्वमङ्गलस्वरूपा शिवादेवीको नमस्कार है। हे विष्णुमाये ! तुम्हें नमस्कार है। हे नारायण ! तुम्हीं श्रद्धा, बुद्धि, मेधा, विद्या तथा कल्याणकारिणी हो। तुम्हीं शान्ति हो, तुम्हीं वाणी हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है।’

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवती सरस्वतीने आकाशवाणीमें कहा—‘विप्रश्रेष्ठ ! तुम एकाग्रित्ति होकर मेरे उत्तरचरित्रका जप करो। उसके प्रभावसे तुम निश्चय ही ज्ञानको प्राप्त करोगे। पतञ्जले ! कात्यायन तुमसे परास्त हो जायँगे।’ देवीकी इस वाणीको सुनकर पतञ्जलिने विन्ध्यवासिनीदेवीके मन्दिरमें जाकर सरस्वतीकी आराधना की और वे प्रसन्न हो गयीं। इससे उन्होंने पुनः शास्त्रार्थमें कात्यायनको पराजित कर दिया, बादमें उन्होंने कृष्ण-मन्त्र और भक्तिके प्रचारमें तुलसीमाला आदिका भी महत्त्व बढ़ाया। भगवती विष्णुमायाकी कृपासे वे योगाचार्य अत्यन्त चिरजीवी हो गये।

मुनियो ! इस प्रकार दुर्गाससशतीके उत्तरचरित्रकी महिमा निरूपित हुई। अब आगे आपलोग क्या सुनना चाहते हैं, वह बतायें। सभीका कल्याण हो, कोई भी दुःख प्राप्त न करे। गरुडध्वज, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु मङ्गलमय हैं। भगवान् विष्णु मङ्गलमूर्ति हैं। जो व्यक्ति पवित्र होकर इस इतिहास-समुच्चयको प्रतिदिन सुनता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।

(अध्याय ३५)

॥ प्रतिसर्गपर्व द्वितीय खण्ड सम्पूर्ण ॥



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्रतिसर्गपर्व (तृतीय खण्ड)

[भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वका तीसरा खण्ड रामांश और कृष्णांश अर्थात् आल्हा और ऊदल (उदयसिंह)-के चरित्र तथा जयचन्द्र एवं पृथ्वीराज चौहानकी वीर-गाथाओंसे परिपूर्ण है। इधर भारतमें जगनिक भाटरचित आल्हाका वीरकाव्य बहुत प्रचलित है। इसके बुंदेलखण्डी, भोजपुरी आदि कई संस्करण हैं, जिनमें भाषाओंका थोड़ा-थोड़ा भेद है। इन कथाओंका मूल यह प्रतिसर्गपर्व ही प्रतीत होता है। इसीके आधारपर ये रचनाएँ प्रचलित हैं। प्रायः ये कथाएँ लोकरञ्जनके अनुसार अतिशयोक्तिपूर्ण-सी प्रतीत होती हैं, किंतु ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वकी भी हैं। यहाँ इनका सारमात्र प्रस्तुत किया गया है—सम्पादक]

आल्हा-खण्ड (आल्हा-ऊदलकी कथा)-का उपक्रम

ऋषियोंने पूछा—सूतजी महाराज ! आपने महाराज विक्रमादित्यके इतिहासका वर्णन किया। द्वापरयुगके समान उनका शासन धर्म एवं न्यायपूर्ण था और लम्बे समयतक इस पृथ्वीपर रहा। महाभाग ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अनेक लीलाएँ की थीं। आप उन लीलाओंका हमलोगोंसे वर्णन कीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

श्रीसूतजीने मङ्गल-स्मरणपूर्वक कहा—
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

(प्रतिसर्गपर्व ३।१।३)

‘भगवान् नर-नारायणके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके सखा नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीलाओंको प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उनके चरित्रोंका वर्णन करनेवाले वेदव्यासको नमस्कारकर अष्टादश पुराण, रामायण और महाभारत आदि जय नामसे व्यपदिष्ट ग्रन्थोंका वाचन करना चाहिये।’

मुनिगणो ! भविष्य नामक महाकल्पके वैवस्वत मन्वन्तरके अद्वाईसवें द्वापरयुगके अन्तमें कुरुक्षेत्रका प्रसिद्ध महायुद्ध हुआ। उसमें युद्धकर दुरभिमानी सभी कौरवोंपर पाण्डवोंने अठारहवें दिन पूर्ण

विजय प्राप्त की। अन्तिम दिन भगवान् श्रीकृष्णने कालकी दुर्गतिको जानकर योगरूपी सनातन शिवजीकी मनसे इस प्रकार स्तुति की—

शान्तस्वरूपी, सब भूतोंके स्वामी, कपर्दी, कालकर्ता, जगद्भर्ता, पाप-विनाशक रुद्र ! मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ। भगवन् ! आप मेरे भक्त पाण्डवोंकी रक्षा कीजिये।

इस स्तुतिको सुनकर भगवान् शंकर नन्दीपर आरूढ़ हो हाथमें त्रिशूल लिये पाण्डवोंके शिविरकी रक्षाके लिये आ गये। उस समय महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये थे और पाण्डव सरस्वतीके किनारे रहते थे।

मध्यरात्रिमें अश्वत्थामा, भोज (कृतवर्मा) और कृपाचार्य—ये तीनों पाण्डव-शिविरके पास आये और उन्होंने मनसे भगवान् रुद्रकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। इसपर भगवान् शंकरने उन्हें पाण्डव-शिविरमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दे दी। बलवान् अश्वत्थामाने भगवान् शंकरद्वारा प्राप्त तलवारसे धृष्टद्युम्र आदि वीरोंकी हत्या कर दी, फिर वह कृपाचार्य और कृतवर्माके साथ वापस चला गया। वहाँ एकमात्र पार्षद सूत ही बचा रहा, उसने इस जनसंहारकी सूचना पाण्डवोंको दी। भीम आदि

पाण्डवोंने इसे शिवजीका ही कृत्य समझा; वे क्रोधसे तिलमिला गये और अपने आयुधोंसे देवाधिदेव पिनाकीसे युद्ध करने लगे। भीम आदिद्वारा प्रयुक्त अस्त्र-शस्त्र शिवजीके शरीरमें समाहित हो गये। इसपर भगवान् शिवने कहा कि तुम श्रीकृष्णके उपासक हो अतः हमारे द्वारा तुमलोग रक्षित हो, अन्यथा तुमलोग वधके योग्य थे। इस अपराधका फल तुम्हें कलियुगमें जन्म लेकर भोगना पड़ेगा। ऐसा कहकर वे अदृश्य हो गये और पाण्डव बहुत दुःखी हुए। वे अपराधसे मुक्त होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। निःशस्त्र पाण्डवोंने श्रीकृष्णके साथ एकाग्र मनसे शंकरजीकी स्तुति की। इसपर भगवान् शंकरने प्रत्यक्ष प्रकट होकर उनसे वर माँगनेको कहा।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—देव! पाण्डवोंके जो शस्त्रास्त्र आपके शरीरमें लीन हो गये हैं, उन्हें पाण्डवोंको वापस कर दीजिये और इन्हें शापसे भी मुक्त कर दीजिये।

श्रीशिवजीने कहा—श्रीकृष्णचन्द्र! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। उस समय मैं आपकी मायासे मोहित हो गया था। उस मायाके अधीन होकर मैंने यह शाप दे दिया। यद्यपि मेरा वचन तो मिथ्या नहीं होगा तथापि ये पाण्डव तथा कौरव अपने अंशोंसे कलियुगमें उत्पन्न होकर अंशतः अपने पापोंका फल भोगकर मुक्त हो जायेंगे।

युधिष्ठिर वत्सराजका पुत्र होगा, उसका नाम

बलखानि (मलखान) होगा, वह शिरीष नगरका अधिपति होगा। भीमका नाम वीरण होगा और वह वनरसका राजा होगा। अर्जुनके अंशसे जो जन्म लेगा, वह महान् बुद्धिमान् और मेरा भक्त होगा। उसका जन्म परिमलके यहाँ होगा और नाम होगा ब्रह्मानन्द। महाबलशाली नकुलका जन्म कान्यकुञ्जमें रत्नभानुके पुत्रके रूपमें होगा और नाम होगा लक्षण। सहदेव भीमसिंहका पुत्र होगा और उसका नाम होगा देवसिंह। धृतराष्ट्रके अंशसे अजमेरमें पृथ्वीराज जन्म लेगा और द्रौपदी पृथ्वीराजकी कन्याके रूपमें वेला नामसे प्रसिद्ध होगी। महादानी कर्ण तारक नामसे जन्म लेगा। उस समय रक्तबीजके रूपमें पृथ्वीपर मेरा भी अवतार होगा। कौरव मायायुद्धमें निष्णात होंगे तथा पाण्डु-पक्षके योद्धा धार्मिक और बलशाली होंगे।

सूतजी बोले—ऋषियो! यह सब बातें सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराये और उन्होंने कहा ‘मैं भी अपनी शक्ति-विशेषसे अवतार लेकर पाण्डवोंकी सहायता करूँगा। मायादेवीद्वारा निर्मित महावती नामकी पुरीमें देशराजके पुत्र-रूपमें मेरा अंश उत्पन्न होगा, जो उदयसिंह (ऊदल) कहलायेगा, वह देवकीके गर्भसे उत्पन्न होगा। मेरे वैकुण्ठधामका अंश आहाद नामसे जन्म लेगा, वह मेरा गुरु होगा। अग्रिवंशसे उत्पन्न राजाओंका विनाश कर मैं (श्रीकृष्ण—उदयसिंह) धर्मकी स्थापना करूँगा।’ श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर शिवजी अन्तर्हित हो गये।

राजा शालिवाहन तथा ईशामसीहकी कथा

सूतजीने कहा—ऋषियो! प्रातःकालमें पुत्रशोकसे पीड़ित सभी पाण्डव प्रेतकार्य कर पितामह भीष्मके पास आये। उनसे उन्होंने राजधर्म, मोक्षधर्म और दानधर्मोंके स्वरूपको अलग-अलग रूपसे भलीभाँति समझा। तदनन्तर उन्होंने

उत्तम आचरणोंसे तीन अश्वमेध-यज्ञ किये। पाण्डवोंने छत्तीस वर्षतक राज्य किया और अन्तमें वे स्वर्ग चले गये। कलिधर्मकी वृद्धि होनेपर वे भी अपने अंशसे उत्पन्न होंगे।

अब आप सब मुनिगण अपने-अपने स्थानको

पधारें। मैं योगनिद्राके वशीभूत हो रहा हूँ, अब मैं समाधिस्थ होकर गुणातीत परब्रह्मका ध्यान करूँगा। यह सुनकर नैमिषारण्यवासी मुनिगण यौगिक सिद्धिका अवलम्बन कर आत्मसामीप्यमें स्थित हो गये। दीर्घकाल व्यतीत होनेपर शौनकादि मुनि ध्यानसे उठकर पुनः सूतजीके पास पहुँचे।

मुनियोंने पूछा—सूतजी महाराज! विक्रमाख्यानका तथा द्वापरमें शिवकी आज्ञासे होनेवाले राजाओंका आप वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—मुनियो! विक्रमादित्यके स्वर्गलोक चले जानेके बाद बहुतसे राजा हुए। पूर्वमें कपिल स्थानसे पश्चिममें सिन्धु नदीतक, उत्तरमें बदरीक्षेत्रसे दक्षिणमें सेतुबन्धतककी सीमावाले भारतवर्षमें उस समय अठारह राज्य या प्रदेश थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रप्रस्थ, पाञ्चाल, कुरुक्षेत्र, कम्पिल, अन्तर्वेदी, ब्रज, अजमेर, मरुधन्व (मारवाड़), गुर्जर (गुजरात), महाराष्ट्र, द्रविड़ (तमिलनाडु), कलिंग (उड़ीसा), अवन्ती (उज्जैन), उडुप (आन्ध्र), बंग, गौड़, मागध तथा कौशल्य। इन राज्योंपर अलग-अलग राजाओंने शासन किया। वहाँकी भाषाएँ भिन्न-भिन्न रहीं और समय-समयपर विभिन्न धर्म-प्रचारक भी हुए। एक सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर धर्मका विनाश सुनकर शक आदि विदेशी राजा अनेक लोगोंके साथ सिन्धु नदीको पारकर आर्यदेशमें आये और कुछ लोग हिमालयके हिममार्गसे यहाँ आये। उन्होंने आर्योंको जीतकर उनका धन लूट लिया और अपने देशमें लौट गये। इसी समय विक्रमादित्यका पौत्र राजा शालिवाहन पिताके सिंहासनपर आसीन हुआ। उसने शक, चीन आदि देशोंकी सेनापर विजय पायी। बाहीक, कामरूप, रोम तथा खुर देशमें उत्पन्न हुए दुष्टोंको पकड़कर उन्हें कठोर दण्ड दिया और उनका सारा कोष

छीन लिया। उसने म्लेच्छों तथा आर्योंकी अलग-अलग देश-मर्यादा स्थापित की। सिन्धु-प्रदेशको आर्योंका उत्तम स्थान निर्धारित किया और म्लेच्छोंके लिये सिन्धुके उस पारका प्रदेश नियत किया।

एक समयकी बात है, वह शकाधीश शालिवाहन हिमशिखरपर गया। उसने हूँ देशके मध्य स्थित पर्वतपर एक सुन्दर पुरुषको देखा। उसका शरीर गोरा था और वह श्वेत वस्त्र धारण किये था। उस व्यक्तिको देखकर शकराजने प्रसन्नतासे पूछा—‘आप कौन हैं?’ उसने कहा—‘मैं ईशपुत्र हूँ और कुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ। मैं म्लेच्छ-धर्मका प्रचारक और सत्य-ब्रतमें स्थित हूँ।’ राजाने पूछा—‘आपका कौन-सा धर्म है?’

ईशपुत्रने कहा—महाराज! सत्यका विनाश हो जानेपर मर्यादारहित म्लेच्छ-प्रदेशमें मैं मसीह बनकर आया और दस्युओंके मध्य भयंकर ईशामसी नामसे एक कन्या उत्पन्न हुई। उसीको म्लेच्छोंसे प्राप्त कर मैंने मसीहत्व प्राप्त किया। मैंने म्लेच्छोंमें जिस धर्मकी स्थापना की है, उसे सुनिये—

‘सबसे पहले मानस और दैहिक मलको निकालकर शरीरको पूर्णतः निर्मल कर लेना चाहिये। फिर इष्ट देवताका जप करना चाहिये। सत्य वाणी बोलनी चाहिये, न्यायसे चलना चाहिये और मनको एकाग्र कर सूर्यमण्डलमें स्थित परमात्माकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि ईश्वर और सूर्यमें समानता है। परमात्मा भी अचल हैं और सूर्य भी अचल हैं। सूर्य अनित्य भूतोंके सारका चारों ओरसे आकर्षण करते हैं। हे भूपाल! ऐसे कृत्यसे वह मसीहा विलीन हो गयी, पर मेरे हृदयमें नित्य विशुद्ध कल्याणकारिणी ईश-मूर्ति प्राप्त हुई है। इसलिये मेरा नाम ईशामसीह प्रतिष्ठित हुआ।’

यह सुनकर राजा शालिवाहनने उस म्लेच्छ-

पूज्यको प्रणाम किया और उसे दारुण म्लेच्छ-

उस राजाने अश्वमेध-यज्ञ किया और साठ वर्षतक स्थानमें प्रतिष्ठित किया तथा अपने राज्यमें आकर

राज्य करके स्वर्गलोक चला गया।

राजा भोज और महामदकी कथा

सूतजीने कहा—ऋषियो! शालिवाहनके वंशमें दस राजा हुए। उन्होंने पाँच सौ वर्षतक शासन किया और स्वर्गवासी हुए। तदनन्तर भूमण्डलपर धर्म-मर्यादा लुप्त होने लगी। शालिवाहनके वंशमें अन्तिम दसवें राजा भोजराज हुए। उन्होंने देशकी मर्यादा क्षीण होती देख दिग्विजयके लिये प्रस्थान किया। उनकी सेना दस हजार थी और उनके साथ कालिदास एवं अन्य विद्वान् ब्राह्मण भी थे। उन्होंने सिन्धु नदीको पार करके गान्धार, म्लेच्छ और काश्मीरके शठ राजाओंको परास्त किया तथा उनका कोष छीनकर उन्हें दण्डित किया। उसी प्रसंगमें आचार्य एवं शिष्यमण्डलके साथ म्लेच्छ महामद नामका व्यक्ति उपस्थित हुआ। राजा भोजने मरुस्थलमें विद्यमान महादेवजीका दर्शन किया। महादेवजीको पञ्चगव्यमिश्रित गङ्गाजलसे स्नान कराकर चन्दन आदिसे भक्तिभावपूर्वक उनका पूजन किया और उनकी स्तुति की।

भोजराजने कहा—हे मरुस्थलमें निवास करनेवाले तथा म्लेच्छोंसे गुप्त शुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूपवाले गिरिजापते! आप त्रिपुरासुरके विनाशक तथा नानाविध मायाशक्तिके प्रवर्तक हैं। मैं आपकी

शरणमें आया हूँ, आप मुझे अपना दास समझें। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस स्तुतिको सुनकर भगवान् शिवने राजासे कहा—

‘हे भोजराज! तुम्हें महाकालेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। यह वाहीक नामकी भूमि है, पर अब म्लेच्छोंसे दूषित हो गयी है। इस दारुण प्रदेशमें आर्य-धर्म है ही नहीं। महामायावी त्रिपुरासुर यहाँ दैत्यराज बलिद्वारा प्रेषित किया गया है। मेरे द्वारा वरदान प्राप्त कर वह दैत्य-समुदायको बढ़ा रहा है। वह अयोनिज है। उसका नाम महामद है। राजन्! तुम्हें इस अनार्य देशमें नहीं आना चाहिये। मेरी कृपासे तुम विशुद्ध हो।’ भगवान् शिवके इन वचनोंको सुनकर राजा भोज सेनाके साथ अपने देशमें वापस चला आया।

राजा भोजने द्विजवर्गके लिये संस्कृत वाणीका प्रचार किया और शूद्रोंके लिये प्राकृत भाषा चलायी। उन्होंने पचास वर्षतक राज्य किया और अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त किया। उन्होंने देश-मर्यादाका स्थापन किया। विन्ध्यगिरि और हिमालयके मध्यमें आर्यवर्तकी पुण्यभूमि है, वहाँ आर्यलोग रहते हैं।

देशराज एवं वत्सराज आदि राजाओंका आविर्भाव

सूतजीने कहा—भोजराजके स्वर्गरोहणके पश्चात् उनके वंशमें सात राजा हुए, पर वे सभी अल्पायु, मन्द-बुद्धि और अल्पतेजस्वी हुए तथा तीन सौ वर्षके भीतर ही मर गये। उनके राज्यकालमें पृथ्वीपर छोटे-छोटे अनेक राजा हुए। वीरसिंह नामके सातवें राजाके वंशमें तीन राजा हुए, जो

दो सौ वर्षके भीतर ही मर गये। दसवाँ जो गंगासिंह नामका राजा हुआ, उसने कल्पक्षेत्रमें धर्मपूर्वक अपना राज्य चलाया। अन्तर्वेदीमें कान्यकुञ्जपर राजा जयचन्द्रका शासन था। तोमरवंशमें उत्पन्न अनङ्गपाल इन्द्रप्रस्थका राजा था। इस तरहसे गाँव और राष्ट्र (जनपदों)-में बहुतसे राजा हुए।

अग्निवंशका विस्तार बहुत हुआ और उसमें बहुतसे बलवान् राजा हुए। पूर्वमें कपिलस्थान (गङ्गासागर), पश्चिममें बाह्लीक, उत्तरमें चीन देश और दक्षिणमें सेतुबन्ध—इनके बीचमें साठ लाख भूपाल ग्रामपालक थे, जो महान् बलवान् थे। इनके राज्यमें—प्रजाएँ अग्निहोत्र करनेवाली, गौ-ब्राह्मणका हित चाहनेवाली तथा द्वापरयुगके समान धर्म-कार्य करनेमें निपुण थीं। सर्वत्र द्वापरयुग ही मालूम पड़ता था। घर-घरमें प्रचुर धन तथा जन-जनमें धर्म विद्यमान था। प्रत्येक गाँवमें देवताओंके मन्दिर थे। देश-देशमें यज्ञ होते थे। म्लेच्छ भी आर्य-धर्मका सभी तरहसे पालन करते थे। द्वापरके समान ऐसा धर्माचरण देखकर कलिने भयभीत होकर म्लेच्छाके साथ नीलाचल पर्वतपर जाकर हरिकी शरण ली। वहाँ उसने बारह वर्षतक तपश्चर्या की। इस ध्यानयोगात्मक तपश्चर्यासे उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ। राधाके साथ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर उसने मनसे उनकी स्तुति की।

कलिने कहा—हे भगवन्! आप मेरे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामको स्वीकार करें। मेरी रक्षा कीजिये। हे कृपानिधे! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सभी पापोंका विनाश करते हैं। सभी कालोंका

निर्माण करनेवाले आप ही हैं। सत्ययुगमें आप गौरवर्णके थे, त्रेतामें रक्तवर्ण, द्वापरमें पीतवर्णके थे। मेरे समय (कलियुग)-में आप कृष्णरूपके हैं। मेरे पुत्रोंने म्लेच्छ होनेपर भी अब आर्य-धर्म स्वीकार किया है। मेरे राज्यमें प्रत्येक घरमें द्यूत, मद्य, स्वर्ण, स्त्री-हास्य आदि होना चाहिये। परंतु अग्निवंशमें पैदा हुए क्षत्रियोंने उनका विनाश कर दिया है। हे जनार्दन! मैं आपके चरण-कमलोंकी शरण हूँ। कलियुगकी यह स्तुति सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर कहने लगे—

‘कलिराज! मैं तुम्हारी रक्षाके लिये अंशरूपमें महावतीमें अवतीर्ण होऊँगा, वह मेरा अंश भूमिमें आकर उन महाबली अग्निवंशीय प्रजाओंका विनाश करेगा और म्लेच्छवंशीय राजाओंकी प्रतिष्ठा करेगा।’ यह कहकर भगवान् अदृश्य हो गये और म्लेच्छाके साथ वह कलि अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

आगे चलकर इसी प्रकार सम्पूर्ण घटनाएँ घटित हुईं। कौरवांशोंकी पराजय और पाण्डवांशोंकी विजय हुई। अन्तमें पृथ्वीराज चौहानने वीरगति प्राप्त की तथा सहोड़ीन (मोहम्मदगोरी) अपने दास कुतुकोड़ीनको यहाँका शासन सौंपकर यहाँसे बहुत-सा धन लूटकर अपने देश चला गया।

॥ प्रतिसर्गपर्व, तृतीय खण्ड सम्पूर्ण ॥



प्रतिसर्गपर्व (चतुर्थ खण्ड)

[भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वके इस चतुर्थ खण्डका इतिहासकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व है। इसमें मुख्यरूपसे सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा विशेषरूपसे कलियुगके चारों चरणोंका इतिहास, राजवंश और युगधर्म निरूपित है। साथ ही अनेक आचार्यों, संतों, भक्त कवियों तथा पुरी, भारती आदि साधुओंके पूर्वजन्मोंका इतिवृत्त भी संगृहीत हुआ है। इन्हें प्रायः द्वादश आदित्यों, एकादश रुद्रों, अष्ट वसुओं तथा अक्षिनीद्वयका अवतार बतलाया गया है। चैतन्य-महाप्रभुकी महिमाका इसमें विशेष निरूपण हुआ है और जगन्नाथजीमें उनके लय होनेकी बात भी आयी है, साथ ही पूर्वापरके सभी आचार्यों तथा संतोंको उनके भक्तिभावसे विशेष प्रभावित दिखलाया गया है। पर वास्तवमें देश-कालकी दृष्टिसे कई विसंगतियाँ दिखलायी पड़ती हैं, जिससे इन अंशोंकी मौलिकतापर संदेह होना भी स्वाभाविक है। 'कल्याण' का सभी आचार्यों, संतों, महात्माओं और सम्प्रदायोंके प्रति समान आदरभाव है और समान श्रद्धा है। अतः इन विसंगतियोंपर ध्यान न देकर सत्संगकी दृष्टिसे संत, महात्माओं एवं भक्तोंकी पवित्र कथाओंको यथासम्भव उपलब्ध मूल संस्करणके अनुसार संक्षिप्त भावानुवादके रूपमें यहाँ प्रस्तुत किया गया है—सम्पादक]

कलियुगमें उत्पन्न आन्ध्रवंशीय राजाओंके वंश-वृक्षका वर्णन

श्रीगणेशजीको नमस्कार है, श्रीराधावल्लभकी जय हो।

नैमित्यारण्यवासी ऋषियोंने कहा—सूतजी महाराज ! हमलोगोंने आपके द्वारा कहे गये कृष्णांश (उदयसिंह)-के चरित्रको सुना । अब आप अग्निवंशमें उत्पन्न हुए राजाओं (प्रमर, चयहानि तथा परिहार आदि)-के राजवंशोंका वर्णन करें । जब भगवान् हरि त्रियुगी कहे जाते हैं तो वे कलियुगमें किस प्रकार अवतरित हुए इसे भी आप बतलायें ।

सूतजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आपलोगोंने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है । अग्निवंशके राजाओंके चरित्रको मैं कह रहा हूँ, आपलोग सुनिये । दक्षिण दिशामें अम्बाद्वारा रचित दिव्य अम्बावती नामकी पुरीमें प्रमर नामका एक राजा हुआ । वह राजा सामवेदी था । महाबली उस राजाने अम्बावतीमें छः वर्षोंतक राज्य किया । प्रमरका पुत्र महामर (महामद) हुआ, उसने तीन वर्षोंतक राज्य किया और उसका पुत्र हुआ देवापि । उसने भी पिताके

समान राज्य किया और उसका पुत्र देवदूत हुआ । देवदूतने भी अपने पिताके समान ही राज्य किया ।

देवदूतका महाबलशाली गन्धर्वसेन नामक पुत्र हुआ । गन्धर्वसेन पचास वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् तपस्या करनेके लिये वनमें चला गया । कुछ समयके बाद शिवके आशीर्वादसे उसे विक्रम नामका पुत्र हुआ । महाराज विक्रमने सौ वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र हुआ देवभक्त । देवभक्तने दस वर्षोंतक राज्य किया और वह दुष्ट शकोंद्वारा मारा गया । देवभक्तका पुत्र हुआ शालिवाहन । उसने शकोंको जीतकर साठ वर्षतक राज्य किया । अनन्तर वह दिवंगत हो गया । उसका पुत्र शालिहोत्र हुआ और शालिहोत्रने पचास वर्षतक राज्य किया । उसका पुत्र शालिवर्धन राजा हुआ, उसने पिताके समान राज्य किया । उसको शकहन्ता नामका पुत्र प्राप्त हुआ, उसका पुत्र सुहोत्र हुआ और उसका पुत्र हुआ हविर्होत्र । उसने भी पिताके समान पचास वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र इन्द्रपाल हुआ ।

इन्द्रपालने इन्द्रावती (इन्दौर) नामकी पुरी बनाकर उसमें राज्य किया। इन्द्रपालने भी अपने पिता हविर्होत्रके समान राज्य किया और उसका पुत्र हुआ माल्यवान्। माल्यवान् भी माल्यवती नामकी पुरी बनाकर पिताके समान राज्य किया। उसके राज्यमें चार वर्षतक अनावृष्टि होनेसे घोर अकाल पड़ गया। अन्नके दानेका दर्शन भी दुर्लभ हो गया। प्रजाके साथ-साथ राजा भी भूख-प्याससे व्याकुल हो गया। अनावृष्टि दूर करनेके लिये राजाने भगवान् शालग्रामकी शरण ली। राजाके पास नैवेद्य निवेदित करनेके लिये कुछ भी न था। एक स्थानपर पड़े कुछ अनाजके दानोंको राजाने बीन लिया और जिस किसी तरह उन्हें धोकर पवित्र कर उन्हींसे पूजा आदि की। उसकी श्रद्धा-भक्तिसे संतुष्ट होकर भगवान् आकाशवाणीद्वारा कहा—‘राजन्! आजसे तुम्हारे वंशजोंके उत्तम राज्यमें पृथ्वीपर कभी भी अनावृष्टिका भय नहीं होगा।’

माल्यवान्का पुत्र शंकर-भक्त शम्भुदत्त हुआ और उसका पुत्र भौमराज हुआ। भौमराजका पुत्र वत्सराज हुआ। उसका पुत्र हुआ भोजराज। भोजराजका पुत्र शम्भुदत्त हुआ। उसने चालीस वर्षतक राज्य किया। शम्भुदत्तका पुत्र बिंदुपाल हुआ। बिंदुपालने बिंदुखण्ड नामक राष्ट्रका निर्माणकर सुखपूर्वक राज्य किया। बिंदुपालने अपने पिताके समान ही राज्य किया। बिंदुपालका पुत्र राजपाल हुआ और उसको महीनर नामका पुत्र हुआ। महीनरका पुत्र हुआ सोमवर्मा और उसका पुत्र कामवर्मा हुआ।

कामवर्माका पुत्र भूमिपाल हुआ। उसने एक तालाब खुदवाया और उसके किनारे एक सुन्दर नगरका निर्माण कराया। भूमिपालका पुत्र रंगपाल हुआ।

भूमिपालने राजाका पद प्राप्त कर अनेक राजाओंपर विजय प्राप्त की और इस पृथ्वीपर वह वीरसिंहके नामसे विख्यात हुआ। अपने राज्यपर अपने पुत्र रंगपालका अधिषेक कर वह तपस्या करने वनमें चला गया। राजाओंमें उत्तम रंगपालको कल्पसिंह नामका पुत्र हुआ। कल्पसिंहके कोई संतान नहीं हुई। एक बार स्नान करनेके लिये वह गङ्गातटपर गया, वहाँ उसने प्रसन्न होकर द्विजातियोंको दान दिया। निर्जन कल्पक्षेत्रकी पुण्यभूमिको देखकर उस भूमिपर प्रसन्नचित्त हो उसने वहाँ एक नगरका निर्माण कराया। वह नगर ‘कलाप’ नामसे इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुआ। कलापमें उसने राज्य किया और गङ्गाकी कृपासे उसको गंगासिंह नामका पुत्र प्राप्त हुआ। उसने नब्बे वर्षोंतक राज्य किया, किंतु उसके कोई संतान न हुई। अन्तमें युद्ध करते हुए कुरुक्षेत्रमें प्राण त्यागनेके बाद उसने स्वर्गलोकको प्राप्त किया।

सूतजीने पुनः कहा—मुनियो! इस प्रकार पवित्र प्रमरवंश समाप्त हो गया। गंगासिंहके वंशमें उसके बाद जो क्षत्रिय शेष बच गये थे, उनकी स्त्रियोंसे आगे चलकर अनेकों वर्णसंकर पैदा हुए। वे सभी वैश्य-वृत्तिवाले थे। वे सभी म्लेच्छोंके समान पृथ्वीपर निवास करने लगे। इस प्रकार मैंने दक्षिणके* राजाओंके वंशका वर्णन किया।

(अध्याय १)

* स्मिथ आदि इतिहासकार आन्ध्रराजाओंसे लेकर हर्षवर्धनके राज्यतकके कोई ऐतिहासिक सूत्र नहीं देखते। प्रायः चार सौ वर्षोंके इतिहासको घोर अन्धकारमय मानते हैं। पर यहाँ जो वंशवृक्ष निर्दिष्ट हुआ है, यह उन्हीं चार सौ वर्षोंका संक्षिप्त वृत्तान्त समझना चाहिये और आजके ऐतिहासिकोंको इससे लाभ उठाना चाहिये।

राजपूताना तथा दिल्लीनगरके राजवंशका इतिहास

सूतजी बोले—मुनियो ! वयहानि (चपहानि) नामके राजाने मध्यदेशमें अपना आधिपत्य स्थापित किया और ब्रह्माद्वारा रचित अजमेर नामक नगरी बसायी। 'अजमेर' शब्दकी व्युत्पत्तिमें कहा गया है कि 'अज' का अर्थ है—ब्रह्मा, 'मा' का अर्थ है लक्ष्मी। लक्ष्मीने वहाँ आकर ब्रह्माजीके लिये एक रम्य नगरका निर्माण किया। अतः यह अजमेर कहलाया^१। वयहानिने दस वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र तोमर हुआ। उसने एक वर्षतक भक्तिपूर्वक भगवान् शिवका पार्थिव-पूजन किया। फलस्वरूप भगवान् शिवने प्रसन्न होकर तोमरको इन्द्रप्रस्थ नामका नगर प्रदान किया। तोमरसे उत्पन्न होनेवाले वंशको तोमर नामक क्षत्रिय-वंश कहा जाता है। तोमरका कनिष्ठ पुत्र हुआ चयहानि (चौहान)। वह चयहानि सामलदेवके नामसे इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुआ। उसने सात वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र महादेव हुआ। महादेवने अपने पिताके समान राज्य किया और उसका पुत्र हुआ अजय। अजयका पुत्र वीरसिंह हुआ। वीरसिंहने पचास वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र बिंदुसुर हुआ। बिंदुसुरने पचीस वर्षोंतक मध्यदेशमें राज्य किया और उसे वीरा नामकी एक कन्या हुई तथा वीरविहात्तक नामका पुत्र हुआ। बिंदुसुरने शास्त्रोक्त रीतिसे अपनी कन्या वीराका विवाह विक्रमसे कर दिया और मध्यदेशवर्ती अपने राज्यको प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्रको दे दिया।

वीरविहात्तकके माणिक्य नामका पुत्र हुआ। माणिक्यने पिताके समान ही पचास वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र महासिंह हुआ। पिताके समान उसने भी राज्य किया और उसका पुत्र

हुआ चन्द्रगुप्त। चन्द्रगुप्तने पचीस वर्षोंतक राज्य किया और उसका पुत्र प्रतापवान् हुआ। प्रतापवान्का पुत्र मोहन हुआ। मोहनने तीस वर्षोंतक राज्य किया और उसका पुत्र श्वेतराय हुआ। श्वेतरायका पुत्र नागवाह हुआ और उसका पुत्र हुआ लोहधार। लोहधारका पुत्र वीरसिंह हुआ, उसका पुत्र विबुध हुआ। विबुधने पचास वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र चन्द्रराय हुआ। चन्द्ररायका पुत्र हरिहर हुआ। उसका पुत्र वसंत, वसंतका पुत्र बलांग और बलांगका पुत्र प्रमथ हुआ। प्रमथका पुत्र अंगराय हुआ और उसका पुत्र विशाल हुआ। विशालका पुत्र शार्ङ्गदेव और उसका पुत्र मन्त्रदेव हुआ। मन्त्रदेवका पुत्र जयसिंह हुआ। इन सभी राजाओंने पचास-पचास वर्षतक राज्य किया।

जयसिंहने समस्त आर्यदेशको जीतकर वहाँकी धन-सम्पत्तिसे बहुत बड़ा यज्ञ किया, जिससे उसको उत्तम फल प्राप्त हुआ। (इसने ही जयपुर नगर बसाया, जो आज भारतका अत्यन्त रमणीय नगर माना जाता है।) जयसिंहको आनन्ददेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बुद्धिमान् जयसिंहने पचास वर्षतक राज्य किया। उसके पुत्र आनन्ददेवने भी अपने पिताके समान ही इस पृथ्वीपर राज्य किया। आनन्ददेवका पुत्र हुआ महान् योद्धा सोमेश्वर। उसने अनंगपालकी ज्येष्ठा पुत्री कीर्तिमालिनीके साथ विवाह किया और उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए। बड़ा पुत्र धुंधुकार मथुराका राजा हुआ। मध्यम पुत्र कृष्णकुमारने पिताके स्थानको प्राप्त किया। तृतीय बलवान् महीराज—पृथ्वीराज दिल्लीपति हुआ। पृथ्वीराजको सहोदीन^२ नामक राजाने छलसे जीतकर मार डाला और उसने स्वर्ग प्राप्त किया। (अध्याय २)

१—अजस्य ब्रह्मणो मा च लक्ष्मीस्तत्र समागता। तया च नगरं रम्यमजमेरमतः स्मृतम्॥ (प्रतिसर्गपर्व ४।२।२)

२—सहोदीन, शहाद्वीन गोरीका संस्कृत रूपान्तर है।

ब्राह्मणोंकी उत्पत्तिके प्रसंगमें शुक्लवंश एवं उसके आगे होनेवाले विभिन्न क्षत्रियवंशोंका वर्णन

सूतजी बोले—विप्रवर ! अब मैं शुक्लवंशका वर्णन करता हूँ। जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका-वृन्दावन आदिकी लीला समाप्त कर अपने परमधामको पधारे, उसके कुछ दिनोंके पश्चात् कलियुगका आगमन हुआ। कलियुगके चार हजार चार सौ वर्ष बीत जानेपर भारतकी भूमि म्लेच्छोंसे आक्रान्त हो गयी। न्यूह नामक यवनने सम्पूर्ण जगत्‌को म्लेच्छोंसे परिपूर्ण कर दिया था। कलियुगके प्रारम्भिक एक हजार वर्ष बीतनेपर देवराट् महेन्द्रने श्रेष्ठ ब्रह्मावर्तमें एक काश्यप नामके ब्राह्मणको भेजा। देवशक्ति आर्यावतीने उसका आनन्दपूर्वक पाणिग्रहण किया। उससे दस पुत्र* उत्पन्न हुए। बादमें काश्यप मिस्त्र देशमें आ गये। उन्होंने मिस्त्रमें उत्पन्न दस हजार म्लेच्छोंको वशमें कर पुनः अपने स्थानपर आकर उन्हें अपना शिष्य बना लिया तथा वे सप्तपुरियोंके नष्ट होनेके बाद सरस्वती और दृष्टद्वाती नदीके मध्य श्रेष्ठ ब्रह्मावर्तमें निवास करने लगे। मनुधर्मके अनुयायी राजा काश्यपने अपने पुत्र तपस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्लको बुलाकर उसे मनुधर्मका उपदेश देकर रैवत (गिरनार)-शिखरपर तपस्या करनेके लिये आदेश दिया और अपने नौ पुत्रों तथा शिष्योंको भी सनातन मनुधर्मका उपदेश दिया।

शुक्लने भी रैवतशृंगपर तपस्याके द्वारा सच्चिदानन्दविग्रह जगन्नाथ वासुदेवको संतुष्ट किया। भगवान् द्वारकानाथ प्रसन्न होकर उस विप्रका हाथ पकड़कर समुद्रके किनारे ले आये और दिव्य शोभासम्पन्न अपनी द्वारका नगरी उसे दिखायी। लगभग दो हजार वर्ष बीतनेके बाद अग्निद्वारसे

वह शुक्ल अर्बुद (आबू) पर्वतपर गया और वहाँ उसने अपने तीन भाइयों तथा द्विजोंके साथ बौद्धोंको जीतकर हरिकी कृपासे द्वारकाको पुनः प्रतिष्ठित किया। द्वारकामें कृष्णके ध्यानमें तत्पर रहकर शुक्लने प्रसन्नतापूर्वक निवास किया। उसने पश्चिम भारतवर्षमें दस वर्षतक राज्य किया।

नारायणकी कृपासे शुक्लको विष्वक्सेन नामक पुत्र हुआ, उसने बीस वर्षतक राज्य किया और उसे जयसेन नामका पुत्र हुआ, तीस वर्षतक उसने राज्य किया और उसे विसेन नामक पुत्र हुआ। पचास वर्षतक उसने राज्य किया और उसे प्रमोदा और मोदसिंह नामकी दो संतानें हुईं। विसेनने अपनी कन्या प्रमोदाका विवाह विक्रमके साथ कर दिया और पुत्र मोदसिंहको अपना उत्तम राज्य समर्पित कर दिया। मोदसिंहका पुत्र हुआ सिन्धुवर्मा। उसने पैतृक स्थानको छोड़कर सिन्धुनदीके तटपर राज्य किया। पृथ्वीपर वह स्थान सिन्धुदेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। सिन्धुवर्माका पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ और सिन्धुद्वीपका पुत्र श्रीपति हुआ। श्रीपतिने गौतमवंशमें उत्पन्न कच्छदेशमें रहनेवाली काच्छपीसे विवाह किया और पुलिन्द तथा यवनोंको जीतकर वहाँ देश बसाया। सिन्धुकूलमें वह देश श्रीपतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। श्रीपतिका पुत्र हुआ भुजवर्मा। भुजवर्मने शबर और भीलोंको जीतकर देश बसाया, जो इस पृथ्वीपर 'भुजदेश' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। भुजवर्माका पुत्र रणवर्मा और उसका पुत्र चित्रवर्मा हुआ। चित्रवर्मने वनके बीचमें 'चित्र' नामकी एक नगरी बसायी और उसको धर्मवर्मा नामक पुत्र हुआ। उसको कृष्णवर्मा

* उपाध्यायो दीक्षितश्च पाठकः शुक्लमिश्रकौ । अग्निहोत्री द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्ड्य एव च ॥

चतुर्वेदीति कथिता नामतुल्यगुणाः स्मृताः । (उत्तरपर्व १।६।४-५, प्रतिसर्गपर्व ४।२१।७-८)

नामक पुत्र हुआ। कृष्णवर्माको उदय नामका पुत्र हुआ। उदयने वनके बीचमें एक सुन्दर 'उदयपुर' नामका नगर बसाया। उसका पुत्र वाप्यकर्मा हुआ। वाप्यकर्माने अनेक वापी-कूप, तड़ाग, सुन्दर-सुन्दर महल आदि बनवाये। वह धर्मात्मा सदा धर्मकार्यमें संलग्न रहता था।

उसी समय एक लाख सैन्यसे युक्त महामदके अनुयायी बीरबलद नामक एक राजाने वाप्यकर्मापर चढ़ाई कर दी, परंतु वाप्यकर्माने पैशाचों और म्लेच्छोंको जीतकर भगवान् कृष्णका कृष्णोत्सव मनाया। वाप्यकर्माको गुहिल नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र कालभोज हुआ। कालभोजका पुत्र हुआ राष्ट्रपाल। राष्ट्रपालने अपने पैतृक स्थानका परित्याग कर सभी मङ्गलोंको प्रदान करनेवाली शारदादेवीकी आराधना की। राष्ट्रपालको वैष्णवी शक्ति प्राप्त हुई। उसके तपसे प्रसन्न हो शारदादेवीने मणिदेवसे रक्षित अत्यन्त रमणीय 'महावती' नामकी पुरी प्रदान की। उस बुद्धिमान् राजा राष्ट्रपालने उस पुरीमें दस वर्षोंतक राज्य किया।

राजा राष्ट्रपालको विजय और प्रजय नामके दो पुत्र प्राप्त हुए। प्रजयने अपने माता-पिताको त्यागकर गङ्गातटपर जाकर बारह वर्षोंतक शारदादेवीकी कठोर तपस्या की। शारदादेवी एक कन्याके रूपमें वेणुवादन करती हुई घोड़ेपर सवार हो राजाके सामने उपस्थित हुई और हँसकर बोलीं—'राजपुत्र! तुम किसलिये शिवाकी आराधना कर रहे हो? तुम्हें तपस्याका फल मेरे द्वारा शीघ्र ही प्राप्त होगा।' यह सुनकर प्रजयने कहा—'देवि! आपको नमस्कार है, आप मुझे एक नवीन नगर प्रदान करें।' यह सुनकर देवीने प्रजयको

एक सुन्दर घोड़ा प्रदान किया और वे वेणु-वादन करती हुई दक्षिण दिशाकी ओर चली गयीं। वह राजा भी उस अश्वपर चढ़कर उनके पीछे-पीछे नेत्र बंदकर पश्चिम दिशाकी ओर आया। इसके बाद वह जहाँ मर्कण नामका पक्षिराट् था, वहाँ गया। उसे देखकर वह भयभीत हो गया। तब उस राजाने दोनों नेत्रोंको खोल लिया और कन्याके द्वारा रचित एक शुभ नगरको देखा। उस नगरके उत्तरी भागमें गङ्गा, दक्षिणमें पाण्डुरा, पश्चिममें ईशसरिता तथा पूर्वमें मर्कण पक्षीका स्थान था। यह स्थान कुछ कुञ्ज (टेढ़ा) था। कन्याद्वारा निर्मित होने एवं कुछ कुञ्ज (टेढ़ा) होनेके कारण यह स्थान कान्यकुञ्ज नामसे प्रसिद्ध हुआ*।

राष्ट्रपालके पुत्र जयपालने दस वर्षतक राज्य किया। वेणुवादन करनेके कारण उसको वेणुक नामका पुत्र प्राप्त हुआ। राजा वेणुकने देवीके द्वारा प्रदत्त मनोहर कन्यामती नामकी कन्याके साथ विवाह किया। कन्यामतीसे उसे सात पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। वे मातृकाओंकी मङ्गल-कलासे समुद्भूत थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—शीतला, पार्वती, कन्या, पुष्पवती, गोवर्धनी, सिन्दूरा तथा काली। ये ही क्रमशः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा नामसे प्रसिद्ध हुईं। अनन्तर उस रानीसे यशोविग्रह नामक पुत्र हुआ। वह बहुत बलवान् धर्मात्मा तथा आर्यदेशका मालिक था। यशोविग्रहने बीस वर्षतक इस पृथ्वीपर राज्य किया। उसका पुत्र हुआ महीचन्द्र। महीचन्द्रने भी अपने पिताके समान ही राज्य किया। उसका पुत्र चन्द्रदेव हुआ, चन्द्रदेवका पुत्र मन्दपाल राजा हुआ। उसने दस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र कुम्भपाल हुआ।

* ददर्श नगरं रम्यं कन्या रचितं शुभम् । उत्तरे तस्य वै गङ्गा दक्षिणेनास पाण्डुरा ॥

पश्चिमे ईशसरिता पूर्वे पक्षी स मर्कणः । कुञ्जभूतमभूदग्रामं कान्यकुञ्ज इति स्मृतः ॥

म्लेच्छ और पैशाचधर्मका अनुयायी महामोद राजनीया नामक नगरीका अधिपति था, उसने बहुत-से देशोंको लूटकर धन एकत्र किया था। वह कुम्भपालके पास गया। उसने कुम्भपालको बहुत-सा धन दिया। बुद्धिमान् कुम्भपालने बीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र देवपाल हुआ।

देवपालने अनंगपाल नामक राजाकी कन्या चन्द्रकान्तिके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। देवपालने कान्यकुञ्ज प्राप्तकर अनेक राजाओंको जीतकर अपने पिताके समान राज्य किया। उसे जयचन्द्र और रत्नभानु नामके दो पुत्र हुए। जयचन्द्रने पूर्व और रत्नभानुने उत्तर दिशामें आर्यदेशको जीतकर वैष्णवराज्यको प्राप्त किया। रत्नभानुका

पुत्र लक्षण नामसे विख्यात हुआ। वह कुरुक्षेत्रमें युद्ध करता हुआ दिवंगत हो गया। बुद्धिमान् वैश्यपाल, कुम्भपाल और शुक्लवंश समाप्त हो गया। विष्वक्सेनके कुलमें उत्पन्न होनेवाले राजा विष्वक्सेनवंशीय, विसेनके कुलमें उत्पन्न होनेवाले विसेनवंशीय क्षत्रिय, गुहिलके कुलमें उत्पन्न होनेवाले गौहिल क्षत्रिय, राष्ट्रपालके कुलमें उत्पन्न होनेवाले राष्ट्रपालवंशीय क्षत्रिय कहलाये। शुक्लवंशके धुरंधर लक्षणके मरनेके बाद सभी प्रधान क्षत्रिय राजा कुरुक्षेत्रमें समाप्त हो गये। शेष छोटे-छोटे राजा वर्णसंकर तथा म्लेच्छोंसे दूषित होकर भयानक म्लेच्छ-राज्यमें स्थित हो गये।

(अध्याय ३)

परिहारवंश और बंगालके शूरवंश आदिका वर्णन

सूतजी बोले—हे भृगुश्रेष्ठ शौनक! अब आप परिहारवंशके राजाओंका वर्णन सुनें। अथर्ववेदवेत्ता परिहारने सभी बौद्धोंको जीतकर सर्वशक्तिमयी देवीकी श्रद्धापूर्वक आराधना की। सर्वशक्तिमयी देवीने प्रसन्न होकर चित्रकूट पर्वतके ऊपर डेढ़ योजन विस्तृत एक नगरका निर्माण किया। देवताओंके प्रिय इस नगरमें कलिको बंदी बना लिया गया था और यहाँ कलिका कभी प्रवेश नहीं होता, इसलिये यह नगर 'कलिंजर' नामसे इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुआ*। परिहारने उस कलिंजर नामके नगरमें बारह वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र गौरवर्मा हुआ। गौरवर्माने अपने पिताके समान ही राज्य किया। उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने छोटे भाई घोरवर्माको कलिंजरका राज्य सौंप दिया। अनन्तर वह गौड़देशमें चला आया और वहाँ राज्य करने लगा। गौरवर्माका पुत्र सुपर्ण अपने पिताके बाद वहाँका राजा हुआ।

उसका पुत्र रूपण हुआ और रूपणका पुत्र कारवर्मा (कामवर्मा) हुआ।

इधर शक नामके राजाने महालक्ष्मी सनातनी देवीकी आराधना की। तीन वर्षके अन्तमें उस देवीने कामाक्षीका रूप धारण कर अपने भक्तका पालन करनेके लिये वहाँ निवास किया। कामवर्माने पचास वर्षतक राज्य किया। कामवर्मके भोगवर्मा नामका पुत्र और भोगवती नामकी कन्या उत्पन्न हुई। उस राजाने भोगवती नामकी अपनी कन्या विक्रमको प्रदान की और अपना राज्य अपने पुत्र भोगवर्माको दे दिया। भोगवर्माका पुत्र कालिवर्मा हुआ।

कालिवर्माने भक्तिपूर्वक महाकालीकी उपासना की। उससे प्रसन्न होकर वर देनेके लिये भगवती काली स्वयं उपस्थित हुई। भगवती कालीने प्रसन्न होकर अनेक पुष्पोंकी कलियोंकी वर्षा की, जिससे

* नगर चित्रकूटाद्वाँ चकार कलिनिर्जरम्। कलिर्यत्र भवेद्दद्धो नगरेऽस्मिन् सुप्रिये॥

अतः कलिंजरो नामा प्रसिद्धोऽभूम्हीतले।

(प्रतिसर्गपर्व ४।४।३-४)

एक सुन्दर नगर उत्पन्न हुआ। जो कलिकातापुरी (कलकत्ता)-के नामसे इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुआ*। कालिवर्माका पुत्र कौशिक, उसका पुत्र कात्यायन, उसका पुत्र हेमवत, हेमवतका पुत्र शिवर्मा, शिवर्माका पुत्र भवर्मा और भवर्माका पुत्र रुद्रर्मा हुआ। इन्होंने भी अपने-अपने पिताके समान राज्य किया। रुद्रर्माका पुत्र भोजर्मा हुआ। भोजर्माने अपने पिताका राज्य त्यागकर बनप्रदेशमें भोजराष्ट्रका निर्माण किया। भोजर्माका पुत्र गवर्मा हुआ और उसका पुत्र विंध्यर्मा राजा हुआ। विंध्यर्मा अपने छोटे भाईको राज्य सौंपकर वंग (बंगाल)-देश चला गया। विंध्यर्माका पुत्र सुखसेन, उसका पुत्र बलाक हुआ। बलाकने दस वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र लक्ष्मण (सेन), उसका पुत्र माधव, उसका पुत्र वेशव और वेशवका पुत्र सुरसेन हुआ। सुरसेनका पुत्र नारायण और नारायणका पुत्र शान्तिर्मा हुआ।

शान्तिर्माने गङ्गाके किनारे शान्तिपुर नामक एक नगर बसाया और वह वहाँ रहने लगा। शान्तिर्माका पुत्र नदीर्मा हुआ और उसका पुत्र महान् बलवान् गंगादत्त हुआ। उसने गौड़ (ঢাকা) राष्ट्रकी ओर जानेवाली दिशामें नदीहा (নদিয়া) नामक एक रम्य नगरी बसायी। गंगादत्तने एक विशेषज्ञ विद्याधरको बुलाया। उसीके द्वारा यह वेदपरायणपुरी नदीहा रक्षित थी। राजा गंगादत्तने बीस वर्षतक वहाँ राज्य किया। तभीसे उसके कुलमें उत्पन्न होनेवाले गंगावंशी इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए।

गंगादत्तका शार्ङ्गदेव नामक एक महाबली और

विष्णुभक्त पुत्र हुआ। वह शार्ङ्गदेव गौड़देशमें जाकर श्रीहरिके ध्यानमें तल्लीन हो गया। शार्ङ्गदेवने दस वर्षतक राज्य किया और उसका पुत्र गंगादेव हुआ। बीस वर्षतक उसने राज्य किया। गंगादेवका पुत्र अनंग राजा हुआ। बलवान् अनंग गौड़देशका महीपति हुआ। पिताके समान उसने भी राज्य किया। अनंगका पुत्र राजेश्वर, उसका पुत्र नृसिंह और उसका पुत्र कलिवर्मा हुआ। राष्ट्रदेशमें जाकर बलवान् कलिवर्माने वहाँके राजाको जीतकर महावती नामक रमणीय पुरीके मध्य सुखपूर्वक राज्य किया। कलिवर्माका पुत्र हुआ धृतिर्मा। धृतिर्माका पुत्र महीपति हुआ। जयचन्द्रकी आज्ञासे राजा महीपतिने उर्बीमाया (উৰ্বীয়া) नामसे एक प्रसिद्ध नगरीका निर्माण किया और वहाँपर निवास करने लगा। कुरुक्षेत्रमें सभी चन्द्रवंशीय क्षत्रिय राजा मारे गये। तब महीपति महावतीका राजा हुआ। बीस वर्षतक महीपतिने राज्य किया। अनन्तर सहोद्रीनके द्वारा सुयोधनके कलांशसे उत्पन्न जो राजा थे वे सभी कुरुक्षेत्रमें मारे गये। परिहारके पुत्र घोरवर्माने कलिंजरमें राज्य किया। उसका पुत्र हुआ शार्दूल। उसके वंशमें जो राजा हुए वे शार्दूलीय नामसे प्रसिद्ध हुए। महामायाके प्रसादसे सम्पूर्ण भूमिपर शार्दूलवंशमें उत्पन्न राजा व्याप्त हो गये।

हे शौनक! इस प्रकार अग्निवंशीय राजाओंके कुलका मैंने वर्णन किया, चन्द्र और सूर्यवंशका स्मरण करनेसे जैसे पाप नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही यह अग्निवंश भी पवित्र करनेवाला है। अब मैं अन्य वंशका वर्णन कर रहा हूँ, जिसमें हरि स्वयं उत्पन्न हुए। (अध्याय ४)

* कलिका बहुपुष्याणां सा चकार स्वहर्षतः। ताभिर्भवं च नगरं संजातं च मनोहरम्॥

कलिकाता पुरी नामा प्रसिद्धभूम्हीतले।

(प्रतिसर्गपर्व ४। ४। १३-१४)

भगवान्‌से चारों वर्णोंकी उत्पत्ति, चारों युगोंमें भगवान्‌के अवतारों एवं चारों युगोंके मनुष्योंकी आयुका निरूपण

सूतजी बोले— शौनक! अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके मध्याह्नकाल आनेपर चाक्षुषान्तर (मन्वन्तर)-में बड़ा भारी झँझावात आया। यहाँतक कि उसके प्रभावसे हिमालय पर्वत भी काँपने लगा। इससे प्रायः सृष्टिके अधिकांश प्राणियोंका विनाश हो गया। सप्तद्वीपा वसुमती और समुद्र जलमय हो गये। बस उत्तर दिशास्थित लोकालोक पर्वत मात्र शेष रह गया। मुने! मन्वन्तरके लय होनेपर सम्पूर्ण भूमिका लय हो गया। एक हजार वर्षतक पृथ्वी जलके मध्यमें स्थित रही। तब भगवान् विष्णुने शंकर तथा ब्रह्माके साथ आकाशमें शिशुमारचक्रको स्थित किया और सभी नक्षत्र-मण्डल तथा ग्रहोंको पूर्ववत् यथास्थान स्थित किया। उन ज्योतिश्चक्रोंके द्वारा पृथ्वीका जल सूख गया और पृथ्वी भी सुस्थिर हो गयी। एक अयुत वर्ष बीतनेके पश्चात् पृथ्वी स्थलके रूपमें दिखायी दी। तब भगवान् ब्रह्माने अपने मुखसे महामनीषी एवं सर्वविद्याविशारद द्विजराज सोमको उत्पन्न किया, दोनों भुजाओंसे महाबलशाली, राजनीतिमें पारद्धत क्षत्रियराज सूर्यको उत्पन्न किया तथा ऊरुओंसे सरिताओंके पति रत्नाकर वैश्यराज समुद्रको उत्पन्न किया एवं पैरोंसे कलाविशारद, शास्त्रविहित कर्म करनेवाले, उत्तम विश्वके रचयिता शूद्रराज दक्षको उत्पन्न किया। सोमसे ब्राह्मणों, सूर्यसे क्षत्रियों, समुद्रसे सभी वैश्यों और दक्षसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई। सूर्यमण्डलसे स्वयं वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। उनका सभी प्राणियोंपर राज्य हुआ। विश्वरूप भगवान् विष्णु पूर्वार्धसे तथा वामन परार्धसे उत्पन्न हुए। सत्ययुगमें जो भगवान् सनातन विष्णु विश्वरूपमें अवतार लेते

हैं, वे बालस्वरूपमें रहते हैं। उस समय मनुष्योंकी परम आयु चार सौ वर्ष थी। त्रेतामें युवावस्था-प्राप्त श्रीहरि पूर्वार्धसे अवतरित हुए। इस युगमें मनुष्यकी परम आयु तीन सौ वर्ष थी। द्वापरमें वार्धक्यभावप्राप्त देव श्रीहरि हुए। इस समय मनुष्यकी आयु दो सौ वर्ष थी। कलियुगमें विश्वरूप भगवान् मरणधर्मरूपमें थे और धर्मशील व्यक्तियोंकी परम आयु सौ वर्ष हो गयी।

ब्रह्माके परार्धमें जब वामनका अवतार हुआ, तब वे भगवान् विष्णु महेन्द्र (इन्द्र)-के अनुज वामन बने। वे चार भुजाधारी, श्यामवर्ण एवं गरुड़के ऊपर विराजमान थे। विश्वरूपके हितके लिये ये त्रियुगी बने। सत्ययुगमें वामनके अर्धभागसे साक्षात् त्रियुगीनारायण श्वेतरूप हरि 'हंस' नामसे उत्पन्न हुए। त्रेतामें भगवान् यज्ञ रक्तरूप धारणकर उत्पन्न हुए। द्वापरमें स्वर्णर्गर्भ हरि पीतवर्ण-रूपमें उत्पन्न हुए। द्वापरयुगकी संध्यामें कलियुगके आनेपर विष्णुकी तथा वामनकी सभी कलाओंके एकीभूत होनेपर साक्षात् विष्णु देवकीके गर्भसे वसुदेवके घर मथुरामें उत्पन्न हुए। ब्रह्मा आदिने सनातन ब्रह्मकी स्तुति की। उस समय प्रसन्न हो भगवान्-ने देवताओंसे यह कहा—'देवगणो! देवोंके हित और दैत्योंके विनाशके लिये मैं कलियुगमें उत्पन्न होऊँगा और कलियुगमें भूतलपर स्थित सूक्ष्म रमणीय दिव्य वृन्दावनमें रहस्यमय एकान्त-क्रीडा करूँगा। घोर कलियुगमें सभी श्रुतियाँ गोपीके रूपमें आकर रासमण्डलमें मेरे साथ रासक्रीडा करेंगी। कलियुगके अन्तमें राधासे प्रार्थित मैं इस रहस्यमयी क्रीडाको समाप्त कर कलिकके रूपमें अवतीर्ण होऊँगा*'।

* सर्वे वेदाः कलौ घोरे गोपीभूताः समन्तः । रंस्यन्ते हि मया साध्यं त्यक्त्वा भूमण्डलं तदा ॥

राधया प्रार्थितोऽहं वै यदा कलियुगान्तके । समाप्य च रहःक्रीडां कल्की च भवितास्म्यहम् ॥ (प्रतिसर्गपर्व ४। ५। २७-२८)

कलियुगके अन्तमें प्रलयके बाद पुनः सत्ययुगमें सत्यधर्मके रूपमें प्रतिष्ठित होऊँगा।' यह सुनकर देवगण वहाँ अन्तर्लीन हो गये।

मुने ! इस प्रकार युग-युगमें भगवान् श्रीहरिकी क्रीडाएँ होती रहती हैं। विश्वव्यापक भगवान्के

इस रहस्यको विष्णुभक्त ही जानते हैं। विष्णुकी इच्छाके अनुसार ही सनातनी विष्णुमाया विविध लोकोंकी रचना कर महाकाली हो सम्पूर्ण चराचर विश्वको कालकवलित कर महागौरीके रूपमें हो जायँगी। (अध्याय ५)

दिल्ली नगरपर पठानोंका शासन और तैमूरलंगका उत्पात

महर्षि शौनकने पूछा—सूतजी महाराज !
पृथ्वीराजके बाद कौन-कौन राजा उत्पन्न हुए ?
इसे आप बतायें।

सूतजीने कहा—मुने ! पैशाच (पठान) राजा कुतुकोद्दीन (कुतुबुद्दीन) दिल्लीका शासक था और अति सुरम्य वलीगढ़ यादवोंसे रक्षित था। कुतुकोद्दीन दस हजार सैनिकोंको साथ लेकर युद्धके लिये वहाँ गया और वीरसेनके पौत्र श्रेष्ठ भूपसेनको जीतकर दिल्ली नगरमें राज्य करने लगा। इसी समय अनेक देशोंके राजागण वहाँ आये। उन लोगोंने कुतुकोद्दीनको जीतकर देशसे बाहर कर दिया। इस समाचारको सुनकर सहोद्दीन (शहाबुद्दीन) पुनः (गौरसे) दिल्ली पहुँच गया। उस दैत्यराजने राजाओंको जीतकर अनेक मूर्तियों और देवमन्दिरोंको खण्डित कर दिया। इसके बाद बहुत-से म्लेच्छ वहाँ आकर रहने लगे। पाँच-छः अथवा सात वर्षोंतक राज्यकर वे दिवंगत हो गये।

मुनिगणो ! इन सभी म्लेच्छ राजाओंने अनेक मन्दिरोंको तोड़ा है, सभी तीर्थों और आश्रमोंको दूषित कर दिया है, अतः आपलोग मेरे साथ हिमालयके ऊपर बदरीवनकी ओर प्रस्थान कीजिये। यह सुनकर नैमिषारण्यवासी सभी ऋषिगण दुःखी होकर सूतजीके साथ नैमिषको छोड़कर बदरीक्षेत्र चले गये। वहाँ सभी लोग समाधिस्थ होकर सर्वमय श्रीहरिके ध्यानमें स्थित हो गये।

कुछ समय बाद समाधिसे जगनेपर ऋषियोंने

सूतजी महाराजसे पुनः कल्पके इतिहासके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की।

सूतजीने पुनः कहा—श्रेष्ठ मुनिगण ! मैंने योगनिद्रामें जो देखा है, उस कल्पके वृत्तान्तको कह रहा हूँ। उसे आपलोग सुनिये। अनन्तर मुकुल (मुगलवंशी) म्लेच्छ राजा हुआ। वह म्लेच्छराज तिमिरलिङ्ग (तैमूरलंग) मध्यदेशमें आया। उस कालस्वरूप म्लेच्छ राजाने सभी आर्यों तथा म्लेच्छ राजाओंको जीतकर देहली नगरीमें बहुत उपद्रव किया और उसने आर्योंको बुलाकर कहा—‘तुम सभी मूर्तिपूजक हो। शालग्राम तो पत्थर है, उसका पूजन कैसे उचित है ? तुम सब उसे विष्णु मानते हो, वह विष्णु तो है नहीं, अतः तुम सभीके जितने वेद-शास्त्र हैं, उन्हें मुनियोंने संसारको ठगनेके लिये बनाया है।’ ऐसा कहकर तैमूरलंगने शालग्रामकी मूर्तिको जबरदस्ती छीन लिया और जलती हुई आगमें फेंक दिया तथा पूजित सभी शालग्रामशिलाओंको ऊँटोंपर लादकर वह अपने देश चला गया। उसने तैत्तिर (तातार) देशमें आकर अपना एक सुदृढ़ किला बनवाया। अपने सिंहासनपर आरोहण करनेके लिये शालग्रामशिलाका पादपीठ बनवाया।

यह देखकर सभी देवता दुःखी होकर देवराज इन्द्रके पास गये और विलाप करते हुए इन्द्रसे बोले—‘भगवन् ! हमलोगोंकी स्थिति तो शालग्राम-शिलामें है, परंतु म्लेच्छराज तैमूरलंगने शालग्रामको पादपीठ बनवा लिया है।’ देवताओंकी बात सुनकर

क्रुद्ध हो देवराज इन्द्रने हाथमें बज्र उठा लिया और बड़े वेगसे तैरि देशकी ओर फेंका। उस बज्रके घोर शब्दसे उसका सारा देश टुकड़े-टुकड़े होकर खण्डित हो गया और वह म्लेच्छ अपने सभी सभासदोंके साथ मृत्युको प्राप्त हो गया। अनन्तर प्रसन्न हो देवताओंने उन सभी शालग्रामशिलाओंको ग्रहणकर गण्डकी नदीमें छोड़ दिया। पुनः वे सभी स्वर्गलोक चले आये। इन्द्रने देवताओंके साथ देवपूज्य बृहस्पतिसे कहा—‘भगवन्! कलियुगके आनेपर बहुत दैत्य उत्पन्न हो गये हैं। वे वेदधर्मका उल्लंघन करके हमलोगोंके विनाशके लिये तैयार हो गये हैं, अतः आप हमारी रक्षा करें।’

बृहस्पति बोले—महेन्द्र! तुम्हारी जो श्रेष्ठ शची नामकी पत्नी है, उसे भगवान् विष्णुने वर दिया है कि ‘कलियुगमें मैं तुम्हारे पुत्ररूपमें अवतरित होऊँगा। तुम्हारे आदेशसे वह देवी शची गौड़देशमें गङ्गाके किनारे शान्तिपुरमें ब्राह्मणीके रूपमें तथा तुम स्वयं ब्राह्मणरूपमें अवतरित होकर देवकार्यको सिद्ध करो।’ यह सुनकर देवराज इन्द्र एकादश रुद्रों, अष्ट वसुओं तथा अश्विनीकुमारोंके साथ सूर्यके अत्यन्त प्रिय तीर्थराज प्रयागमें आये और उन्होंने माघमें मकरमें सूर्य होनेपर भगवान् सूर्यकी आराधना की। बृहस्पतिने आकर उन्हें भगवान् सूर्यका माहात्म्य बतलाया। (अध्याय ६)

भगवान् सूर्यके तेजसे आचार्य ईश्वरपुरी, आचार्य रामानन्द और निम्बाकार्चार्यका आविर्भाव*

ऋषियोंने पूछा—सूतजी महाराज! देवगुरु बृहस्पतिने देवताओंको मण्डलस्थ भगवान् सूर्यका कौन-सा माहात्म्य बतलाया, उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

सूतजीने कहा—ऋषियो! प्रयागमें जब देवगुरु बृहस्पति अपने आसनपर आसीन थे, उस समय देवताओंके साथ इन्द्रने भगवान् सूर्यके तत्काल प्रसन्न होनेके लिये जिस माहात्म्यको बतलाया था, उसे आप सुनें।

बृहस्पतिने देवताओंसे कहा—देवगणो! बर्हिष्मती (बिटूर) नगरमें धातृशर्मा नामक एक ब्राह्मणने पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या कर प्रजापति ब्रह्माको संतुष्ट किया। पाँच वर्षमें भगवान् प्रजापति संतुष्ट हुए और उन्होंने पुत्र, कन्या एवं पुनः पुत्र इस प्रकार तीन संतान प्राप्त करनेका वर प्रदान किया। धातृशर्माको एक वर्षके अन्तरसे तीनों संतानें उत्पन्न हुईं। पुत्रोंके लालन-पालनसे धातृशर्मा बहुत आनन्दित हुआ। धीरे-धीरे वे बड़े होने लगे। धातृशर्माको

इनके विवाहकी चिन्ता होने लगी। तब इन लोगोंके उत्तम विवाहके लिये उसने गन्धर्वपति तुम्बुरुको हवन आदिसे संतुष्ट किया। तुम्बुरुने आकर उनके मनोरथकी पूर्तिका वरदान दिया। धातृशर्मा वधू और जामाताको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, किंतु इन लोगोंके विविध अलंकारों और धन, वस्त्र आदिकी प्राप्तिके लिये वह चिन्तित हो गया। वह साठ वर्षका हो गया। उसने पुनः धनपति कुबेरकी विधिवत् पूजा की। प्रसन्न हो भगवान् कुबेरने उसे बहुत धन दिया और स्वर्ण प्रदान करनेवाली विद्या (मन्त्र) भी उसे प्रदान की। धीरे-धीरे समय बीतनेपर वह बीमार हो मरणासन्न हो गया। अपनी यह दशा देखकर उसने भगवान् शंकरको स्तुतियोंसे संतुष्ट किया। भगवान् शंकरने एक मासमें ही उसे ज्ञान प्रदान किया। नम्रबुद्धि धातृशर्माने रविवारके व्रतके द्वारा मोहनाशक भास्करकी आराधना की। पाँच वर्षमें उसके भक्तिभावसे संतुष्ट हो भगवान् सूर्यने कहा—‘वत्स! तुम क्या वर चाहते हो,

* इन आचार्योंकी विशेष जानकारीके लिये ‘कल्याण’ के २६वें वर्षके विशेषाङ्को देखना चाहिये।

कहो।' इसपर धार्तृशर्मने कहा—'भगवन्! आपको बार-बार प्रणाम है, आप मुझे मोक्ष प्रदान करनेकी कृपा करें।' भगवान् सूर्यने ज्ञानी द्विज धार्तृशर्मसे कहा—'विप्र! मोक्ष चार प्रकारके हैं—तपसे उत्पन्न सालोक्य, भक्तिसे उत्पन्न सामीप्य, ध्यानसे उत्पन्न सारूप्य और ज्ञानसे उत्पन्न सायुज्य। इन चतुर्विधि मोक्षोंके अधिष्ठाता परम परमेश्वर हैं। भगवान् विष्णुके उस परम पदको प्राप्त करनेपर पुनः आगमन नहीं होता। विप्रेन्द्र! तुमको सायुज्य-मोक्षकी प्राप्ति होगी और मन्वन्तरपर्यन्त तुम्हारा वह मोक्ष वर्तमान रहेगा।' ऐसा कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये और विप्रको मोक्ष-प्राप्तिका वर प्राप्त हो गया।

सूतजीने कहा—मुने! इस प्रकार चैत्र मासमें देवाधिदेव दिवाकरने अपने स्वरूपका उन्हें दर्शन कराया और कहा—'वंगदेशमें अपने अंशसे उत्पन्न होकर मैं देवकार्य सम्पन्न करूँगा।' यह कहकर दिवाकरने अपने मुखसे तेजको उत्पन्न किया और अपनी भक्त सुकन्या जो द्विज-पत्नी थी, उसके कल्याणके लिये उसे प्रदान किया। धार्तृशर्मा ब्राह्मण जिसने सूर्यकी आराधना कर मोक्ष प्राप्त किया था, वही उस तेजसे सम्पन्न होकर काव्यकर्ताके घरमें ईश्वरपुरी नामसे उत्पन्न हुआ। उसने वैदिक विप्रोंको शास्त्रार्थमें जीतकर महान् कीर्ति प्राप्त की।

ऋषियो! बृहस्पतिने जैसा मुझसे कहा था, वैसा ही मैंने आपसे कहा। पुनः बृहस्पतिद्वारा कही गयी एक अन्य रमणीय कथा सुनें।

मायावती (हरिद्वार) नगरीमें मित्रशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह काव्यप्रिय, विद्यापरायण और रसिक था। हरिद्वारमें कुम्भराशिपर बृहस्पतिके अनेपर महोत्सवके समय अनेक राजा उस स्थानपर आये। उस महोत्सवमें अनेक अलंकारोंसे अलंकृत मित्रशर्मा एवं असंख्य स्त्री-पुरुष आये।

वहीं दाक्षिणात्य राजा कामसेनकी चित्रिणी नामकी एक कन्या भी आयी। उसकी अवस्था बारह वर्षकी थी। उसे मित्रशर्मने बड़े ध्यानसे देखा। श्रेष्ठ मित्रशर्माको देखकर चित्रिणीके हृदयमें भी उसके प्रति प्रीति उत्पन्न हो गयी। घर आकर वह उसे प्राप्त करनेके लिये प्रतिदिन भगवान् भास्करकी श्रद्धापूर्वक आराधना करने लगी। इधर मित्रशर्मा भी वैशाख मासमें गङ्गामें स्नानकर जलके मध्य स्थित होकर भगवान् सूर्यका ध्यान करते हुए 'आदित्यहृदयस्तोत्र' का प्रतिदिन पाठ करने लगा। एक मास बाद भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर उसे मनोरथ पूर्ण होनेका वर प्रदान किया। वर प्राप्तकर वह अपने घर लौट आया। चित्रिणीने भी भगवान् भास्करसे अपने मनोऽनुकूल वर प्राप्त कर लिया। राजा कामसेनको भी भगवान् सूर्यने स्वप्रमें कहा कि 'तुम अपनी कन्याका विवाह मित्रशर्मासे कर दो', तब राजाने ऐसा ही किया।

विवाहके बाद दोनों ही भगवान् सूर्यका प्रतिदिन व्रत रखते थे और ताम्रपात्रपर सूर्ययन्त्र लिखकर रक्त पुष्पोंसे नित्य उनका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन भी करते थे। उनकी अवस्था प्रायः सौ वर्षकी हो गयी, किंतु वे नीरोग रहे, उनका जीवन देवमय हो गया। मृत्युके अनन्तर उन्होंने भगवान् सूर्यकी सामीप्यता प्राप्त की। इन्होंके पुत्ररूपमें कान्यकुब्जमें देवल ब्राह्मणके घरमें भगवान् सूर्य अवतरित हुए। ये ही काशीमें रामानन्दके नामसे विख्यात हुए। बाल्यावस्थासे ही ये ज्ञानी, रामनाम-जप-परायण एवं रामभक्तिमें रत थे। पिता-माताका परित्याग कर ये राघवानन्द यतिकी शरणमें आये। उस समय भगवान् सीतापति श्रीराम उनके हृदयमें सहसा विराजमान हो गये। इस प्रकार भगवान् मित्रदेव (सूर्यदेव)-के अंशसे बलवान् हरिभक्त रामानन्दका आविर्भाव हुआ।

बृहस्पतिने पुनः कहा—देवेन्द्र! ज्येष्ठ मासके सूर्यकी रमणीय कथा आप सुनें। प्राचीन कालमें सत्ययुगमें अर्यमा नामका एक विप्र उत्पन्न हुआ था, वह धर्मशास्त्रपरायण तथा वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्वोंका ज्ञाता था। राजा श्राद्धयज्ञकी पितृमती नामकी पुत्री उसकी पत्नी थी। वह अतिशय साध्वी थी। उसने धर्मशास्त्रपरायण सात पुत्रोंको जन्म दिया। किसी समय उस बुद्धिमान् ब्राह्मण अर्यमाने हृदयमें भलीभाँति विचारकर धनकी कामनासे अनेक प्रकारकी उपासनाओंसे भगवान् भास्करको प्रसन्न किया। ज्येष्ठ मासमें भगवान् सूर्यने उसे एक दिव्य मणि प्रदान की। उसके प्रभावसे एक प्रस्थ स्वर्ण प्रतिदिन उत्पन्न होता था। उसने उस धनसे धर्मकार्यार्थ—वापी, कूप, तड़ाग, सुन्दर भवन आदिका निर्माण कराया। अन्तमें उसने सूर्यदेवकी कृपासे एक हजार वर्षतक निर्विघ्न जरारहित जीवन बिताकर रमणीय सूर्यलोकको प्राप्त किया। वहाँ एक लक्ष वर्षतक सूर्यरूपमें निवास किया। देवेन्द्र! इस प्रकार मैंने भास्करके माहात्म्यको आपसे कहा। इसलिये देवताओंके साथ आप भी मण्डलस्थ भगवान् सूर्यकी पूजा करें।

ज्येष्ठ मासमें देवताओंने श्रद्धासम्पन्न हो भगवान् सूर्यको स्तुतियोंसे संतुष्ट किया। प्रसन्न हो भगवान् सूर्यने उपस्थित होकर कहा—‘देवगणो! द्वापरके अन्तमें श्रीकृष्णकी आज्ञासे सुदर्शनका जन्म होगा, वह निम्बादित्य (निम्बार्कचार्य) नामसे प्रसिद्ध होगा और क्षीण होते हुए धर्मकी रक्षा करेगा।’

सूतजीने कहा—ऋषियो! अब आप महात्मा निम्बार्कके चरित्रको सुनें, जिसको भगवान् श्रीकृष्णने कहा था। भगवान् श्रीकृष्णने सुदर्शनसे कहा था कि मेरी आज्ञासे आप देवकार्य सम्पन्न करें। मेरुके दक्षिण दिशामें नर्मदाके तटपर देवताओं और ऋषियोंसे सेवित तैलङ्ग नामक एक देश है। वहाँ आप अवतीर्ण होकर देवर्षि नारदसे उपदेश

प्राप्तकर मथुरा, नैमिषारण्य, द्वारावती, सुदर्शनाश्रम आदि स्थानोंमें स्थित होकर धर्मका प्रचार करें। इस आदेशको ‘ओम्’ के द्वारा स्वीकारकर भक्तोंकी अभिलाषाको पूर्ण करनेवाले भगवान् श्रीसुदर्शन पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए।

पवित्र सुदर्शनाश्रममें भृगुवंशमें उत्पन्न वेदवेदाङ्ग-पारञ्जत अरुण नामके एक महामनस्वी द्विजश्रेष्ठ मुनि रहते थे। उनकी भार्याका नाम था जयन्ती। अरुणमुनिने ध्यानद्वारा भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रके तेजको धारण किया और उस तेजको पतिपरायणा जयन्तीदेवीने मनसे धारण किया। उस तेजके प्रभावसे देवी जयन्ती चन्द्रमाके समान सुशोभित होने लगी। परम शुभ समय उपस्थित हुआ। दिशाएँ निर्मल हो गयीं। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी पूर्णिमामें जब चन्द्रमा वृष्णराशिपर स्थित थे, कृत्तिका नक्षत्र था, पाँच ग्रह अपने उच्च स्थानपर स्थित थे, उस समय सायंकालमें मेषलग्रमें जयरूपिणी जयन्तीदेवीसे जगदीश्वर निम्बादित्य प्रादुर्भूत हुए, जिन्होंने इस विश्वको वेदधर्ममें नियोजित किया।

एक समय निम्बार्कके आश्रममें भगवान् विरिञ्चि पथारे। उन्होंने कहा—‘मैं भूखसे व्याकुल होकर आपके पास आया हूँ। जबतक आकाशमें भगवान् सूर्य स्थित हैं, तबतक ही मुझे भोजन करा दीजिये। विरिञ्चिकी इस बातको सुनकर निम्बार्कने उन्हें भोजन दिया। परंतु भगवान् सूर्य अस्ताचलपर पहुँच गये थे। तब निम्बार्कमुनिने अपने तेजसे भगवान् सुदर्शनके तेजको निकटस्थ एक निम्ब वृक्षपर प्रतिष्ठित कर दिया। ब्रह्मा सूर्यके समान उस तेजको देखकर आश्रयमें पड़ गये और एक-दूसरे सूर्यके समान उस बालमुनिको दण्डवत् प्रणाम कर उसे संतुष्ट किया और बार-बार साधुवाद देते हुए कहा कि आजसे आप सारी पृथ्वीपर निम्बादित्य नामसे प्रसिद्ध होंगे।’ (अध्याय ७)

आचार्य मध्व, श्रीधरस्वामी, विष्णुस्वामी, वाणीभूषण, भद्रोजिदीक्षित तथा वराहमिहिर आदिके आविर्भावकी कथा

देवगुरु बृहस्पतिजीने कहा—देवेन्द्र ! त्रेतायुगमें अयोध्यानगरीमें शक्रशर्मा नामके एक देवोपासक ब्राह्मण रहते थे । वे अश्विनीकुमार, रुद्र, वसु, सूर्य आदिकी पृथक्-पृथक् मन्त्रोंसे विधिपूर्वक पूजा, हवन आदि करते थे । उनकी श्रद्धा-भक्तिसे की गयी आराधनाद्वारा प्रसन्न होकर तीनोंसे देवता अपने गणोंके साथ उनके दुर्लभ मनोरथको भी सुलभ कर देते थे । वे विश्व एवं जरारहित हो दस हजार वर्षोंतक देवाराधन करते रहे । देहावसानके बाद उन्होंने सूर्य-सायुज्य प्राप्त किया । उनकी ऐसी शुभ गतिको देखकर देवताओंके साथ देवराज इन्द्र (आप) -ने भी भगवान् सूर्यकी आराधना की । आषाढ़ पूर्णिमाको पृथ्वीपर भगवान् भास्कर प्रत्यक्षरूपसे आये और उन्होंने देवताओंसे कहा—‘मैं कलियुगमें अतिशय रमणीय वृन्दावनमें द्विजरूपमें जन्म ग्रहण करूँगा और वह सूर्यरूपसे देवताओंका कार्य सिद्ध करेगा तथा वही द्विज माधव ब्राह्मणका वेदमार्गपरायण पुत्र मधु (मध्वाचार्य) नामसे प्रसिद्ध होगा ।’ यह कहकर भगवान् सूर्य देवताओंके कार्यके लिये उद्घत हो गये । उन्होंने अपने अङ्गसे तैजको उत्पन्न कर वृन्दावन भेजा । वे माधवके पुत्र पृथ्वीपर मध्वाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए । उन्होंने मधुर वचनोंद्वारा वेदमार्गसे विमुखोंको सभी तरहसे वशमें कर लिया और उन्हें भुक्ति-मुक्ति देनेवाली वैष्णवी शक्ति भी प्रदान की ।

देवेन्द्र ! द्वापरमें कृषिकार्यसे जीवनयापन करनेवाले मेघशर्मा नामके एक ब्राह्मण थे । वे ज्ञानी, बुद्धिमान्, धार्मिक तथा वेदमार्गपरायण थे । प्रतिदिन अपने धनके दशांशसे सभी देवताओंकी भक्तिपूर्वक पूजा करते थे । एक बार शंतनुके राज्यकालमें पाँच वर्षतक अनावृष्टि हो गयी । केवल एक कोसपर्यन्त ही वृष्टि

होती थी । उस समय धान्यका भाव एक मुद्रामें द्रोणमात्र हो गया । केवल मेघशर्मा नामका वह ब्राह्मण सूर्यकी कृपासे धन-धान्यसम्पन्न था । अन्य पीड़ित प्रजागण राजाकी शरणमें गये । दुःखित राजाने मेघशर्माको बुलाया और प्रणामकर कहा—‘द्विजश्रेष्ठ ! आप मेरे गुरु हैं । आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मेरे राज्यमें सुवृष्टि हो ।’ इसपर मेघशर्मने कहा—‘राजन् ! श्रावण मासमें बारह ब्राह्मणोंद्वारा विधिपूर्वक सूर्य-मन्त्रका जप, हवन, तर्पण, ब्राह्मण-भोजन आदिद्वारा सूर्यकी आराधना करनेसे आपके राज्यमें सुवृष्टि होगी ।’ राजाने वैसा ही किया । भगवान् सूर्यकी कृपासे प्रचुर वृष्टि हुई और सूर्यब्रतपरायण राजा शंतनु उस ब्रतद्वारा अतिशय पुण्यवान् नृपश्रेष्ठ हो गये । जिस किसी वृद्ध पुरुषको भी वे अपने हाथसे स्पर्श कर देते थे, वह युवा एवं नीरोग हो जाता था । सूर्यदेवके प्रभावसे मेघशर्मा भी युवक हो गया । वह वृद्धावस्थासे रहित होकर सभी विश्वोंसे शून्य हो पाँच सौ वर्षोंतक जीवित रहा । अन्तमें प्राणका परित्याग कर उसने सूर्यलोक प्राप्त किया । अनन्तर वह ब्रह्मलोक चला गया । पुनः भगवान् सूर्यने प्रयागमें आकर पर्जन्यके रूपमें अपना दर्शन कराया और प्रसन्नचित्त होकर देवताओंसे कहा—‘देवगणो ! घोर कलियुगमें म्लेच्छ-राज्य होगा, उस समय मैं वृन्दावनमें आकर देवकार्य करूँगा ।’ यह कहकर भगवान् सूर्य वृन्दावन चले गये और वेदशर्मके पुत्र होकर ‘श्रीधर’ नामसे विख्यात हुए । उन्होंने श्रीमद्भागवतकी भक्तिपूर्ण भावार्थदीपिका टीका लिखी और भागवतकी अपार महिमा बतलायी ।

बृहस्पतिजीने पुनः कहा—देवेन्द्र ! कलियुगमें प्रांशुशर्मा नामके एक ब्राह्मण थे । वे नित्य वेदशास्त्र-परायण तथा देवता और अतिथिके पूजक, सत्यवादी,

अतिशय साधु, चोरी और हिंसासे रहित थे। वे भिक्षावृत्तिसे अपने पुत्र और स्त्रीकी रक्षा करते थे। एक दिन भिक्षाके लिये मार्गमें जाते समय उन्होंने मायावी कलिको देखा। कलिने एक मनोहर वाटिकाका निर्माण कर ब्राह्मणका वेश बनाया और प्रांशुशर्मासे कहा—‘प्रांशुशर्मा! मेरी बात सुनो। मेरी यह रमणीय वाटिका है। इसमें जाकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो।’ विप्रकी यह वाणी सुनकर प्रांशुशर्मा वाटिकाके अंदर आये। दुष्ट कलिने वाटिकामें आकर सुन्दर फलोंको तोड़कर उसे भोजनके लिये दिया और अञ्जलि बाँधकर प्रणत हो प्रांशुशर्मासे कहा—‘विप्र! मेरे साथ सुन्दर कलिन्दका फल खाओ।’ यह सुनकर उन्होंने हँसते हुए मधुर स्वरमें कहा—‘विद्वानोंने बताया है कि बहेड़ेके वृक्षपर और कलिन्दके फलमें कलि रहता है, अतः मैं इसे नहीं खाऊँगा। यदि तुम अतीव श्रद्धा-भक्तिके साथ ब्राह्मण-सेवाके उद्देश्यसे इस फलको खानेके लिये दे ही रहे हो तो मैं भगवान् शालग्रामको निवेदित करनेके बाद ही इस फलको ग्रहण कर सकता हूँ, क्योंकि शालग्राम सच्चिदानन्दविग्रहस्वरूप स्वयं ब्रह्म हैं। यह निश्चित बात है कि भगवान्की जिसपर दृष्टि पड़ जाती है, वह अभक्ष्य भी भक्ष्य बन जाता है।’ यह सुनकर कलि लज्जित होकर निराश हो गया। ब्राह्मण उस फलको लेकर भूमिग्राममें चले आये। पुनः कलियुग राजाके वेशमें प्रांशुशर्माके पास आया और उसने प्रसन्न होकर कहा—‘ब्राह्मण देवता! क्या तुमने फल ग्रहण कर लिया, उसे मुझे शीघ्र दिखलाओ।’ यह सुनकर प्रांशुशर्माने वत्समुण्डके समान उस फलको लाकर उसे दिखला दिया। इसपर क्रुद्ध हो उस कलिने ब्राह्मणको बेंतोंसे मारकर लौहमय कारागारमें बंद कर दिया।

प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर दुःखी प्रांशुशर्माने भगवान् भास्करको ऋग्वेदके सूक्तोंसे संतुष्ट किया। प्रसन्न हो साक्षात् सनातन रविने आकाशवाणीसे विप्रके कानमें यह वाक्य कहा—‘महाभाग विप्र! कालरूप स्वयं हरिने विश्वके पालन आदिके लिये चारों युगोंका निर्माण किया है। उन्होंने ही कलिको विश्वसमूहकी मृत्युके लिये रचा है। इसलिये घोर कलियुग आनेपर विष्णुमायासे विनिर्मित कलिंजर नगरमें जाकर आनन्दपूर्वक जीवन बिताओ।’ भगवान् सूर्यने ऐसा कहकर उस ब्राह्मणकी रक्षाके लिये उसे कलिंजर भेज दिया। ब्राह्मण प्रांशुशर्मा वहाँ एक सौ पचीस वर्षोंतक रहकर भगवान् सूर्यकी आराधना करते हुए पुत्र और पत्नीके साथ सूर्यलोक चला गया। वे ही प्रांशुशर्मा अट्टाईसवें कलियुगमें भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको शिवदत्तके पुत्ररूपमें कलिंजरमें विष्णुशर्मा—विष्णुस्वामी* नामसे प्रसिद्ध हुए। वे वेदशास्त्र एवं कलाओंके ज्ञाता थे और देवताओंके पूजक तथा परम वैष्णव थे।

देवेन्द्र! पूर्वकालमें चैत्ररथ नामक स्थानमें मेधावीमुनिका मंजुघोषा अप्सरासे भगवान् नामका पुत्र हुआ। जन्म लेते ही माता-पिताने जब उसे छोड़ दिया, तब वह किसी प्रकार सौभाग्यसे भगवान् सूर्यकी आराधनामें तत्पर हो गया और तपद्वारा सौ वर्षोंतक उनकी निरन्तर आराधना करता रहा। अन्तमें सूर्यमण्डलकी अधिदेवता भगवती सावित्री उसपर प्रसन्न हो प्रकट हुई। आश्विन मासमें उन्होंने उस ब्राह्मणको मण्डलका राजा बना दिया और वह आश्विन मासमें सूर्यरूप होकर प्रकाशमान हो उठा। सारा संसार उसकी पूजा करने लगा, इसलिये है इन्द्र! तुम भी उन्होंने सूर्यकी आराधना करो। वे तुम्हारा भी परम कल्याण करेंगे।

* श्रीधरस्वामी और विष्णुस्वामीके विस्तृत चरित्र ‘भक्तमाल’ और ‘कल्याण’ के भक्तचरिताङ्कमें प्रकाशित हैं। दोनों भगवान्के परम श्रेष्ठ भक्त हुए हैं। श्रीधरस्वामीकी गीता, भगवत एवं विष्णुपुराणपर भक्तिपूर्ण टीकाएँ प्राप्त हैं।

अपने गुरु बृहस्पतिके वचनोंके अनुसार देवेन्द्रने भी आश्चिन मासमें सूर्यकी आराधना की। भगवान् सूर्यने प्रत्यक्ष हो इन्द्रसे कहा—‘देवराज! कान्यकुञ्जमें सत्यदेव ब्राह्मणके घरपर मैं उनके पुत्र-रूपमें ‘वाणीभूषण’ नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। अनन्तर उन्होंने ऐसा ही किया और कालक्रममें वाणीभूषणने अपने नामसे छन्दःशास्त्रके ग्रन्थकी रचना की और पाखण्डियोंको परास्त किया। उन्होंने भगवान् विष्णुकी उपासनासे वैष्णवी शक्ति प्राप्त की थी।

बृहस्पति पुनः बोले—देवराज इन्द्र! किसी समय सरयू नदीके किनारे देवयाजी नामक एक ब्राह्मण रहते थे। वे सभी देवोंकी उपासना करनेवाले और नित्य वेदपाठी थे। उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, किंतु उत्पन्न होते ही वह मृत्युको प्राप्त हो गया। यह जानकर दुःखी हो देवयाजीने भगवान् सूर्यकी आराधना की। भगवान् सूर्यकी कृपासे वह मृत बालक पुनः जीवित हो गया और उसका नाम पड़ा विवस्वान्। यह सोलह वर्षकी अवस्थामें ही सभी शास्त्रोंका प्रकाण्ड विद्वान् हो गया। यह धर्मपरायण तथा सूर्यव्रतपरायण था। इसका विवाह भी सम्पन्न हो गया। एक दिन शिवरात्रिका पुण्य पर्व था। विवस्वानने व्रत ग्रहण किया था। उस दिन पत्नी सुशीलासे कामवश सम्पर्क करनेके कारण वह भयंकर कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो गया। वह बहुत दुःखी हो गया। पुनः किसीसे द्वादश रविवार-व्रतोंका उपदेश प्राप्तकर निराहार रहते हुए उसने जितेन्द्रिय होकर भगवान् सूर्यकी आराधना की। इस भक्तिसे तथा भगवान् सूर्यकी कृपासे उसका कुष्ठरोग दूर हो गया और उसकी सारी पीड़ा समाप्त हो गयी। इससे उसकी भगवान् सूर्यमें अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हो गयी और वह ‘आदित्यहृदयस्तोत्र’ का पाठ करने लगा, इसके प्रभावसे वह कामदेवके समान सुन्दर रूपवान् हो

गया। पूर्वमें स्त्रियोंद्वारा भर्त्सित वही विवस्वान् अब उनका प्रियभाजन बन गया, किंतु विवस्वान् अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर ब्रह्मध्यानपरायण हो गया। सौ वर्षोंतक वह नीरोग एवं ज्ञानवान् रहा। अन्तमें अपने प्राणोंका परित्याग कर वह सूर्यरूप हो गया और सूर्यमण्डलके बीचसे कार्तिक मासमें एक लाख वर्षतक प्रकाश करता रहा। हे महेन्द्र! तुम भी देवताओंके साथ उन भगवान् सूर्यकी पूजा करो।

सूतजीने कहा—मुने! देवराज इन्द्रने बृहस्पतिके वचनोंको सुनकर श्रद्धापूर्वक एक मासतक भगवान् सूर्यकी कार्तिक मासमें विधिवत् पूजा की। कार्तिक पूर्णिमामें भगवान् सूर्यने प्रकट होकर इन्द्रसे कहा—‘इन्द्र! मैं अवतार धारण कर देवकार्यको सिद्ध करूँगा। विद्याभिमानी भट्टोंने सूत्रपाठ तथा धातुपाठका अन्यथा अर्थ किया है, अर्थका अनर्थ किया है तथा स्वर और वर्णके अर्थको भ्रंश कर दिया है। मैं उन पाखण्डियोंको जीतकर वेदका उद्घार करूँगा।’ ऐसा कहकर वे भगवान् सूर्य काशीमें वेदशर्मके घरमें दीक्षित-वंशमें उत्पन्न हुए। वे यथानाम तथागुण थे। वे बारह वर्षकी अवस्थामें ही सभी शास्त्रोंमें पारङ्गत हो गये। भगवती पार्वतीके प्रिय तथा संसारके स्वामी भगवान् विश्वनाथकी उन्होंने आराधना की। तीन वर्षके बाद भगवान् शंकरने उन्हें महान् ज्ञान प्रदान किया। उस दिव्य ज्ञानके प्रभावसे उन्हें व्यक्त तथा अव्यक्तका सब ज्ञान स्पष्ट हो गया और उन्होंने सिद्धान्तकौमुदी नामक व्याकरणग्रन्थकी रचना की। पाखण्डी भट्टोंको उन्होंने परास्त कर जीत लिया था, इसलिये उनका ‘भट्टोजिदीक्षित’ नाम संसारमें विख्यात हुआ।

देवगुरु बृहस्पति बोले—देवराज इन्द्र! पूर्वकालमें काशीपुरीमें एक दैवज्ञ ज्योतिषी ब्राह्मण रहता था। वह वेदमार्गानुगामी राजा सत्यदत्तका पुरोहित

था। किसी समय उस ज्योतिषीने राजा सत्यदत्तसे कहा—‘राजन् ! पुष्यनक्षत्रसे युक्त यह अभिजित् नामका मुहूर्त है। इस समय आप बाजार लगवायें, इसमें क्रय-विक्रय होनेसे आपको अतिशय लाभ होगा।’ तब राजाने डुगडुगी पिटवायी—‘बाजारमें जिसका सामान नहीं बिकेगा, उसे राजा खरीदेगा—यह हमारी सत्य घोषणा है।’ ऐसी घोषणा सुनकर बाजारमें अनेक वस्तुएँ बिकनेके लिये आ गयीं, परंतु दूसरे वर्णिक-जनोंने उन सबको खरीद लिया। उसी समय एक लोहार लोहेका एक ‘दरिद्रपुरुष’ बनाकर बाजारमें लाया और उसका सौ रुपये मूल्य माँगा। परंतु उसे बाजारमें किसीने भी नहीं खरीदा। राजाने दरिद्रकी मूर्ति समझकर भी घोषणाके अनुसार उसे सौ रुपयेमें खरीद लिया और महलमें लाकर कोषागारमें रखवा दिया। उस मूर्तिके प्रभावसे रातमें राज्यसे सत्कर्म, धर्म और लक्ष्मी राजाके देखते-देखते जाने लगे। सत्यने पुरुषरूपमें राजासे कहा—‘राजन् ! जहाँ दरिद्रताका निवास रहता है, वहाँ कोई कर्मपरायण नहीं होता, कर्मके बिना पृथक्षीपर धर्म स्थिर नहीं हो सकता, धर्मके बिना लक्ष्मीकी कोई शोभा नहीं होती और लक्ष्मीके बिना मैं नहीं रह सकता।’ यह कहकर जानेकी इच्छा करते हुए सत्यको राजाने पकड़ा और नम्र वचनमें कहा—‘प्रभो ! मैंने आपका परित्याग नहीं किया है, मैंने सत्यका ही पालन किया है। अतः आप मेरा घर छोड़कर क्यों जा रहे हैं?’ यह सुनकर सत्यदेव पुनः राजाके घरमें चले गये, उनके पीछे-पीछे लक्ष्मी भी घरमें आने लगीं। राजाने लक्ष्मीसे कहा—‘देवि ! आप चञ्चला हैं, यदि अचल होकर रह सकती हैं तो मेरे घरमें आयें।’ यह सुनकर अचल होनेका वर प्रदान कर

लक्ष्मी भी राजाके घरमें प्रविष्ट हो गयी।

राजा सत्यदत्तने पुनः अपने पुरोहित ज्योतिषीको बुलाकर उन्हें एक लक्ष मुद्रा प्रदान की और सभी बातें उनकी बता दीं। उस पुरोहितने पुत्रके जन्मके समय यह धन प्राप्त किया था, अतः उस सम्पूर्ण धनको श्रेष्ठ गणकने बालकके पालन-पोषणमें व्यय कर दिया और उसका ‘पूषा’ नाम रखा। पूषाने मार्गशीर्ष मासमें सूर्यकी आराधना की। उनकी कृपासे वह ज्योतिषशास्त्रमें पारद्वान हो गया तथा सूर्यमें लीन हो गया। इसलिये हे देवेन्द्र ! तुम भी मार्गशीर्षमें भगवान् सूर्यकी पूजा करो।

सूतजी बोले—मुने ! बृहस्पतिके निर्देशानुसार इन्द्रने भी मार्गशीर्ष मासमें सूर्यकी आराधना की और प्रसन्न होकर पूषारूपमें भगवान् सूर्यने उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—‘देवगणो ! उज्जियनीमें रुद्रपशुके घरपर मिहिराचार्य (वराहमिहिर)-के नामसे मैं जन्म ग्रहण करूँगा। मैं ज्योतिषशास्त्रका प्रवर्तक होऊँगा। अनन्तर मूलगण्डान्त एवं अभिजित्के योगमें रुद्रपशु ब्राह्मणके घरपर एक बालकका जन्म हुआ। पिताने उत्पन्न पुत्रको काठकी पेटीमें रखकर रात्रिमें नदीमें बहा दिया। वह बहता हुआ समुद्रमें चला गया, पर वहाँ राक्षसियोंके द्वारा वह रक्षित हुआ। पुनः उसने लङ्घामें आकर ज्योतिषका अध्ययन किया। जातक, फलित, मूकप्रश्न आदि ज्योतिषके सभी अङ्गोंका भलीभाँति अध्ययन कर यह विभीषणके पास आया और इसने भक्तराज विभीषणको प्रणाम किया तथा कहा—‘मुझे राक्षसियोंने यहाँ पहुँचा दिया है, मैं आपकी शरणमें हूँ।’ विभीषणने उसे श्रेष्ठ वैष्णव समझकर उसकी जन्मभूमिमें भेज दिया। म्लेच्छोंके द्वारा विनष्ट ज्योतिषका इसने पुनः उद्धार किया। (अध्याय ८)

वैद्यराज धन्वन्तरि, सुश्रुत और भक्त कवि जयदेवजीका चरित्र

सूतजी बोले—मुने ! देवगुरु बृहस्पतिने प्रयागमें भगवान् सूर्यके उत्तम माहात्म्यको इन्द्रादि देवताओंसे पुनः इस प्रकार कहा—हे देवेन्द्र ! प्राचीन कालमें त्रेतायुगके अन्तमें जिस प्रकार भगवान् शंकरकी आज्ञासे भगवान् सूर्य रमणीय प्रतिष्ठानपुरमें प्रादुर्भूत हुए उसे आप सुनें।

त्रेतायुगके अन्तमें सिंहलद्वीपमें परीक्षित नामका एक राजा था, वह वेदधर्मपरायण तथा देवताओं एवं अतिथियोंका पूजक था। उसकी एक कन्या थी, जिसका नाम था भानुमती। वह सूर्यन्रतपरायणा थी। राजमहलमें वह प्रतिदिन भगवान् सूर्यकी आराधना कर उन्हें भोग निवेदित करती थी और उसकी भक्तिसे संतुष्ट होकर प्रत्येक मध्याह्नकालमें भगवान् सूर्य वहाँ आकर उस नैवेद्यको स्वीकार करते थे।

एक समयकी बात है, रविवारके दिन वह भानुमती स्नान करनेके लिये नलिनीसागरपर गयी और जलमें उत्तरकर स्नान करने लगी। उसी समय नारदमुनि उस जनशून्य प्रदेशमें पहुँचे और उन्होंने उस कन्यासे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। परंतु कन्याने इसे अनुचित बताया। इससे देवर्षि नारद लज्जित हो गये और रोगसे भी ग्रस्त हो गये। देवर्षि नारदने भगवान् शंकरके पास आकर सारी घटना उनसे निवेदित की। तब शंकरने उनका रोग दूर करनेके लिये आराधनाद्वारा भगवान् भास्करको प्रसन्न किया। भगवान् सूर्यने प्रकट होकर देवर्षिका शरीर नीरोग एवं सुन्दर बना दिया और भगवान् शंकरसे कहा—‘हे प्रभो ! मुझे आज्ञा दें, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य

करूँ ?’ भगवान् शंकरने कहा—‘भगवन् ! आप ब्राह्मण होकर सविता नामसे मृत्युलोकमें जायें और राजा परीक्षितकी कन्या भानुमतीसे विवाह करें।’ भगवान् सूर्यने वैसा ही किया। वे सविता भानुमतीके साथ भगवान् सूर्यकी आराधना करने लगे और उन्होंने सूर्यलोकको प्राप्त किया तथा वे ही पौष मासमें आकाशमें प्रकाशित होने लगे। महेन्द्र ! तुम भी भगवान् सूर्यकी उपासना करो और देवताओंके कार्यको सिद्ध करो।’

सूतजीने कहा—मुने ! बृहस्पतिकी बात सुनकर देवराज इन्द्रने देवताओंके साथ पौष मासमें भगवान् सूर्यकी आराधना की। प्रसन्न होकर सूर्य प्रकट हुए और उन्होंने कहा—‘देवगणो ! मैं काशीमें धन्वन्तरि नामसे उत्पन्न होऊँगा और कलिके द्वारा निर्मित रोगोंसे पीड़ित संसारके प्राणियोंको रोगोंसे मुक्त करूँगा तथा वहीं निवासकर देवताओंके कार्यको सिद्ध करूँगा।’ ऐसा कहकर भगवान् सूर्य काशीमें चले आये और कल्पदत्त ब्राह्मणके घरमें पुत्ररूपमें धन्वन्तरिनामसे^१ उत्पन्न हुए। इन्होंने प्रौढ़ विद्वानोंके साथ राजपुत्र सुश्रुतको अपना शिष्य बनाया तथा कल्पवेद (आयुर्वेद—चिकित्साशास्त्र)-का प्रणयन किया। विद्वानोंने रोगोंद्वारा क्षीण होते हुए देहको ‘काल्प’ कहा है, इसीका ज्ञान इस तन्त्रमें निहित है, इसीलिये इसे कल्पवेद कहा गया है^२। कलियुगमें वे सूर्य ही भगवान् धन्वन्तरिके रूपमें प्रसिद्ध हुए, जिनके दर्शनमात्रसे ही समस्त रोग तत्काल नष्ट हो जाते हैं। आचार्य सुश्रुतने धन्वन्तरिप्रणीत कल्पवेदका अध्ययन करके सौ अध्यायोंवाले ‘सौश्रुत-तन्त्र’ का निर्माण किया।

१—अन्य पुराणों तथा आयुर्वेदग्रंथोंमें काशिराज दिवोदासको धन्वन्तरिका अवतार कहा गया है, जो पहले समुद्र-मन्थके समय समुद्रसे उत्पन्न हुए थे। स्कन्दपुराण काशीखण्डमें इनकी कथा बहुत विस्तारसे आयी है।

२—रोगैश्च क्षयितं देहं काल्पमेतत् स्मृतं वुधेः। तस्य ज्ञानं च तन्त्रेऽस्मिन् कल्पवेदो ह्यतः स्मृतः॥ (प्रतिसर्गपर्व ४। ९। २१)

बृहस्पति ने पुनः कहा—देवराज ! पूर्व समयमें रमणीय पम्पापुरमें हेली नामका एक ब्राह्मण रहता था । वह चौंसठ कलाओंका ज्ञाता और भगवान् सूर्यकी उपासनामें तत्पर रहता था । उसने प्रतिग्रह-वृत्तिका परित्याग कर हस्तकलासे वस्तुनिर्माणकी वृत्ति अपनायी । उसने लौह धातुकी एक सुन्दर मूर्ति बनाकर उसे अनेक चित्रकारीसे चित्रितकर पाँच हजार मुद्रामें बेचा । बेचनेसे उसे जो धन प्राप्त हुआ उस धनसे उसने माघ मासमें भगवान् सूर्यकी यज्ञोद्वारा आराधना की । हेलीने रमणीय पम्पासरोवरमें ज्योतिःस्वरूप एक उत्तम स्तम्भका निर्माण किया । भगवान् सूर्य भी उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर प्रत्येक मध्याह्नकालमें हेलीद्वारा निवेदित नैवेद्यका वहाँ भोग लगाते थे । भगवान् सूर्यकी कृपासे सहस्र वर्षपर्यन्त आयु भोगकर अपने प्राणोंका परित्याग कर वह हेली सूर्यस्वरूप हो गया और सूर्यमण्डलके बीच स्थित होकर माघ मासमें प्रकाशित होने लगा । देवेन्द्र ! आप भी आदित्यमण्डलमें स्थित विश्वकर्मा भगवान् सूर्यकी उपासना कीजिये । वे आपका सब कार्य सम्पन्न कर देंगे । देवगुरुके इस वाक्यको सुनकर देवताओंके साथ इन्द्रने भगवान् सूर्यकी आराधना की । जिससे प्रसन्न हो भगवान् सूर्यने देवताओंसे कहा—‘देवगणो ! मैं वंगदेशके बिल्ग्राम—बिल्वग्राममें निरुक्तकारके रूपमें उत्पन्न होऊँगा और कविशिरोमणि जयदेवके नामसे विख्यात होऊँगा ।’

यह कहकर भगवान् सूर्य वंगदेशमें आये और कन्दुकी ब्राह्मणके घर पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए । वे पाँच वर्षकी अवस्थासे ही माता-पिताकी सेवामें विशेषरूपसे तत्पर रहने लगे । उन्होंने बारह वर्षतक माता-पिताकी बड़ी सेवा की । बारह वर्षकी अवस्थामें ही माता-पिताके मरणोपरान्त उनका उन्होंने विधिपूर्वक श्राद्ध-कृत्य किया और गयामें वे पितृरूपमें जयदेवके

सामने उपस्थित भी हुए तथा पुनः देवरूपमें स्वर्गमें प्रतिष्ठित हुए । अन्तमें जयदेवजीको वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे वनमें रहकर भजन करने लगे । उनकी अवस्था तेर्झस वर्षकी हो गयी । इसी समय सत्यव्रत नामक ब्राह्मणने अपनी शुभ कन्या भगवान् जगन्नाथको समर्पित कर दी । पूजाके अन्तमें सनातन दारुब्रह्ममय भगवान्ने साक्षात् आकर उससे कहा—‘सत्यव्रत ! जयदेव मेरी ही मूर्ति है, मेरी आज्ञासे अपनी पुत्री पद्मावती उसे प्रदान कर दो ।’ यह सुनकर उस सत्यव्रत ब्राह्मणने अपनी कन्या पद्मावती वैरागी जयदेवके लिये बड़ी प्रसन्नतापूर्वक समर्पित कर दी, फिर वह सत्यव्रत अपने घर वापस आ गया ।

पद्मावती अपने पति जयदेवकी आनन्दके साथ अनेक वर्षोंतक सेवा करती रही । समाधिकालमें जयदेवने वेदाङ्गनिरुक्तकी रचना की । कलियुगमें नागवंशीय शूद्रोंने वैदिक प्रक्रियाएँ भ्रष्ट कर दी थीं । प्राकृत भाषाके रचयिता कलिप्रिय मूढ़ रचनाकारोंको उन्होंने जीतकर पाणिनिशास्त्रका उद्धार किया । कलियुगसे प्रेरित चोरोंने राजाद्वारा प्राप्त जयदेवकी सारी सम्पत्ति लूटकर उनका हाथ-पैर काटकर उन्हें गड्ढेमें डाल दिया । पद्मावती अपने पतिकी यह दशा देखकर बहुत दुःखी हुई और रोती हुई उसने गड्ढेसे पतिको निकालकर हाथसे सहलाकर उनकी पीड़ाको दूर किया ।

एक दिन राजा धर्मपाल मृगया-प्रसंगमें वहाँ आया । उसने भक्त जयदेवको देखा और पूछा कि हाथ-पैरसे विहीन आपकी यह दशा किसने की है ? जयदेवने कहा—‘महाराज ! मैं अपने कर्मोंके फलस्वरूप ही इस दशाको प्राप्त हुआ हूँ । किसीने दुष्टता नहीं की है ।’ इसपर राजा धर्मपाल जयदेवको पत्नीसहित शिविका (डोली)-में बैठाकर अपने महल ले आया । राजाने उनसे दीक्षा ग्रहणकर

उनके लिये एक धर्मशालाका निर्माण कराया। किसी समय कलिसे प्रेरित वे ही चोर वैष्णवका वेश बनाकर राजा धर्मपालके महलमें आये और राजासे कहने लगे—‘प्रभो! हमलोग शास्त्रमें निपुण हैं और आपके घर आये हैं। राजन्! हमलोगोंद्वारा निर्मित भोज्य-पदार्थ शिलास्थित भगवान् विष्णु (शालग्राम) प्रतिदिन ग्रहण करते हैं। नृपत्रैष्ट! आप उसे देखें।’ ऐसा कहकर उन कलिभक्तोंने अपनी मायासे चतुर्भुज विष्णुरूपको भोजन करते हुए राजाको दिखाया। आश्वर्यचकित हो धर्मपालने जयदेवसे कहा—‘गुरुदेव! मेरे घरपर विष्णुपरायण वैष्णव आये हैं। मैंने उनके प्रभावसे साक्षात् हरिका दर्शन किया है। इसलिये आप भी शीघ्र आयें।’ यह सुनकर जयदेव भी चकित हो राजदरबारमें आये। उस समय उन पाखण्डियोंने हँसते हुए राजासे कहा—‘राजन्! यह ब्राह्मण तो गौड़देशके राजाके यहाँ भोजन आदि बनानेका कार्य करता था। इसने धनके लोभसे छलकर भोजनमें विष

मिलाकर राजाको खिला दिया था। अतः यह दुष्ट व्यक्ति है। यह जानकर उस राजाने इस ब्राह्मणको शूलीपर चढ़ा दिया। इसी बीच हमलोग वहाँ पहुँचे। द्विजको पापी समझकर हमलोगोंने बहुत उपदेश दिया। उस राजाको भी हमलोगोंने बहुत समझाया, तब राजाने शूलीसे उतारकर इसके हाथ-पैर कटवा लिये। वह राजा भी हमारा शिष्य हो गया।’

उन चोरोंके ऐसा कहते (मिथ्या भाषण करते) ही दुःखित होकर पृथ्वी फट पड़ी और वे चोर पृथ्वीमें धूँस गये। दयालु जयदेव चोरोंकी यह स्थिति देखकर रोने लगे। इनके रोते ही उनके कटे हाथ-पैर प्रकृतरूपमें हो गये। यह देखकर राजा धर्मपालको महान् आश्र्य हुआ। उन्होंने जयदेवजीसे इसके विषयमें पूछा। तब जयदेवजीने सत्य-सत्य सारी घटना उन्हें बता दी। यह सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। जयदेवद्वारा निर्मित ‘गीतगोविन्द’ पढ़कर उस राजाने मोक्ष प्राप्त किया। (अध्याय ९)

चैतन्य महाप्रभु, वाल्मीकि और शंकराचार्यके आविर्भावकी कथा

देवगुरु बृहस्पतिने कहा—देवेन्द्र! प्राचीन कालमें किसी समय वेदपारङ्गत विष्णुशर्मा नामके एक ब्राह्मण थे। वे प्रसन्नचित्तसे सर्वदेवमय विष्णुकी पूजा करते थे, इसलिये देवतालोग भी उनकी प्रतिष्ठा करते थे। वे भिक्षावृत्तिसे जीवननिर्वाह करते थे, उनकी स्त्री थी किंतु कोई पुत्र न था। एक समय उनके घरपर कोई अतिथि आया। दयालुहृदय उस महात्माने विष्णुशर्माकी स्त्रीकी आर्थिक स्थिति तथा नम्रता देख उसे तीन दिनोंके लिये एक पारसमणि दी और कहा कि इसके स्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता है। इतने दिनोंमें मैं सरयूमें स्नान कर तुम्हारे पास लौट आऊँगा। उसके जानेपर ब्राह्मणीने उस मणिसे पर्यास सोना

तैयार कर लिया। तबतक विष्णुशर्मा भी आ गये। उन्होंने अपार सुवर्णराशिसे सम्पन्न अपनी पत्नीको देखकर कहा—‘जहाँ वह पारसमणिका स्वामी गया है, तुम भी वहाँ चली जाओ। मैं अकिञ्चन हूँ विष्णुभक्त हूँ। चोर-डाकुओंके भयसे धनका संग्रह नहीं करता।’ इसपर उनकी पतिव्रता पत्नी डर गयी और पारसमणि उसे समर्पित कर पुनः उनकी सेवामें तत्पर हो गयी। ब्राह्मण विष्णुशर्मने उस सारे धन एवं पारसको घर्घरा—सरयू नदीमें फेंक दिया। तीन दिनोंके बाद उस अतिथिने आकर ब्राह्मणीसे पूछा कि क्या तुमने पारसमणिसे सोना नहीं बनाया? उसने कहा—‘मेरे पतिने उसे क्रोधपूर्वक ग्रहणकर घाघरामें फेंक दिया। उस

दिनसे मैं जिस-किसी प्रकार लोहेके बर्तनोंके अभावमें आगमें ही भोजन बना रही हूँ।'

यह सुनकर वह यति आश्वर्यचकित हो गया। दिनभर वहीं रुका रहा। संध्यासमय ब्राह्मणके आनेपर उसने रुक्षस्वरमें कहा—‘ब्राह्मण! तुम दैवद्वारा मोहित प्रतीत होते हो; क्योंकि तुम दरिद्र भी हो और धन भी संग्रह नहीं करना चाहते हो। अतः मेरा पारस शीघ्र ही लौटा दो, नहीं तो मैं अपना प्राण त्याग दूँगा।’ यतिके इस प्रकार कहनेपर विष्णुशर्मने कहा—‘तुम घाघराके किनारे जाओ, वहीं तुम्हारा पारस मिल जायगा।’ यह कहकर यतिके साथ वहाँ जाकर उसने बहुत-से कंटकोंसे ढके अनेक पारसमणियोंको उसे दिखाया। उस यतिने ब्राह्मणको नमस्कार कर नम्रतापूर्वक कहा—‘मैंने बारह वर्षोंतक भलीभाँति शिवकी आराधना की, तब मैंने इस शुभ रत्नको प्राप्त किया। विप्रश्रेष्ठ! आपके दर्शनमात्रसे ही मुझ लोभात्माने आज अनेकों पारसमणियोंको प्राप्त कर लिया।’ यह कहकर उससे शुभ ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लिया। इधर विष्णुशर्मने एक हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर रहकर सूर्यकी आराधना करके विष्णुलोकको प्राप्त किया। वे ही विष्णुशर्मा वैष्णव तेज धारणकर फाल्गुनके महीनेमें तीनों लोकोंमें तप रहे हैं और देवकार्य सिद्ध कर रहे हैं।

देवेन्द्र! फाल्गुन मासमें उन सूर्यकी आराधना कर तुम भी सुख प्राप्त करो। उन्होंने देवताओंके साथ ऐसा ही किया। प्रसन्न हो भगवान् सूर्य सूर्यमण्डलसे प्रकट होकर सभी देवताओंके देखते-देखते इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। उस तेजसे इन्द्रने अपना शरीर अयोनिज विप्ररूपमें धारण किया और शचीदेवी भी पृथ्वीमें ब्राह्मणीके रूपमें अवतीर्ण हुई। एक वर्षके बाद शचीदेवीके गर्भसे भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षमें गुरुवारको द्वादशी तिथिमें ब्राह्मवेलामें एक दिव्य बालकका जन्म हुआ। जो

वास्तवमें भगवान् विष्णुके कलावतार थे। उस समय रुद्र, वसु, विश्वेदेव, मरुदण, साध्य, सिद्ध तथा भास्कर आदि देवोंने उस सनातन हरिरूप बालककी दिव्य स्तुति की और कलियुगमें दितिपुत्रोंद्वारा पीड़ित देवताओं तथा अर्थर्मसे दुःखी पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये प्रार्थना की। यही आगे चलकर श्रीकृष्णचैतन्यके नामसे विख्यात हुए।

सूतजी बोले—मुने! स्तुतिके अनन्तर सभी देवगण बृहस्पतिके पास आकर कहने लगे—महाभाग! हम सभी रुद्रगण, ये वसुगण तथा अश्विनीकुमार पृथ्वीपर किस-किस अंशरूपमें अवतरित होंगे, इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

बृहस्पतिने कहा—देवगणो! इस विषयमें आप-लोगोंको मैं एक दूसरी बात बता रहा हूँ—प्राचीन कालमें मृगव्याध नामका एक अधम ब्राह्मण था। वह मार्गमें सदा धनुर्बाण धारणकर विप्रोंकी हिंसा किया करता था। वह महामूर्ख ब्राह्मणोंको मारकर उनके यज्ञोपवीतोंको ग्रहणकर उत्साहपूर्वक शोर मचाता था। वह दुष्ट द्विजाधम तीनों वर्णोंको, विशेषकर ब्राह्मणोंको मारता था। उस समय ब्राह्मणोंका विनाश देखकर देवगण भयभीत हो ब्रह्माके पास आये और सभी बातें उन्हें बतायीं। यह सुनकर दुःखी हो ब्रह्माने सभी लोकोंमें गमन करनेवाले सप्तर्षियोंसे कहा—‘द्विजोत्तमो! आप सभी वहाँ जाकर मृगव्याधको समझायें।’ यह सुनकर वसिष्ठ आदि ऋषियोंके साथ मरीचि मृगव्याधके वनमें गये। धुनबाणधारी महाबली मृगव्याधने उन लोगोंको देखकर भयंकर वचन कहा—‘आज मैं तुमलोगोंको मारूँगा।’ मरीचि आदिने हँसकर कहा—‘तुम हमलोगोंको क्यों मारोगे? कुलके लिये मारोगे या अपने लिये, यह शीघ्र बताओ।’ यह सुनकर उस मृगव्याधने कहा—‘मैं अपने कुलके लिये और अपने कल्याणके लिये (तुमलोगोंको) मारूँगा।’

यह सुनकर उन लोगोंने कहा—‘धनुर्धर! अपने घरमें यह पूछकर शीघ्र आओ कि विप्रहत्यासे किये गये पापोंको कौन भोगेगा? यह विचार करो।’ यह सुनकर उस घोरात्माने अपने कुलवालोंसे पूछा—‘आजतक मैंने जो पाप अर्जित किया है, उसे तुमलोग भी वैसे ही ग्रहण करो, जैसे धनको ग्रहण किया है।’ उस अधम ब्राह्मणके इस वचनको सुनकर उसके कुटुम्बियोंने कहा—‘हमलोग तुम्हारे किये गये पापको ग्रहण नहीं करेंगे, क्योंकि यह भूमि और ये सूर्य साक्षी हैं, हमलोगोंने कोई पाप नहीं किया है।’ यह सुनकर उस मृगव्याधने मुनियोंके पास जाकर हाथ जोड़कर कहा—‘महात्माओ! जिस प्रकार मेरे पापोंका क्षय हो, आपलोग वैसा उपाय बतायें।’ मृगव्याधके यह कहनेपर ऋषियोंने कहा—‘एक उत्तम मन्त्र है, उसे सुनो—वह है ‘रामका नाम।’ यह सभी प्रकारके पापोंको दूर करनेवाला है।’ अब हमलोग जा रहे हैं, जबतक वापस तुम्हारे पास न आ जायें, तबतक तुम इस महामन्त्र अर्थात् राम-नामका जप करो।’ यह कहकर मुनिगण तीर्थान्तरोंमें भ्रमण करने चले गये और वह मूर्ख व्याध विप्र ‘मरा-मरा’ का हजार वर्षतक निरन्तर जप करता रहा। उसके जपके प्रभावसे वह अरण्य उत्पलों (कमलों)-से परिव्यास हो गया और तभीसे वह स्थान पृथ्वीपर उत्पलारण्यके नामसे प्रसिद्ध हो गया।^१

अनन्तर सप्तर्षि वल्मीकि बने उस मृगव्याधके पास आये और उसकी मिट्टी हटाकर उसको शुद्ध विप्रके रूपमें देखकर आश्र्यचकित होकर कहने लगे—‘वल्मीकिसे निकलनेके कारण तुम वाल्मीकि कहे जाओगे। त्रिकालज्ञ महामति हे विप्र! तुम इसी

नामसे प्रसिद्ध होओगे।’ यह कहकर वे सप्तर्षि अपने-अपने स्थानपर चले गये। वाल्मीकिमुनिने अष्टादश कल्पसमन्वित शतकोटिविस्तृत तथा सभी पापोंका विनाशक निर्मल पद्यबद्ध रामायणका निर्माण किया। अनन्तर वे शिव होकर वहीं निवास करने लगे। देवगणो! हरको प्रिय लगनेवाले उस मृगव्याध शिवके चरित्रको आपलोग सुनें।

वैवस्वत मन्वन्तरके आद्य सत्ययुगमें ब्रह्माने उत्पलारण्यमें आकर एक यज्ञ किया। उस समय वहाँपर सरस्वतीदेवी नदी होकर आ गयी। अनन्तर ब्रह्माने अपने मुखसे कल्याणकारी ब्राह्मणों, बाहुओंसे क्षत्रियों, ऊरुसे उत्तम वैश्यों और पैरोंसे शुभाचारसम्पन्न शूद्रोंको उत्पन्न किया। द्विजराज सोम (चन्द्रमा), सूर्य, तेज-वीर्यकी रक्षा करनेवाले कश्यप, मरीचि, रत्नाकर अर्थात् समुद्र एवं प्रजापति आदिको भी उत्पन्न किया। दक्षके मनसे अनेक कन्याएँ उत्पन्न हुईं। विष्णुमायाके प्रभावसे वे कलाओंके रूपमें पृथ्वीपर स्थित हुईं। भगवान् ब्रह्माने अश्विनी आदि सत्तार्इस नक्षत्र लोककी अभिवृद्धिके लिये सोमको तथा तेरह अदिति आदि कन्याएँ कश्यपको और कीर्ति आदि कन्याएँ धर्मको प्रदान कीं। उन्होंने वैवस्वत मन्वन्तरमें अनेक सृष्टियाँ कीं। ब्रह्माकी आज्ञाके अनुसार पृथ्वीपर दक्ष उन लोगोंके प्रजापति हुए। यज्ञमें तत्पर दक्ष प्रजापतिने स्वयं वहाँ निवास किया। सभी देवगण दक्षको नमस्कार कर वहाँ विचरण करते थे, किंतु भूतनाथ महादेवने कभी उनको नमस्कार नहीं किया। इससे क्रुद्ध होकर दक्षने यज्ञमें उन्हें भाग नहीं दिया। मृगव्याध शिव क्रुद्ध होकर वीरभद्रके रूपमें प्रकट हो गये। उनके

१-रामनाम हि तज्ज्यें सर्वाधौघविनाशनम्। (प्रतिसर्गपर्व ४। १०। ५२)

२-मरामरामरेत्येवं सहस्राद्वं जजाप ह॥

जपप्रभावादभवद्वन्मुत्पलसंकुलम् । तत्स्थानमुत्पलारण्यं प्रसिद्धमभवद्भुवि॥ (प्रतिसर्गपर्व ४। १०। ५३-५४)

३-वल्मीकित्रिःसृतो यस्मात् तस्माद्वाल्मीकिरुत्तमम्। तव नाम भवेद्विप्र त्रिकालज्ञ महामते॥ (प्रतिसर्गपर्व ४। १०। ५६)

साथ त्रिशिरा, त्रिनेत्र और त्रिपद शिवगण भी वहाँ आये। वीरभद्र आदिके द्वारा देव, मुनिगण और पितृगण पीड़ित होने लगे। उस समय यज्ञपुरुष भयभीत हो मृग होकर शीघ्रतासे भागने लगा। तब शिवने व्याधरूपको धारण किया। रुद्ररूपी व्याधके द्वारा वह मृग छिन्न-भिन्न अङ्गवाला हो गया। तब भगवान् ब्रह्माने मधुर स्तुतियोंसे रुद्रव्याधको संतुष्ट किया। संतुष्ट मृगव्याधने दक्षके यज्ञको पूर्ण कराया। तुलाराशिमें सूर्यके आनेपर उस रुद्रको सत्ताईस नक्षत्रवाले चन्द्रमण्डलमें स्थापित कर

स्वयं ब्रह्मा सत्यलोकको चले गये और रुद्र चन्द्रके समान रूपवान् हो गये। वीरभद्र रुद्रने यह सुनकर प्रसन्नचित्त हो अपने शरीरसे एक तेजको उत्पन्न कर भैरवदत्त नामक विप्रके घरमें भेजा। घोर कलियुगमें वही शिव शंकर (शंकराचार्य) नामसे उसके पुत्ररूपमें अवतरित हुए। वह बालक गुणवान्, सकल शास्त्रवेत्ता एवं ब्रह्मचारी हुआ। उसने शांकरभाष्यकी रचना कर शैवमतको प्रतिष्ठित किया और त्रिपुण्ड्र, अक्ष (रुद्राक्ष)-माला और पञ्चाक्षर-मन्त्र प्रदान किया। (अध्याय १०)

गिरिशर्मा, वनशर्मा तथा पुरीशर्माके आविर्भावका आख्यान

देवगुरु बृहस्पति बोले—देवेन्द्र! प्राचीन कालमें नैमिषारण्यमें अजगर नामका एक ब्राह्मण था। वह वेदान्तशास्त्रमें विशारद, ज्ञानवान् और भगवान् शंकरका उपासक था। उसने बारह वर्षमें पार्थिव-पूजाके द्वारा भगवान् रुद्रको संतुष्ट किया। भगवान् शिवने उसे ज्ञान प्रदानकर जीवन-मुक्ति प्रदान की। पुनः उस द्विजोत्तमने संकर्षणकी आराधना कर अनेक स्तुतियोंद्वारा उन्हें प्रसन्न किया। भगवान् संकर्षणने उसे सायुज्य प्रदान किया और अन्तमें वह भगवान्का आभूषण सर्प बन गया। वह हजार फणोंसे युक्त गौराङ्ग—गौरविग्रह था। उसका स्थान क्षीरसागरमें था। ब्रह्माजीने स्वयं आकर सूर्यके कर्कराशिस्थ होनेपर चन्द्रमाके नक्षत्रमण्डलमें उस रुद्रको स्थापित किया और वह चन्द्रमाके रूपमें हो गया।

इस प्रकार गुरुके द्वारा कहे गये वचनोंको सुनकर शेषनाग रुद्रने प्रसन्नचित्त हो अपने मुखसे तेज उत्पन्न कर विन्ध्याद्रिमें देवदत्त ब्राह्मणके घरपर स्थापित किया और वही गिरिशर्मा विप्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। वह विद्वानोंको जीतकर काशीपुरीमें आया और शंकरका शिष्य हो गया।

सूतजी बोले—मुने! अब आप देवगुरु बृहस्पतिद्वारा देवताओंसे कही गयी एक अन्य कथा सुनें। बृहस्पतिजीने कहा था—‘देवेन्द्र! पूर्वकालमें प्रयागमें नैऋत नामका एक प्रसिद्ध ब्राह्मण था, वह दरिद्रतासे दुःखी तथा मन्दभाग्य था। बहुत कष्टसे दिनभर माँगनेके बाद उसे भिक्षा प्राप्त होती थी। पुत्र-पत्नीके बाद वह नैऋत नित्य दरिद्रतासे पीड़ित रहता था। एक समय वैष्णवप्रिय देवर्षि नारद उसके पास आये और कहने लगे—विप्रश्रेष्ठ! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देवमय है और सभीके स्वामी भव (शंकर) हैं। इसलिये तुम भी शीघ्र ही भवका भजन करो। वे तुम्हारे कार्यको सिद्ध कर देंगे। देवर्षि नारदसे यह उपदेश पाकर नैऋतने परम भक्तिसे वर्षपर्यन्त पार्थिवार्चनद्वारा भगवान् शिवको संतुष्ट किया। भगवान् महेश्वरने प्रसन्न होकर कुबेरके समान उसे दिव्य विपुल धन प्रदान किया। उसने उस धनसे धर्म-कार्य सम्पन्न किया। इस कारण वह पुण्यात्माओंमें प्रसिद्ध हुआ। शिवभक्तिके प्रभावसे वह अकंटक द्रव्य प्राप्तकर हजार वर्षतक जीवित रहकर अन्तमें प्राण परित्यागकर स्वर्गमें चला गया और वृषराशिमें सूर्यके स्थित

रहनेपर चन्द्रके समान सुशोभित होकर सर्वजनप्रिय नैऋत रुद्रके नामसे विख्यात हुआ।'

सूतजीने कहा— शौनक! वही नैऋत अपने अंशसे पृथ्वीपर आकर गिरिनालगिरिके वनमें वनवासी सिद्ध सांख्ययोगीके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ और वेदशास्त्रपरायण वनशर्मके नामसे विख्यात हुआ। उसने बारह वर्षकी अवस्थामें अनेक विद्वानोंको जीत लिया। पुनः तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिकी अभिलाषासे काशीमें आकर श्रेष्ठ शंकराचार्यको प्रणाम कर उनका शिष्य हो गया।

बृहस्पतिजीने पुनः कहा— देवेन्द्र! माहिष्मतीमें एक शिवभक्त वसुशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। वह पुत्रकी कामनासे पार्थिवार्चनमें विशेषरूपसे तत्पर रहता था। अनेक प्रयत्न करनेके बाद भगवान् शंकरने प्रकट होकर वर माँगनेको कहा। तब उस विप्रने कहा—‘शरणागतवत्सल! आप मुझे पुत्र प्रदान करें।’ इसपर शंकरने कहा—‘वत्स! तुम्हारे भाग्यमें पुत्र नहीं लिखा है, फिर भी मैं तुम्हें अपने अंशसे एक तेजस्वी पुत्र दे रहा हूँ।’ ऐसा कहकर उन्होंने

एक तेज प्रकट किया और उसी तेजसे उसे एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रका एक पैर मनुष्यके समान और दूसरा पैर अजके समान था। अतः पृथ्वीपर वह अजैकपाद नामसे विख्यात हुआ। चार सौर वर्ष बीतनेपर मृत्युदेवता अपने गणोंके साथ वहाँ आये। अजैकपादके साथ उनका भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें अजैकपाद युद्धमें विजयी होकर मृत्युज्ञय नामसे पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए। उससे पराजित एवं दुःखी होकर मृत्युदेवताने अपना कष्ट ब्रह्माजीसे कहा, तब भगवान् ब्रह्माने सभी देवोंके साथ सूर्यके कुम्भस्थ होनेपर उस ब्राह्मणको भयहारी रुद्रके रूपमें चन्द्रमण्डलका अधिपति बनाया।

सूतजी बोले— मुने! अनन्तर वही अजैकपाद माहिष्मतीपुरीमें आकर कलिको शुद्धि प्रदान करनेवाले प्रभुके रूपमें पुरीशर्माके नामसे विख्यात हुआ और यतिदत्तके पुत्रके रूपमें पुनः अवतीर्ण हुआ। उसने सोलह वर्षमें वेदपारञ्जत विद्वानोंको जीतकर शंकराचार्यके पास आकर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। (अध्याय ११)

भारती, नाथशर्मा, क्षेत्रशर्मा तथा दुंडिराजकी उत्पत्ति-कथा

बृहस्पतिजी बोले— देवेन्द्र! पूर्वकालमें संसारके लिये कंटक बना हुआ हिर्बु नामका एक दानव था। वह निकुम्भकी वंशपरम्परामें उत्पन्न हुआ था और इन्द्रके समान पराक्रमी था। जब हजार वर्षतक तपस्या करके उसने देवताओंको पराजित किया, तब लोकरक्षाके लिये उद्यत लोकपति ब्रह्माने उससे वर माँगनेको कहा। उसने उन्हें प्रणाम कर विश्वके सभी प्राणिपदार्थोंसे ‘मैं मारा न जा सकूँ’ यह वर माँगा। ‘ऐसा ही होगा’ यह कहकर ब्रह्मा ब्रह्मलोक चले गये। वर प्राप्तकर उस भयंकर दैत्यने देवताओंको जीतकर स्वर्गसे भगा दिया

और दैत्योंको वहाँ बसाया। इस प्रकार देवताओंने भीषण यन्त्रणा भोगी। उनकी दुर्दशा देखकर नारदजीने कहा—‘देवगणो! आपलोग शंकरकी उपासना करें। भगवान् शंकर ब्रह्माण्डके स्वामी हैं तथा विपत्तियोंके नाशक हैं।’ यह सुनकर देवताओंने देवदेव भगवान् उमापत्तिकी पार्थिवपूजा प्रारम्भ कर दी। पूजा करते हुए ग्यारह वर्ष व्यतीत होनेपर लोककल्याणकारी भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और ज्योतिर्लिङ्गमय होकर देवभक्तोंको छोड़ शेष सभी असुरोंको दग्ध करने लगे। इससे प्रसन्न होकर ब्रह्माने विष्णुके साथ आनन्दपूर्वक सामसूक्तोंसे महारुद्रको प्रसन्न

किया। सूर्यके मिथुन राशिमें स्थित होनेपर हिर्बु दैत्यका विनाश करनेवाले महारुद्रको देवताओंके कल्याणके लिये शशिमण्डलका राजा बनाया। यह महारुद्र देवकार्यके लिये तत्पर हो गया। अनन्तर यही महारुद्र रमणीय हिमालयपर्वतपर साद्यकर्मके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ और बादमें कलाओंका ज्ञाता भारतीश नामसे प्रसिद्ध हुआ। विद्वत्समुदायको जीतकर फिर वह काशी नगरीमें चला आया और शंकराचार्यका शिष्य हो गया।

बृहस्पतिजीने पुनः कहा—देवेन्द्र! मयका एक पुत्र था मायी, वह एक पैरपर खड़ा होकर एक हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करता रहा। उसने अपनी तपस्याके द्वारा संसारके सभी प्राणियोंको संतप्त कर दिया। अनन्तर भगवान् परमेष्ठी पितामहने प्रसन्न होकर तीन गाँवों (तीन पुरों—त्रिपुर) -को उसके भोगके लिये निर्मित किया। सोलह योजनवाले विस्तृत स्वर्गके समान सुवर्णमय, उसके नीचे भुवर्लोकके समान एक योजन विस्तृत रजतमय तथा उसके नीचे भूर्लोकके समान एक योजन विस्तृत लौहमय तीन पुर बनवाये। इस प्रकार उस त्रिपुरमें सौ करोड़ दैत्य तथा दैत्यपत्नियाँ निवास करने लगीं। वे देवताओंके यज्ञभागको ग्रहणकर देवताओंके समान हो गये। यज्ञभाग न मिलनेके कारण निर्बल देवगण भूखसे पीड़ित हो भगवान् विष्णुके पास गये और उनकी स्तुति कर कहने लगे—‘भगवन्! प्रभो! मयपुत्र मायीके द्वारा प्राप दुःखोंको भोगते हुए हमें बहुत ही दीर्घ समय हो गया है, हम सभी अधिकारविहीन होकर रह रहे हैं। स्वर्गमें मायी दैत्यका ही राज्य है। देवताओंकी बात सुनकर भगवान् मधुसूदन संस्कृतवार्ता करनेवाले त्रिपुरस्थित धर्मपरायण दैत्योंको देखकर भयानक कलियुगमें बौद्धरूपमें अजिन द्विजके पुत्र होकर उत्पन्न हुए। उस बौद्धने वेदधर्मपरायण विप्रोंको

मोहित कर दिया। तामस मन्वन्तरमें तीनों वर्ण वेदविहीन, कर्मरहित तथा वैराग्यसम्पन्न हो गये। सोलहवें कलिकी प्राप्ति होनेपर वे सभी यज्ञरहित हो गये। इस कारण त्रिपुरनिवासियोंको यज्ञभाग मिलना बंद हो गया, अतः सभी त्रिपुरनिवासी दैत्यगण क्रोधाविष्ट हो वेदरहित तथा यज्ञशून्य उन मनुष्योंको पीड़ित करने लगे। कल्पान्तमें दैत्योंसे भक्षित हो सभी मनुष्य विनष्ट हो गये।

पुनः सत्यलोकके आनेपर देवताओंने कैलासमें सभी लोगोंका कल्याण चाहनेवाले भगवान् शम्भुकी आराधना की। भगवान् शंकर ज्योतिर्लिङ्गरूप धारण कर वहाँ अवस्थित हो गये। इस कारण देवता प्रसन्न हो गये। उन्होंने भूमिके सारको ग्रहणकर विधिपूर्वक एक रथका निर्माण किया। चन्द्र और सूर्यके सारसे रथके दो चक्र बनाये। इसी प्रकार सुमेरुके सारसे रथका ध्वज बनाकर वह स्यन्दनरूपी यान भगवान् शिवको प्रदान किया। भगवान् ब्रह्मा स्वयं यहाँ आकर रथके सारथि बने। उन देवाधिदेवके रथके घोड़े चारों वेद हुए। उनका धनुष लोकालोक पर्वतका सार-तत्त्व ही आजगव नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह घोर शब्द करनेवाला था। भगवान् शंकर जब प्रत्यञ्चा बनाकर धनुषपर चढ़ाने लगे तब देवाधिदेवके क्रोधके कारण वह चाप टूट गया। यह देखकर भगवान् विष्णु आश्र्वर्यचकित हो गये। तदनन्तर उन्होंने स्वर्गके सारको ग्रहण कर पिनाक नामक एक दिव्य धनुषका निर्माण किया। रुद्रने पुनः उस धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ायी। वह धनुष दृढ़ था, अतः भग्नीभूत नहीं हुआ। इस कारण ब्रह्मादि देवताओंने प्रसन्नचित्तसे उनकी स्तुति की और तबसे भगवान् महेश्वर ‘पिनाकी’ नामसे प्रसिद्ध हुए। शेषनाग उस चापकी डोरी थे और इन्द्र बाणरूप बने। बाणके पक्षपर वहि और वायु तथा शत्यपर सनातन विष्णु स्थित हुए। उस

धनुष-बाणसे करोड़ों दैत्य आकाशमें मारे गये। भगवान् शिवने मायीसे पालित उस त्रिपुरको जला दिया।

उस भयंकर त्रिपुरके भस्मीभूत होनेपर लोकपति ब्रह्माने मीन राशिमें रविके स्थित होनेपर पिनाकी महारुद्रको चन्द्रमण्डलका राजा बनाया और तामस मन्वन्तरमें देवताओंने अपने-अपने अधिकारको पुनः प्राप्त कर लिया।

सूतजीने कहा—मुने! अनन्तर पिनाकीने अपने मुखसे अपने उत्तम अंशको उत्पन्न कर हरिद्वारमें अवस्थित मच्छन्द* नामक योगीके मुखमें अपने तेजको प्रविष्ट कराया। वह मच्छन्द भगवान् शम्भुकी पूजा करनेवाला तथा गोरखका गुरु था। उस तेजसे नाथशर्मा नामक एक बड़ा विद्वान्, श्रेष्ठ एवं सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पृथ्वीके सभी विद्वानोंको जीतकर काशीपुरीमें चला आया और शंकराचार्यका शिष्य हो गया।

देवेन्द्र! चाक्षुष मन्वन्तरके बारहवें द्वापरमें तालजंघवंशमें उत्पन्न क्षत्रियोंके द्वारा भृगुवंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंका कुरुक्षेत्रमें विनाश हुआ और उनके प्रचुर धनको लेकर वे क्षत्रिय दैत्योंके पक्षपाती हो गये। उसी समय किसी ब्राह्मणकी गर्भवती स्त्री डरकर तपस्याके प्रभावसे सौ वर्षोंतक अपने गर्भको धारण किये रह गयी। इसे सहन न कर गर्भस्थ शिशु माताके ऊरुप्रदेशको विदीर्णकर पृथ्वीपर आ गया। उसके तेजसे सम्पूर्ण जगत् भस्मीभूत होने लगा। तब सभी देवगण प्रजापतिको आगे कर भयसे आतुर हो उसके पास आये। उस बालकने पितरों और देवताओंकी आज्ञासे उस लोकनाशकारी तेजको जलके बीचमें फेंक दिया। जलदेवीने वडवा-स्वरूप धारणकर उस उत्तम तेजका पान कर लिया, किंतु रौद्र तेजसे पीड़ित

हो उसने उस तेजका वमन कर दिया। ब्रह्माजीने त्रिकुटगिरिपर आकर उसके नीचे घोर सागरमें लोककी रक्षाकी दृष्टिसे उस तेजको स्थापित कर दिया। पुनः परमेष्ठी पितामहने मेष राशिमें सूर्यके आनेपर उस रौद्र तेजको रुद्ररूपमें शशिमण्डलके स्वामीके रूपमें स्थापित किया। वह ऊरुसे उत्पन्न होनेके कारण बोर्ब, संसारका दहन करनेके कारण दहन और वडवाके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण वाडव नामसे प्रसिद्ध हुआ।

सूतजी बोले—मुने! उस दहनने अपने मुखसे तेज उत्पन्न किया और वही कुरुक्षेत्रनिवासी सारस्वत ब्राह्मणके घरमें क्षेत्रशमकि नामसे विख्यात हुआ। वह विद्वानोंमें श्रेष्ठ हुआ। शंकराचार्यसे पराजित हो उनका शिष्य हुआ और ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर भगवान् शंकरकी उपासना करता हुआ काशीमें स्थित हो गया।

बृहस्पतिने पुनः कहा—देवेन्द्र! पूर्वकालमें सारे संसारके एकार्णव हो जाने तथा स्थावर और जंगम सभीके नष्ट हो जानेपर एवं अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके सौ वर्ष बीतनेपर मायारूपी प्रकृतिने आनन्दपूर्वक उस जलका पान कर लिया। फिर तमोमयी महाकाली उस दारुण प्राकृत जगत्में एकाकी उत्पन्न हुई। अनन्तर नित्य शुद्ध सनातन प्रकृति स्वेच्छासे महागौरीके रूपमें परिणत हो गयीं। उनके पाँच मुख, दस भुजाएँ तथा तीन नेत्र थे। वह शिवा नामवाली हुई। ललाटस्थ नेत्रद्वारा उस माताने सूक्ष्म तेजका दर्शन किया। वह तेज नित्य, अविकारी, निरञ्जन तथा सर्वत्र दिशाओंमें परिव्यास था। उस ब्रह्मको प्रकृतिने ग्रहण करनेकी इच्छा की, परंतु समर्थ न हो सकी। आश्र्यचकित हो उस प्रकृतिने अपने पाँचों मुखोंसे भक्तिपूर्वक प्रार्थनाकर परात्पर पूर्ण ब्रह्मको प्रसन्न किया। वह

* इस कथानकमें नाथसम्प्रदायका इतिहास अन्तर्निहित दीखता है।

सर्वज्ञ ब्रह्म प्रकृतिके पाँचों मुखोंमें प्रविष्ट हो गया। वह ब्रह्म पुरुषत्वको प्राप्तकर स्वयम्भू नामसे प्रसिद्ध हुआ और अव्यक्त प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके कारण वे अव्यक्तजन्मा कहे गये। उनके निमित्त वरदा, लोकरूपिणी अष्टादश भुजाओंसे युक्त देवी महालक्ष्मी उत्पन्न हुई। वे संसारकी रक्षा करने लगीं। उनके अद्भुत रूपको देखकर स्वयम्भू आश्चर्यचकित हो गये। अनेक रूपोंमें प्रवेश करके भी स्वयम्भू उनके अन्तको प्राप्त नहीं कर सके। बृहत् और बहुरूप होनेके कारण वे ब्रह्मा नामसे विख्यात हुए। थककर भगवान् ब्रह्मा सत्यलोकमें चले आये। उन्होंने मुखसे आविर्भूत वेदोंसे शंकरकी दीर्घकालतक स्तुति की। उनके अङ्गसे नदी-नद उत्पन्न हुए। पुनः जलमय समुद्र हो जानेसे वहाँ स्वयं प्रभुने शयन किया। अव्यक्त स्वयम्भूने सहस्रयुगपर्यन्त वहाँ निवासकर सत्यलोकमें आकर पुनः सृष्टि आरम्भ कर दी। गणरूपा अनन्त सृष्टियाँ पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुई। उससे महालक्ष्मीमय व्यक्त जगत् हुआ। महासनातनी महालक्ष्मीदेवी सृष्टिके अनेकत्वको देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं और सर्वेश्वर भगवान्‌के पास आयीं तथा अव्यक्त मङ्गलरूप विष्णुको नमस्कारकर कहने लगीं— ‘भगवन्! आप नित्य और शुद्धात्मा हैं, संसारमें बहुत-से प्राणी हो गये हैं, मैं इन लोगोंकी गणना कैसे कर सकती हूँ।’ महालक्ष्मीके इस वचनको सुनकर वे ब्रह्म दो रूपोंमें विभक्त हो गये। पूर्वार्धसे रक्ताङ्ग और परार्धसे गौराङ्ग। रक्ताङ्ग और गौराङ्ग दोनों चतुर्भुज हुए। सम्पूर्ण सृष्टिगणोंका स्वामी रक्ताङ्ग गणेश हुआ, वही ईश्वर कहलाता है। परार्धसे उत्पन्न गौरवर्ण जो चतुर्भुजी है उसका ध्यान योगीलोग करते हैं, वह निरञ्जन है।

एक बार पार्वतीवल्लभ भगवान् शिवने एक हजार वर्षतक प्रयत्नपूर्वक गणेशकी पूजा की। तब

शर्वपूजक भगवान् गणेशने प्रसन्न होकर पार्वतीसहित हरको वर माँगनेके लिये कहा। इसपर भगवान् शंकरने उनकी भक्तिपूर्वक इस प्रकार स्तुति की—
 नमो विष्णुस्वरूपाय गणेशाय परात्मने।
 चतुर्भुजाय रक्ताय यज्ञपूर्णकराय च॥
 विघ्नहन्त्रे जगद्वर्ते सर्वानन्दप्रदायिने।
 सिद्धीनां पतये तुभ्यं निधीनां पतये नमः॥
 प्रसन्नो भव देवेश पुत्रो भव मम प्रियः।

(प्रतिसर्गपर्व ४। १२। ९०—९२)

‘विष्णुस्वरूप परात्मा गणेशको नमस्कार है। चतुर्भुजधारी, रक्तवर्ण, यज्ञमूर्ति, विघ्नहन्ता, जगत्का धारण-पोषण करनेवाले, सभीके आनन्ददाता, निधिपति तथा सिद्धिपति भगवान् गणेश! आपको नमस्कार है। देवेश! आप प्रसन्न हों, मेरे प्रिय पुत्रके रूपमें उत्पन्न हों।’ इसपर गणेशजी पार्वतीजीके तेजोमय शरीरसे उत्पन्न हुए। इन्द्रके साथ सभी देवगण कैलासशिखरपर उनका मङ्गलमय दर्शन करनेके लिये आये। वहाँ सर्वसुखद महोत्सव हो रहा था। इसी समय क्रूरदृष्टि कालात्मा, सूर्यपुत्र शनिदेव मण्डपमें आये। उनके दर्शनमात्रसे वह बालक मस्तकविहीन हो गया। तब गुह्यकोंके निवासस्थान उस कैलासमें महान् हाहाकार मच गया। वह कटा हुआ सिर सूर्यके तुला राशिस्थ होनेपर चन्द्रलोकमें स्थित हो सत्ताईस दिनतक पृथ्वीपर प्रकाशित होता है। सभी देवताओंसे विनिन्दित भयंकर शनिदेवने एक दाँतवाले गजके रँगे हुए मस्तकको काटकर उस बालकके स्कन्धपर जोड़ दिया और ब्रह्माने उसकी माताके द्वारा स्तुति किये जानेपर कर्कटके सिरको गजके ऊपर स्थितकर गजयोनिवाला बना दिया और कर्कटको बिना सिरका कर दिया। इस प्रकार साक्षात् ईश्वरस्वरूप गजानन गणेश उत्पन्न हुए।

सूतजीने कहा—बृहस्पतिसे ऐसा सुनकर भगवान्

गणेशने अपने मुखसे स्कन्ध उत्पन्न किया और वही ईश्वररूप स्कन्ध काशीमें एक दैवज्ञ द्विजके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ और महीतलमें दुंधिराजके नामसे प्रसिद्ध हुआ। फलितज्योतिषके 'जातकाभरण'

नामक ग्रन्थका निर्माण कर वह वेदकी रक्षाके लिये शंकराचार्यके पास आया। वह प्रसन्नात्मा उनका शिष्य होकर गुरुसेवामें तत्पर हो गया।
(अध्याय १२)

अघोरपंथी भैरव तथा बालशर्माकी उत्पत्तिकी कथामें रावण तथा हनुमान्‌जीका चरित्र

सूतजी बोले—शौनक! भगवान् कपाली शिव अपने अंशसे काशीमें अयोनिजरूपसे उत्पन्न हुए। वे कपालमोचनकुण्डसे पृथ्वीपर आकर यतिरूप वेदनिधि भैरव नामसे प्रख्यात हुए और उन्होंने दुष्कर अघोरमार्गका अपने शिष्योंमें प्रवर्तन किया। फिर वे शंकराचार्यके पास आकर उनके शिष्य हो गये। उन्होंने मन्त्रमय डामरतन्त्रका प्रवर्तन किया और कीलित मन्त्रोंके उत्कीलनका मार्ग बतलाया।

बृहस्पतिजीने कहा—देवेन्द्र! मय दानवकी पुत्री मन्दोदरी त्रिपुरके अधिपति मायीकी बहन थी। त्रिपुरके नष्ट होनेपर वह देवी मन्दोदरी सनातन महाविष्णुको गुसभावसे निरन्तर संतुष्ट करती रहती थी। भगवान् विष्णुमें भक्तिभावना करनेसे मन्दोदरीको उत्तम योग प्राप्त हुआ और वह भयंकर विन्ध्याद्रिकी गुफामें विलीन हो गयी। उसकी समाधिमें चारों युग दो सौ बार बीत गये। वैवस्वत मन्वन्तरके बारहवें सत्ययुगमें ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्य हुए, जिनसे विश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सौ वर्षतक विश्रवामुनिने तपस्याकर सुमाली दैत्यकी पुत्री कैकसीके साथ विवाह किया और उससे रावण और कुम्भकर्ण दो राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए। रावण मातृभक्त था और भाई कुम्भकर्ण पितृभक्त। वरकी कामनासे उन दोनोंने हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की। भगवान् परमेष्ठी पितामहने प्रसन्न होकर उन दोनोंको देव और दानवोंसे अजेय होनेका वर दिया। उन दोनोंने वर प्राप्तकर कुद्ध हो श्रेष्ठ

पुष्पकयानको ग्रहणकर देवताओंसे युद्ध किया। उन दोनोंसे पराजित देवताओंने सुखप्रद स्वर्गको छोड़कर पार्थिवार्चनके द्वारा कैलासमें स्थित भगवान् शिवकी ग्यारह वर्षोंतक आराधना की और उनसे वर प्राप्तकर वे सभी निर्भय हो गये।

इधर गौतम-ऋषिके शरीरसे उत्पन्न केशरीकी पत्नी अञ्जनाके गर्भसे हनुमान्‌जीके रूपमें भगवान् शंकरने भी अपने अंशसे अवतार लिया और आकाशमें उगते हुए लाल सूर्यको देख फल समझकर निगल लिया। अन्धकार देखकर इन्द्रने उनकी दुड़ी (हनु)– पर अपने वज्रसे प्रहार किया। इसी बीच रावण भी उनकी पूँछ पकड़कर लटक गया, फिर भी उन्होंने सूर्यको नहीं छोड़ा। रावणसे एक वर्षतक मुष्टियुद्ध होता रहा। अन्तमें थका हुआ रावण रुद्ररूपी हनुमान्‌से भयभीत हो इधर-उधर भागा। इसी समय ऋषि विश्रवा वहाँ आये और वेदमय स्तोत्रोंसे परावाणीद्वारा हनुमान्‌को प्रसन्न किया। प्रसन्न हो रुद्ररूपी हनुमान्‌ने संसारको रुलानेवाले रावणको छोड़ दिया। फिर बलवान् केशरीपुत्र पम्पापुरके तटपर निवास करने लगे और अचलरूपसे स्थित होनेके कारण स्थाणु नामसे प्रसिद्ध हुए। संसारको रुलानेवाले तथा देवताओंको मारनेवाले रावणको मुष्टिकासे हनन करनेके कारण इनका नाम हनुमान् पड़ गया*। हनुमान्‌जीकी तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् ब्रह्माने कहा—‘तपेनिधे रुद्र! आप मेरी बात सुनें। वैवस्वत मन्वन्तर अद्वाईसवें त्रेतायुगके प्रथम चरणमें

* निन्द्रन्तं च सुरान् मुख्यान् रावणं लोकरावणम् ॥ निहन्ति मुष्टिभिर्यः स हनुमानिति विश्रुतः ॥ (प्रतिसर्गपर्व ४। १३। ४४-४५)

साक्षात् भगवान् राम अवतीर्ण होंगे। उनकी भक्ति प्राप्तकर आप कृतकृत्य हो जायेंगे। देवेन्द्र! ऐसा कहकर ब्रह्माजीने भाद्रपद मासके चन्द्रमाके प्रकाशरूपमें उन्हें प्रतिष्ठित किया और इधर मयपुत्री मन्दोदरीका विवाह रावणके साथ करा दिया। वह रावण नैऋत दिशाका दिक्पाल हुआ। भगवान् हरिने रामरूपमें अवतरित होकर रावणको मारा।'

सूतजी बोले—मुने! अनन्तर वे ही हनुमान् पुनः मनुष्य-शरीर धारणकर पृथ्वीपर कदलीवनमें आकर बालशर्मा नामसे प्रसिद्ध हुए और काशी नगरीमें मणिकर्णिकापर रहने लगे। वे शंकराचार्य यतिके शिष्य होकर गुरुसेवामें तत्पर हो गये और उन्होंने तन्त्र-मन्त्रशास्त्रका निर्माण किया।

(अध्याय १३)

रुद्रमाहात्म्य, भवके अंशसे रामानुजाचार्यका आविर्भाव

देवगुरु बृहस्पतिजीने कहा—देवेन्द्र! सृष्टिके प्रारम्भमें विराट् पुरुषकी नाभिसे एक विस्तृत कमल उत्पन्न हुआ। जिससे कमलासन ब्रह्मा उत्पन्न हुए। वे दो भुजा, चार मुख और दो पैरोंवाले थे। उन्हें चिन्ता हुई कि मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ और मेरा उत्पत्तिकर्ता कौन है? इस प्रकार चिन्तित होते ही हृदयस्थ देवताने कहा—‘तुम तप करो।’ यह सुनकर ब्रह्माजीने महान् तप किया। चतुर्भुज, योगगम्य सनातन विष्णुका कमलासन ब्रह्माने हजार वर्षतक समाधिस्थ होकर ध्यान किया। इसी समय नवीन मेघके समान श्यामल, चतुर्भुज भगवान् विष्णु आयुध एवं दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत होकर बालकरूपमें ब्रह्माके सामने प्रकट हुए। समाधिसे जागकर ब्रह्मा उन्हें देखकर चकित हो गये। भगवान् विष्णुने हँसकर कहा—‘वत्स! मैं ही तुम्हारा पिता हूँ।’ ब्रह्मा स्वयंको उनका पिता मानते थे। इस प्रकार दोनोंमें विवाद होने लगा। उसी समय तमोमय रुद्र ज्योतिर्लिङ्गरूपमें प्रकट हुआ। हंसरूपमें ब्रह्मा और वराहरूपमें हरि सौ वर्षतक क्रमशः ऊपर-नीचे आते-जाते रहे, परंतु उसका अन्त न पाकर असफल हो उन दोनोंने लौटकर भगवान् शिवकी स्तुति की। प्रसन्न हो भगवान् भव दर्शन देकर कैलास चले गये और वहाँ समाधिमें योगी रुद्रके दिव्य पाँच युग बीत गये। इसी बीच तारकासुर

नामके भयंकर दानवने हजार वर्ष तपकर ब्रह्मासे वर प्राप्त किया कि ‘भवसे उत्पन्न पुत्रसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी।’ वर प्राप्तकर तारकासुरने देवताओंको जीतकर महेन्द्रका स्थान ग्रहण कर लिया। दुःखी देवगणोंने कैलासमें जाकर रुद्रकी स्तुति की। शिवने कहा—‘वर माँगो।’ उन लोगोंने नतमस्तक हो प्रणामपूर्वक कहा—‘भगवन्! भगवान् ब्रह्माने तारकको यह वर प्रदान किया है कि शिव-शक्तिसे उत्पन्न पुत्र ही तुम्हें मारेगा। इसलिये भगवन्! आप हमलोगोंकी रक्षा करें और विवाह करें। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें दक्षप्रजापतिकी साठ कन्याएँ हुईं। उनमें एक सती नामकी भी कन्या थी। उसने एक वर्षतक आपकी पार्थिव पूजा की। उस सतीको आपने वर प्रदान किया और वह आपकी प्रिया हुई। उसके पिता दक्षने आपका अपमान किया और दक्षसे उत्पन्न शरीरको सतीने यज्ञमें समर्पित कर दिया। उस सतीका दिव्य तेज हिमालयमें प्रविष्ट हुआ। अब वह अपना शरीर छोड़कर हिमालय तथा मेनाकी पुत्री पार्वतीके रूपमें उत्पन्न हुई है। वे गौरी उत्पन्न होते ही नौ वर्षकी हो गयीं। आपकी प्राप्तिके निमित्त उन्होंने सौ वर्षतक जलमें रहकर, सौ वर्ष पञ्चाग्रिका सेवनकर, सौ वर्षतक वायुमात्रका पानकर और सौ वर्षतक बिना साँस लिये आकाश-मण्डल तथा चन्द्रमण्डल आदिमें

रहकर तपस्या भी की है। अतः हे भगवन्! अब आप शिवा—पार्वतीके साथ विवाह करें।'

शिवने कहा—देवगणो! आपकी बात अनुचित प्रतीत होती है, क्योंकि हमसे ज्येष्ठ ज्योतिसे उत्पन्न दस रुद्र अभी अविवाहित हैं, मैं उन सबसे छोटा भव नामक रुद्र हूँ, मैं उनके विवाहसे पूर्व ही कैसे विवाह कर सकता हूँ? दूसरी बात यह है कि वे साक्षात् अव्यक्तरूपा पराम्बा हैं, उनसे सम्पूर्ण चराचर ब्रह्माण्ड परिव्याप्त है। योगीश्वर! मैं मातृरूपा भगवतीका वरण कैसे कर सकता हूँ? अतः आपलोगोंके कल्याणके लिये मैं अपनी शक्ति आपलोगोंको देता हूँ, वह आपलोगोंकी कामना पूर्ण करेगी। अनन्तर भगवान् शंकर अपनी शक्ति अग्निको समर्पित कर स्वयं पुनः समाधिस्थ हो गये। वहिके साथ इन्द्रादि देवगणोंने सत्यलोकमें आकर ब्रह्माको सम्पूर्ण वृत्तान्त सूचित किया। पुनः देवताओंके समुद्योग तथा गिरिजाकी तपस्यासे भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने पार्वतीको पाणिग्रहण करनेका वर प्रदान किया। इसपर भगवती पार्वतीने नमस्कार कर कहा—'देव! मैं पिता-माताकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य करनेवाली हूँ, अतः विवाहके लिये उनकी अनुमति चाहिये।'

भगवान् शंकरने सप्तर्षियोंको बुलाकर सबकी सम्मतिसे हिमवान्‌के पास संदेश भेजा और विधिपूर्वक विवाह भी सम्पन्न हो गया। उस विवाहमें बारातियोंकी

सेवाके लिये पार्वतीने अपनी तपःसिद्धिसे ऋष्टिसिद्धिको उत्पन्न कर यथाविधि सेवा-सत्कार कर सबको संतुष्ट किया। यह देखकर ब्रह्मादि देवगण आश्वर्यमें पड़ गये और उन्होंने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति तथा दैत्योंसे रक्षाकी प्रार्थना भी की। पार्वतीदेवीने प्रसन्न होकर उन्हें अभय-दान दिया। विवाहके पश्चात् भगवान् शिव पार्वतीके साथ कैलास चले आये और हजार वर्षोंतक आनन्दमें निमग्र रहे। काम—प्रद्युम्नकी धृष्टता देखकर भगवान् शंकरने उसे भस्म कर अनङ्गरूपमें कर दिया। उसकी पत्नी रतिकी प्रार्थनापर भगवान्ने कहा—'तुम प्राणियोंके हृदयमें निवास करोगी। यह स्वारोचिष मन्वन्तर है। वैवस्वत मन्वन्तरके अद्वाईसवें द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी। ऐसा कहकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये।' (बादमें कुमारस्वामी स्कन्दकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने तारकासुरका वधकर देवताओंको शान्त एवं प्रसन्न किया तथा सम्पूर्ण संसारके साथ स्वर्गको सुस्थिर कर दिया।)

सूतजीने कहा—मुने! देवगुरु बृहस्पतिसे यह सुनकर भगवान् भवने अपने मुखसे अपने उत्तम अंशको उत्पन्न कर गोदावरीके किनारे आचार्यशर्माके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया। वे आचार्य रामानुजके नामसे विख्यात हुए और रामशर्माके अनुज हुए।

(अध्याय १४)

वसुदेवताओंके अंशसे कुबेर आदिकी उत्पत्ति, रामायणकी संक्षिप्त कथा एवं त्रिलोचन भक्तका वृत्तान्त

सूतजी बोले—भृगुश्रेष्ठ शौनक! बृहस्पतिने देवराज इन्द्रसे वसुदेवताओंका जो माहात्म्य कहा था, उसे कहता हूँ, आप सुनें। वैवस्वत मन्वन्तरके आदि सत्ययुगमें विश्रवामुनिकी इल्लला नामकी पत्नी थी। वह सती पार्थिवार्चनसे शिवकी आराधना

करती थी। इसी समय दीक्षितकुलमें उत्पन्न यक्षशर्मा नामक एक द्विज यक्षिणी-पूजनमें रत था। वह धूर्त अपने मित्रकी पुत्रवधूके साथ दुःसम्बन्ध रखनेके कारण कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो गया। उस कुष्ठी द्विजको त्यागकर मन्त्रवत्सला यक्षिणीदेवी

कैलासपर शिवलोकको चली गयी। क्षुधासे व्याकुल यक्षशर्मा उत्तम शिवरात्रिके दिन शिवके दर्शन, पूजन और उपदेशसे संतुष्ट हुआ। प्रातःकाल होनेपर उस द्विजने पारण किया और वह कुष्ठी उसी शिवमन्दिरमें मर गया। उस पुण्यके प्रभावसे वह कर्णाटकदेशमें राजा हुआ। राजराजके नामसे प्रसिद्ध वह मण्डलीक राजा हुआ। प्रतिदिन उस महाबली राजाने शिवार्चन आदि मङ्गलकार्य ब्राह्मणोंसे कराये और सौ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य किया। राजाने अपने श्रेष्ठ पुत्रको राज्याधिकार देकर काशी आकर भगवान् शिवको संतुष्ट किया। तीन वर्ष बीतनेपर ज्योतिर्लिङ्गसे महादेव प्रकट हुए। वे शिव राजराजेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् शिवद्वारा पवित्र वह राजा प्राणोंका परित्याग कर इल्ललाके गर्भमें आकर घोर अन्धकारसे आच्छन्न रात्रिकी कुत्सित वेलामें पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। अतः वह कुबेर नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। उस बालकने तपके द्वारा परमेष्ठी (ब्रह्मा)-को प्रसन्न किया। भगवान् ब्रह्माने सुवर्णमय रमणीय सुन्दर लङ्घापुरीका निर्माण कराकर उसे दे दिया। कुबेर तीन करोड़ यक्षोंका स्वामी यक्षराट्के नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके आदेशमें निवास करनेवाले अनेक रूपवाले किन्नर थे। गुह्यकोंके स्वामी स्वयं भगवान् कुबेर थे। रावणको जब यह पता लगा कि लङ्घा आरम्भसे राक्षसोंकी पुरी रही है और कुबेरने उसपर बलात् अधिकार जमाकर अपने सेवक यक्षोंको बसाया है तो उन्हें वहाँसे मारकर भगा दिया और स्वयं अपनी राजधानी बनाकर वहाँका राजा हो गया। इससे दुःखी हो कुबेरने दुःखनाशक शंकरकी शरण ली। भगवान् हरने कुबेरके साथ सुन्दर मैत्री कर ली और विश्वकर्माने अलका नामकी पुरीकी रचना की। सज्जनोंको

मङ्गल देनेवाले कुबेरने उसे सहर्ष प्राप्त किया। यह सुनकर संसारको रुलानेवाला राक्षसराज रावण कैलास पर्वतपर आकर भगवान् शंकरकी तपस्या करने लगा, तब अहंकारदेवता भगवान् रुद्र प्रसन्न होकर जैसे कुबेरके मित्र थे, वैसे ही रावणके भी मित्र हो गये और एक-एक सिरसे करोड़ों सिर उत्पन्न होनेका उसे वरदान दे दिया। देवाधिदेवके प्रसादसे उसका शरीर वज्र हो गया। इस प्रकार वह रावण वरदानके कारण भयंकर बली और उद्दण्ड हो गया। उस राक्षसद्वारा सम्पूर्ण विश्व दुःखसे संतुष्ट हो गया। यज्ञके अभावमें सभी देवता, प्राणी भूखे रहने लगे। ब्रह्माको आगेकर क्षीरसागरमें जाकर दुःखी सभी देवगणोंने एकत्र हो परमेश्वरको स्तुतियोंसे संतुष्ट किया। तब सगुण-निर्गुण हरने प्रसन्न होकर देवताओंसे कहा—‘देवगणो! मेरी आज्ञासे आपलोग सनातनी विष्णुमायाकी शरणमें जाकर जगत्के कल्याणके लिये प्रार्थना करें।’

यह सुनकर देवताओंने परा प्रकृतिको स्तुतियोंसे संतुष्ट किया। ब्रह्म-ज्योतिर्मयी शिवादेवीने प्रसन्न होकर अपने शरीरको दो रूपोंमें विभक्त किया और सीता-रामके रूपमें पृथ्वीपर आयीं। परा प्रकृति सीता मङ्गलदायिनी हुई। जगत्-कारणभूता वे सीता भूमिसे उत्पन्न हुई, अयोनिजा होनेपर भी वे सबकी माता हैं। सहस्र ‘राम’ नामके जपके समान सीताके एक बार नाम लेनेका फल जानना चाहिये*। परात्पर भगवान् रामने रावण आदि राक्षसोंको मारा तथा अपनी पवित्र कीर्तिको लोकमें प्रतिष्ठित कर पुष्पक विमान कुबेरको समर्पित कर दिया। ग्यारह हजार वर्षतक राज्यकर वे परम धामको चले गये।

सूतजीने कहा—शौनक! यह सुनकर प्रथम

* सहस्रं रामरामेति जपितं येन धीमता। सीतानामा च तस्यैव फलं ज्ञेयं च तत्समम्॥ (प्रतिसर्गपर्व ४। १५। ५७)

वसुदेवता कुबेर अपने अंशसे पृथ्वीपर धरदत्त वैश्यके पुत्र होकर त्रिलोचन नामसे मथुरामें उत्पन्न हुए। सभी द्रव्योंको हर्षपूर्वक तीर्थोंमें खर्चकर काशीपुरीमें आकर वैष्णव रामानन्दको नमस्कारकर त्रिलोचन उनके शिष्य हो गये। गुरुकी आज्ञासे वे पुनः अपने घरपर आकर रामभक्तिपरायण होकर साधु-सेवामें तत्पर हो गये। भगवान् राम उनके घरमें सभी अभीष्ट फलको देनेवाले दासके रूपमें तेरह मासतक स्थित रहे। वे उनके घरमें मणि, रल, विविध वस्त्र, विविध व्यञ्जन देते थे, जिसे भक्त त्रिलोचन स्वयं ब्राह्मणों, वैष्णवों और यतियोंको

भी सभी मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते थे। भगवान् श्रीरामने त्रिलोचनसे कहा—‘वत्स! मैं राम हूँ दास नहीं। मैंने तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न होकर तुम्हारे घरमें दासके रूपमें निवास किया है। हे वैश्य! आजसे मैं तुम्हारे हृदयमें निवास करूँगा।’ यह कहकर वे अन्तर्हित हो गये। यह सुनकर वह वैश्य बहुत प्रसन्न हुआ। उसने स्त्री-पुत्र सभीका परित्याग कर दिया और वह परम वैराग्यके साथ श्रीरामके ध्यानमें तत्पर रहकर सरयूतटपर निवास करने लगा*।

(अध्याय १५)

रामानन्दजीके शिष्य नामदेव, भक्त रंकण (राँका) एवं यंकणा (बाँका)-का चरित्र, वरुणदेव और पराम्बाकी महिमा

देवगुरु बृहस्पतिने कहा—देवेन्द्र! संसारमें जो जलको एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचाता है, वही आपव कहलाता है। उसीका दूसरा नाम वरुण है। वे जलों तथा समुद्रोंके अधिपति हैं। दैत्योंके बन्धनके लिये ब्रह्माने उन्हें पाश प्रदान किया। पाश प्राप्त होनेपर महात्मा वरुणका नाम पाशी हो गया।

वे वरुण पहले शक्तिके पूजक एक ब्राह्मण थे और उनका नाम था आपव। वे भद्रकालीके प्रिय भक्त थे, प्रतिदिन उनके पूजनमें तत्पर रहते थे। अनेक प्रकारके रक्त पुष्पोंकी मालाओंको बनाकर, रक्त चन्दनसे संयुक्तकर मन्त्रोद्धारा भद्रकालीको समर्पित करते थे। नवार्णजपमें तत्पर हो धूप-दीप-नैवेद्य, ताम्बूल, ऋतुफल आदिसे सनातनी महालक्ष्मी भद्रकालीकी पूजा करते रहते। तिल, शर्करायुक्त मधुसे हवन भी करते थे। वे दुर्गासप्तशतीके

मध्यम चरित्रिका पाठकर नवार्णमन्त्र-जपमें तत्पर हो तीन वर्षतक पूजामें संलग्न रहे। अनन्तर सर्वमङ्गला भगवतीदेवी प्रसन्न हुई और बोलीं—‘द्विजसत्तम! तुम वर माँगो।’ देवीके इस प्रिय वचनको सुनकर नम्रधी द्विज आपवने उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर उन भद्रकाली सनातनीदेवीकी अनेक प्रकारसे स्तुति की।

फिर देवी भद्रकालीने प्रसन्न होकर आपवसे कहा—द्विज! प्रलयके आने तथा स्थावर-जंगमके विनष्ट हो जानेपर एकार्णवमें मेरी कृपासे तुम सुखी होओगे। यह कहकर वे देवी अन्तर्लीन हो गयीं और वे ब्राह्मण वरुणदेवके रूपमें विशेष समादृत हुए।

सूतजी बोले—मुने! देवगुरुके इन वाक्योंको सुनकर द्वितीय वसु भगवान् वरुणने अपने मुखसे पृथ्वीपर एक तेज उत्पन्न किया। वह तेज देहलीमें

* रामानन्दजीकी शिष्य-परम्पराके भक्तों—त्रिलोचन वैश्य, नामदेव, रंकण-यंकणा (राँका-बाँका), कबीर, नरसी मेहता तथा सधन कसाई आदिका उदात्त चरित्र एवं आचार्योंके महनीय चरित्र गीताप्रेससे प्रकाशित ‘भक्तचरिताङ्क’में विस्तारसे दिये गये हैं। उससे भी लाभ उठाना चाहिये।

धर्मभक्तके घर उत्पन्न हुआ। उसकी विधवा कन्याने हरिके उस तेजको धारण किया। यह जानकर धर्मभक्त पुत्रकी उत्पत्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसका नाम नामदेव हुआ। वह सांख्ययोगपरायण था। चराचर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विष्णुमय है, यह जानकर और देखकर वे काशीमें हरिप्रिय रामानन्दके पास आये और उनकी शिष्यता ग्रहण कर वहीं निवास किये। उस समय म्लेच्छपति सिकन्दरका देहलीमें राज्य था। उसने नामदेवको बुलाकर और भलीभाँति उनकी परीक्षाकर प्रसन्न हो पचास लाख मुद्राएँ दीं। नामदेवने उस द्रव्यसे काशीमें श्रेष्ठ शुभ्र शिलामय घाटका निर्माण कराया और अपने योगबलसे मेरे हुए दस ब्राह्मणों, पाँच राजाओं, पाँच वैश्यों तथा सौ गौओंको पुनः जीवित किया।

देवगुरु बृहस्पतिने कहा—देवेन्द्र! पूर्वकालमें विश्वानर नामका एक ब्राह्मण था। उसके पुत्र नहीं था। पुत्रकी प्राप्तिके लिये उसने आराधनाद्वारा ब्रह्माको संतुष्ट किया। एक वर्षमें ही भगवान् परमेष्ठी पितामहने संतुष्ट होकर वर माँगनेको कहा। इसपर उसने कहा—‘भगवन्! आपको नमस्कार है। प्रकृतिसे भी जो परे है, वह मेरा पुत्र हो।’

यह सुनकर आश्चर्यचकित हो ब्रह्माने उस ब्राह्मणसे कहा—‘हे ब्राह्मण! वह तो नित्य सनातन पुरुष है, वह तुम्हारा पुत्र कैसे हो सकता है? इसलिये विश्वानर मुने! मायाभूत हरि स्वयं जनार्दन मेरे वरदानसे तुम्हारे पुत्ररूपमें आयेंगे।’

यह कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये और विश्वानरका पावक नामसे पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पावक आठ वसुओंका पति हुआ और वैश्वानर नामसे प्रसिद्ध हुआ तथा स्वाहादेवीका स्वामी हुआ। यह वैश्वानर पुराकल्पमें अनल था और निषधका बुद्धिमान् ब्राह्मण था।

सूतजी बोले—मुने! बृहस्पतिके इन वचनोंको सुनकर भगवान् पावकने अपने मुखसे अपने अंशको उत्पन्न किया। वही पावकांश वसु होकर लक्ष्मीदत्तका पुत्र रंकण*। (राँका) नामसे प्रसिद्ध हुआ। कांचनपुर नगरमें वैश्यकुलमें उसकी उत्पत्ति हुई। उसकी पतिव्रता पली यंकणा (बाँका) थी। वे दोनों धर्मकार्यमें अपने सभी द्रव्योंको खर्चकर काष्ठ बेचकर उससे उपार्जित धनद्वारा भगवान्की पूजा करके प्रभुके प्रसादसे अपना जीवन-निर्वाह किया करते थे। महात्मा रंकणके गुरु रामानन्द थे। (अध्याय १६)

संत कबीर, भक्त नरसी मेहता, पीपा, नानक तथा साधु नित्यानन्दजीके पूर्वजन्मोंकी कथा

देवगुरु बृहस्पतिजी बोले—देवेन्द्र! पूर्वकालमें दितिके पुत्र हिरण्यकशिपु एवं हिरण्यक्षका भगवान् विष्णुने क्रमशः नृसिंह एवं वराहरूप धारणकर वध किया था। दुःखी हो दितिने महर्षि कश्यपकी आराधना की। बारह वर्ष बाद कश्यपजीने उससे कहा—‘वरानने! वर माँगो।’ हर्षित होकर दितिने कहा—‘प्रभो! मेरी सपनी अदिति बारह पुत्रोंसे युक्त है।

मेरे दो ही पुत्र थे। वे भी अदितिपुत्र देवरक्षक विष्णुके द्वारा विनष्ट कर दिये गये। इस कारण मैं बहुत दुःखी हूँ। अतः मुझे द्वादशादित्य-विनाशक पुत्र प्रदान करें।’ यह भयंकर वाणी सुनकर कश्यपने कहा—‘ब्रह्माने संसारमें दो मार्ग बनाये—धर्ममार्ग और अधर्ममार्ग। जिन्हें क्रमशः परमार्ग और अपरमार्ग भी कहा गया है। धर्मका पक्ष लेनेवाले मनुष्य ब्रह्माके

* कल्याणके ‘भक्तचरिताङ्क’में यह कथा कुछ अन्तरसे आयी है। धन-सम्पत्ति साधना और भक्तिभावनामें कितनी बाधक है, यह इनके चरित्रसे स्पष्ट हो जाता है।

प्रिय हैं और अधर्मका पक्ष लेनेवाले उस धीमानके वैरी हैं। अतः अधर्मके पक्षपाती होनेके कारण ही तुम्हारे पुत्रोंकी मृत्यु हुई। इसलिये धर्मप्रिये ! तुम अपने विचारको शुद्ध करो। तुम्हें महाबलशाली, चिरञ्जीवी, बुद्धिमान् पुत्र होगा।' यह सुनकर दितिदेवी कश्यपके द्वारा उत्तम गर्भ धारण कर व्रत-आचारपूर्वक जीवन-यापन करने लगी। उसके गर्भ धारण करनेके कारण भयभीत देवराज इन्द्र देवगुरुकी आज्ञासे दितिकी व्रत-परिचर्यामें लग गये। गर्भके सात मास बीत जानेपर शक्रकी मायासे विमोहित वह दितिदेवी अपने घरमें अपवित्ररूपसे सो गयी। उसी समय अङ्गुष्ठमात्रका रूप बनाकर वज्रके साथ भगवान् महेन्द्रने दितिके उदरमें प्रविष्ट हो उस गर्भके पहले सात और फिर एक-एकके सात-सात खण्ड-खण्ड कर डाले। महेन्द्रने उन लोगोंको नम्रीभूत देखकर उनके साथ गर्भसे बाहर आकर दितिको प्रणाम किया। दितिने प्रसन्न होकर महेन्द्रको उन देवताओंको दे दिया। इस प्रकार वे उनचास मरुदण्ण शक्रके सेवक हो गये।

वे मरुत् पूर्व भवमें लोकविश्रुत अनिल नामक वेदज्ञ ब्राह्मण हुए।

उस विप्रने पावकको स्तुतियोंद्वारा संतुष्ट किया। वह अपने सिरको काट-काटकर अग्निको चढ़ाता था और पुनः उसका सिर उत्पन्न हो जाता था। इस प्रकार आराधना करनेपर धनञ्जयदेव प्रसन्न हुए और बोले कि तुम उनचास मरुदण्णोंके रूपमें हो जाओगे, तब मैं तुम्हारा मित्र होकर तुम्हारी कामनाको पूर्ण करूँगा। जैसे भगवान् कुबेर छब्बीस वरुणदेवोंके प्रिय हैं, वैसे उनचास रूपधारी तुम्हारा मैं मित्र होऊँगा। इस प्रकार दितिके उदरमें पावकके प्रिय मित्रके रूपमें वायु नामसे उत्पन्न हुए।

सूतजीने कहा—मुने ! देवगुरु बृहस्पतिसे इतनी कथा सुननेके बाद वही वायु वैश्यजातीय धान्यपालके

घरमें मूलगण्डान्तमें उत्पन्न हुआ। पिता और माताने काशीके विन्ध्यवनमें उसे छोड़ दिया। वहाँपर एक निःसंतान अलिक नामका वस्त्रनिर्माता (जुलाहा) व्यक्ति आया और उस बालकको लेकर अपने घर आ गया। वह सुन्दर मुखवाला बालक 'कबीर' नामसे प्रसिद्ध हुआ। गोदुग्ध-पान करनेवाले उस बालकने सात वर्षकी अवस्थामें रामानन्दको गुरु माना और वह भगवान् श्रीरामके ध्यानमें परायण हो गया। वह अपने हाथसे भोजन निर्माणकर भगवान् विष्णुको समर्पित करता था। उसका प्रिय करनेके लिये भगवान् साक्षात् उसकी इच्छाएँ पूरी करने लगे।

देवगुरु बृहस्पतिजी बोले—देवेन्द्र ! प्राचीन कालमें उत्तानपाद नामके एक क्षत्रिय राजा थे। उनका पुत्र ध्रुव नामसे विख्यात हुआ। पिता-मातासे परित्यक्त उस पाँच वर्षके बालक ध्रुवने देवर्षि नारदजीके उपदेशसे गोवर्धन पर्वतपर आकर महान् व्रत धारणकर छः महीनेतक भगवान्का ध्यान किया। भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर आकाशमण्डलमें उसे नभोमय स्थान दिया।

यह ध्रुव पूर्व भवमें माधव नामक एक ब्राह्मण था, साठ वर्षोंतक उसने प्रातःकाल तीर्थोंमें स्नान किया था। तीर्थ-सेवनके पुण्य-प्रतापसे वह भगवान् माधवका प्रिय पात्र बन गया। वह माधव भगवान्की भक्ति एवं तपस्याके फलसे अगले जन्ममें सुनीतिके गर्भसे ध्रुवरूपमें उत्पन्न हुआ। छत्तीस वर्षतक राज्यकर ध्रुव नभोमण्डलमें स्थित हो गया।

सूतजीने कहा—मुने ! बृहस्पतिकी बात सुनकर पाँचवाँ वसु वह ध्रुव अपने अंशसे गुजरात प्रान्तमें भक्त नरश्री (नरसी मेहता)-के रूपमें उत्पन्न हुआ। भगवान् शंकरके अनुग्रहसे इन्होंने वृद्धावनमें भगवान्की दिव्य रासलीलाओंका दर्शन किया था। इनके पुत्री-पुत्रके विवाहके समय भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण

यादवोंके साथ आये और उनकी इच्छाओंको पूरा किया। परम वैष्णव भक्तराट् नरश्री काशीपुरीमें आकर रामानन्दके शिष्य हो गये।

बृहस्पतिजी बोले—देवेन्द्र! किसी समय गङ्गाके तटपर पतिव्रता अनसूयाके साथ भगवान् अत्रि आकर ध्यानमें समाधिस्थ हो गये। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेशने आकर कहा—‘वर माँगो।’ अत्रिमुनि परमात्माके ध्यानमें लीन थे। अतः कुछ भी नहीं बोले। वे तीनों उनके भावको समझकर उनकी पत्नी अनसूयादेवीके पास गये। पतिव्रताने देवोंके अन्यथा भावको समझकर पुत्ररूप होनेका शाप दे दिया। फलतः अत्रिके पुत्ररूपमें ब्रह्मा चन्द्रमा, शंकर दुर्वासा और विष्णु दत्तात्रेयके रूपमें बालक हो गये। बादमें ये ही क्रमशः अर्थात् चन्द्रमा सोम नामक छठे वसु, रुद्रांश दुर्वासा सातवें प्रत्यूष नामक वसु और विष्णु-अंश दत्तात्रेय प्रभास नामक आठवें वसु हुए।

सूतजीने कहा—मुने! बृहस्पतिकी यह बात

सुनकर वे तीनों वसु कलिकी शुद्धिके लिये अपने अंशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। छठे वसु अर्थात् भगवान् अत्रिपुत्र सोम दक्षिणमें वैश्यवंशमें राजा सुदेवके घर पीपा नामक पुत्र हुए। जैसे राजाने उस नगरमें राज्य किया था, वैसे ही इन्होंने भी राज्य किया और वे रामानन्दके शिष्य हो द्वारकामें चले आये। भगवान् कृष्णद्वारा प्रेततत्त्वविनाशिनी स्वर्णमयी हरिकी मुद्राको प्राप्तकर उसे उसने वैष्णवोंको प्रदान कर दिया।

अत्रिपुत्र रुद्रके अंश सप्तम वसु अर्थात् प्रत्यूष पाञ्चाल देशमें वैश्यजातिमें मार्गपालके पुत्र हो नानक नामसे प्रसिद्ध हुए। रामानन्दके पास आकर नानक उनके शिष्य हो गये। उन्होंने म्लेच्छोंको वशमें करके सूक्ष्ममार्ग दिखाया।

अष्टम वसु प्रभास शान्तिपुरमें ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न हुए। वे शुक्लदत्तके पुत्र नित्यानन्दके नामसे प्रसिद्ध हुए। शौनक! इस प्रकार मैंने आपको वसुदेवताओंका माहात्म्य बतलाया। (अध्याय १७)

अश्विनीकुमारोंके अंशसे सधन (सदन कसाई) और रैदासकी उत्पत्ति-कथा

सूतजीने कहा—मुने! देवगुरु बृहस्पतिने प्रयागमें समागत महेन्द्र आदि देवताओंसे द्वादशादित्यों, रुद्रों तथा अष्ट वसु देवताओंका माहात्म्य बतलाया और फिर वे अश्विनीकुमारोंकी ओर देखकर उनकी गाथाका इस प्रकार वर्णन करने लगे।

भगवान् विवस्वान्‌को संज्ञासे दिव्य तेजस्वी वैवस्वत मनु, यम और यमुना तीन संतानें उत्पन्न हुईं। संज्ञा तेजःस्वरूप अपने पतिको जानकर अपनी ही छाया उत्पन्न कर तपस्या करने चली गयी। सावर्णि मनु, शनि और तपती—ये छायासे उत्पन्न हुए। भगवान् सूर्यने छायाद्वारा संतानोंमें असमान व्यवहार देखकर उसे माया-स्वरूपा नारी मानकर कुद्ध हो भस्म कर दिया। विवस्वान्‌को

क्रोधयुक्त समझकर सावर्णिमनु और शनि सूर्यके प्रति कुद्ध हो युद्ध करने लगे। उसी समय वे सूर्यके द्वारा भस्मभूत होने लगे। फिर वे दोनों हिमालय पर्वतपर आकर परम तप करने लगे। तीन वर्ष तप करनेपर भक्तवत्सला महाकालीने प्रसन्न हो उन्हें वर दिया। वर प्राप्तकर पुनः वे दोनों भगवान् सूर्यसे युद्ध करने आये। तपके द्वारा प्रभावशाली सूर्य उनसे भयभीत होकर वहाँसे चले गये। रमणीय कुरुखण्डमें वडवा (अश्वा) रूपको धारणकर उनकी प्रिया संज्ञा सूर्यको प्राप्त करनेके लिये तपस्यामें संलग्न थी। भगवान् सूर्य उसे ढूँढते हुए वहाँ पहुँचे। उन्होंने संज्ञाको अश्विनीरूपमें देखकर स्वयं भी अश्वका रूप बना

लिया। पाँच वर्षतक सूर्य अश्वरूपमें वडवा (संज्ञा) - के साथ रहे। तदनन्तर वडवासे पराक्रमी एवं दिव्य स्वरूपवाले दो पुत्र (अश्विनीकुमार) उत्पन्न हुए। वे पिताके दुःखको देखकर सूर्यमण्डलमें स्थित हो गये। वडवापुत्र अश्विनीकुमार सावर्णि और शनिको जीतकर उनको बाँध करके पिताके पास ले आये। भगवान् सूर्यने शृङ्खलाबद्ध शत्रुओंको आया देख उन्हें लौह-दण्डसे मारा, जिससे वे पंगु हो गये। भगवान् सूर्यने प्रसन्नतापूर्वक वडवापुत्र अश्विनीकुमारोंसे कहा—‘जिस प्रकार जीव और ईश तथा नर और नारायण दो नाम होते हुए भी एक हैं और परस्पर मित्र हैं, उसी प्रकार एक ही नाम नासत्यसे आपलोग प्रसिद्ध होंगे। सोमकी शक्ति इडादेवी तुम्हारी ज्येष्ठपत्नी होगी और सूर्यकी शक्ति पिंगला लघुपत्नी होगी। तुम दोनोंमेंसे एक इडापति होगा और दूसरा पिंगलापति होगा। मनुष्यकी राशिसे बारहवें स्थानपर यदि शनैश्चरकी क्रूर दृष्टि पड़ती हो तो इसकी शान्तिके लिये इडापतिकी आराधना लाभदायक होगी और राशिसे दूसरे स्थानपर स्थित सावर्णि भ्रमकारक होगा, इसके लिये पिंगलापतिकी आराधना शान्तिकर होगी। जन्म-राशिमें स्थित देवी तपन्ती (तपती) तापकारिणी होगी, तब इडा तथा पिंगला शान्ति करनेवाली होंगी।’

इन वचनोंको सुनकर अश्विनीकुमार देववैद्य

हो गये। सावर्णि एवं शनि दूसरे अंशोंसे राहु और केतु हो गये। इनसे सूर्य डरकर भागे थे, अब भी ये ग्रहण-रूपमें उन्हें पीड़ा देते रहते हैं। इसीलिये इन सबके परिहार एवं शान्तिके लिये अश्विनीकुमारोंका आविर्भाव हुआ था। अश्विनीकुमारोंकी आराधनासे इनकी शान्ति होती है।

सूतजी बोले—शौनक! ! देवगुरु बृहस्पतिद्वारा यह कथा सुनकर देवत्रेष्ठ वे अश्विनीकुमार प्रसन्न हो गये और अपने अंशसे महीतलमें शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुए। इडापति अज (बकरी)-को मारनेवाले चाण्डालके घरमें उत्पन्न हुए। वे सधन (सदन कसाई*) नामसे विख्यात होकर पितृ-मातृपरायण हुए। वे शालग्रामशिलासे तौलकर मांस बेचते थे। फिर वे कबीरके समीप आकर उनके शिष्य होकर निवास करने लगे। पूर्वमें वे सधन सत्यनिधि नामक एक ब्राह्मण थे, किंतु उन्होंने भयभीत गौको चाण्डालको दिखाया। फलतः राजाके दरबारमें सधनके हाथ काट दिये गये।

पिंगलापति चर्मकारके घर उत्पन्न हुए। वे मानदासके पुत्र रैदासके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे काशीपुरी जाकर श्रीरामपरायण कबीरको वाद-विवादमें जीतकर शंकराचार्यके पास आये और उनसे पराजित होकर रैदास रामानन्दके पास आये तथा उनकी शिष्यता स्वीकार कर ली।

(अध्याय १८)

यज्ञांश चैतन्यमहाप्रभुका चरित्र एवं अन्य आचार्योंका भी उनके भक्ति-भावसे प्रभावित होना

सूतजीने कहा—मुने! इस प्रकार देवगुरु बृहस्पति देवताओंके उत्तम माहात्म्यको कहकर अपने मुखसे अपना अंश उत्पन्नकर ब्रह्मयोनिमें आविर्भूत हुए। इष्टिका नगरीमें वे गुरुदत्तके पुत्र

हुए उनका नाम रोपण हुआ। वे ब्रह्मार्गप्रदर्शक थे। उन्होंने सूतसे गूँथी गयी माला धारण करना, जल-निर्मित तिलक लगाना और वासुदेवके मन्त्रका जप करना आदिका जन-जनमें प्रचार

* विविध भक्तमालोंमें सदन कसाईकी कथा कुछ अन्तरसे प्राप्त होती है। कल्याणके ‘भक्तचरिताङ्क’ में भी इनका चरित्र अङ्कित है।

किया। वे कृष्णचैतन्यके पास आये और उनकी आज्ञासे उनका कम्बल ग्रहणकर अपनी नगरीमें आकर कृष्णके ध्यानमें रत हो गये।

हे मुने! अब आप भगवान् विष्णुका चरित्र सुनें, जिस चरित्रके सुननेसे घोर कलियुगमें भी भय नहीं होता, जब यज्ञांश कृष्णचैतन्यकी अवस्था पाँच वर्षकी हुई, उन दिनों बंगाल प्रान्तमें महात्मा ईश्वरपुरीका विशेष प्रभाव था। शारदाकी उपासनासे उनको विशेष सिद्धि प्राप्त थी, जिससे उनके मनमें अहंकार हो गया था। एक बार वे घूमते-फिरते शान्तिपुरमें आये तथा गङ्गाके तटपर रमणीय दिव्य स्तवकी रचना कर उसका पाठ करने लगे। उसी समय उधरसे चैतन्य महाप्रभु आ गये और उन्होंने स्तुति करते हुए महात्मा ईश्वरपुरीसे कहा—‘महात्मन्! आपकी रचना कुछ दोषयुक्त प्रतीत होती है।’ यह सुनकर वे विद्वान् ईश्वरपुरी आश्वर्यचकित हो गये। सर्वमङ्गला शारदाने अपने आत्मीयजन ईश्वरपुरीको लज्जित देखकर हँसते हुए कहा—‘यह साक्षात् यज्ञांश हरि कृष्णचैतन्य हैं।’ यह सुनकर ईश्वरपुरी उनके शिष्य होकर कृष्णमन्त्रके उपासक बन गये। वे वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हुए और कृष्णचैतन्यके सेवक हो गये।

मुने! श्रीधर नामक एक शिवपूजक ब्राह्मण थे। पत्तननगरके राजाने उनसे श्रीमद्भागवत-सासाहकी कथा सुनी और उन्हें बहुत धन दिया। श्रीधर धन लेकर राजाके यहाँसे चलकर अपने ससुराल आये। वहाँ एक मासतक निवास करके स्त्रीके साथ पुनः घरकी ओर चल पड़े। उनके साथ-साथ सात चोर मैत्रीके विश्वासके लिये भगवान् रामकी शपथ लेकर (किंतु बुरी नीयतसे) चलने लगे। उन चोरोंने रास्तेमें एक वन मिलनेपर उसके अन्तिम छोरपर श्रीधरको

मार डाला और उनकी पत्नी एवं धनसहित बैलगाड़ीको लेकर भागने लगे। उनकी पत्नी बार-बार पीछे देखने लगी। चोरोंने कहा कि अब उधर क्या देख रही हो, तुम्हारा पति तो मर गया है। इसपर विप्रपत्नीने कहा कि ‘मैं उन भगवान् रामको देख रही हूँ, जिनकी तुम लोगोंने शपथ ली थी।’ इसपर सच्चिदानन्दविग्रह भगवान् श्रीराम प्रकट हो गये और उन्होंने उन सातों चोरोंको मार डाला तथा उस ब्राह्मणको जीवित कर वृन्दावनमें भेज दिया। उस दिनसे वे ब्राह्मण श्रीधर वैष्णव हो गये। यज्ञांश श्रीकृष्णचैतन्यके सातवें वर्षमें उन्होंने शान्तिपुरीमें चैतन्यदेवके पास जाकर ब्रह्मज्ञानको प्राप्त किया और उनके शिष्य हो गये। फिर उन्होंने श्रीमद्भागवतकी टीका की।

सूतजीने पुनः कहा—शौनक! काशीमें शंकरकी पूजामें तत्पर रामशर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। शिवरात्रिके समय उन्होंने अविमुक्तेश्वर स्थानमें एकाकी जागते हुए ध्यानपूर्वक शिवपञ्चाक्षरका जप किया। लोककल्याणकारी भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उस द्विजश्रेष्ठसे वर माँगनेको कहा। रामशर्मने भगवान् शिवको प्रणामकर कहा—‘प्रभो! आप जिसके ध्यानमें समाधिस्थ रहते हैं, वे देवता मेरे हृदयमें निवास करें।’ यह कहनेपर भगवान् महेश्वरने हँसते हुए कहा—‘मैं भगवान् राम-लक्ष्मणका तथा बलभद्रजीका सदा ही ध्यान-पूजन करता रहता हूँ, उनको प्राप्त कर तुम भी सुखी होओ।’ यह कहकर भगवान् शिव अन्तर्हित हो गये। अनन्तर रामशर्मा भगवान् रामके उपासक बन गये और जब कृष्णचैतन्य बारह वर्ष हो गये, तब उनके पास आकर शिष्य होकर उनके पूजक हो गये। इन्होंने कृष्णचैतन्यके आदेशपर अध्यात्मरामायणकी* रचना की।

* यद्यपि यहाँ अध्यात्मरामायणका रचयिता कोई रामशर्मा नामका व्यक्ति बताया गया है, किंतु प्रायः सभी विद्वान् इस ग्रन्थको व्यासदेवकी रचना मानते हैं। आनन्दरामायणमें भी इस ग्रन्थकी प्रशंसा उपलब्ध है।

मुने! जीवानन्द रूपानन्दके साथ चैतन्यमहाप्रभुके चरित्रको सुनकर शान्तिपुरीमें आया। सोलह वर्षवाले कृष्ण-चैतन्यको उन दोनोंने नमस्कार कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। जीवानन्द (जीवगोस्वामी)-ने षट्संदर्भ ग्रन्थकी रचना की। भक्तिमार्गमें अधिक निष्ठा होनेसे वे दोनों सर्वपूज्य हो गये। उनकी आज्ञासे कृष्णचैतन्यकी पूजा करते हुए उन्होंने वहाँ निवास किया। महामुनि रूपानन्दने (रूपगोस्वामी) गुरु चैतन्यमहाप्रभुकी आज्ञा मानकर दस हजार श्लोकवाले पुराणाङ्गभूत कृष्णखण्डकी रचना की। गुरुसेवामें तत्पर राधाकृष्णका पूजक होकर उन्होंने भी वहीं निवास किया।

कुछ समय बाद विष्णुस्वामी भी रमणीय शान्तिपुरीमें आये। उन्नीस वर्षकी अवस्थावाले कृष्णचैतन्यको नमस्कारकर उस ब्राह्मणने कहा—‘इस ब्रह्माण्डमें सभी देवताओंके पूज्य कौन देवता हैं?’ यह सुनकर महाप्रभुने कहा—‘भक्तोंपर

अनुग्रह करनेवाले महादेव सभीके पूज्य हैं। विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा आदि देवता भी सदा उनकी पूजा करते हैं। जो विष्णुभक्त शंकरार्चनमें तत्पर रहते हैं, वे शिवके प्रसादसे उत्तम वैष्णवी भक्ति प्राप्त करते हैं। वैष्णव पुरुष होकर जो लोककल्याणकारी शंकरकी पूजा नहीं करता वह सच्चा वैष्णव नहीं है।’

यह सुनकर विष्णुस्वामी भी उनके गुणोंसे आकृष्ट हो उनके शिष्य हो गये और कृष्णमन्त्रकी उपासना करते हुए वे शिवकी आराधनामें तत्पर हो गये एवं उनकी आज्ञासे उन्होंने वैष्णवीसंहिताका वर्णन किया।

सूतजीने पुनः कहा—मुने! कृष्णपरायण मध्वाचार्य भी महाप्रभुकी विशेषताओंको जानकर रमणीय शान्तिपुरीमें आये और उन्हें नमस्कारकर शिष्य होकर उनकी आराधनामें तत्पर हो गये।

(अध्याय ११)

भक्तोंसंहित चैतन्यमहाप्रभुकी जगन्नाथपुरी-यात्रा एवं साक्षात् भगवान्‌से वार्तालाप

सूतजी बोले—शैनक! शिवभक्तिपरायण शुद्धात्मा भट्टोजिदीक्षितने श्रीमहाप्रभु कृष्णचैतन्यके पास आकर उनको नमस्कारकर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया और उन्होंने वेदके तृतीय अङ्ग व्याकरण, जो पाणिनिसे निर्मित हो चुका था, उसकी प्रक्रियात्मक व्याख्या की और फिर उनकी आज्ञासे सिद्धान्तकौमुदीका निर्माण कर वहीं निवास किया। सूर्यपरायण वराहमिहिर नामके विद्वान् महाप्रभु चैतन्यकी बाईस वर्षकी अवस्थामें उनके समीप आये और उनके शिष्य हो गये। उनकी आज्ञासे इन्होंने अनेकों ज्योतिष ग्रन्थोंका

निर्माण किया और वहीं रहने लगे।

शिवभक्तिपरायण छन्दःशास्त्रके रचयिता वाणीभूषणने तेर्इस वर्षकी अवस्थावाले कृष्णचैतन्यके पास आकर उनके शिष्य होकर वहाँ निवास किया और अपने नामसे छन्दःशास्त्रका निर्माण किया तथा उन्होंने परम श्रेष्ठ राधाकृष्णका जप करते हुए आनन्दमय जीवन-यापन किया।

सूतजी पुनः बोले—मुने! ब्रह्मभक्तिपरायण धन्वन्तरि^२ नामके एक ब्राह्मण थे। उन्होंने कृष्णचैतन्यके पास आकर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया और वहीं रहकर कल्पवेदस्वरूप वेदाङ्गकी

१-वराहमिहिर विक्रमादित्यके दरवारी थे और उनके ग्रन्थोंपर उत्पल भट्ट आदिकी प्राचीन टीकाएँ हैं। महाप्रभु चैतन्यका प्रायः समय चौदहवीं शती है। अतः यहाँ किसी अन्य विशिष्ट ज्योतिषीसे भाव निकालने चाहिये, जो वराहमिहिरके सिद्धान्तोंको मानते हों।

२-धन्वन्तरिके सम्बन्धमें भी वराहमिहिर-जैसा ही समझना चाहिये, क्योंकि ये भी पूर्ववर्ती हैं।

रचना की। सुश्रुतके अतिरिक्त इनके और भी अनेक शिष्य हुए।

इसी प्रकार बौद्धमार्गपरायण जयदेव नामक ब्राह्मण पचीस वर्षकी अवस्थावाले कृष्णचैतन्यके समीप आये। उनसे कृष्ण चैतन्यने कहा—आपके परम उपास्य गुरु उड्ढेश (उड़ीसा)-निवासी जगन्नाथ हैं। अतः मुझे भी शिष्योंके साथ वहाँ जाना चाहिये।

यह सुनकर कृष्णचैतन्यके भक्तोंने अपने-अपने शिष्योंको बुलाकर उनके पीछे-पीछे जगन्नाथ-क्षेत्र (उड़ीसा)-की यात्रा की। निधियाँ तथा सभी सिद्धियाँ भी उनकी सेवाके लिये उपस्थित हुईं। शैव और शाकोंके साथ दस हजार वैष्णवोंने महाप्रभु कृष्णचैतन्यको आगे कर जगन्नाथपुरीकी ओर प्रस्थान किया। उनके आगमनको देखकर भगवान् जगन्नाथ मुनिवेशमें एक ब्राह्मणका रूप धारण कर जहाँ महाप्रभु आदि थे वहाँ आये। कृष्णचैतन्यने उनको देखकर नमस्कार कर कहा—‘इस भयानक कलियुगमें आप किस मतको उचित समझते हैं, मुझे कृपापूर्वक बतायें। मैं उसे तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ।’ यह सुनकर स्वयं जगन्नाथभगवान् ने लोक-कल्याणके लिये इस प्रकार

कहा—‘काश्यपसे शासित मिस्त्र देशमें उत्पन्न म्लेच्छोंने सुसंस्कृत हो ब्राह्मणवर्णको प्राप्त किया है। उन्होंने शिखा-सूत्र धारणकर उत्तम श्रेष्ठ वेदका अध्ययन कर देवाधिदेव शचीपतिकी यज्ञोद्घारा पूजा की है। इससे दुःखी हो भगवान् इन्द्र श्वेतद्वीपमें मेरी शरणमें आये और देवताओंके मङ्गलके लिये उन्होंने स्तुतिद्वारा मुझे उद्बुद्ध किया। तब मैंने संसारके कल्याणके लिये कलियुगमें अवतीर्ण होनेका वर प्रदान किया और इन्द्रादिको भी द्वादश आदित्यके रूपमें पृथ्वीपर अवतरित होनेके लिये कहा। मैं सिन्धुतटमें संसारकी हितकामनासे दारुपाषाणरूपमें अवतीर्ण हुआ हूँ। स्वर्गलोकसे आये हुए इन्द्रद्युम्न नामक राजाद्वारा रचित मन्दिरमें मैं प्रतिष्ठित होऊँगा। महाप्रभु चैतन्य यहाँके प्रसादकी महिमा बतलायेंगे। यह स्थान सभी वाज्ञित फलोंको देनेवाला एवं मोक्षप्रद है। यहाँ भक्तिकी महिमा अधिक है। वर्णोंका भेदभाव भक्तिके प्रवाहसे दिखायी नहीं देता। एक योजनपर्यन्त यहाँ किसी व्रत आदिकी व्यवस्था नहीं है। मैं सम्पूर्ण पापोंका विनाशक हूँ और कलिकालमें मेरा दर्शन करके मनुष्य शुद्ध हो जायगा।’ (अध्याय २०)

मुनिश्रेष्ठ कण्वके उपाध्याय, दीक्षित तथा पाठक आदि दस पुत्रोंकी उत्पत्ति, चैतन्यमहाप्रभु आदि आचार्योद्वारा शुद्धिपूर्वक वैष्णवधर्मका विस्तार

सूतजीने कहा—देवेन्द्र! भगवान् जगन्नाथके इन वचनोंको सुनकर कृष्णचैतन्यने भी प्रसन्नतापूर्वक कहा—‘भगवन्! प्राणियोंके कल्याणके लिये आप इस कथाको कुछ और विस्तारके साथ कहें।’

जगन्नाथजी बोले—महात्मन्! प्राचीन कालमें महर्षि कश्यपके पुत्र कण्वकी आर्यवती नामकी देवकन्या पली हुई। इन्द्रकी आज्ञासे दोनों कुरुक्षेत्रवाहिनी सरस्वती नदीके तटपर गये और

कण्व चतुर्वेदमय सूक्तोंसे सरस्वतीदेवीकी स्तुति करने लगे। एक वर्ष बीत जानेपर वह देवी प्रसन्न हो वहाँ आयीं और आयोंकी समृद्धिके लिये उन्हें वरदान दिया। वरके प्रभावसे कण्वके आर्य बुद्धिवाले दस पुत्र हुए—उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्ड्य और चतुर्वेदी। इन लोगोंका जैसा नाम था वैसा ही गुण। इन लोगोंने नतमस्तक हो सरस्वतीदेवीको

प्रसन्न किया। बारह वर्षकी अवस्थावाले उन लोगोंको भक्तवत्सला शारदादेवीने अपनी कन्याएँ प्रदान कीं। वे क्रमशः उपाध्यायी, दीक्षिता, पाठकी, शुक्लिका, मिश्राणी, अग्निहोत्रिणी, द्विवेदिनी, त्रिवेदिनी, पाण्ड्यायनी और चतुर्वेदिनी कहलायीं। फिर उन कन्याओंके भी अपने-अपने पतिसे सोलह-सोलह पुत्र हुए। वे सब गोत्रकार हुए। जिनका नाम इस प्रकार है—कश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, गोतम, जमदग्नि, वसिष्ठ, वत्स, गौतम, पराशर, गर्ग, अत्रि, भृगु, अंगिरा, शृंगी, कात्यायन और याज्ञवल्क्य। इन नामोंसे सोलह-सोलह पुत्र जाने जाते हैं।

सरस्वतीकी आज्ञासे महर्षि कण्व मिस्त्रदेश आ गये और वहाँ दस हजार म्लेच्छोंको संस्कृत पढ़ाकर अपने वशमें कर लिया तथा स्वयं श्रेष्ठ ब्रह्मावर्तमें आ गये। उन लोगोंने सरस्वतीदेवीको तपस्यासे संतुष्ट किया। पाँच वर्षके बाद सरस्वतीदेवी प्रकट हुई और सप्तलीक उन म्लेच्छोंको शूद्रवर्णका बना दिया। वे सब कारुवृत्ति करनेवाले (शिल्पी) अनेक पुत्रोंसे समन्वित हुए। उनके मध्यमें दो हजार वैश्य हुए। उनके मध्यमें आचार्य पृथु नामका कश्यपसेवक था। उसने बारह वर्षतक तपस्याद्वारा महामुनिको संतुष्ट किया। महर्षि कण्वने प्रसन्न हो देवताओंके वरसे उन्हें क्षत्रिय राजा बनाया और उन्हें राजपुत्रपुर प्रदान किया। राजन्या नामकी उनकी पत्नीने मागध नामक पुत्रको जन्म दिया। उनको कण्वने पूर्व दिशामें मागध देश दिया। तदनन्तर कश्यपपुत्र काश्यप स्वर्गलोक चले गये। उनके स्वर्ग चले जानेपर शूद्रवर्णवाले उन म्लेच्छोंने यज्ञोद्वारा देवाधिदेव शचीपति इन्द्रकी अर्चना की। इससे दुःखी होकर इन्द्र अपने बन्धुके साथ अपने अंशसे पुनः ब्रह्मयोनिमें पृथ्वीमें उत्पन्न हुए।

जिन नामका कोई विप्र था और उसकी पत्नीका

नाम था जयनी। वे दोनों कश्यपद्वारा अदितिसे कीकटदेशमें उत्पन्न हुए थे। उनके द्वारा लोककल्याणके लिये आदित्य उत्पन्न हुए। कर्मनाशा* नदीके तटपर बोधगया नामक एक नगरी है। वहाँपर उन्होंने बौद्धशास्त्रसे समन्वित हो शास्त्रार्थ किया और शूद्रोंसे वेदको ग्रहणकर विशाला (बदरीक्षेत्र) नगरी चले गये और वहाँ समाधिस्थ मुनियोंको जगाकर उन्हें वेद प्रदान किया। तभीसे सभी देवगण भूतलको छोड़कर स्वर्ग चले गये। म्लेच्छगण बौद्ध हो गये और शेष सभी वेदपरायण हो गये।

सरस्वतीकी कृपासे उन आर्योंकी संख्या बहुत बढ़ गयी। उन लोगोंने देवताओं और पितरोंको हव्य तथा कव्य समर्पित किया। इस प्रकार सभी लोग देवोपासनाद्वारा देवताओंको तृप्त करने लगे। सताईस सौ वर्ष कलियुगके बीतनेपर बलिके द्वारा प्रेषित मय नामका महान् असुर भूमिपर आया। वह अनेक मायाओंका प्रवर्तक शाक्यसिंह गुरुके नामसे प्रसिद्ध हुआ तथा गौतमाचार्य नामसे दैत्यपक्षको बढ़ानेवाला हुआ। उसने सभी तीर्थोंपर मायामय यन्त्रोंको स्थापित किया। उसके नीचे जो जाता वह बौद्ध हो जाता। फलतः चारों ओर बौद्ध परिव्यास हो गये। प्रायः दस करोड़के लगभग आर्य बौद्धधर्मावलम्बी हो गये। शेष पाँच लाख पर्वतशिखरपर चले गये। अग्निक्षेपमें उत्पन्न राजाओंने चतुर्वेदके प्रभावसे बौद्धोंको पराजित किया और आर्योंको सुसंस्कृतकर विन्ध्यपर्वतके दक्षिणमें स्थापित किया तथा विन्ध्यके उत्तरकी पुण्यभूमि आर्यावर्तमें पाँच लाख लोग अवस्थित हुए।

सूतजीने पुनः कहा—शौनक! चैतन्यमहाप्रभु भगवान् जगन्नाथकी वाणीको सुनकर उनके शिष्य हो गये और वेदमार्गपरायण हो गये। वे शुक्लदत्तके पुत्र स्वामी नित्यानन्दको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए वे भी जगन्नाथपदको नमस्कार कर उनके शिष्य

* बोधगया फल्गु नदीके तटपर स्थित है। कर्मनाशा आजकल रोहतास, गाजीपुर, भोजपुर और बनारस जिलेकी सीमा निर्धारित करती है।

हो गये। उषापति भगवान् अनिरुद्धने प्रसन्न हो उन दोनोंका अभिषेक कर महत्त्वमें प्रतिष्ठित किया। उस दिनसे उन लोगोंकी भूतलमें 'महत्त्व' पदवी हो गयी। दोनों गुरुभाइयों (महाप्रभु और नित्यानन्द)–ने प्रसन्न होकर अपने शिष्योंसे कहा—'जो यहाँ—जगन्नाथजीमें पद्मनाभि उषापति भगवान् जगन्नाथजीका दर्शन करेगा, वह स्वर्ग प्राप्त करेगा। जो यहाँके प्रसादको सादर ग्रहण करेगा, वह करोड़ जन्मतक वेदज्ञ एवं धनाढ्य द्विज होगा। मार्कण्डेयवटके पास कृष्णका दर्शन कर जो महान् इन्द्रद्युम्नसरमें स्नान करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। श्रद्धा-भक्तिके साथ जो इस कथाको सुनेगा वह भी जगन्नाथपुरीमें जानेका फल प्राप्त कर लेगा।'

महाप्रभु चैतन्यने इस प्रकार भगवान् जगन्नाथकी महिमा बतलायी। भगवान् जगन्नाथने भी 'यज्ञांश-महाप्रभुकी बातें ठीक हैं' ऐसा कहा और वे वहीं अन्तर्धान हो गये।

इसी बीचमें कलिने बलिसे प्रार्थना की। तब दुःखित हो बलिने मय दैत्यको बुलाकर कहा—'दैत्येन्द्र! सुकन्दर नामक म्लेच्छपति हमलोगोंकी उत्तरितके लिये सदा तत्पर है। मेरी आज्ञाके अनुसार तुम उसकी सहायता करो।' बलिकी बात सुनकर ज्योतिर्विद्याविशारद वह दानव मय एक सौ दैत्योंके साथ कर्मभूमिमें आया और उसने दुष्ट म्लेच्छजातिको ज्योतिर्गणितसहित इक्कीस अध्यायवाले रेखागणितकी शिक्षा दी। तब ज्योतिर्विद्यामें पारङ्गत होकर उन म्लेच्छोंने सातों पुरियोंमें यन्त्रोंका निर्माण कराया। उन यन्त्रोंके प्रभावसे वहाँ जो लोग थे, वे सब म्लेच्छत्वको प्राप्त हो गये।

यह आदर्श देखकर सभी आर्य बहुत दुःखी

हुए, सर्वत्र महान् कोलाहल और हाहाकार मच गया। वह करुणक्रन्दन सुनकर कृष्णचैतन्यके सेवक सभी वैष्णव गुरुके दिव्य मन्त्रको ग्रहणकर म्लेच्छोंको निष्प्रभावी करनेके लिये अलग-अलग पुरियों आदि स्थानोंकी ओर चले गये। रामानन्द शिष्योंके साथ अयोध्या आ गये और उन्होंने म्लेच्छयन्त्रको उलटाकर वहाँपर सभीको वैष्णव बना दिया। ललाटपर त्रिशूलके समान श्रीचिह्न बन गया, जो श्वेत-रक्तमय हुआ। कण्ठमें तुलसीकी माला और जिह्वा राममय हो गयी। इस प्रकार वे सभी म्लेच्छ रामानन्दके प्रभावसे वैष्णव हो गये*। वे संयोगी वैष्णव कहलाये। शेष आर्य मुख्य वैष्णवरूपमें अयोध्यामें स्थित हुए। बुद्धिमान् निष्वादित्य अपने शिष्योंके साथ काञ्छिकापुरी चले गये। वहाँ उन्होंने राजमार्गमें स्थित म्लेच्छयन्त्रको देखा। अपने गुरुके मन्त्रको विलोम करके वे वहाँ रहने लगे, जिससे म्लेच्छयन्त्र प्रभावशून्य हो गया। वे ललाटपर वंशपत्रके समान ऊर्ध्वरिखा, कण्ठमें माला और मुखमें गोपीवल्लभके मन्त्रसे सुशोभित हुए। उनके पास उपस्थित सभी म्लेच्छ वैष्णव हो गये और वे संयोगी वैष्णव कहलाये, शेष सभी आर्य वैष्णवमार्गके अनुयायी हो गये। अपने गणोंके साथ विष्णुस्वामी हरिद्वार गये। वहाँ स्थित म्लेच्छोंके महायन्त्रको उन्होंने विलोम कर दिया और जो लोग सेवामें आये वे सब-के-सब वैष्णव हो गये। ललाटमें दो रेखाओंसे समन्वित ऊर्ध्वपुण्ड्र और मध्यमें बिन्दु, कण्ठमें तुलसीगोलक और मुखमें कल्याणकारक माधवके मन्त्रसे सुशोभित होकर रहने लगे।

विष्णुभक्त मध्वाचार्य मथुरामें आये और उन्होंने राजमार्गमें स्थित म्लेच्छयन्त्रोंको देखकर विलोम

* इसका आशय सिकन्दर लोदीके द्वारा बलात् धर्मपरिवर्तित भारतीयोंको आचार्य रामानन्द तथा चैतन्यमहाप्रभुद्वारा पुनः शुद्धिपूर्वक सनातन हिन्दू बनानेमें है। जैसा कि इन लोगोंके ग्रन्थोंमें सनातन गोस्वामी आदिकी जीवनियोंसे स्पष्ट है। पीछे स्वामी दयानन्दने भी इसीका अनुसरण किया।

कर दिया। उनके समीप जो लोग आये, वे उनके पक्षगामी वैष्णव हो गये। उनके ललाटमें नासार्धके आधे भागतक करवीरपत्रके समान शुभ तिलक, कण्ठमें तुलसीकी माला और मुखमें राधाकृष्णका शुभ नाम विराजमान था। शैवमार्गपरायण शंकराचार्य* भी रामानुजकी आज्ञासे अपने गणोंके साथ काशीपुरी आ गये। म्लेच्छयन्त्रको विलोम करके उनके अन्तर्गत आये सभी शैव हुए। इनके भालपर त्रिपुण्ड्र और कण्ठमें रुद्राक्षकी माला तथा मुखमें गोविन्दमन्त्र विराजमान था। रामानुज तोतादरी—तोताद्रिमें जाकर सुखी हो गये। उस समय उनके ललाटमें दो ऊर्ध्वरेखाओंके बीचमें पीतिकावर्णकी सूक्ष्म रेखा और कण्ठमें तुलसीमाला विराजमान थी। गुणवान् वराहमिहिर उज्जयिनी आये और उन्होंने वहाँपर म्लेच्छयन्त्रोंको निष्फलकर सभी लोगोंको शैव बना लिया। उनके ललाटमें चिताभस्म, कण्ठमें रुद्राक्षकी माला और 'शिव' यह मङ्गलनाम मुखमें विराजमान हुआ। वाणीभूषण कन्याकुञ्ज—कान्यकुञ्जमें आये। अर्धचन्द्राकार पुण्ड्र, रक्त चन्दनकी माला और देवीका निर्मल नाम उनके मुखमें विराजमान था। धन्वन्तरिने प्रयागमें आकर म्लेच्छयन्त्रको विलोम कर दिया। जो उनके संनिकट आये, वे उनके

अनुयायी होकर ललाटपर अर्धपुण्ड्र और रक्तबिन्दुको धारण करनेवाले हुए। उनके कण्ठमें रक्त चन्दनकी मालाएँ शोभायमान हुईं। धीमान् भट्टोजि श्रेष्ठ उत्पलारण्य गये। इन्होंने मस्तकपर लाल त्रिपुण्ड्र और कण्ठमें रुद्राक्षकी माला धारण की एवं विश्वनाथ नामका सदा जप करने लगे। रोपण भी इष्टिका (एटा) आये। वहाँ उन्होंने म्लेच्छयन्त्रको निष्फलकर जनजनमें ब्रह्ममार्गका प्रदर्शन किया। इसी प्रकार विष्णुभक्त जयदेव द्वारकामें आये, इससे वहाँपर उन म्लेच्छोंका यन्त्र निष्फल हो गया। उनके जो अनुयायी हुए उनके मस्तकपर एक लाल रेखा, कण्ठमें पद्माक्ष—कमलगट्टेकी माला और जिह्वापर 'गोविन्द' नाम विराजमान हुआ।

इस प्रकार वैष्णव, शैव और शाक्त अनेक संख्यामें हो गये। शाक्त निर्गुण थे और वैष्णव सगुण। जो निर्गुण और सगुण थे, वे शैव कहलाये। नित्यानन्द शान्तिपुरमें, नदीहापत्तन—नदियामें हरि, मागध (मगहर देश)-में कबीर, कलिंजरमें रैदास और सधन (सदन) नैमिषारण्यमें समाधिस्थ हो गये। आज भी यहाँ वैष्णवोंका महान् समुदाय वर्तमान है। इस प्रकारसे मय आदि दैत्य भी निष्फल होकर बलिके पास चले गये। (अध्याय २१)

अकबर आदि अन्तिम मुगल शासकोंका चरित्र; तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, तानसेन तथा बीरबल आदिके पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त; गुरुण्ड, मौन और सर्वत्र म्लेच्छराज्यका विस्तार

सूतजी बोले—शौनक! इस प्रकार दैत्योंने बलिके पास जाकर अपनी पराजयका वृत्तान्त बतलाया। दैत्यराज बलिने देवताओंकी महान् विजय सुनकर रोषण नामक दैत्येन्द्रको बुलाकर कहा—‘तुम तिमिरलिङ्ग (तैमूरलंग)-के पुत्र होकर

सरुष नामसे प्रसिद्ध होगे। अतः तुम वहाँ जाकर दैत्योंके श्रेष्ठ कार्यका सम्पादन करो। इसपर उसने क्रुद्ध हो देहली आकर वेदमार्गस्थ पुरुषोंका नाश करना शुरू कर दिया। उसने पाँच वर्षतक राज्य किया। उसीका पुत्र बाबर हुआ, बीस वर्षतक

* यहाँ आदिशंकराचार्य आदि आचार्यगण अभिप्रेत न होकर कोई तत्कालीन शंकर आदि नामवाले महात्मा इष्ट प्रतीत होते हैं।

उसने राज्य किया। (कुछ वर्ष समरकन्दमें और कुछ दिन भारतमें।) उसका पुत्र होमायु (हुमायूँ) हुआ। मदान्ध होमायुने देवताओंका निरादर किया। तब देवताओंने नदीहाके उपवनमें स्थित कृष्णचैतन्यकी स्तुति की। स्तुति सुनकर हरि कृष्ण हुए और उन्होंने अपने तेजसे उसके राज्यमें विघ्न उत्पन्न किया। उनके सैन्योंद्वारा होमायुका पराजय हुआ। उस समय शेषशाक (शेरशाह)-ने रमणीय देहली नगरमें आकर पाँच वर्षतक अत्यन्त कुशलतापूर्वक राज्य किया। उन्हीं दिनोंकी बात है, शंकराचार्यके गोत्रमें उत्पन्न मुकुन्द नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने बीस शिष्योंके साथ प्रयागमें तप कर रहा था। 'म्लेच्छराज बाबरके द्वारा देवताओंकी प्रतिमाओं आदिको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है' यह जानकर ब्राह्मण मुकुन्दने दुःखी होकर अग्निमें अपने प्राणोंकी आहुति दे दी। उसके बीस शिष्योंने भी गुरुके मार्गका ही अनुगमन किया। किसी समय ब्राह्मण मुकुन्दने गौके दूधके साथ गौके रोमका भी पान कर लिया था, इसी दोषके कारण वह दूसरे जन्ममें म्लेच्छयोनिमें उत्पन्न हुआ। जब हुमायूँ कश्मीर (अपने भाई मकरानके यहाँ काबुल-कश्मीरकी सीमा)-में निवास कर रहा था, तब उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि 'तुम्हारा पुत्र बड़ा प्रतापी और भाग्यशाली होगा। यह अकस्मात् (अक) प्राप्त वर (वरदान)-से उत्पन्न हुआ है, अतः इसका नाम 'अकबर' होगा और यह म्लेच्छ या पिशाचोंके मार्गका अनुसरण नहीं करेगा। यह श्रीधर, श्रीपति, शम्भु, वरेण्य, मधुव्रती, विमल, देववान्, सोम, वर्धन, वर्तक, रुचि, मान्धाता, मानकारी, केशव, माधव, मधु, देवापि, सोमपा, सूर तथा मदन—ये बीस जिसके शिष्य हैं, वही पूर्वजन्मका मुकुन्द ब्राह्मण भाग्यवश

तुम्हारे घरमें इस रूपमें आया है।'

ऐसी आकाशवाणी सुनकर प्रसन्नचित्त हुमायूँने भूखसे पीड़ित व्यक्तियोंको दान दिया और प्रेमपूर्वक पुत्रका पालन किया। पुत्रकी दस वर्षकी अवस्था होनेपर वह देहलीमें आया और शेषशाकको पराजित कर वहाँका राजा हो गया। उसने एक वर्ष राज्य किया और बादमें उसका पुत्र अकबर राजा हुआ।

अकबर (मुकुन्द ब्राह्मण)-के राज्यप्राप्तिके बाद उसके पूर्वजन्मके सात प्रिय शिष्य (केशव, माधव, मधु, देवापि, सोमपा, सूर तथा मदन) इस जन्ममें भी पुनः उत्पन्न होकर अकबरके दरबारमें आये। मुकुन्द ब्राह्मणके शिष्य केशव अकबरके समयमें गानसेन (तानसेन) नामसे उत्पन्न हुए। पूर्वजन्मके माधव अकबरके समयमें वैजवाक (बैजूबावरा) नामसे प्रसिद्ध हुए। पूर्वजन्मके मधु अकबरके समयमें सभी रागोंके ज्ञाता 'हरिदासगायक' नामसे विख्यात हुए। ये मध्वाचार्य-मतानुयायी प्रसिद्ध वैष्णव थे। पूर्वजन्मके देवापि अकबरके समयमें 'बीरबल' नामसे प्रसिद्ध हुए। वे पश्चिमी ब्राह्मण थे और उन्हें वाणीकी अधिष्ठात्री सरस्वतीदेवीका अभिमान था। पूर्वजन्मका गौतमवंशमें उत्पन्न सोमपा अकबरके समयमें 'मानसिंह' नामसे उत्पन्न हुआ और वह आर्यभूपशिरोमणि अकबरका सेनापति बना। पूर्वजन्मका शूर दक्षिण देशमें ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ, यह पण्डित था, इसका नाम हुआ 'बिल्वमंगल'। यह अकबरका मित्र बना। पूर्वजन्मका पूर्वदेशका ब्राह्मण मदन अकबरके समयमें 'चन्दल' नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह नर्तक और रहःक्रीडाविशारद था।

ये सात राजा अकबरके दरबारमें स्थित हुए और पूर्वजन्मके श्रीधर आदि तेरह शिष्य दूसरे स्थानोंमें प्रतिष्ठित हुए। अकबरके समयमें अनपके पुत्र श्रीधर ही पुण्योंमें निषुण तुलसीशर्मा (तुलसीदास)

नामसे प्रसिद्ध हुए। वे नारीसे शिक्षा प्राप्तकर राघवानन्दके शिष्य श्रीरामानन्दकी परम्परामें काशीमें अत्यन्त विरक्त वैष्णव कवि हुए। पूर्वजन्मके श्रीपति अकबरके समयमें महान् अन्ध भक्त कवि 'सूरदास' के रूपमें उत्पन्न हुए, ये मध्वाचार्यके मतमें स्थित रहनेवाले थे। इन्होंने कृष्णलीलाका वर्णन किया। पूर्वजन्मके शम्भु अकबरके समयमें चन्द्रभट्टके कुलमें हरिप्रिय नामसे उत्पन्न हुए, ये विष्णुभक्त थे और रामानन्दके मतमें स्थित हुए। पूर्वजन्मके वरेण्य अकबरके समयमें अग्रभुक् (अग्रदास^१) नामके प्रसिद्ध संत थे, जो रामानन्दके मतमें स्थित हुए। ज्ञान-ध्यानपरायण, भाषा-छन्दकी रचना करनेवाले पूर्वजन्मके कवि मधुव्रती अकबरके समयमें 'कीलक' नामसे विख्यात हुए। धीमान् कीलकने रामलीलाकी रचना की और रामानन्दमतके अनुयायी हुए। पूर्वजन्मके विमल अकबरके समयमें 'दिवाकर' नामसे प्रसिद्ध हुए और भगवती सीताके पावन चरित्रका गान किया तथा वे रामानन्दके मतमें स्थित हुए। इसी प्रकार पूर्वजन्मके देववान् अकबरके समयमें 'केशव' नामसे अवतीर्ण हुए, ये विष्णुस्वामीके अनुयायी बने। कविप्रिया आदिकी रचनाकर इन्होंने प्रेतत्व प्राप्त किया और राम-ज्योत्स्ना नामक ग्रन्थकी रचनाकर स्वर्ग प्राप्त किया। पूर्वजन्मके सोम 'व्यासदास' नामसे उत्पन्न हुए। ये निम्बादित्यके मतानुयायी हुए। इन्होंने रहःक्रीडा ग्रन्थकी रचनाकर स्वर्ग प्राप्त किया। पूर्वजन्मके वर्धन 'चरणदास' नामसे विख्यात हुए। इन्होंने ज्ञानमाला नामक

ग्रन्थका निर्माण किया और ये रैदास-मार्गके अनुयायी बने। पूर्वजन्मके वर्तक 'रत्नभानु' नामसे उत्पन्न हुए, ये जैमिनि भाषाके रचयिता थे और रोपण-मतके अनुयायी थे। पूर्वजन्मके रुचि 'रोचन' नामसे उत्पन्न हुए। ये मध्वाचार्यके मतानुयायी थे। इन्होंने अनेक गानमयी लीला करके स्वर्ग प्राप्त किया। पूर्वजन्मके मान्धाता 'भूपति' नामके कायस्थ हुए। मध्वाचार्यके मतानुसार इन्होंने हिन्दी-भाषामें भागवतका सुन्दर अनुवाद किया। पूर्वजन्मके मानकारने नारीभावसे स्त्रीशरीरको प्राप्त किया और 'मीरा' के नामसे विख्यात राजाकी पुत्री हुई। मध्वाचार्यके मतको माननेवाली वह मीरा अत्यन्त प्रसिद्ध हुई। उनका प्रबन्ध भयंकर कलिकालके लिये मङ्गलकर होगा।

अकबरने पचास वर्षतक निष्कण्टक राज्य किया और अन्तमें मरकर स्वर्ग चला गया। उसका पुत्र सलोमा—सलीम (जहाँगीर) था। उसने भी पिताके समान राज्य किया। उसका बेटा खुर्दक (खुसरो शाहजहाँ) था, उसने दस वर्षतक राज्य किया। उसके चार बेटे थे। उसका मध्यम बेटा नवरंग (औरंगजेब) था। उसने पिता और भाईको जीतकर राज्य किया। यह पूर्वजन्ममें अन्धक नामका प्रसिद्ध दैत्य था। इस कर्मभूमिमें अन्धकके अंशसे दैत्यराजकी आज्ञासे आया था। उसने चारों ओर अनेक मूर्तियोंको ध्वस्त किया। ऐसा देखकर देवताओंने आकर कृष्णचैतन्यसे कहा—'भगवन्! दैत्यराजका अंशभूत (औरंगजेब^२)' राजा उत्पन्न हुआ है, वह देवताओं और वेदोंका

१—ये बहुत बड़े सिद्ध महात्मा थे, इनकी कुण्डलिया प्रसिद्ध हैं। ये जयपुरके गलता गढ़ीके संस्थापक थे। इनके सम्प्रदायके अधिकांश लोग दुधाहारपर जीवन-यापन करते थे। इससे इन्हें पयहारी कहा जाता था। भक्त नाभादास इनके ही शिष्य थे।

२—वास्तवमें औरंगजेब एवं महाप्रभुके समयमें प्रायः ३०० वर्षोंका अन्तर है। इसलिये यहाँ महाप्रभुसे किसी गौड़ीय सम्प्रदायके तत्कालीन प्रभावशाली संतका तात्पर्य ग्रहण करना चाहिये। औरंगजेबपर सर डॉ युनाथ सरकारकी पाँच बड़े जिल्दोंकी अत्यन्त

विनाश कर दैत्य-पक्षकी अभिवृद्धि कर रहा है। नदीहाके बनमें स्थित यज्ञांशने यह सुनकर उस दुराचारीके वंशक्षयका शाप दिया। उनचास वर्षोंतक उस दुष्टात्माने राज्य किया।

उस समय देवपक्षकी वृद्धि करनेवाले सेवाजय (छत्रपति शिवाजी) नामके एक राजा हुए, जो महाराष्ट्रमें उत्पन्न हुए थे तथा युद्धविद्यामें विशारद थे। उन्होंने उस दुराचारीको मारकर उसके पुत्रको वह स्थान दे दिया। फिर वे दक्षिण देशमें चले गये। आलोमा नामके उसके पुत्रने पाँच वर्षोंतक राज्य किया और वह भी दिवंगत हो गया। तालनके कुलमें बलवान् म्लेच्छ 'फलरुष' हुआ। उसने मुकल (मुगल) कुलका नाश कर दस वर्षोंतक राज्य किया और अन्तमें वह शत्रुओंसे मारा गया। उसका बेटा महामद हुआ, उसने बीस वर्षोंतक राज्य किया।

उसी समय नादर (फारस-निवासी नादिरशाह दुर्गन्ही) नामका एक भारी लुटेरा देशमें आया और आर्योंको मारकर देवताओंको जीतकर वह खुरज (ईरान) देशमें चला गया। महामदका पुत्र था महामत्स्य। उसने अपने पिताके स्थानको ग्रहण कर पाँच वर्षोंतक राज्य किया। तालनवंशमें उत्पन्न दुष्ट महामत्स्य महाराष्ट्रियोंद्वारा मारा गया। माधवने देहली नगरमें दस वर्षोंतक राज्य किया। उसने म्लेच्छ आलोमाके राज्यको प्राप्त किया। उस राष्ट्रमें अपने देशमें उत्पन्न अनेक राजा हुए। देश-देशमें, ग्राममें रहनेवाले बहुत-से राजा हो गये। प्रायः कोई चक्रवर्ती सप्ताद् नहीं रहा। सर्वत्र छोटे-छोटे मण्डलीकों (तालुकेदारों)-के अधिकारमें देश विभक्त हो गया। कुछ लोग तो गाँव-गाँवके ही मालिक

रहे। इस प्रकार तीस वर्ष बीत गये।

इसके बाद सभी देवगण कृष्णचैतन्यके* पास आये। उन्होंने महीतलपर उनके दुःखको जानकर एक मुहूर्तके लिये ध्यानस्थ होकर देवताओंसे कहा—‘पूर्वकालमें बुद्धिमान् राघवने राक्षस रावणको जीतकर सुधावृष्टिके द्वारा बानरोंको जीवित कर लिया था। विकट, वृजिल, जाल, बरलीन, सिंहल, जव (जावा), सुमात्र (सुमात्रा) नामके छोटे-छोटे बानरोंने भगवान् रामचन्द्रसे कहा कि हमलोगोंको मनोवाञ्छित वर दीजिये। दाशरथि रामने उनके मनोरथोंको जानकर रावणके द्वारा देवाङ्गनाओंसे उत्पन्न कन्याओंको बानरोंको प्रदान किया और प्रसन्नचित हो बानरोंसे कहा कि ‘जालंधरद्वारा निर्मित आपलोगोंके नामसे जो द्वीप होंगे, उन द्वीपोंके आपलोग राजा होंगे और ये आपलोगोंकी रानियाँ होंगी। नन्दिनी गौके रुण्ड (धड़)-से जो म्लेच्छ उत्पन्न होंगे वे गुरुण्ड कहलायेंगे। उन्हें जीतकर आपलोग श्रेष्ठ राज्य प्राप्त करेंगे।’

यह सुनकर हरिको नमस्कारकर आनन्दपूर्वक वे सभी द्वीपोंमें चले गये। देवगणो! विकटके वंशमें उत्पन्न तथा उसके द्वारा प्रेरित बानरमुखी गुरुण्ड-लोग व्यापारकी दृष्टिसे यहाँ आये और उनका हृदय ईश-पुत्र (खिष्ट, ईशु या ईसामसीह)-का मतावलम्बी था। वे सत्यव्रती, कामजित, क्रोधरहित और सूर्यपरायण हैं। आपलोग वहाँ रहकर उनका कार्य करें। यह सुनकर देवता सूर्यकी आदरपूर्वक अर्चना कर कलिकातामें आ गये। पश्चिम द्वीपमें विकट नामका राजा हुआ, उसकी पत्नी विकटावती (विकटोरिया)-ने अष्ट कौशलमार्गसे (पार्लियामेंटके परामर्शसे) शासन किया।

प्रामाणिक ऐतिहासिक जीवनी प्रसिद्ध है। कैम्ब्रिज इतिहासके चौथे भागके उत्तरार्धमें औरंगजेबका वृत्तान्त इन्हींके द्वारा लिखित है। यहाँ चैतन्य शब्दसे भगवान् जगत्राथ भी अभीष्ट हो सकते हैं।

* यहाँ भी तत्कालीन गौड़ीय सम्प्रदायका कोई आचार्य समझा जाना चाहिये, क्योंकि महाप्रभु चैतन्य तो इससे प्रायः ४५० वर्ष पूर्व हुए थे।

उसके वंशके सात और गुरुण्ड राजा हुए, जो चौंसठ वर्षोंतक राज्यकर नष्ट हो गये। गुरुण्डके आठवें राजातक न्यायपूर्वक शासन करनेपर कलिपक्षीय बलि दैत्यने मुर नामक महान् असुरको देवदेशमें भेजा। वह मुर वार्डिल राजाको वशमें करके आर्य-धर्मके विनाशके लिये तत्पर हो गया। मूर्तिमें स्थित देवगणोंने महाप्रभुचैतन्य यज्ञांशके पास जाकर नमस्कार कर मुर नामक दैत्यके आनेकी बात कही। यह जानकर कृष्णांशने बौद्धपंथी गुरुण्डको शाप दिया कि 'जो मुरके मतमें हैं, वे नष्ट हो जायँगे।' इस तरहकी बात कहनेपर कालसे प्रेरित समस्त दुष्ट गुरुण्ड अपनी सेनाओंके साथ एक वर्षके अंदर ही नष्ट हो गये। वह राजा वार्डिल भी विनाशको प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् मेकल (लार्ड मेकाले) नामक नौवाँ वीर्यवान् (शिक्षाशास्त्री) गुरुण्ड आया। इसने न्यायपूर्वक बारह वर्षतक राज्य किया। दसवाँ लार्डल (लार्ड वेवल) नामक विख्यात गुरुण्डने बत्तीस वर्षतक धर्मपूर्वक राज्य किया। लार्डलके स्वर्ग जानेपर मकरन्दकुलमें उत्पन्न आयोंने शासन किया। तदनन्तर हिमतुंग-निवासी मौनोंने राज्य प्राप्त किया। वे बधुवर्ण, सूक्ष्म तथा बर्तुल नासावाले एवं दीर्घ मस्तकवाले बौद्धमार्गामी लाखोंकी संख्यामें देहली आये। उनका राजा हुआ आर्जिक। उसके पुत्र देवकण्णने गङ्गोत्रिगिरिके शिखरपर राज्यकी वृद्धिके लिये बारह वर्षतक घोर तपस्या की। उस बुद्धिमान्की तपस्यासे भगवती गङ्गाने उसे दर्शन दिया और कुबेरने उसे आयोंका मण्डलीक-पद प्रदान किया। तदनन्तर मण्डलीक देवकण्ण प्रजापालक राजा हुआ। साठ वर्षतक उसने महीतलपर राज्य किया। उसके वंशमें देवपूजक आठ राजा हुए। दो सौ वर्षतक राज्य करके वे स्वर्गलोक चले गये। ग्यारहवाँ मौन राजा पत्रगारि हुआ। वह चालीस वर्षतक राज्य करनेके बाद

पत्रगांद्वारा मृत्युको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे महीतलपर मौन-जातियोंका राज्य हुआ।

इसके अनन्तर नागवंशीय, आन्ध्रवंशीय, कौसलदेशीय, नैषधदेशीय, सौराष्ट्रदेशीय तथा गुर्जरदेशीय राजाओंने अनेक वर्षोंतक राज्य किया। गुर्जरदेशमें कलिने आभीरीके गर्भसे 'राहु' नामसे सिंहिकाके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया। जैसे चन्द्रको कष्ट देनेवाला नभोमण्डलमें सिंहिकापुत्र राहु स्थित है, वैसे ही कलिका अंशभूत देवताओंको कष्ट देनेवाला आभीरीका राहु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके उत्पन्न होते ही पृथ्वीपर भयंकर भूकम्प होने लगा। सभी विपरीत ग्रह भयंकर दुःख उत्पन्न करने लगे। उसके भयसे देवगण अपनी-अपनी मूर्तियों-प्रतिमाओंमें देवांशका परित्याग कर सुमेरु पर्वतके शिखरपर महेन्द्रकी शरणमें चले गये। उन लोगोंके कल्याणके लिये भगवान् शक्रने जगदम्भिकाकी स्तुति की। तब कन्यामूर्ति उस कल्याणकारी देवीने देवताओंसे कहा—'देवगणो! मेरे दर्शनसे आपलोग भूख-प्याससे रहित हो जायेंगे।' यह सुनकर देवगण प्रसन्न हुए।

आभीरी-पुत्र राहु सौ वर्ष राज्य करके अपना प्राण त्यागकर कलिमें लीन हो गया। उसके वंशमें डेढ़ सौ राजा हुए, जिन्होंने दस हजार वर्षतक राज्य किया। उन्होंने नष्ट हुए महामदके मतका पुनः प्रचार किया। वे सभी म्लेच्छ हुए। उस समय कलियुगमें न वेदाध्ययन था, न वर्ण-व्यवस्था थी और न देवता ही थे। कोई भी मर्यादा नहीं थी। जो शेष ब्राह्मण थे वे अर्बुद शिखरपर रहने लगे और बारह वर्षोंतक प्रयत्नपूर्वक देवताओंकी आराधना करने लगे। फलतः अर्बुद शिखरसे खड़ग और चर्मधारी एक क्षत्रिय प्रादुर्भूत हुआ। उसका नाम हुआ अर्वबली। उसने भयंकर म्लेच्छोंको जीतकर पाँच योजन भूमिपर

अर्वपुरीका निर्माण किया। धीरे-धीरे वहाँ आर्य आकर बसने लगे और फिर आर्यकुलकी वृद्धि हो गयी। अर्वबलीने पचास वर्षोंतक राज्य किया। उसके वंशमें डेढ़ सौ राजा हुए। दस हजार वर्षके बाद म्लेच्छोंके मित्र वर्णसंकरोंने म्लेच्छ-कन्याओंके साथ विवाह किया।

आर्यमार्गानुगामी नाममात्रके रह गये। उस समय मलयदेशस्थ एक लाख म्लेच्छोंका अर्बुदीय आर्योंके साथ भयंकर युद्ध हुआ। उसमें महाबलशाली म्लेच्छोंने विजय प्राप्त की। सम्पूर्ण भूमि म्लेच्छमयी हो गयी और सर्वत्र अलक्ष्मीका निवास हो गया। (अध्याय २२-२३)

कलिके द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ चरणोंका वृत्तान्त तथा कलिके भगवान्‌का अवतार

सूतजीने कहा—शौनक! म्लेच्छोंकी विजय होनेपर कलिने उन्हें सम्मानित किया। तदनन्तर सभी दैत्यगण अनेकों जलयानोंका निर्माणकर हरिखण्डमें आये। उस समय हरिखण्डमें भी मनुष्य देवताओंके समान महाबलशाली थे। उन लोगोंने दैत्योंके साथ भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंसे युद्ध किया, किंतु दस वर्षके बाद वे सभी दैत्योंके मायायुद्धसे पराजित हो गये। तब वे हरिखण्डनिवासी महेन्द्रकी शरणमें गये। भगवान् शक्रने विश्वकर्मासे कहा—‘तात! सप्तसिन्धुओंमें तुम्हारे द्वारा विरचित भ्रमि नामक यन्त्र अवस्थित है। उस यन्त्रके प्रभावसे मानव एक खण्डसे दूसरे खण्डमें नहीं जा पाते; किंतु मायावी मयने उसे भ्रष्ट कर दिया है। फलतः सातों द्वीपोंमें मेरे शत्रु म्लेच्छगण सब जगह जाने लगे हैं। इसलिये आपके द्वारा सम्पादित जो मर्यादा है, उससे हमलोगोंकी आप रक्षा करें।’

यह सुनकर विश्वकर्माने एक दिव्य भ्रमि यन्त्रका निर्माण किया। उस यन्त्रके प्रभावसे वे सब भ्रमित हो गये। भ्रमि-यन्त्रसे म्लेच्छविनाशक एक महावायु उत्पन्न हुआ। उस महावायुसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो वात्य कहलाया। ज्ञानमय उस वात्यने दैत्यों, यक्षों और पिशाचोंको जीतकर त्रैवर्णिक द्विजोंका सत्कार किया। महाबली वात्यने म्लेच्छोंको उनके वर्णमें प्रतिष्ठित किया और पचास वर्षोंतक पृथ्वीपर ‘मण्डलीक’ पदको

सुशोभित किया। उसके वंशमें कलियुगमें हजारों राजा हुए। जिन्होंने सोलह हजार वर्षतक राज्य किया और वे सभी वायुके उपासक हुए।

दुःखित हो कलिने पुनः दैत्यराज बलिके पास जाकर वात्यवंशका सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया, तब बलिने अपने मित्र कलिके साथ वामनभगवान्‌के पास आकर नमस्कार कर कहा—‘हे सुरोत्तम! मुझपर प्रसन्न होकर आपने मेरे लिये कलिको बनाया है, परंतु वह कलि वात्य-द्विजोंके द्वारा तिरस्कृत कर दिया गया है। प्रभो! कलियुगके एक चरण व्यतीत होनेमें थोड़ा ही समय शेष है। इतने समयमें मेरी अपेक्षा देवोंका अधिक राज्य रहा। मैंने तो देवेन्द्रकी मायाके कारण पृथ्वीका अधिकार छोड़ दिया है। अतः आप मेरे मित्र इस कलिकी रक्षा करें।’ तब भगवान् वामन हरि अपने पूर्वार्ध अंशसे यमुनातटनिवासी कामशर्मा नामक ब्राह्मणके घर उसकी पत्नी देवहूतिसे दो दिव्य पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न हुए। एकका नाम था भोगसिंह और दूसरेका नाम था केलिसिंह। वे वात्यसे उत्पन्न राजाओंको जीतकर कल्पक्षेत्रमें आये। मयनिर्मित रहःक्रीडावती नामकी नगरीमें रहकर बलवान् उन दोनोंने कलिकी धुरीको धारण किया। कालान्तरमें कलियुगमें विपुल वर्णसंकरोंकी सृष्टि हो गयी। वृक्षपरके पक्षीके समान इनकी प्रभूत वृद्धि हो गयी। दो हजार वर्षके बाद इन्होंने

पूर्ववर्ती मानवोंको समाप्त कर दिया। उस समय पृथ्वीपर कलिका द्वितीय चरण आ गया। इस समय किन्नरोंकी वार्ता भूतलपर वर्तमान है। वे दैत्यमय मनुष्य ढाई हाथमात्र ऊँचे हो गये और उनकी अवस्था चालीस वर्ष हुई तथा वे पक्षियोंके समान कर्महीन हो गये। कलिके द्वितीय चरणके अन्तमें न विवाह होगा, न राजा रहेंगे, न कोई उद्यमशील रहेंगे और न कर्मकर्ता रहेंगे। भोगसिंह और केलिसिंहके वंशज सबा लाख वर्षतक पृथ्वीमें रहेंगे। इसलिये हे मुनिगणो! आप सबको मेरे साथ कृष्णचैतन्यके पास चलना चाहिये।

व्यासजी बोले— हे मनो! विशालापुरनिवासी वे सभी मुनिगण प्रसन्नचित्त होकर यज्ञांशके पास जायेंगे और उन्हें प्रणाम कर इन्द्रलोक जानेकी अनुमति माँगेंगे। तब यज्ञांश चैतन्य, आह्लाद, योगी गोरख, शंकर आदि रुद्रांशों और राजा भर्तृहरि आदि अपने सभी शिष्यों तथा अन्य योगिजनों और विशालापुरनिवासी मुनियोंके साथ विमानपर आरूढ़ होकर देवलोक चले जायेंगे। तब कलिके द्वितीय चरणमें वामनांशसे उद्भूत भोगसिंह और केलिसिंह योगमार्गका अवलम्बन कर कल्पक्षेत्रमें स्थित होंगे और दैत्यवर्गकी अभिवृद्धि करेंगे।

कलिके तृतीय चरणके आनेपर किन्नरगण धीरे-धीरे पृथ्वीपर विनष्ट हो जायेंगे। कलियुगके तृतीय चरणके छब्बीस हजार वर्ष व्यतीत होनेपर रुद्रकी आज्ञासे भृङ्ग-ऋषि सौरभी नामकी पत्नीसे महाबलवान् कौलकल्प नामक मनुष्योंको उत्पन्न करेंगे जो सभी किन्नरोंका भक्षण करनेवाले होंगे। उस समय कलिमें उनकी उम्र छब्बीस वर्षकी होगी। भयभीत किन्नर वामनांशकी शरणमें जायेंगे और तब भोगसिंह तथा केलिसिंहके साथ कौलकल्पोंका घोर युद्ध होगा। दस वर्ष युद्ध करनेके पश्चात् भोगसिंह आदि सब पराजित हो

जायेंगे। दैत्योंके साथ वामनांश (भोगसिंह, केलिसिंह) भी पातालमें चले जायेंगे।

घोर कलियुगमें भृङ्ग-ऋषिकी भयंकर सृष्टि होगी। माता-बहिन, पुत्री आदिसे वे मनुष्य पशुवत् व्यवहार करेंगे। कामान्ध होकर वे सब बहुत पुत्रोंको उत्पन्न करेंगे। कलिके तृतीय चरणमें वे सृष्टियाँ भी भयंकर तिर्यक्-योनिको प्राप्त कर नष्ट हो जायेंगी।

कलिके चतुर्थ चरणमें मनुष्यकी आयु बीस वर्षकी होगी और वे मरकर नरक जायेंगे। उस समय जलीय और वन्य जीवोंके समान वे कन्द-मूल-फल खानेवाले हो जायेंगे। जो तामिळ आदि भयंकर नरक प्रसिद्ध हैं, वे सब कर्मभूमिमें उत्पन्न मानवोंसे भरे जायेंगे।

कलियुगके चतुर्थ चरणमें उत्पन्न मनुष्योंके द्वारा इक्कीसों नरकोंमें अजीर्णता आ जायगी—नरक मनुष्योंसे भर जायेंगे। तब नरक धर्मराजके पास जाकर कहेंगे कि पापियोंसे हमारे स्थान भर गये हैं। हे सुरोत्तम! जिस तरह हम लोग प्राकृतरूपमें हो जायँ आप वैसा उपाय करें। यह सुनकर धर्मराज चित्रगुप्तके साथ कलियुगके संध्याकालमें ब्रह्माके पास जायेंगे और परमेष्ठी पितामह उनके साथ क्षीरसागर जायेंगे तथा वहाँ जगन्नाथ देवाधिदेव वृषाकपिकी पूजा कर सांख्यशास्त्रमय स्तोत्रोंसे स्तुति करेंगे एवं रक्षाकी प्रार्थना करेंगे। इसपर वे कहेंगे—देवगणो! लोककल्याणके लिये यह कश्यप सम्भल ग्राममें जन्म लेगा और वहाँ इसका नाम होगा विष्णुयशा। इसकी पत्नीका नाम होगा विष्णुकीर्ति। विष्णुयशा कृष्णलीलाके ग्रन्थ मनुष्योंको सुनायेगा किंतु वे महाधूर्त नारकीय प्राणी उसे भयंकर दृढ़ बन्धनमें बाँधकर कारागारमें डाल देंगे, तब विष्णुकीर्तिसे संसारका कल्याण करनेवाले पूर्ण भगवान् नारायण मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीके दिन

अन्धकारपूर्ण रात्रिमें कल्किरूपमें उत्पन्न होंगे तथा ब्रह्माण्डके कल्याणके लिये सभी देवताओंका भी प्रादुर्भाव होगा और वे सभी देवता तथा ग्रह परमेश्वरकी स्तुति करेंगे। तब भगवान् कल्कि उन्हें कल्पों, मन्वन्तरों, अवतार-कथाओं, सनातन राधा-कृष्णकी

महिमा तथा कर्मभूमि और सभी लोकों एवं ग्रहोंकी स्थितिको बतलायेंगे। इसी प्रसंगमें श्वेतवाराहकल्पकी कथा भी कहेंगे। तदनन्तर प्रसन्न होकर पुनः प्रणाम कर वे सभी देवगण अपने-अपने स्थानोंको चले जायेंगे। (अध्याय २४-२५)

भगवान् कल्किकी विजय, सत्ययुगकी उत्पत्ति-कथा, अक्षयनवमीमें आँवलेके पूजनका माहात्म्य, अयोध्यामें महाराज वैवस्वतका प्रतिष्ठित होना तथा प्रतिसर्गपर्वका उपसंहार

व्यासजीने कहा—अनन्तर पुराणपुरुषसे उत्पन्न भगवान् कल्कि खड्ग, कवच और ढाल धारण कर दिव्य अश्वपर आरूढ हो दैत्यस्वरूप म्लेच्छोंको मारकर योगमार्गिका आश्रय लेंगे और सोलह हजार वर्षोंतक उनकी योगाग्रिसे तपायी गयी कर्मभूमि भस्मीभूत होकर निर्जीव हो जायगी। अनन्तर प्रलयंकर मेघ उत्पन्न होकर प्रलयकारी वृष्टि करेंगे और भूमि उस जलमें निमग्न हो जायगी। उस समय घोर कलियुग बलिके पास चला जायगा। कलियुगके जानेके बाद भगवान् हरि पुनः कर्मभूमिको रमणीय स्थलमयी करके यज्ञोंसे देवोंका यजन करेंगे। यज्ञभाग ग्रहण करके वे देवगण शक्तिसम्पन्न हो जायेंगे और वैवस्वतमनुके पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कहेंगे। अनन्तर कल्किके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, जानुसे वैश्य और पैरसे शूद्र वर्ण उत्पन्न होंगे। ये ब्राह्मणादि क्रमशः गौर, रक्त, पीत एवं श्यामवर्णके होंगे और देवीसे शक्ति प्राप्त करके अनेक पुत्र उत्पन्न करेंगे। उस समय मनुष्य जाति-धर्मका आश्रय लेकर देवताओंका यजन करेंगे। तब धीमान् वैवस्वत विष्णुरूप उस कल्कि हरिको नमस्कार कर उनकी आज्ञासे अयोध्यामें राजपद ग्रहण करेंगे। उनकी इच्छासे जो पुत्र उत्पन्न होगा उसका नाम होगा इक्ष्वाकु। राजा इक्ष्वाकु पिता वैवस्वतके राज्यको प्राप्त कर दिव्य सौ वर्षकी आयु प्राप्त कर अन्तमें

शरीरका परित्याग कर देंगे।

जब भगवान् कल्कि ब्रह्मसत्र करेंगे, तब अङ्गोंके साथ चारों वेद मूर्तिमान् हो जायेंगे। अष्टादश पुराणोंके साथ वे वहाँ आयेंगे और वे सभी पुराणपुरुषके अंशभूत कल्किकी स्तुति करेंगे।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिमें गुरुवारको एक श्रेष्ठ पुरुष यज्ञकुण्डसे उत्पन्न होगा। सत्यमार्गिका प्रदर्शक वह सत्ययुग नामसे कहा जायगा। ब्रह्मादि देवगण नवमी तिथिमें इस रमणीय पुरुषके आविर्भाविको देखकर उस तिथिका, समस्त कर्मोंका क्षय करनेवाली तिथिके रूपमें वर्णन करेंगे। इस तिथिको जो मनुष्य आँवला-वृक्षके नीचे जिन देवताओंकी पूजा करेगा वे देवता उसके वशमें हो जायेंगे। यह नवमी अक्षयनवमी और युगादि नवमीके नामसे प्रसिद्ध है। यह लोकमङ्गलदायिनी और सभी पापोंका नाश करनेवाली है। आँवलाके वृक्षके नीचे जो मालती और तुलसीको स्थापित कर विधिपूर्वक शालग्रामकी पूजा करता है, वह पितरोंका तृप्तिकारक एवं जीवन्मुक्त होता है। आँवला-वृक्षके नीचे जो श्राद्ध करता है, वह हजारों गया-श्राद्ध करनेका फल प्राप्त करता है और जो व्यक्ति वहाँपर होम करता है, उसे हजारों यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है तथा वह मरनेके बाद अनेक कुटुम्बियोंके साथ स्वर्ग प्राप्त करता है। कल्किदेवता प्रसन्न होकर

देवताओंके प्रति 'ऐसा ही हो' यह कहेंगे, यह कहकर भगवान् कल्कि देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान होकर सुषुप्त हो जायेंगे।

भगवान् कल्किके जानेके बाद दुःखित भगवती कर्मभूमि विरहग्रिसे संतप्त बीजोंका नाश कर देंगी। उस समय पातालनिवासी महान् दैत्यगण प्रह्लादके साथ अपने वाहनोंपर आरूढ हो अनेक अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर देवताओंके पास गरजते हुए जायेंगे। तब इन्द्र आदि तीनोंसे देवगण अपने आयुधोंको ग्रहण कर उनसे भयंकर युद्ध करेंगे। दिव्य एक वर्षतक उनका भयंकर युद्ध होगा। मरे हुए दैत्योंको शुक्राचार्य जिला देंगे, तब थके हुए देवगण युद्ध छोड़कर क्षीरसागर चले जायेंगे, जहाँ साक्षात् हरि विराजमान रहते हैं। देवगण उनकी स्तुति करेंगे। उनकी स्तुतिसे वे भगवान् देवताओंके कल्याणके लिये अपने पूर्वार्थसे हंसरूप बना लेंगे। वे हंसरूपी

साक्षात् हरि सैकड़ों सूर्यकी कान्तिके समान प्रभावशाली होंगे। प्रह्लादादि प्रमुख दैत्यगण एवं शुक्राचार्यको वे अपने तेजसे तस कर देंगे। तब पराजित दैत्यगण पृथ्वीको छोड़कर दुःखित हो वितललोकमें चले जायेंगे। महादेवसे रक्षित वे सभी देवगण निर्भय, निरुपद्रव हो जायेंगे और पृथ्वीपर वैवस्वतके पुत्रका अभिषेक करेंगे। वे इक्ष्वाकु दिव्य सौ वर्षकी आयुवाले होंगे, उस समय मनुष्यकी आयु चार सौ वर्षकी होगी। धर्मके चार पाद हैं—ज्ञान, ध्यान, शम तथा दम। आत्मज्ञान ज्ञान कहलाता है। अध्यात्मचिन्तन ध्यान कहलाता है। मनकी स्थिरता शम है और इन्द्रियोंका निग्रह करना दम है। चार लाख बत्तीस हजार वर्ष धर्मका एक पाद कहा जाता है। जब धर्मकी वृद्धि होती है, तब आयुकी भी वृद्धि होती है।

(अध्याय २६)

॥ प्रतिसर्गपर्व, चतुर्थ खण्ड सम्पूर्ण ॥
॥ भविष्यपुराणान्तर्गत प्रतिसर्गपर्व सम्पूर्ण ॥



॥ ३० ॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

उत्तरपर्व

महाराज युधिष्ठिरके पास व्यासादि महर्षियोंका आगमन एवं उनसे
उपदेश करनेके लिये युधिष्ठिरकी प्रार्थना

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति
क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्वायते ।
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयै-
स्तेनैषा जगति प्रसिद्धिमगमद्देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनखञ्चोत्त्वाभिरुद्देलितः
शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिर्बुधमनस्युच्छृङ्खलं खेलति ॥

(उत्तरपर्व १ । १-२)

‘जिनकी प्रसन्नताके बिना ब्रह्मा भी एक क्षुद्रकार्यका सम्पादन नहीं कर सकते और जिनके चरणोंके एक बार आश्रय लेनेसे देवेन्द्रका भाग्य चमक उठा तथा उन्हें अखण्ड राजलक्ष्मीकी प्राप्ति हो गयी, वे भगवान् गणपतिदेव आपलोगोंका कल्याण करें। जो ब्रह्माके जिह्वाग्र-भागपर निरन्तर सिंहासनासीन रहती हैं और जिनके चरणनखकी चन्द्रिकासे प्रकाशित होकर शब्दब्रह्मका समुद्र विद्वानोंके हृदयपर नृत्य करता है, वे भगवती सरस्वती आप सबका अनन्त कल्याण करें।’

भगवान् शंकरका ध्यान कर, भगवान् (विष्णु) कृष्णकी स्तुति कर और ब्रह्माजीको नमस्कार कर तथा सूर्यदेव एवं अग्निदेवको प्रणाम कर इस ग्रन्थका वाचन करना चाहिये*।

एक बार धर्मके पुत्र धर्मवेत्ता महाराज युधिष्ठिरको देखनेके लिये व्यास, मार्कण्डेय, माण्डव्य, शाणिडल्य, गौतम, शातातप, पराशर, भरद्वाज, शौनक, पुलस्त्य, पुलह तथा देवर्षि नारद आदि श्रेष्ठ ऋषिगण पधारे।

उन महान् तपस्वी एवं वेदवेदाङ्गपारंगत ऋषियोंको देखकर भक्तिमान् राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ प्रसन्नचित्त हो सिंहासनसे उठकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा पुरोहित धौम्यको आगे कर उनका अभिवादन किया और आचमन एवं पाद्यादिसे उनकी पूजा कर आसन प्रदान किया। उन तपस्वियोंके बैठनेपर विनयसे अवनत हो महाराज युधिष्ठिरने श्रीवेदव्यासजीसे कहा—

‘भगवन्! आपके प्रसादसे मैंने यह महान् राज्य प्राप्त किया तथा दुर्योधनादिको परास्त किया। किंतु जैसे रोगीको सुख प्राप्त होनेपर भी वह सुख उसके लिये सुखकर नहीं होता, वैसे ही अपने बन्धु-बान्धवोंको मारकर यह राज्य-सुख मुझे प्रिय नहीं लग रहा है। जो आनन्द वनमें निवास करते हुए कन्द-मूल तथा फलोंके भक्षणसे प्राप्त होता है, वह सुख शत्रुओंको जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य प्राप्त करनेपर भी नहीं होता। जो भीष्मपितामह हमारे गुरु, बन्धु, रक्षक, कल्याण और कवचस्वरूप थे, उन्हें भी मुझ-जैसे पापीने राज्यके लोभसे मार डाला। मैंने बहुत विवेकशून्य कार्य किया है। मेरा मन पाप-पङ्कमें लिस हो गया है। भगवन्! आप कृपाकर अपने ज्ञानरूपी जलसे मेरे अज्ञान तथा पाप-पङ्कको धोकर सर्वथा निर्मल बना दीजिये और अपने प्रज्ञारूपी दीपकसे मेरा धर्मरूपी मार्ग प्रशस्त कीजिये। धर्मके संरक्षक ये मुनिगण कृपाकर यहाँ आये हुए हैं। गङ्गापुत्र महाराज भीष्मपितामहसे मैंने

* शिवं ध्यात्वा हरि स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम् । चित्रभानुं च भानुं च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत् ॥ (उत्तरपर्व १ । ७)

अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्रका विस्तारसे श्रवण किया है। उन शान्तनुपुत्र श्रीष्टके स्वर्गलोक चले जानेपर अब श्रीकृष्ण और आप ही मैत्री एवं बन्धुताके कारण मेरे मार्गदर्शक हैं।'

व्यासजी बोले—राजन्! आपको करने योग्य सभी बातें मैंने, पितामह श्रीष्टने, महर्षि मार्कण्डेय, धौम्य और महामुनि लोमशने बता दी हैं। आप धर्मज्ञ, गुणी, मेधावी तथा धीमान् पुरुषोंके समान

हैं, धर्म और अधर्मके निश्चयमें कोई भी बात आपको अज्ञात नहीं है। हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ उपस्थित रहते हुए धर्मका उपदेश करनेका साहस कौन कर सकता है? क्योंकि ये ही संसारकी सृष्टि, स्थिति तथा पालन करते हैं एवं प्रत्यक्षदर्शी हैं। अतः ये ही आपको उपदेश करेंगे। इतना कहकर तथा पाण्डवोंकी पूजा ग्रहण कर बादरायण व्यासजी तपोवन चले गये। (अध्याय १)

भुवनकोशका संक्षिप्त वर्णन

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह जगत् किसमें प्रतिष्ठित है? कहाँसे उत्पन्न होता है? इसका किसमें लय होता है? इस विश्वका हेतु क्या है? पृथ्वीपर कितने द्वीप, समुद्र तथा कुलाचल हैं? पृथिवीका कितना प्रमाण है? कितने भुवन हैं? इन सबका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जो पूछा है, वह सब पुराणका विषय है, किंतु संसारमें घूमते हुए मैंने जैसा सुना और जो अनुभव किया है, उनका संक्षेपमें मैं वर्णन करता हूँ। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन पाँच लक्षणोंसे समन्वित पुराण कहा जाता है*।

अनघ! आपका प्रश्न इन पाँच लक्षणोंमेंसे सर्ग (सृष्टि)-के प्रति ही विशेषरूपसे सम्बद्ध है, इसलिये इसका मैं संक्षेपमें वर्णन करता हूँ।

अव्यक्त-प्रकृतिसे महत्तत्त्व-बुद्धि उत्पन्न हुई। महत्तत्त्वसे त्रिगुणात्मक अहंकार उत्पन्न हुआ, अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतन्मात्राओंसे पाँच महाभूत और इन भूतोंसे चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है। स्थावर-जङ्गमात्मक अर्थात् चराचर जगत्के नष्ट होनेपर जलमूर्तिमय विष्णु रह जाते हैं अर्थात् सर्वत्र जल परिव्याप्त रहता है, उससे भूतात्मक

अण्ड उत्पन्न हुआ। कुछ समयके बाद उस अण्डके दो भाग हो गये। उसमें एक खण्ड पृथिवी और दूसरा भाग आकाश हुआ। उसमें जरायुसे मेरु आदि पर्वत हुए। नाडियोंसे नदी आदि हुई। मेरु पर्वत सोलह हजार योजन भूमिके अंदर प्रविष्ट है और चौरासी हजार योजन भूमिके ऊपर है, बत्तीस हजार योजन मेरुके शिखरका विस्तार है। कमलस्वरूप भूमिकी कर्णिका मेरु है। उस अण्डसे आदिदेवता आदित्य उत्पन्न हुए, जो प्रातःकालमें ब्रह्मा, मध्याह्नमें विष्णु और सायंकालमें रुद्ररूपसे अवस्थित रहते हैं। एक आदित्य ही तीन रूपोंको धारण करते हैं। ब्रह्मासे मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और नारद—ये नौ मानस-पुत्र उत्पन्न हुए। पुराणोंमें इन्हें ब्रह्मपुत्र कहा गया है। ब्रह्माके दक्षिण अँगूठेसे दक्ष उत्पन्न हुए और बायें अँगूठेसे प्रसूति उत्पन्न हुई। दोनों दम्पति अँगूठेसे ही उत्पन्न हुए। उन दोनोंसे उत्पन्न हर्यश्च आदि पुत्रोंको देवर्षि नारदने सृष्टिके लिये उद्यत होनेपर भी सृष्टिसे विरत कर दिया। प्रजापति दक्षने अपने पुत्र हर्यश्चोंको सृष्टिसे विमुख देखकर सत्या आदि नामवाली साठ कन्याओंको उत्पन्न किया और उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको,

* सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ (उत्तरपर्व २। ११)

सत्ताईस चन्द्रमाको, दो बाहुपुत्रको, दो कृशाश्वको, चार अरिष्टनेमिको, एक भृगुको और एक कन्या शंकरको प्रदान किया। फिर इनसे चराचर जगत् उत्पन्न हुआ। मेरु पर्वतके तीन शृङ्गोंपर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी क्रमशः वैराज, वैकुण्ठ तथा कैलास नामक तीन पुरियाँ हैं। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि दिव्यपालोंकी नगरी है। हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गवान्—ये सात जम्बूद्वीपमें कुल-पर्वत हैं। जम्बूद्वीप लक्ष्य योजन प्रमाणवाला है। इसमें नौ वर्ष हैं। जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च, शाल्मलि, गोमेद* तथा पुष्कर—ये सात द्वीप हैं। ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे परिवेषित हैं। क्षार, दुग्ध, इक्षुरस, सुरा, दधि, घृत और स्वादिष्ट जलके सात समुद्र हैं। सातों समुद्र और सातों द्वीप एककी अपेक्षा एक द्विगुण हैं। भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये देवताओंके निवास-स्थान हैं। सात पाताललोक हैं—अतल, महातल, भूमितल, सुतल, वितल, रसातल तथा तलातल। इनमें हिरण्याक्ष आदि दानव और वासुकि आदि नाग निवास करते हैं। हे युधिष्ठिर! सिद्ध और ऋषिगण भी इनमें निवास करते हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये छः मनु व्यतीत हो गये हैं, इस समय वैवस्वत मनु वर्तमान हैं। उन्हींके पुत्र और पौत्रोंसे यह पृथिवी परिव्याप्त है। बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार—ये तैनीस देवता वैवस्वत-

मन्वन्तरमें कहे गये हैं। विप्रचित्तिसे दैत्यगण और हिरण्याक्षसे दानवगण उत्पन्न हुए हैं।

द्वीप और समुद्रोंसे समन्वित भूमिका प्रमाण पचास कोटि योजन है। नौकाकी तरह यह भूमि जलपर तैर रही है। इसके चारों ओर लोकालोक-पर्वत हैं। नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक और नित्य—ये चार प्रकारके प्रलय हैं। जिससे इस संसारकी उत्पत्ति होती है। प्रलयके समय उसीमें इसका लय हो जाता है। जिस प्रकार ऋतुके अनुकूल वृक्षोंके पुष्प, फल और फूल उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार संसार भी अपने समयसे उत्पन्न होता है और अपने समयसे लीन होता है। सम्पूर्ण विश्वके लीन होनेके बाद महेश्वर वेद-शब्दोंके द्वारा पुनः इसका निर्माण करते हैं। हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि कर्मोंसे जीव अनेक योनियोंको इस संसारमें प्राप्त करते हैं। भूमि जलसे, जल तेजसे, तेज वायुसे, वायु आकाशसे वेष्टित है। आकाश अहंकारसे, अहंकार महत्त्वसे, महत्त्व प्रकृतिसे और प्रकृति उस अविनाशी पुरुषसे परिव्याप्त है। इस प्रकारके हजारों अण्ड उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। सुर, नर, किन्नर, नाग, यक्ष तथा सिद्ध आदिसे समन्वित चराचर जगत् नारायणकी कुक्षिमें अवस्थित है। निर्मल बुद्धि तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनिगण इसके बाह्य और आभ्यन्तरस्वरूपको देखते हैं अथवा परमात्माकी माया ही उन्हें जानती है।

(अध्याय २)

* अन्य मत्स्य आदि सभी पुराणोंके अनुसार गोमेद आठवाँ है, यहाँ प्लक्ष नामक द्वीप छूट गया है।

नारदजीको विष्णु-मायाका दर्शन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह विष्णुभगवान्की माया किस प्रकारकी है? जो इस चराचर जगत्को व्यामोहित करती है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! किसी समय नारदमुनि श्वेतद्वीपमें नारायणका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ श्रीनारायणका दर्शन कर और उन्हें प्रसन्न-मुद्रामें देखकर उनसे जिज्ञासा की। भगवन्! आपकी माया कैसी है? कहाँ रहती है? कृपाकर उसका रूप मुझे दिखायें।

भगवान्ने हँसकर कहा—नारद! मायाको देखकर क्या करोगे? इसके अतिरिक्त जो कुछ चाहते हो वह माँगो।

नारदजीने कहा—भगवन्! आप अपनी मायाको ही दिखायें, अन्य किसी वरकी अभिलाषा नहीं है। नारदजीने बार-बार आग्रह किया।

नारायणने कहा—अच्छा, आप हमारी माया देखें। यह कहकर नारदकी अँगुली पकड़कर श्वेतद्वीपसे चले। मार्गमें आकर भगवान्ने एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया। शिखा, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, मृगचर्मको धारण कर कुशाकी पवित्री हाथोंमें पहनकर वेद-पाठ करने लगे और अपना नाम उन्होंने यज्ञशर्मा रख लिया। इस प्रकारका रूप धारणकर नारदके साथ जम्बूद्वीपमें आये। वे दोनों वेत्रवती नदीके तटपर स्थित विदिशा नामक नगरीमें गये। उस विदिशा नगरीमें धन-धान्यसे समृद्ध उद्यमी, गाय, भैंस, बकरी आदि पशु-पालनमें तत्पर, कृषिकार्यको भलीभाँति करनेवाला सीरभद्र नामका एक वैश्य निवास करता था। वे दोनों सर्वप्रथम उसीके घर गये। उसने इन विशुद्ध ब्राह्मणोंका आसन, अर्घ्य आदिसे आदर-सत्कार किया। फिर पूछा—‘यदि आप उचित समझें तो अपनी रुचिके अनुसार मेरे यहाँ अन्नका भोजन करें।’ यह सुनकर

वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान्ने हँसकर कहा—‘तुमको अनेक पुत्र-पौत्र हों और सभी व्यापार एवं खेतीमें तत्पर रहें। तुम्हारी खेती और पशु-धनकी नित्य वृद्धि हो—’यह मेरा आशीर्वाद है। इतना कहकर वे दोनों वहाँसे आगे गये। मार्गमें गङ्गाके तटपर वेणिका नामके गाँवमें गोस्वामी नामका एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था, वे दोनों उसके पास पहुँचे। वह अपनी खेतीकी चिन्तामें लगा था। भगवान्ने उससे कहा—‘हम बहुत दूरसे आये हैं, अब हम तुम्हारे अतिथि हैं, हम भूखे हैं, हमें भोजन कराओ।’ उन दोनोंको साथमें लेकर वह ब्राह्मण अपने घरपर आया। उसने दोनोंको स्नान-भोजन आदि कराया, अनन्तर सुखपूर्वक उत्तम शश्यापर शयन आदिकी व्यवस्था की। प्रातः उठकर भगवान्ने ब्राह्मणसे कहा—‘हम तुम्हारे घरमें सुखपूर्वक रहे, अब जा रहे हैं। परमेश्वर करे कि तुम्हारी खेती निष्फल हो, तुम्हारी संततिकी वृद्धि न हो—’इतना कहकर वे वहाँसे चले गये।

मार्गमें नारदजीने पूछा—भगवन्! वैश्यने आपकी कुछ भी सेवा नहीं की, किंतु उसको आपने उत्तम वर दिया। इस ब्राह्मणने श्रद्धासे आपकी बहुत सेवा की, किंतु उसको आपने आशीर्वादके रूपमें शाप ही दिया—ऐसा आपने क्यों किया?

भगवान्ने कहा—नारद! वर्षभर मछली पकड़नेसे जितना पाप होता है, उतना ही एक दिन हल जोतनेसे होता है। वह सीरभद्र वैश्य अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ इसी कृषि-कार्यमें लगा हुआ है, वह नरकमें जायगा, अतः हमने न तो उसके घरमें विश्राम किया और न भोजन ही किया। इस ब्राह्मणके घरमें भोजन और विश्राम किया। इस ब्राह्मणको ऐसा आशीर्वाद दिया है कि जिससे यह जगज्जालमें न फँसकर मुक्तिको प्राप्त करे।

इस प्रकार मार्गमें बातचीत करते हुए वे दोनों कान्यकुञ्ज देशके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक अतिशय रम्य सरोवर देखा। उस सरोवरकी शोभा देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

भगवान्‌ने कहा—नारद! यह उत्तम तीर्थस्थान है। इसमें स्नान करना चाहिये, फिर कन्नौज नामके नगरमें चलेंगे। इतना कहकर भगवान् उस सरोवरमें स्नानकर शीघ्र ही बाहर आ गये।

तदनन्तर नारदजी भी स्नान करनेके लिये सरोवरमें प्रविष्ट हुए। स्नान सम्पन्न कर जब वे बाहर निकले, तब उन्होंने अपनेको दिव्य कन्याके रूपमें देखा। उस कन्याके विशाल नेत्र थे। चन्द्रमाके समान मुख था, वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी कन्या दिव्य शुभलक्षणोंसे सम्पन्न थी। अपनी सुन्दरतासे संसारको व्यामोहित कर रही थी। जिस प्रकार समुद्रसे सम्पूर्ण रूपकी निधान लक्ष्मी निकली थीं, उसी प्रकार सरोवरसे स्नानके बाद नारदजी स्त्रीके रूपमें निकले। भगवान् अन्तर्धान हो गये। वह स्त्री भी अपने झुंडसे भ्रष्ट अकेली हरिणीकी तरह भयभीत होकर इधर-उधर देखने लगी। इसी समय अपनी सेनाओंके साथ राजा तालध्वज वहाँ आया और उस सुन्दरीको देखकर सोचने लगा कि यह कोई देवस्त्री है या अप्सरा? फिर बोला—‘बाले! तुम कौन हो, कहाँसे आयी हो?’ उस कन्याने कहा—‘मैं माता-पितासे रहित और निराश्रय हूँ। मेरा विवाह भी नहीं हुआ है, अब आपकी ही शरणमें हूँ।’ इतना सुनते ही प्रसन्नचित हो राजा उसे घोड़ेपर बैठाकर राजधानी पहुँचा और विधिपूर्वक उससे विवाह कर लिया। तेरहवें वर्षमें वह गर्भवती हुई। समय पूर्ण होनेपर उससे एक तुम्बी (लौकी) उत्पन्न हुई, जिसमें पचास छोटे-छोटे दिव्य शरीरवाले

युद्धमें कुशल बलशाली बालक थे, उसने उनको घृतकुण्डमें छोड़ दिया, कुछ दिन बाद पुत्र और पौत्रोंकी खूब वृद्धि हो गयी। वे महान् अहंकारी, परस्पर-विरोधी और राज्यकी कामना करनेवाले थे। अनन्तर राज्यके लोभसे कौरव और पाण्डवोंकी तरह परस्पर युद्ध करके समुद्रकी लहरोंकी भाँति लड़ते हुए वे सभी नष्ट हो गये। वह स्त्री अपने वंशका इस प्रकार संहार देखकर छाती पीटकर करुणापूर्वक विलाप करती हुई मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। राजा भी शोकसे पीड़ित हो रोने लगा।

इसी समय ब्राह्मणका रूप धारण कर भगवान् विष्णु द्विजोंके साथ वहाँ आये और राजा तथा रानीको उपदेश देने लगे—‘यह विष्णुकी माया है। तुमलोग व्यर्थ ही रो रहे हो। सम्पूर्ण प्राणियोंकी अन्तमें यही स्थिति होती है। विष्णुमाया ही ऐसी है कि उसके द्वारा सैकड़ों चक्रवर्ती और हजारों इन्द्र उसी तरह नष्ट कर दिये गये हैं जैसे दीपकको प्रचण्ड वायु विनष्ट कर देती है। समुद्रको सुखानेके लिये भूमिको पीसकर चूर्ण कर डालनेकी तथा पर्वतको पीठपर उठानेकी सामर्थ्य रखनेवाले पुरुष भी कालके कराल मुखमें चले गये हैं। त्रिकूट पर्वत जिसका दुर्ग था, समुद्र जिसकी खाई थी, ऐसी लंका जिसकी राजधानी थी, राक्षसगण जिसके योद्धा थे, सभी शास्त्रों और वेदोंको जाननेवाले शुक्राचार्य जिसके लिये मन्त्रणा करते थे, कुबेरके धनको भी जिसने जीत लिया था, ऐसा रावण भी दैववश नष्ट हो गया*। युद्धमें, घरमें, पर्वतपर, अग्निमें, गुफामें अथवा समुद्रमें कहीं भी कोई जाय, वह कालके कोपसे नहीं बच सकता। भावी होकर ही रहती है। पातालमें जाय, इन्द्रलोकमें जाय, मेरु पर्वतपर चढ़ जाय, मन्त्र, औषध, शस्त्र आदिसे

* दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधा धनदाच्च वित्तम्।

शास्त्रं च यस्योशनसा प्रणीतं स रावणो दैववशाद् विपन्नः॥ (उत्तरपर्व ४। ९३)

भी कितनी भी अपनी रक्षा करे, किंतु जो होना होता है, वह होता ही है—इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है। मनुष्योंके भाग्यानुसार जो भी शुभ और अशुभ होना है, वह अवश्य ही होता है। हजारों उपाय करनेपर भी भावी किसी भी प्रकार नहीं टल सकती^१। कोई शोक-विद्वल होकर आँसू टपकाता है, कोई रोता है, कोई बड़ी प्रसन्नतासे नाचता है, कोई मनोहर गीत गाता है, कोई धनके लिये अनेक उपाय करता है, इस तरह अनेक प्रकारके जालकी रचना करता रहता है, अतः यह संसार एक नाटक है और सभी प्राणिवर्ग उस नाटकके पात्र हैं।'

इतना उपदेश देकर भगवान् ने रानीका हाथ पकड़कर कहा—‘नारदजी ! तुमने विष्णुकी माया देख ली। उठो ! अब स्नानकर अपने पुत्र-पौत्रोंको अर्घ्य देकर और्ध्वदैहिक कृत्य करो। यह माया विष्णुने स्वयं निर्मित की है।’ इतना कहकर उसी

पुण्यतीर्थमें नारदको स्नान कराया। स्नान करते ही स्त्री-रूपको छोड़कर नारदमुनिने अपना रूप धारण कर लिया। राजाने भी अपने मन्त्री और पुरोहितोंके साथ देखा कि जटाधारी, यज्ञोपवीतधारी, दण्ड-कमण्डलु लिये, वीणा धारण किये हुए, खड़ाऊँके ऊपर स्थित एक तेजस्वी मुनि हैं, यह मेरी रानी नहीं है। उसी समय भगवान् नारदका हाथ पकड़कर आकाश-मार्गसे क्षणमात्रमें श्वेतद्वीप आ गये।

भगवान् ने नारदसे कहा—देवर्षि नारदजी ! आपने मेरी माया देख ली। नारदके देखते-देखते ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये। देवर्षि नारदजीने भी हँसकर उन्हें प्रणाम किया और भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर तीनों लोकोंमें घूमने लगे। महाराज ! इस विष्णुमायाका हमने संक्षेपमें वर्णन किया। इस मायाके प्रभावसे संसारके जीव पुत्र, स्त्री, धन आदिमें आसक्त हो रोते-गाते हुए अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं। (अध्याय ३)

संसारके दोषोंका वर्णन

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! यह जीव किस कर्मसे देवता, मनुष्य और पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है ? बालभावमें कैसे पुष्ट होता है और किस कर्मसे युवा होता है ? किस कर्मके फलस्वरूप अतिशय भयंकर दारुण गर्भवासका कष्ट सहन करता है ? गर्भमें क्या खाता है ? किस कर्मसे रूपवान्, धनवान्, पण्डित, पुत्रवान्, त्यागी और कुलीन होता है ? किस कर्मसे रोगरहित जीवन व्यतीत करता है ? कैसे सुखपूर्वक मरता है ? शुभ और अशुभ फलका भोग कैसे करता

है ? हे विमलमते ! ये सभी विषय मुझे बहुत ही गहन मालूम होते हैं ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! उत्तम कर्मोंसे देवयोनि, मिश्रकर्मोंसे मनुष्ययोनि और पाप-कर्मोंसे पशु आदि योनियोंमें जन्म होता है। धर्म और अधर्मके निश्चयमें श्रुति ही प्रमाण है। पापसे पापयोनि और पुण्यसे पुण्ययोनि प्राप्त होती है^२।

ऋतुकालके समय दोषरहित शुक्र वायुसे प्रेरित स्त्रीके रक्तके साथ मिलकर एक हो जाता है। शुक्रके साथ ही कर्मोंके अनुसार प्रेरित जीवयोनिमें

१-पातालमाविशतु यातु सुरेन्द्रलोकमारोहतु क्षितिधराधिपतिं सुमेरुम्।

मन्त्रौषधप्रहरैश्च करोतु रक्षां यद्वाति तद्वति नाथ विभावितोऽस्मि ॥ (उत्तरपर्व ४। ९५)

२-शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिश्रमनुपतां ब्रजेत् । अशुभैः कर्मभिर्जन्मत्स्तिर्यग्योनिषु जायते ॥

प्रमाणं श्रुतिरेवात्र धर्माधर्मविनिश्चये । पापं पापेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा ॥ (उत्तरपर्व ४। ६-७)

प्रविष्ट होता है। एक दिनमें शुक्र और शोणित मिलकर कलल बनता है। पाँच रातमें वह कलल बुद्धि हो जाता है। सात रातमें बुद्धि मांसपेशी बन जाता है। चौदह दिनोंमें वह मांसपेशी मांस और रुधिरसे व्यास होकर दृढ़ हो जाता है। पचीस दिनोंमें उसमें अङ्गुर निकलते हैं। एक महीनेमें उन अङ्गुरोंके पाँच-पाँच भाग—ग्रीवा, सिर, कन्धे, पृष्ठवंश तथा उदर हो जाते हैं। चार मासमें वही अङ्गुरोंका भाग अँगुली बन जाता है। पाँच महीनेमें मुख, नासिका और कान बनते हैं। छ: महीनेमें दन्तपंक्तियाँ, नख और कानके छिद्र बनते हैं। सातवें महीनेमें गुदा, लिङ्ग अथवा योनि और नाभि बनते हैं, संधियाँ उत्पन्न होती हैं और अङ्गोंमें संकोच भी होता है। आठवें महीनेमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब पूर्ण हो जाते हैं और सिरमें केश भी आ जाते हैं। माताके भोजनका रस नाभिके द्वारा बालकके शरीरमें पहुँचता रहता है, उसीसे उसका पोषण होता है। तब गर्भमें स्थित जीव सब सुख-दुःख समझता है और यह विचार करता है कि 'मैंने अनेक योनियोंमें जन्म लिया और बारम्बार मृत्युके अधीन हुआ तथा अब जन्म होते ही फिर संसारके बन्धनको प्राप्त करूँगा।' इस प्रकार गर्भमें विचारता और मोक्षका उपाय सोचता हुआ जीव अतिशय दुःखी रहता है। पर्वतके नीचे दब जानेसे जितना क्लेश जीवको होता है, उतना ही जरायुसे वैष्टित अर्थात् गर्भमें होता है। समुद्रमें ढूबनेसे जो दुःख होता है, वही दुःख गर्भके जलमें भी होता है, तस लोहेके खम्भेसे बाँधनेमें जीवको जो क्लेश होता है वही गर्भमें जठराग्निके तापसे होता है। तपायी हुई सूझोंसे बेधनेपर जो व्यथा होती है, उससे आठ गुना अधिक गर्भमें जीवको कष्ट होता है। जीवोंके लिये गर्भवाससे अधिक कोई दुःख नहीं है। उससे भी कोटि गुना दुःख जन्म लेते

समय होता है, उस दुःखसे मूर्छा भी आ जाती है। प्रबल प्रसववायुकी प्रेरणासे जीव गर्भके बाहर निकलता है। जिस प्रकार कोल्हूमें पीडन करनेसे तिल निस्सार हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर भी योनियन्त्रके पीडनसे निस्तत्त्व हो जाता है। मुखरूप जिसका द्वार है, दोनों ओष्ठ कपाट हैं, सभी इन्द्रियाँ गवाक्ष अर्थात् झरोखे हैं, दाँत, जिह्वा, गला, वात, पित्त, कफ, जरा, शोक, काम, क्रोध, तृष्णा, राग, द्वेष आदि जिसमें उपकरण हैं, ऐसे इस देहरूप अनित्य गृहमें नित्य आत्माका निवास-स्थान है। शुक्र-शोणितके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है और नित्य ही मूत्र, विष्ठा आदिसे भरा रहता है। इसलिये यह अत्यन्त अपवित्र है। जिस प्रकार विष्ठासे भरा हुआ घट बाहर धोनेसे शुद्ध नहीं होता, इसी प्रकार यह देह भी स्नान आदिके द्वारा पवित्र नहीं हो सकता। पञ्चग्रव्य आदि पवित्र पदार्थ भी इसके संसर्गसे अपवित्र हो जाते हैं। इससे अधिक और कौन अपवित्र पदार्थ होगा। उत्तम भोजन, पान आदि देहके संसर्गसे मलरूप हो जाते हैं, फिर देहकी अपवित्रताका क्या वर्णन करें। देहको बाहरसे जितना भी शुद्ध करें, भीतर तो कफ, मूत्र, विष्ठा आदि भरे ही रहेंगे। सुगन्धित तेल देहमें मलते रहें, परंतु कभी इस देहकी मलिनता कम नहीं होती। यह आश्वर्य है कि मनुष्य अपने देहका दुर्गन्ध सूँघकर, नित्य अपना मल-मूत्र देखकर और नासिकाका मल निकालकर भी इस देहसे विरक्त नहीं होता और उसे देहसे घृणा उत्पन्न नहीं होती। यह मोहका ही प्रभाव है कि शरीरके दोष और दुर्गन्ध देख-सूँघकर भी इससे ग्लानि नहीं होती। यह शरीर स्वभावतः अपवित्र है। यह केलेके वृक्षकी भाँति केवल त्वक् आदिसे आवृत और निस्सार है। जन्म होते ही बाहरकी वायुके स्पर्शसे पूर्वजन्मोंका ज्ञान नष्ट

हो जाता है और पुनः संसारके व्यवहारमें आसक्त हो अनेक दुष्कर्ममें रत हो जाता है और अपनेको तथा परमेश्वरको भूल जाता है। आँख रहते हुए भी नहीं देख पाता, बुद्धि रहते हुए भी भले-बुरेका निर्णय नहीं कर पाता। राग तथा लोभ आदिके वशीभूत होकर वह संसारमें दुःख प्राप्त करता रहता है। सूखे मार्गमें भी पैर फिसलते हैं, यह सब मोहकी ही महिमा है। दिव्यदर्शी महर्षियोंने इस गर्भका वृत्तान्त विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। इसे सुनकर भी मनुष्यको वैराग्य उत्पन्न नहीं होता और अपने कल्याणका मार्ग नहीं सोचता—यह बड़ा ही आश्रय है।

बाल्यावस्थामें भी केवल दुःख ही है। बालक अपना अभिप्राय भी नहीं कह सकता और जो चाहता है, वह नहीं कर पाता, वह असमर्थ रहता है। इससे नित्य व्याकुल रहता है। दाँत आनेके समय बालक बहुत क्लेश भोगता है और भाँति-भाँतिके रोग तथा बालग्रह उसे सताते रहते हैं। वह क्षुधा-तृष्णासे पीड़ित होता रहता है, मोहसे विष्टा आदिका भी भक्षण करने लगता है। कुमारावस्थामें कर्ण-वेधके समय दुःख होता है। अक्षरारम्भके समय गुरुसे भी बड़ा ही भय होता है। माता-पिता ताड़न करते हैं।

युवावस्थामें भी सुख नहीं है। अनेक प्रकारकी ईर्ष्या मनमें उपजती है। मनुष्य मोहमें लीन हो जाता है। राग आदिमें आसक्त होनेके कारण दुःख होता है, रात्रिको नींद नहीं आती और धनकी चिन्तासे दिनमें भी चैन नहीं पड़ता। स्त्री-संसर्गमें भी कोई सुख नहीं। कुष्ठी व्यक्तिके कोढ़में कीड़े पड़ जानेपर जो खुजलाहट होती है,

उसे खुजलानेमें जितना आनन्द होता है, उससे अधिक कामी व्यक्तिको स्त्रीसे सुख नहीं मिलता*। इस तरह विचार करनेपर मालूम होता है कि स्त्रीमें कोई सुख नहीं है।

व्यक्ति मान-अपमानके द्वारा, युवावस्था-वृद्धावस्थाके द्वारा और संयोग-वियोगके द्वारा ग्रस्त है तो फिर निर्विवाद सुख कहाँ? जो यौवनके कारण स्त्री-पुरुषोंके शरीर परस्पर प्रिय लगते हैं, वही वार्धक्यके कारण घृणित प्रतीत होते हैं। वृद्ध हो जाने, शरीरके काँपने और सभी अङ्गोंके जर्जर एवं शिथिल हो जानेपर वह सभीको अप्रिय लगता है। जो युवावस्थाके बाद वार्धक्यमें अपनेमें भारी परिवर्तन और अपनी शक्तिहीनताको देखकर विरक्त नहीं होता—धर्म और भगवान्की ओर प्रवृत्त नहीं होता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है?

बुढ़ापेमें जब पुत्र-पौत्र, बान्धव, दुराचारी नौकर आदि अवज्ञा—उपेक्षा करते हैं, तब अत्यन्त दुःख होता है। बुढ़ापेमें वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-सम्बन्धी कार्योंको सम्पन्न करनेमें असमर्थ रहता है। इसमें वात, पित्त आदिकी विषमतासे अर्थात् न्यूनता-अधिकता होनेसे अनेक प्रकारके रोग होते रहते हैं। इसलिये यह शरीर रोगोंका घर है। ये दुःख प्रायः सभीको समय-समयपर अनुभूत होते ही हैं, फिर उसमें विशेष कहनेकी आवश्यकता ही क्या?

वास्तवमें शरीरमें सैकड़ों मृत्युके स्थान हैं, जिनमें एक तो साक्षात् मृत्यु या काल है, दूसरे अन्य आने-जानेवाली भयंकर आधि-व्याधियाँ हैं, जो आधी मृत्युके समान हैं। आने-जानेवाली

* अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद् बाल्ये दुःखं महत्पुनः । इच्छन्नपि न शक्नोति कर्तुं वकुं च सत्क्रियाम् ॥

दन्तोत्थाने महहुःखं मौलेन व्याधिना तथा । बालरोगैश विविधैः पीडा बालग्रहैरपि ॥

क्रिमिभिस्तुद्यमानस्य कुष्ठिनः कामिनस्तथा । कण्डूयनग्रितापेन यद्द्वेत् स्त्रीषु तद्दि तत् ॥

(उत्तरपर्व ४। ६३-६४, ७१)

आधि-व्याधियाँ तो जप-तप एवं औषध आदिसे टल भी जाती हैं, परंतु काल—मृत्युका कोई उपाय नहीं है। रोग, सर्प, शस्त्र, विष तथा अन्य घात करनेवाले बाघ, सिंह, दस्यु आदि प्राणिवर्ग ये सब भी मृत्युके द्वार ही हैं। किंतु जब रोग आदिके रूपमें साक्षात् मृत्यु पहुँच जाती है तो देव-वैद्य धन्वन्तरि भी कुछ नहीं कर पाते। औषध, तन्त्र, मन्त्र, तप, दान, रसायन, योग आदि भी कालसे ग्रस्त व्यक्तिकी रक्षा नहीं कर सकते। सभी प्राणियोंके लिये मृत्युके समान न कोई रोग है, न भय, न दुःख है और न कोई शंकाका स्थान अर्थात् केवल एकमात्र मृत्युसे ही सारे भय आदि आशंकाएँ हैं। मृत्यु पुत्र, स्त्री, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, धन आदि सबसे वियुक्त करा देती है और बद्धमूल वैर भी मृत्युसे निवृत्त हो जाते हैं।

पुरुषकी आयु सौ वर्षोंकी कही गयी है, परंतु कोई अस्सी वर्ष जीता है कोई सत्तर वर्ष। अन्य लोग अधिक-से-अधिक साठ वर्षतक ही जीते हैं और बहुत-से तो इससे पहले ही मर जाते हैं। पूर्वकर्मानुसार मनुष्यकी जितनी आयु निश्चित है, उसका आधा समय तो रात्रि ही सोनेमें हर लेती है। बीस वर्ष बाल्य और बुढ़ापेमें व्यर्थ चले जाते हैं। युवा-अवस्थामें अनेक प्रकारकी चिन्ता और कामकी व्यथा रहती है। इसलिये वह समय भी निरर्थक ही चला जाता है। इस प्रकार यह आयु समाप्त हो जाती है और मृत्यु आ पहुँचती है। मरणके समय जो दुःख होता है, उसकी कोई उपमा नहीं। हे मातः ! हे पितः ! हे कान्त ! आदि चिल्लाते व्यक्तिको भी मृत्यु वैसे ही पकड़ ले जाती है, जैसे मेढ़कको सर्प पकड़ लेता है। व्याधिसे पीड़ित व्यक्ति खाटपर पड़ा इधर-उधर हाथ-पैर पटकता रहता है और साँस लेता रहता है। कभी खाटसे भूमिपर और कभी भूमिसे

खाटपर जाता है, परंतु कहीं चैन नहीं मिलता। कण्ठमें घर-घर शब्द होने लगता है। मुख सूख जाता है। शरीर मूत्र, विषा आदिसे लिस हो जाता है। प्यास लगनेपर जब वह पानी माँगता है तो दिया हुआ पानी भी कण्ठतक ही रह जाता है। वाणी बंद हो जाती है, पड़ा-पड़ा चिन्ता करता रहता है कि मेरे धनको कौन भोगेगा? मेरे कुटुम्बकी रक्षा कौन करेगा? इस तरह अनेक प्रकारकी यातना भोगता हुआ मनुष्य मरता है और जीव इस देहसे निकलते ही जोंककी तरह दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है।

मृत्युसे भी अधिक दुःख विवेकी पुरुषोंको याचना अर्थात् माँगनेमें होता है। मृत्युमें तो क्षणिक दुःख होता है, किंतु याचनासे तो निरन्तर ही दुःख होता है। देखिये, भगवान् विष्णु भी बलिसे माँगते ही वामन (अत्यन्त छोटे) हो गये। फिर और दूसरा है ही कौन जिसकी प्रतिष्ठा याचनासे न घटे। आदि, मध्य और अन्तमें दुःखकी ही परम्परा है। अज्ञानवश मनुष्य दुःखोंको झेलता हुआ कभी आनन्द नहीं प्राप्त करता। बहुत खाये तो दुःख, थोड़ा खाये तो दुःख, किसी समय भी सुख नहीं है। क्षुधा सब रोगोंमें प्रबल है और वह अन्नरूपी ओषधिके सेवनसे थोड़ी देरके लिये शान्त हो जाती है, परंतु अन्न भी परम सुखका साधन नहीं है। प्रातः उठते ही मूत्र, विषा आदिकी बाधा, मध्याह्नमें क्षुधा-तृष्णाकी पीड़ा और पेट भरनेपर कामकी व्यथा होती है। रात्रिको निद्रा दुःख देती है। धनके सम्पादनमें दुःख, सम्पादित धनकी रक्षा करनेमें दुःख, फिर उसके व्यय करनेमें अतिशय दुःख होता है। इससे धन भी सुखदायक नहीं है। चोर, जल, अग्नि, राजा और स्वजनोंसे भी धनवालोंको अधिक भय रहता है। मांसको आकाशमें फेंकनेपर पक्षी, भूमिपर कुत्ते आदि जीव और जलमें मछली आदि खा

जाते हैं, इसी प्रकार धनवान्‌की भी सर्वत्र यही स्थिति होती है। सम्पत्तिके अर्जन करनेमें दुःख, सम्पत्तिकी प्राप्तिके बाद मोहरूपी दुःख और नाश हो जानेपर तो अत्यन्त दुःख होता ही है, इसलिये किसी भी कालमें धन सुखका साधन नहीं है। धन आदिकी कामनाएँ ही दुःखका परम कारण हैं, इसके विपरीत कामनाओंसे निःस्पृह रहना परम सुखका मूल है*।

हेमन्त-ऋतुमें शीतका दुःख, ग्रीष्ममें दारुण तापका दुःख और वर्षा-ऋतुमें झङ्घावात तथा वर्षाका दुःख होता है। इसलिये काल भी सुखदायक नहीं है। विवाहमें दुःख और पतिके विदेश-गमनमें दुःख, स्त्री गर्भवती हो तब दुःख, प्रसवके समय दुःख, संतानके दन्त, नेत्र आदिकी पीड़ासे दुःख। इस प्रकार स्त्री भी सदा व्याकुल रहती है। कुटुम्बियोंको यह चिन्ता रहती है कि गौ नष्ट हो गयी, खेती सूख गयी, नौकर चला गया, घरमें मेहमान आया है, स्त्रीके अभी संतान हुई है, इसके लिये रसोई कौन बनायेगा, कन्याके विवाह

आदिकी चिन्ता—इस प्रकार हजारों चिन्ताएँ कुटुम्बियोंके कारण लगी रहती हैं, जिनसे उनके शील, शुद्ध बुद्धि और सम्पूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं। जिस तरह कच्चे घड़ेमें जल डालते ही घटके साथ जल नष्ट हो जाता है, उसी तरह गुणोंसहित कुटुम्बी मनुष्यका देह नष्ट हो जाता है।

राज्य भी सुखका साधन नहीं है। जहाँ नित्य सन्धि-विग्रहकी चिन्ता लगी रहती है और पुत्रसे भी राज्यके ग्रहणका भय बना रहता है, वहाँ सुखका लेश भी नहीं है। अपनी जातिसे भी सबको भय होता है। जिस प्रकार एक मांसखण्डके अभिलाषी कुत्तोंको परस्पर भय रहता है, वैसे ही संसारमें कोई सुखी नहीं है। ऐसा कोई राजा नहीं जो सबको जीतकर सुखपूर्वक राज्य करे, प्रत्येकको दूसरेसे भय रहता है। इतना कहकर श्रीकृष्णभगवान्‌ने पुनः कहा कि ‘महाराज! यह कर्ममय शरीर जन्मसे लेकर अन्ततक दुःखी ही है। जो पुरुष जितेन्द्रिय हैं और व्रत, दान तथा उपवास आदिमें तत्पर रहते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं।’ (अध्याय ४)

विविध प्रकारके पापों एवं पुण्य-कर्मोंका फल

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! अधम कर्म करनेसे जीव घोर नरकमें गिरते हैं और अनेक प्रकारकी यातनाएँ भोगते हैं। उस अधम कर्मको ही पाप और अधर्म कहते हैं। चित्तवृत्तिके भेदसे अधर्मका भेद जानना चाहिये। स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म आदि भेदोंके द्वारा करोड़ों प्रकारके पाप हैं। परंतु यहाँ मैं केवल बड़े-बड़े पापोंका संक्षेपमें वर्णन

करता हूँ—परस्त्रीका चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन और अकार्य (कुकर्म)-में अभिनिवेश—ये तीन प्रकारके मानस पाप हैं। अनियन्त्रित प्रलाप, अप्रिय, असत्य, परनिन्दा और पिशुनता अर्थात् चुगली—ये पाँच वाचिक पाप हैं। अभक्ष्य-भक्षण, हिंसा, मिथ्या कामसेवन (असंयमित जीवन व्यतीत करना) और परधन-हरण—ये चार कायिक पाप हैं।

* अर्थस्योपार्जने दुःखर्मजितस्यापि रक्षणे। आये दुःखं व्यये दुःखमर्थेभ्यश्च कुतः सुखम्॥

चौरेभ्यः सलिलादग्रे: स्वजनात् पार्थिवादपि। भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव॥

खे यातं पक्षिभिर्मासं भक्ष्यते श्वापदैर्भूविः। जले च भक्ष्यते मत्स्यस्तथा सर्वत्र वित्तवान्॥

विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति विपत्तिषु। खेदयन्त्यर्जनाकाले कदा ह्यर्थाः सुखावहाः॥

यथार्थपतिरुद्ग्री यश्च सर्वार्थनिःस्पृहः। यतश्चार्थपतिरुद्ग्री यश्च सर्वार्थनिःस्पृहः॥

इन बारह कर्मोंके करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। इन कर्मोंके भी अनेक भेद होते हैं। जो पुरुष संसाररूपी सागरसे उद्धार करनेवाले महादेव अथवा भगवान् विष्णुसे द्वेष रखते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी और गुरु-पत्रीगमन—ये चार महापातक हैं। इन पातकोंको करनेवालोंके सम्पर्कमें रहनेवाला मनुष्य पाँचवाँ महापातकी गिना जाता है। ये सभी नरकमें जाते हैं।

अब मैं उपपातकोंका वर्णन करता हूँ। ब्राह्मणको कोई पदार्थ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर नहीं देना, ब्राह्मणका धन हरण करना, अत्यन्त अहंकार, अतिक्रोध, दाम्पिकत्व, कृतघ्रता, कृपणता, विषयोंमें अतिशय आसक्ति, अच्छे पुरुषोंसे द्वेष, परस्त्रीहरण, कुमारीगमन, स्त्री, पुत्र आदिको बेचना, स्त्री-धनसे निर्वाह करना, स्त्रीकी रक्षा न करना, ऋण लेकर न चुकाना; देवता, अग्नि, साधु, गौ, ब्राह्मण, राजा और पतिव्रताकी निन्दा करना आदि उपपातक हैं। इन पापोंको करनेवाले पुरुषोंका जो संसर्ग करते हैं, वे भी पातकी होते हैं। इस प्रकार पाप करनेवाले मनुष्योंको मृत्युके बाद यमराज नरकमें ले जाते हैं। जो भूलसे पाप करते हैं, उनको गुरुजनोंकी आज्ञाके अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो मन, वचन, कर्मसे पाप करते हैं एवं दूसरोंसे कराते हैं अथवा पाप करते हुए पुरुषोंका अनुमोदन करते हैं, वे सभी नरकमें जाते हैं और जो उत्तम कर्म करते हैं, वे स्वर्गमें सुखसे आनन्द भोगते हैं। अशुभ कर्मोंका अशुभ फल और शुभ कर्मोंका शुभ फल होता है।

महाराज ! यमराजकी सभामें सबके शुभ-अशुभ कर्मोंका विचार चित्रगुप्त आदि करते हैं। जीवको अपने कर्मानुसार फल भोगना पड़ता है। इसलिये

शुभ कर्म ही करना चाहिये। किये गये कर्मका फल बिना भोगे किसी प्रकार नष्ट नहीं होता। धर्म करनेवाले सुखपूर्वक परलोक जाते हैं और पापी अनेक प्रकारके दुःखका भोग करते हुए यमलोक जाते हैं। इसलिये सदा धर्म ही करना चाहिये। जीव छियासी हजार योजन चलकर वैवस्वतपुरमें पहुँचता है। पुण्यात्माओंको इतना बड़ा मार्ग निकट ही जान पड़ता है और पापियोंके लिये बहुत लम्बा हो जाता है। पापी जिस मार्गसे चलते हैं, उसमें तीखे काँटे, कंकड़, पत्थर, कीचड़, गड्ढे और तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण पत्थर पड़े रहते हैं तथा लोहेकी सुझाँ बिखरी रहती हैं। उस मार्गमें कहीं अग्नि, कहीं सिंह, कहीं व्याघ्र और कहीं-कहीं मक्षिका, सर्प, वृश्चिक आदि दुष्ट जन्तु धूमते रहते हैं। कहींपर डाकिनी, शाकिनी, रोग और बड़े क्रूर राक्षस दुःख देते रहते हैं। उस मार्गमें न कहीं छाया है और न जल। इस प्रकारके भयंकर मार्गसे यमदूत पापियोंको लोहेकी शृङ्खलासे बाँधकर घसीटते हुए ले जाते हैं। उस समय अपने बन्धु आदिसे रहित वे प्राणी अपने कर्मोंको सोचते हुए रोते रहते हैं। भूख और प्यासके मारे उनके कण्ठ, तालु और ओष्ठ सूख जाते हैं। भयंकर यमदूत उन्हें बार-बार ताडित करते हैं और पैरोंमें अथवा चोटीमें साँकलसे बाँधकर खींचते हुए ले जाते हैं। इस प्रकार दुःख भोगते-भोगते वे यमलोकमें पहुँचते हैं और वहाँ अनेक यातनाएँ भोगते हैं।

पुण्य करनेवाले उत्तम मार्गसे सुखपूर्वक पहुँचकर सौम्यस्वरूप धर्मराजका दर्शन करते हैं और वे उनका बहुत आदर करते हैं, वे कहते हैं कि महात्माओ ! आपलोग धन्य हैं, दूसरोंका उपकार करनेवाले हैं। आपने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये

बहुत पुण्य किया है। इसलिये इस उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गको जायँ। पुण्यात्मा यमराजको प्रसन्नचित्त अपने पिताकी भाँति देखते हैं, परंतु पापी लोग उन्हें भयानक रूपमें देखते हैं। यमराजके समीप ही कालाग्निके समान क्रूर कृष्णवर्ण मृत्युदेव विराजमान रहते हैं और कालकी भयंकर शक्तियाँ तथा अनेक प्रकारके रूप धारण किये सम्पूर्ण रोग वहाँ बैठे दिखायी देते हैं। कृष्णवर्णके असंख्य यमदूत अपने हाथोंमें शक्ति, शूल, अङ्गुश, पाश, चक्र, खड्ग, वज्र, दण्ड आदि शस्त्र धारण किये वहाँ स्थित रहते हैं। पापी जीव यमराजको इस रूपमें स्थित देखते हैं और यमराजके समीप बैठे हुए चित्रगुप्त उनकी भत्त्वा करके कहते हैं कि पापियो! तुमने ऐसे बुरे कर्म क्यों किये? तुमने पराया धन अपहरण किया है, रूपके गर्वसे पर-स्त्रियोंका सम्पर्क किया है और भी अनेक प्रकारके पातक-उपपातक तुमने किये हैं। अब उन कर्मोंका फल भोगो। अब कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। इस प्रकार पापी राजाओंका तर्जन कर चित्रगुप्त यमदूतको आज्ञा देते हैं कि इनको ले जाकर नरकोंकी अग्निमें डाल दो।

सातवें पातालमें घोर अन्धकारके बीच अति दारुण अट्टाईस करोड़ नरक हैं, जिनमें पापी जीव यातना भोगते हैं। यमदूत वहाँ उनको ऊँचे वृक्षोंकी शाखाओंमें टाँग देते हैं और सैकड़ों मन लोहा उनके पैरोंमें बाँध देते हैं। उस बोझसे उनका शरीर टूटने लगता है और वे अपने अशुभ कर्मोंको यादकर रोते तथा चिल्लाते हैं। तपाये हुए काँटोंसे युक्त लौह-दण्डसे और चाबुकोंसे यमदूत उन्हें बार-बार ताडित करते हैं और साँपोंसे कटवाते हैं। जब उनके देहोंमें घाव हो जाता है तब उनमें नमक लगते हैं। कभी उनको उतारकर खौलते हुए तेलमें

डालते हैं, वहाँसे निकालकर विष्टाके कूपमें उनको डुबोते हैं, जिनमें कीड़े काट-काटकर खाते हैं, फिर मेद, रुधिर, पूय आदिके कुण्डोंमें उनको ढकेल देते हैं। जहाँ लोहेकी चोंचवाले काक और श्वान आदि जीव उनका मांस नोच-नोच कर खाते हैं। कभी उनको तीक्ष्ण शूलोंमें पिरोते हैं।

अभक्ष्य-भक्षण और मिथ्या भाषण करनेवाली जिह्वाको बहुत दण्ड मिलता है। जो पुरुष माता, पिता और गुरुको कठोर वचन बोलते हैं, उनके मुखमें जलते हुए अंगारे भर दिये जाते हैं और घावोंमें नमक भरकर खौलता हुआ तेल डाल दिया जाता है। जो अतिथिको अन्न-जल दिये बिना उसके सम्मुख ही स्वयं भोजन करते हैं, वे इक्षुकी तरह कोल्हूमें पेरे जाते हैं तथा वे असितालवन नामक नरकमें जाते हैं। इस प्रकार अनेक व्लेश भोगते रहनेपर भी उनके प्राण नहीं निकलते। जिसने परनारीके साथ संग किया हो, यमदूत उसे तस लोहेकी नारीसे आलिङ्गन कराते हैं और पर-पुरुषगामिनी स्त्रीको तस लौह पुरुषसे लिपटाते हैं और कहते हैं कि 'दुष्ट! जिस प्रकार तुमने अपने पतिका परित्याग कर पर-पुरुषका आलिङ्गन किया, उसी प्रकारसे इस लौह-पुरुषका भी आलिङ्गन करो।' जो पुरुष देवालय, बाग, वापी, कूप, मठ आदिको नष्ट करते हैं और वहाँ रहकर मैथुन आदि अनेक प्रकारके पाप करते हैं, यमदूत उनको अनेक प्रकारके यन्त्रोंसे पीडित करते हैं और वे जबतक चन्द्र-सूर्य हैं, तबतक नरककी अग्निमें पड़े जलते रहते हैं। जो गुरुकी निन्दा श्रवण करते हैं, उनके कानोंको दण्ड मिलता है। इस प्रकार जिन-जिन इन्द्रियोंसे मनुष्य पाप करते हैं, वे इन्द्रियाँ कष्ट पाती हैं। इस प्रकारकी अनेक घोर यातना पापी पुरुष सभी नरकोंमें भोगते हैं,

इनका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं हो सकता। जीव नरकोंमें अनेक प्रकारकी दारुण व्यथा भोगते रहते हैं, परंतु उनके प्राण नहीं निकलते।

इससे भी अधिक दारुण यातनाएँ हैं, मृदुचित्त पुरुष उनको सुनकर ही दहलने लगते हैं। पुत्र, मित्र, स्त्री आदिके लिये प्राणी अनेक प्रकारका पाप करता है, परंतु उस समय कोई सहायता नहीं करता। केवल एकाकी ही वह दुःख भोगता है और प्रलयपर्यन्त नरकमें पड़ा रहता है। यह ध्रुव सिद्धान्त है कि अपना किया पाप स्वयं भोगना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य शरीरको नश्वर जानकर लेशमात्र भी पाप न करे, पापसे अवश्य ही नरक भोगना पड़ता है। पापका फल दुःख है और नरकसे बढ़कर अधिक दुःख कहीं नहीं है। पापी मनुष्य नरकवासके अनन्तर फिर पृथ्वीपर जन्म लेते हैं। वृक्ष आदि अनेक प्रकारकी स्थावर योनियोंमें वे जन्म ग्रहण करते हैं और अनेक कष्ट भोगते हैं। अनन्तर कीट, पतंग, पक्षी, पशु आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते हुए अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाते हैं। स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाले मनुष्य-जन्मको पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरक न देखना पड़े। यह मनुष्य-योनि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। धर्मसे ही मनुष्यका जन्म मिलता है। मनुष्य-जन्म पाकर उसे धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये। जो अपने कल्याणके लिये धर्मका पालन नहीं करता है, उसके समान मूर्ख कौन होगा?

यह देश सब देशोंमें उत्तम है। बहुत पुण्यसे प्राणीका जन्म भारतवर्षमें होता है। इस देशमें जन्म पाकर जो अपने कल्याणके लिये पुण्य करता है, वही बुद्धिमान् है। जिसने ऐसा नहीं किया, उसने अपने आत्माके साथ वञ्चना की। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक जो कुछ पुण्य बन सके वह कर लेना चाहिये। बादमें कुछ भी नहीं हो सकता। दिन-रातके बहाने नित्य आयुके ही अंश खण्डित हो रहे हैं। फिर भी मनुष्योंको बोध नहीं होता कि एक दिन मृत्यु आ पहुँचेगी*। यह तो किसीको भी निश्चय नहीं है कि किसकी मृत्यु किस समयमें होगी, फिर मनुष्यको क्योंकर धैर्य और सुख मिलता है? यह जानते हुए कि एक दिन इन सभी सामग्रियोंको छोड़कर अकेले चले जायेंगे, फिर अपने हाथसे ही अपनी सम्पत्ति सत्पात्रोंको क्यों नहीं बाँट देते? मनुष्यके लिये दान ही पाथेय अर्थात् रास्तेके लिये भोजन है। जो दान करते हैं, वे सुखपूर्वक जाते हैं। दानहीन मार्गमें अनेक दुःख पाते हैं, भूखे मरते जाते हैं। इन सब बातोंको विचारकर पुण्य ही करना चाहिये, पापसे सदा बचना चाहिये। पुण्य-कर्मोंसे देवत्व प्राप्त होता है और पाप करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। जो सत्पुरुष सर्वात्मभावसे श्रीसदाशिवकी शरणमें जाते हैं, वे पद्मपत्रपर स्थित जलकी तरह पापोंसे लिस नहीं होते। इसलिये द्वन्द्वसे छूटकर भक्तिपूर्वक ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये तथा सभी प्रकारके पापोंसे निरन्तर बचना चाहिये। (अध्याय ५-६)

* आयुषः खण्डखण्डानि निपतन्ति तवाग्रतः। अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावद्युध्यसे॥ (उत्तरपर्व ६। १९९)

ब्रतोपवासकी महिमामें शकटब्रतकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैंने जो भीषण नरकोंका विस्तारसे वर्णन किया है, उन्हें ब्रत-उपवासरूपी नौकासे मनुष्य पार कर सकता है। प्राणीको अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे पश्चात्ताप न करना पड़े और यह जन्म भी व्यर्थ न जाय एवं फिर जन्म भी न लेना पड़े। जिस मनुष्यकी कीर्ति, दान, ब्रत, उपवास आदिकी परम्परा बनी है, वह परलोकमें उन्हीं कर्मोंके द्वारा सुख भोगता है। ब्रत तथा स्वाध्याय न करनेवालेकी कहीं भी गति नहीं है। इसके विपरीत ब्रत-स्वाध्याय करनेवाले पुरुष सदा सुखी होते हैं। इसलिये ब्रत-स्वाध्याय अवश्य करने चाहिये।

राजन्! यहाँ एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ—योगको सिद्ध किया हुआ एक सिद्ध अति भयंकर विकृत रूप धारणकर पृथ्वीपर विचरण करता था। उसके लम्बे ओंठ, टूटे दाँत, पिङ्गल नेत्र, चपटे कान, फटा मुख, लम्बा पेट, टेढ़े पैर और सम्पूर्ण अङ्ग कुरुरूप थे। उसे मूलजालिक नामके एक ब्राह्मणने देखा और उससे पूछा कि आप स्वर्गसे कब आये और किस प्रयोजनसे यहाँ आपका आगमन हुआ ? क्या आपने देवताओंके चित्तको मोहित करनेवाली और स्वर्गकी अलंकार-स्वरूपिणी रम्भाको देखा है ? अब आप स्वर्गमें जायें तो रम्भासे कहें कि अवन्तिपुरीका निवासी ब्राह्मण तुम्हारा कुशल पूछता था। ब्राह्मणका वचन सुनकर सिद्धने चकित हो पूछा कि 'ब्राह्मण ! तुमने मुझे कैसे पहचाना ?' तब ब्राह्मणने कहा कि 'महाराज ! कुरुरूप पुरुषोंके एक-दो अङ्ग विकृत होते हैं, पर आपके सभी अङ्ग टेढ़े और विकृत हैं।' इसीसे

मैंने अनुमान किया कि इतना रूप गुप्त किये कोई स्वर्गके निवासी सिद्ध ही हैं। ब्राह्मणका वचन सुनते ही वह सिद्ध वहाँसे अन्तर्धान हो गया और कई दिनोंके बाद पुनः ब्राह्मणके समीप आया और कहने लगा—'ब्राह्मण ! हम स्वर्गमें गये और इन्द्रकी सभामें जब नृत्य हो चुका, उसके बाद मैंने एकान्तमें रम्भासे तुम्हारा संदेश कहा, परंतु रम्भाने यह कहा कि मैं उस ब्राह्मणको नहीं जानती। यहाँ तो उसीका नाम जानते हैं जो निर्मल विद्या, पौरुष, दान, तप, यज्ञ अथवा ब्रत आदिसे युक्त होता है। उसका नाम स्वर्गभरमें चिरकालतक स्थिर रहता है।' रम्भाका सिद्धके मुखसे यह वचन सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हम शकटब्रतको नियमसे करते हैं, आप रम्भासे कह दीजिये। यह सुनते ही सिद्ध फिर अन्तर्धान हो गया और स्वर्गमें जाकर उसने रम्भासे ब्राह्मणका संदेश कहा और जब उसने उसके गुण वर्णन किये तब रम्भा प्रसन्न होकर कहने लगी—'सिद्ध महाकाल ! मैं वनके निवासी उस शकट ब्रह्मचारीको जानती हूँ। दर्शनसे, सम्भाषणसे, एकत्र निवाससे और उपकार करनेसे मनुष्योंका परस्पर स्नेह होता है, परंतु मुझे उस ब्राह्मणका दर्शन-सम्भाषण आदि कुछ भी नहीं हुआ। केवल नाम-श्रवणसे इतना स्नेह हो गया है।' सिद्धसे इतना कहकर रम्भा इन्द्रके समीप गयी और ब्राह्मणके ब्रत आदि करने तथा अपने ऊपर अनुरक्त होनेका वर्णन किया। इन्द्रने भी प्रसन्न हो रम्भासे पूछकर उस उत्तम ब्राह्मणको वस्त्राभूषण आदिसे अलंकृत कर दिव्य विमानमें बैठाकर स्वर्गमें बुलाया और वहाँ सत्कारपूर्वक स्वर्गके दिव्य भोगोंको उसे प्रदान किया। ब्राह्मण चिरकालतक वहाँ दिव्य

भोग भोगता रहा। यह शकट-ब्रतका माहात्म्य हमने संक्षेपमें वर्णन किया है। दृढ़ब्रती पुरुषके लिये राजलक्ष्मी, वैकुण्ठलोक, मनोवाञ्छित फल

आदि दुर्लभ पदार्थ भी जगत्‌में सुलभ हैं। इसलिये सदा सत्परायण पुरुषको ब्रतमें संलग्न रहना चाहिये। (अध्याय ७)

तिलकब्रतके माहात्म्यमें चित्रलेखाका चरित्र

[संवत्सर-प्रतिपदाका कृत्य]

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, गणपति, दुर्गा, सोम, अग्नि तथा सूर्य आदि देवताओंके ब्रत शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं, उन ब्रतोंका वर्णन आप प्रतिपदादि क्रमसे करें। जिस देवताकी जो तिथि है तथा जिस तिथिमें जो कर्तव्य है, उसे आप पूरी तरह बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी जो प्रतिपदा होती है, उस दिन स्त्री अथवा पुरुष नदी, तालाब या घरपर स्नान कर देवता और पितरोंका तर्पण करे। फिर घर आकर आटेकी पुरुषाकार संवत्सरकी मूर्ति बनाकर चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे उसकी पूजा करे। ऋतु तथा मासोंका उच्चारण करते हुए पूजन तथा प्रणाम कर संवत्सरकी प्रार्थना करे और—
संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताथ्यं संवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्या एत्यै सं चाङ्ग प्रच सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वदध्युवः सीद॥' (यजु० २७। ४५)
यह मन्त्र पढ़कर वस्त्रसे प्रतिमाको वेष्टित करे। तदनन्तर फल, पुष्प, मोदक आदि नैवेद्य चढ़ाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—'भगवन्! आपके अनुग्रहसे मेरा वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत हो*'। यह कहकर यथाशक्ति ब्राह्मणको दक्षिणा दे और उसी दिनसे

आरम्भ कर ललाटको नित्य चन्दनसे अलंकृत करे। इस प्रकार स्त्री या पुरुष इस ब्रतके प्रभावसे उत्तम फल प्राप्त करते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह, डाकिनी और शत्रु उसके मस्तकमें तिलक देखते ही भाग खड़े होते हैं।

इस सम्बधमें मैं एक इतिहास कहता हूँ—पूर्व कालमें शत्रुञ्जय नामके एक राजा थे और चित्रलेखा नामकी अत्यन्त सदाचारिणी उनकी पत्नी थी। उसीने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंसे संकल्पपूर्वक इस ब्रतको ग्रहण किया था। इसके प्रभावसे बहुत अवस्था बीतनेपर उनको एक पुत्र हुआ। उसके जन्मसे उनको बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। वह रानी सदा संवत्सरब्रत किया करती और नित्य ही मस्तकमें तिलक लगाती। जो उसको तिरस्कृत करनेकी इच्छासे उसके पास आता, वह उसके तिलकको देखकर पराभूत-सा हो जाता। कुछ समयके बाद राजाको उन्मत्त हाथीने मार डाला और उनका बालक भी सिरकी पीड़ासे मर गया। तब रानी अति शोकाकुल हुई। धर्मराजके किंकर (यमदूत) उन्हें लेनेके लिये आये। उन्होंने देखा कि तिलक लगाये चित्रलेखा रानी समीपमें बैठी है। उसको देखते ही वे उलटे लौट गये। यमदूतोंके चले जानेपर राजा अपने पुत्रके साथ स्वस्थ हो गया और पूर्वकर्मानुसार शुभ भोगोंका उपभोग करने लगा। महाराज! इस परम उत्तम

* भगवस्त्वत्प्रसादेन वर्षं शुभदमस्तु मे। (उत्तरपर्व ८। १०)

ब्रतका पूर्वकालमें भगवान् शंकरने मुझे उपदेश किया था और हमने आपको सुनाया। यह तिलकब्रत समस्त दुःखोंको हरनेवाला है। इस

ब्रतको जो भक्तिपूर्वक करता है, वह चिरकालपर्यन्त संसारका सुख भोगकर अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ८)

अशोकब्रत तथा करवीरब्रतका महात्म्य

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! आश्विन मासकी शुक्ल प्रतिपदाको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, ससधान्यसे तथा फल, नारिकेल, अनार, लड्डू आदि अनेक प्रकारके नैवेद्यसे मनोरम पल्लवोंसे युक्त अशोक-वृक्षका पूजन करनेसे कभी शोक नहीं होता। अशोक-वृक्षकी निम्रलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करे और उसे अर्घ्य प्रदान करे—

पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां तथैव च।

अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले॥

(उत्तरपर्व ९। ४)

‘अशोक-वृक्ष ! आप मेरे कुलमें पिता, भाई, पति, सास तथा ससुर आदि सभीका शोक शमन करें।’

वस्त्रसे अशोक-वृक्षको लपेट कर पताकाओंसे अलंकृत करे। इस ब्रतको यदि स्त्री भक्तिपूर्वक करे तो वह दमयन्ती, स्वाहा, वेदवती और सतीकी भाँति अपने पतिकी अति प्रिय हो जाती है। वनगमनके समय सीताने भी मार्गमें अशोक-वृक्षका भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, अक्षत आदिसे पूजन किया और प्रदक्षिणा कर वनको गयीं। जो स्त्री तिल, अक्षत, गेहूँ, सर्षप आदिसे अशोकका पूजन कर मन्त्रसे वन्दना और प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणको दक्षिणा देती है, वह शोकमुक्त होकर चिरकालतक अपने पतिसहित संसारके सुखोंका उपभोग कर अन्तमें गौरी-लोकमें निवास करती है। यह अशोकब्रत सब प्रकारके

शोक और रोगको हरनेवाला है।

महाराज ! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासकी शुक्ल प्रतिपदाको सूर्योदयके समय अत्यन्त मनोहर देवताके उद्यानमें लगे हुए करवीर-वृक्षका पूजन करे। लाल सूत्रसे वृक्षको वेष्टित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ससधान्य, नारिकेल, नारंगी और भाँति-भाँतिके फलोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे उसकी प्रार्थना करे—

करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ।

मौलिमण्डनसद्रत्न नमस्ते केशवेशयोः॥

(उत्तरपर्व १०। ४)

‘भगवान् विष्णु और शंकरके मुकुटपर रत्नके रूपमें सुशोभित, भगवान् सूर्यके अत्यन्त प्रिय तथा विषके आवास करवीर (जहर कनेर) ! आपको बार-बार नमस्कार है।’

इसी तरह ‘आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्य च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥’ (यजु० ३३। ४३) इस मन्त्रसे प्रार्थना कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे एवं वृक्षकी प्रदक्षिणा कर घरको जाय। सूर्यदेवकी प्रसन्नताके लिये इस ब्रतको अरुन्धती, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, गङ्गा, दमयन्ती, अनसूया और सत्यभामा आदि पतिव्रता स्त्रियोंने तथा अन्य स्त्रियोंने भी किया है। इस करवीरब्रतको जो भक्तिपूर्वक करता है, वह अनेक प्रकारके सुख भोग कर अन्तमें सूर्यलोकको जाता है। (अध्याय ९-१०)

कोकिलाव्रतका विधान और माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जिस व्रतके करनेसे कुलीन स्त्रियोंका अपने पतिके साथ परस्पर विशुद्ध प्रेम बना रहे, उसे आप बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! यमुनाके तटपर मथुरा नामक एक सुन्दर नगरी है। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने अपने भाई शत्रुघ्नको राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया था। उनकी रानीका नाम कीर्तिमाला* था। वह बड़ी पतिव्रता थी। एक दिन कीर्तिमालाने अपने कुलगुरु, वसिष्ठमुनिसे प्रणामकर पूछा—‘मुनिश्रेष्ठ! आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतायें, जिससे मेरे अखण्ड सौभाग्यकी वृद्धि हो।’

वसिष्ठजीने कहा—कीर्तिमाले! कल्याणकामिनी स्त्री आषाढ़ मासकी पूर्णिमाको सायंकाल यह संकल्प करे कि ‘श्रावण मासभर नित्य-स्नान, रात्रि-भोजन और भूमि-शयन करूँगी तथा ब्रह्मचर्यसे रहूँगी और प्राणियोंपर दया करूँगी।’ प्रातः उठकर सब सामग्री लेकर नदी, तालाब आदिपर जाय। वहाँ दन्तधावन कर सुगन्धित द्रव्य, तिल और आँवलेका उबटन लगाये और विधिसे स्नान करे। इस प्रकार आठ दिनतक स्नान करे। अनन्तर सर्वोषधियोंका उबटन लगाकर आठ दिनतक स्नान करे। शेष दिनोंमें वचका उबटन मलकर स्नान करे। तदनन्तर सूर्यभगवान्का ध्यान करे। इसके बाद तिल पीस करके उससे कोकिला पक्षीकी मूर्ति बनाये। रक्त चन्दन, चम्पाके पुष्प, पत्र, धूप,

दीप, नैवेद्य, तिल, चावल, दूर्वा आदिसे उसका पूजन कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

तिलसहे तिलसौख्ये तिलवर्णे तिलप्रिये।

सौभाग्यद्रव्यपुत्रांश्च देहि मे कोकिले नमः ॥

(उत्तरपर्व ११। १४)

‘तिलसहे कोकिला देवि! आप तिलके समान कृष्णवर्णवाली हैं। आपको तिलसे सुख प्राप्त होता है तथा आपको तिल अत्यन्त प्रिय है। आप मुझे सौभाग्य, सम्पत्ति तथा पुत्र प्रदान करें। आपको नमस्कार है।’

—इस प्रकार पूजन कर घरमें आकर भोजन ग्रहण करे। इस विधिसे एक मास व्रतकर अन्तमें तिलपिष्टकी कोकिला बनाकर उसमें रत्नके नेत्र और सुवर्णके पंख लगाकर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। दक्षिणासहित वस्त्र, धान्य और गुड़ ससुर, दैवज्ञ, पुरोहित अथवा किसी ब्राह्मणको दान करे।

इस विधिसे जो नारी कोकिलाव्रत करती है, वह सात जन्मतक सौभाग्यवती रहती है और अन्तमें उत्तम विमानमें बैठकर गौरीलोकको जाती है। वसिष्ठजीसे व्रतका विधान सुनकर कीर्तिमालाने उसी प्रकार कोकिलाव्रतका अनुष्ठान किया। उससे उन्हें अखण्ड सौभाग्य, पुत्र, सुख-समृद्धि और शत्रुघ्नजीकी कृपा एवं प्रीति प्राप्त हुई। अन्य भी जो स्त्रियाँ इस व्रतको भक्तिपूर्वक करती हैं उन्हें भी सुख, सौभाग्य आदिकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ११)

बृहत्तपोव्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं सभी पापोंका नाशक तथा सुर, असुर और मुनियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ बृहत्तपोव्रतका विधान

बतलाता हूँ, आप सुनें—आश्विन मासकी पूर्णिमाके दिन आत्मशुद्धिपूर्वक उपवासकर रातमें घृतमिश्रित पायसका भोजन करना चाहिये। दूसरे दिन प्रातः

* सभी रामायणोंमें शत्रुघ्न-पतीका नाम श्रुतिकीर्ति प्राप्त होता है। इसे उसका पर्याय मानना चाहिये। भाव प्रायः समान है।

उठकर पवित्र हो आचमनकर बिल्वके काष्ठसे दन्तधावन करे। अनन्तर इस मन्त्रसे महादेवजीकी प्रार्थना करनी चाहिये—

अहं देवब्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम्।
तवाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु॥

(उत्तरपर्व १२। ४)

‘महादेव! मैं आपकी आज्ञासे निरन्तर बृहत्तोत्रत करना चाहता हूँ। जिस प्रकार मेरा यह ब्रत निर्विघ्न पूर्ण हो जाय, आप वैसी कृपा करें।’

नियमपूर्वक सोलह वर्षपर्यन्त प्रतिपद्का ब्रत करना चाहिये। फिर मार्गशीर्ष मासकी प्रतिपदाको उपवास कर गुरुजनोंसे आदेश प्राप्त करके महादेवका स्मरण करते हुए भक्तिपूर्वक शिवका पूजन करना चाहिये और रातमें दीपक जलाकर शिवको निवेदित करना चाहिये। शिवभक्त सप्तलीक सोलह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजन कर भोजन कराये या आठ दम्पतिको भोजन कराये। यदि शक्ति न हो तो एक ही दम्पतिका पूजन करे। निराहार ब्रत करके रातमें भूमिपर शयन करना चाहिये। सूर्योदय होनेपर स्नान करके सभी सामग्रियोंको लेकर शिवजीका उद्घर्तन एवं पञ्चगव्यसे स्नान कराना चाहिये। अनन्तर पञ्चामृत, तिलमिश्रित जल और गर्म जलसे स्नान कराना चाहिये। स्नानके अनन्तर कर्पूर, चन्दन आदिका लेपकर कमल आदि उत्तम पुष्प चढ़ाने चाहिये। वस्त्र, पताका, वितान, धूप, दीप, घण्टा एवं भाँति-भाँतिके नैवेद्य महादेवजीको समर्पित कर अग्नि प्रज्वलित कर एवं उसकी पूजाकर विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। घर आकर पञ्चगव्य-प्राशन कर आचार्य आदिको भोजन कराकर अपने सभी बन्धुओंके साथ मौन

होकर भोजन करना चाहिये। फिर स्वर्ण, वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणोंसे क्षमा माँगे। धनवान् व्यक्ति श्रद्धापूर्वक साङ्घोपाङ्ग निर्दिष्ट विधिसे पूजन करे एवं यदि कोई व्यक्ति निर्धन हो तो वह श्रद्धापूर्वक जल, पुष्प आदिसे पूजा करे। इससे ब्रतके सम्यक् फलकी प्राप्ति होती है। श्रद्धाके साथ कार्तिकी प्रतिपदासे लेकर प्रतिमास इस विधिसे ब्रत करना चाहिये। अनन्तर पारणा करनी चाहिये। सोलहवें वर्षमें पारणाके दिन शिवजीकी पूजा कर सोनेकी सींग, चाँदीके खुर और घण्टा, काँसेके दोहन-पात्रके साथ उत्तम गाय महादेवजीके निमित्त शिवभक्त ब्राह्मणोंको देनी चाहिये। अनन्तर सोलह ब्राह्मणोंका विधि-विधानसे पूजनकर यथाशक्ति वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजनकर उत्तम पदार्थोंका भोजन कराना चाहिये। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर दक्षिणा दे। दीनों, अन्धों, अनाथों आदिको भी भोजन कराकर कुछ दान देना चाहिये। यह बृहत्तोत्रत ब्रह्महत्या-जैसे पापोंका हरण और तीनों लोकोंमें अनेक प्रकारके उत्तम भोगोंको प्रदान करनेवाला है। चारों वर्णोंके लिये यह स्वर्गकी सीढ़ी है। धन पाकर भी जो इस ब्रतको नहीं करता, वह मूढ़-बुद्धि है। सधवा स्त्री यदि इसे करती है तो उसका पतिसे वियोग नहीं होता और विधवा स्त्रीको भी भविष्यमें वैधव्य न प्राप्त हो, इसलिये उसे यह ब्रत करना चाहिये। इस ब्रतके अनुष्ठानसे धन, आयु, रूप, सौभाग्य आदिकी प्राप्ति होती है। सभी स्त्री-पुरुष इस ब्रतको कर सकते हैं। सोलह वर्षोंतक इस बृहत्तोत्रतका भक्तिपूर्वक अनुष्ठान कर ब्रती सूर्यमण्डलका भेदन कर शिवजीके चरणोंको प्राप्त करता है। (अध्याय १२)

जातिस्मर*-भद्रव्रतका फल और विधान तथा स्वर्णष्ठीवीकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अपने पूर्व-जन्मोंका ज्ञान होना बहुत कठिन है। आप यह बतायें कि ऋषियोंके वरदान, देवताओंकी आराधना या तीर्थ, स्नान, होम, जप, तप, व्रत आदिके करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान प्राप्त हो सकता है या नहीं? यदि ऐसा कोई व्रत हो, जिसके करनेसे पूर्वजन्मका स्मरण हो सकता है तो आप उसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! एक ही वर्षमें ‘मार्गशीर्ष, फाल्गुन, ज्येष्ठ एवं भाद्रपद’ क्रमशः इन चार मासोंमें भद्रव्रतका श्रद्धापूर्वक उपवास करनेसे मनुष्यको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो जाता है। इस विषयमें एक आख्यान है, उसे आप सुनें—

प्राचीन कालमें यमुनाके किनारे शुभोदय नामका एक वैश्य रहता था। वह इस व्रतको करता था। कालक्रमसे वह मृत्युको प्राप्त हुआ और व्रतके प्रभावसे वह दूसरे जन्ममें राजा संजयके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुआ, उसका नाम था स्वर्णष्ठीवी। उसे पूर्वजन्मका स्मरण था। कुछ दिनों बाद चोरोंने उसे मार डाला और नारदजीके प्रभावसे वह जीवित हो गया। इस व्रतके प्रभावसे अपने इस विगत वृत्तान्तोंको वह भलीभाँति जानता था।

राजाने पूछा—उसका स्वर्णष्ठीवी नाम कैसे पड़ा? और चोरोंने उसे क्यों मार डाला? तथा किस उपायसे वह जीवित हुआ, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करें?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! कुशावती नामकी नगरीमें संजय नामका एक राजा रहता था। एक दिन नारद और पर्वत नामके दो मुनि

राजाके पास आये। वे दोनों राजाके मित्र थे। राजाने अर्घ्य-पाद्य, आसनादि उपचारोंसे उनका पूजन तथा सत्कार किया। उसी समय राजाकी अत्यन्त सुन्दरी राजकन्या वहाँ आयी। पर्वतमुनिने उसे देखकर मोहित हो राजासे पूछा—राजन्! यह युवती कौन है? राजाने कहा—‘मुने! यह मेरी कन्या है।’ नारदजीने कहा—‘राजन्! आप अपनी इस कन्याको मुझे दे दें और आप जो दुर्लभ वर माँगना चाहते हों, वह मुझसे माँग लें।’ राजाने प्रसन्न होकर कहा—‘देवर्षे! आप मुझे एक ऐसा पुत्र दें जो जिस स्थानमें मूत्र-पुरीष और निष्ठीवन (थूक, खखार)-का त्याग करे, वह सब उत्तम सुवर्ण बन जाय।’ नारदजी बोले—‘ऐसा ही होगा।’

राजाने अभीष्ट वर प्राप्त कर अपनी कन्याको वस्त्राभूषणसे अलंकृतकर नारदजीसे उसका विवाह कर दिया। नारदकी इस लीलाको देखकर पर्वतमुनिके ओठ क्रोधसे फड़कने लगे, आँखें लाल हो गयीं। वे नारदजीसे बोले—‘नारद! तुमने इसके साथ विवाह कर लिया, अतः तुम मेरे साथ स्वर्ग आदि लोकोंमें नहीं जा सकोगे और जो तुमने इस राजाको पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया है, वह पुत्र भी चोरोंद्वारा मारा जायगा।’ यह सुनकर नारदजीने कहा—‘पर्वत! तुम धर्मको जाने बिना मुझे शाप दे रहे हो। यह कन्या है, इसपर किसीका भी अधिकार नहीं। धर्मपूर्वक माता-पिता जिसे दे दें, वही उसका स्वामी होता है। तुमने मूढ़तावश मुझे शाप दिया है, इसलिये तुम भी स्वर्गमें नहीं जा सकोगे। राजा संजयके पुत्रको चोरोंद्वारा मार डाले जानेपर भी मैं उसे यमलोकसे ले आऊँगा।’

* जातिस्मर शब्दका अर्थ है पूर्वजन्मोंको स्मरण करनेवाला व्यक्ति। यह योगदर्शनके अनुसार त्याग, अपरिग्रह और मन-बुद्धि एवं प्रकृतिके अनुशीलनसे प्राप्त होता है—‘संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।’ (योगदर्शन ३।१८) जिस प्रकार अद्रोह, सद्ग्राव, सरलता आदिको जातिस्मरता (आध्यात्मिकता, कुण्डलिनी-जागरणादि)-में सहायक माना है, उसी प्रकार अहंकार, कौटिल्य-द्वैष-द्रोहादिको आध्यात्मिकतामें बाधक भी मानना चाहिये और कल्याणकामीकी उनसे सदा बचते रहनेकी भी चेष्टा करनी चाहिये।

इस प्रकार परस्पर शाप देकर और राजा संजयके द्वारा सत्कृत होकर दोनों मुनि अपने-अपने आश्रमकी ओर चले गये। तदनन्तर सातवें महीनेमें राजाको पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कामदेवके समान अतिशय रूपवान् और पूर्वजन्मोंका ज्ञाता था। नारदजीके वरदानसे जिस स्थानपर वह मूत्र-पुरीष आदिका परित्याग करता, वहीं वह सुवर्ण हो जाता, इसलिये राजाने उसका नाम स्वर्णष्टीवी रखा। वह राजपुत्र सभी प्राणियोंकी बातोंको समझता था। राजा संजयने पुत्रके प्रभावसे बहुत धन प्राप्तकर राजसूय आदि यज्ञोंका विधिपूर्वक सम्पादन किया। उसने अनेक कूप, सरोवर, देवालयों आदिका निर्माण कराया। पुत्रकी रक्षाके लिये विशाल सेना भी नियुक्त कर दी।

स्वर्णष्टीवीके प्रभावसे राजा संजयके यहाँ स्वर्णकी ढेर सारी राशियाँ एकत्र हो गयीं। कुछ समयके बाद राजपुत्रकी अत्यन्त ख्याति सुनकर लोभवश मदोद्धत चोरोंने स्वर्णष्टीवीका हरण कर लिया, परंतु जब उसके शरीरमें कहीं भी सोना नहीं देखा, तब चोरोंने उसे मारकर जंगलमें फेंक दिया। चोरोंद्वारा पुत्रके मारे जानेपर राजा बहुत दुःखी हो विलाप करने लगा। उस समय नारदजी वहाँ पुनः पधारे। नारदजीने अनेक प्राचीन राजाओंकी गाथाएँ सुनाकर राजाके शोकको दूर किया और यमलोकमें जाकर वे राजपुत्रको ले आये। पुत्रको प्राप्तकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने नारदजीसे पूछा—‘महाराज! किस कर्मके प्रभावसे यह मेरा पुत्र स्वर्णष्टीवी हुआ और किस कर्मके प्रभावसे इसको पूर्वजन्मका स्मरण है?’ नारदजीने कहा—‘राजन्! इसने ‘भद्र’ नामक व्रतको विधिपूर्वक चार बार किया है। यह उसीका प्रताप है।’ इतना कहकर नारदजी अपने आश्रमको चले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस व्रतके

करनेसे व्रतीका उत्तम कुलमें जन्म होता है और वह रूपवान् तथा पूर्वजन्मका ज्ञाता एवं दीर्घायु होता है। अब आप इस व्रतका विधान सुनें—इस व्रतके चार भद्र चार पादके रूपमें हैं। मार्गशीर्षमें पहला, फाल्गुनमें दूसरा, ज्येष्ठमें तीसरा और भाद्रपदमें चौथा पाद होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल आदि तीन मास ‘विष्णुपद’ नामक भद्र सभी धर्मोंका साधक है। फाल्गुन शुक्ल आदि तीन मास ‘त्रिपुष्कर’ नामक भद्ररूप है और यह तप आदिका साधक एवं लक्ष्मीप्रद है। ज्येष्ठ शुक्ल आदि तीन मास ‘त्रिराम’ नामक भद्र है। यह सत्य और शौर्य प्रदान करता है। भाद्रपद शुक्ल आदि तीन मास ‘त्रिरंग’ नामक भद्र है, यह बहुत विद्या देनेवाला है। सभी स्त्री-पुरुषोंको इस भद्रव्रतको करना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—जगत्पते! इन भद्रोंका विधान आप विस्तारपूर्वक कहें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस अतिशय गुप विधानको मैंने किसीसे नहीं कहा है, आपको मैं सुनाता हूँ। आप सावधान होकर सुनें—

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी प्रारम्भिक चार तिथियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ मानी गयी हैं। ये तिथियाँ हैं—द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी। व्रतीको प्रतिपदाके दिन जितेन्द्रिय होकर एकभुक्त रहना चाहिये। प्रातःकालमें द्वितीया तिथिको नित्यक्रियाओंको सम्पन्न कर मध्याह्नमें मन्त्रपूर्वक गोमय तथा मिट्टी आदि लगाकर स्नान करना चाहिये। इन मन्त्रोंके अधिकारी चारों वर्ण हैं, किंतु वर्णसंकरोंको इनका अधिकार नहीं है। विधवा स्त्री यदि सदाचारसम्पन्न हो तो वह भी इस व्रतकी अधिकारिणी है। सधवा स्त्री अपने पतिकी आज्ञासे यह व्रत ग्रहण करे। शरीरमें मिट्टी-लेपन करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं मृत्स्ने वन्दिता देवैः समलैर्देत्यधातिभिः ॥
मयापि वन्दिता भक्त्या मामतो विमलं कुरु ॥

(उत्तरपर्व १३ । ६५-६६)

‘मृत्तिके ! दुष्ट दैत्योंका विनाश करनेवाले देवताओंके द्वारा आप वन्दित हैं, मैं भी भक्तिपूर्वक आपकी वन्दना करता हूँ, मुझे भी आप पवित्र बना दें।’

अनन्तर जलके समुख जाकर सफेद सरसों, कृष्ण तिल, वच और सर्वोषधिका उबटन लगाकर जलमें मण्डल अङ्कित कर ये मन्त्र पढ़ने चाहिये—

त्वमादिः सर्वदेवानां जगतां च जगन्मये ।

भूतानां वीरुधां चैव रसानां पतये नमः ॥

गङ्गासागरजं तोयं पौष्करं नार्मदं तथा ।

यामुनं सांनिहत्यं च संनिधानमिहास्तु मे ॥

(उत्तरपर्व १३ । ६८-६९)

ये मन्त्र पढ़कर स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहन, संध्या और तर्पण करे। फिर घर आकर नियमपूर्वक रहे और चन्द्रोदयपर्यन्त किसीसे सम्भाषण न करे।

इसी प्रकार द्वितीया आदि तिथियोंमें कृष्ण, अच्युत, अनन्त और हर्षीकेश—इन नामोंसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करे। पहले दिन भगवान्‌के चरणारविन्दोंका, दूसरे दिन नाभिका, तीसरे दिन वक्षःस्थलका और चौथे दिन नारायणके मस्तकका विधिपूर्वक उत्तम पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन करे और रात्रिमें जब चन्द्रोदय हो, तब शशि, चन्द्र, शशाङ्क तथा इन्दु—इन नामोंसे क्रमशः चन्दन, अगरु, कर्पूर, दधि, दूर्वा, अक्षत तथा अनेक रत्नों, पुष्पों एवं फलों आदिसे चन्द्रमाको अर्घ्य दे। प्रत्येक दिन जैसे-जैसे चन्द्रमाकी वृद्धि हो वैसे-वैसे अर्घ्यमें भी वृद्धि करनी चाहिये। अर्घ्य इस मन्त्रसे देना चाहिये—

नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ।

त्रिरघ्निसमवेतान् वै देवानाप्यायसे हविः ॥

गगनाङ्गणसद्वीप दुर्घाब्धिमथनोद्दव ।

भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १३ । ८६-८७)

‘हे रमानुज ! आप प्रत्येक मासके अन्तमें नवीन-नवीन रूपमें आविर्भूत होते रहते हैं। तीन अग्नियोंसे समन्वित देवताओंको आप ही हविष्यके द्वारा आप्यायित करते हैं। आपकी उत्पत्ति क्षीरसागरके मन्थनसे हुई है। आपकी आभासे ही दिशा-विदिशाएँ आभासित होती हैं। गगनरूपी आँगनके आप सत्स्वरूपी देदीप्यमान दीपक हैं। आपको नमस्कार है।’

चन्द्रमाको अर्घ्य निवेदित कर वह अर्घ्य ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर मौन होकर भूमिपर पद्मपत्र बिछाकर भोजन करे। पलाश या अशोकके पत्रोंद्वारा पवित्र भूमि या शिलातलका शोधन कर इस मन्त्रसे भूमिकी प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं देवि सर्वरसोद्दवे ॥

मदनुग्रहाय सुस्वादं कुर्वन्नममृतोपमम् ।

(उत्तरपर्व १३ । ९०-९१)

‘सम्पूर्ण रसोंको उत्पन्न करनेवाली है पृथ्वी देवि ! आपके आश्रयमें मैं भोजन करना चाहता हूँ। मुझपर अनुग्रह करनेके लिये आप इस अन्नको अमृतके समान उत्तम स्वादयुक्त बना दें।’

अनन्तर शाक तथा पक्नानका भोजन करे। भोजनके बाद आचमन करे और अङ्गोंका स्पर्श कर चन्द्रमाका ध्यान करते हुए भूमिपर ही शयन करे। द्वितीयाके दिन क्षार एवं लवणरहित हविष्यका भोजन करना चाहिये। तृतीयाको नीवार (तिन्नी) तथा चतुर्थीको गायके दूधसे बने उत्तम पदार्थोंको ग्रहण करना चाहिये। पञ्चमीको घृतयुक्त कृशरान्न (खिचड़ी) ग्रहण करना चाहिये। इस भद्रव्रतमें सावाँ, चावल, गायका घृत तथा अन्य गव्य पदार्थ एवं अयाच्चित प्राप्त वन्य फल प्रशस्त माने गये हैं। अनन्तर प्रातःकाल स्नानकर पितरोंका तर्पण कर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दान-दक्षिणा आदि

देकर बिदा करना चाहिये। बादमें भृत्य एवं बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे।

इस प्रकार तीन-तीन महीनोंतक चार भद्रव्रतोंका जो वर्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक प्रमादरहित होकर आचरण करता है, उसे चन्द्रदेव प्रसन्न होकर श्री, विजय आदि प्रदान करते हैं। जो कन्या इस भद्रव्रतका अनुष्ठान करती है, वह शुभ पतिको प्राप्त करती है। दुर्भगा स्त्री सुभगा

एवं साध्वी हो जाती है तथा नित्य सौभाग्यको प्राप्त करती है। राज्यार्थी राज्य, धनार्थी धन और पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है। इस भद्रव्रतके करनेसे स्त्रीका उत्तम कुलमें विवाह होता है तथा वह उत्तम शश्या, अन्न, यान, आसन आदि शुभ पदार्थोंको प्राप्त करती है और पुरुष धन, पुत्र, स्त्रीके साथ ही पूर्वजन्मके ज्ञानको भी प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १३)

यमद्वितीया तथा अशून्यशयन-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! कर्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीया तिथिको यमुनाने अपने घर अपने भाई यमको भोजन कराया और यमलोकमें बड़ा उत्सव हुआ, इसलिये इस तिथिका नाम यमद्वितीया है। अतः इस दिन भाईको अपने घर भोजन न कर बहिनके घर जाकर प्रेमपूर्वक उसके हाथका बना हुआ भोजन करना चाहिये। उससे बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है। इसके बदले बहिनको स्वर्णालंकार, वस्त्र तथा द्रव्य आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। यदि अपनी सगी बहिन न हो तो पिताके भाईकी कन्या, मामाकी पुत्री, मौसी अथवा बुआकी बेटी—ये भी बहिनके समान हैं, इनके हाथका बना भोजन करे। जो पुरुष यमद्वितीयाको बहिनके हाथका भोजन करता है, उसे धन, यश, आयुष्य, धर्म, अर्थ और अपरिमित सुखकी प्राप्ति होती है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने बताया कि सब धर्मोंका साधन गृहस्थाश्रम है, वह गृहस्थाश्रम स्त्री और पुरुषसे ही प्रतिष्ठित होता है। पत्नीहीन पुरुष और पुरुषहीन नारी धर्म आदि साधन सम्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते, इसलिये आप कोई ऐसा व्रत बतायें जिसके अनुष्ठानसे

दाम्पत्यका वियोग न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीयाको अशून्यशयन नामक व्रत होता है। इसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और पुरुष पत्नीसे हीन नहीं होता। इस तिथिको लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका शश्यापर अनेक उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये। इस दिन उपवास, नक्तव्रत अथवा अयाचित-व्रत करना चाहिये। व्रतके दिन दही, अक्षत, कन्द-मूल, फल, पुष्प, जल आदि सुवर्णके पात्रमें रखकर निम्रमन्त्रको पढ़ते हुए चन्द्रमाको अर्घ्य देना चाहिये—
गगनाङ्गणसम्भूत दुर्गधाब्धिमथनोद्धवा।
भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १५। १८)

इस विधानके साथ जो व्यक्ति चार मासतक व्रत करता है, उसको कभी भी स्त्री-वियोग प्राप्त नहीं होता एवं उसे सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। जो स्त्री भक्तिपूर्वक इस व्रतको करती है, वह तीन जन्मतक विधवा और दुर्भगा नहीं होती। यह अशून्य-द्वितीयाका व्रत सभी कामनाओं और उत्तम भोगोंको देनेवाला है, अतः इसे अवश्य करना चाहिये। (अध्याय १४-१५)

मधूकतृतीया एवं मेघपालीतृतीया-ब्रत

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! मधूक-वृक्षका आश्रय ग्रहण करनेवाली भगवान् शंकरकी भार्या भगवती गौरीकी लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियोंने किस कारणसे अर्चना की, इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— प्राचीन कालमें समुद्र-मन्थनसे मधूक-वृक्ष विनिर्गत हुआ। स्त्रियोंको अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करानेवाले तथा सभी आधिव्याधियोंको दूर करनेवाले उस वृक्षको भूलोकवासियोंने पृथिवीपर स्थापित किया। जया-विजया आदि सखियोंसहित भगवती गौरीको उस प्रफुल्लित सुन्दर वृक्षका आश्रय ग्रहण किये देखकर देवताओंने अपनी अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्तिहेतु उसकी अनेक उपचारोंसे पूजा की। स्वयं लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, गङ्गा, रोहिणी, रम्भा तथा अरुन्धती आदिने भी विनयपूर्वक पूजा की। भगवती गौरीने प्रसन्न होकर उन्हें अभिमत फल प्रदान किया। फाल्युन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको इनकी उपासना हुई थी। इसलिये फाल्युनके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको उपवासकर मधुवनमें जाकर मधूक-वृक्षके नीचे ब्रह्मचर्यमें स्थित, जटामुकुटसे सुशोभित, तपस्यारत तथा गोधाके रथपर आरूढ़, रुद्रध्यानपरायणा भगवती पार्वतीकी प्रतिमाका ध्यान करते हुए गन्ध, पुष्प, दीप, लाल चन्दन, केसर, मधुर द्रव्य, स्वर्ण, माणिक्य आदिसे पूजाकर देवीसे इस प्रकार अखण्ड सौभाग्यके लिये प्रार्थना करे—

ॐ भूषिता देवभूषा च भूषिका ललिता उमा।
तपोवनरता गौरी सौभाग्यं मे प्रयच्छतु॥
दौर्भाग्यं मे शमयतु सुप्रसन्नमनाः सदा।
अवैथर्व्यं कुले जन्म ददात्वपरजन्मनि॥

(उत्तरपर्व १६। ३-४)

‘तपोवनरता है गौरी देवि! आपका नाम ललिता तथा उमा है। आप देवताओंकी

आभूषणस्वरूपा एवं सभीको आभूषित करनेवाली हैं और स्वयं आभूषित हैं। आप मुझे सौभाग्य प्रदान करें। आप मेरे दौर्भाग्यका शमन करें। दूसरे जन्ममें भी मेरा सौभाग्य अखण्डित रहे। आप सर्वदा मुझपर प्रसन्न रहें।’

अनन्तर फूल, जीरक, लवण, गुड़, धी, पुष्पमालाओं, कुंकुम, गन्ध, अगरु, चन्दन एवं सिंदूर आदि तथा वस्त्रोंसे और अनेक देशोत्पन्न अंजनोंसे, पुआ, तिल और तण्डुल, घृतपूरित मोदक इत्यादि नैवेद्योंसे मधूक-वृक्षकी पूजा करे। उसकी प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। जो कन्या इस उत्तम तृतीया-ब्रतको करती है, वह तीनों लोकोंमें दुष्प्राप्य भगवान् विष्णुके समान पति प्राप्त करती है। राजन्! मेरे द्वारा कथित यह ब्रत चिरकालतक प्रसिद्ध रहेगा। इस ब्रतको रुक्मिणीके सम्मुख प्रथम महर्षि कश्यपने कहा था। जो स्त्री इस ब्रतका आचरण करेगी, वह नीरोग, सुन्दर दृष्टिसम्पन्न तथा अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे शोभायुक्त होकर सौ वर्षोंतक जीवित रहेगी। अनन्तर किंकिणीके शब्दोंसे समन्वित हंसयानसे रुद्रलोकको प्राप्त करेगी। वहाँ अनेक वर्षोंतक अपने पतिके साथ दिव्य भोगोंको प्राप्त कर आठों सिद्धियोंसे समन्वित होगी।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! मेघपाली-ब्रत कब और कैसे अनुष्ठित होता है, इसका क्या फल है तथा मेघपाली लता कैसी होती है? इसे बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— आश्विन मासके कृष्ण पक्षकी तृतीया तिथिको भक्तिपूर्वक स्त्रियों अथवा पुरुषोंको सद्गुर्मंकी प्राप्तिके लिये मेघपालीको सप्तधान्य (यव, गोधूम, धान, तिल, कंगु, श्यामाक (सावाँ) तथा चना) और अङ्गुरित गोधूमके साथ अथवा तिल-तण्डुलके पिण्डोंद्वारा अर्ध्य प्रदान करना चाहिये।

मेघपाली ताम्बूलके समान पत्तोंवाली, मञ्जरीयुक्त एक लाल लता है, वह वाटिकाओंमें, ग्राम-मार्गमें होती है तथा पर्वतोंपर प्रायः होती है। व्यापारसे जीवन बितानेवाले वैश्यगण धान्य, तेल, गुड़, कुंकुम, स्वर्ण तथा पद (जूता, छाता, कपड़ा, अँगूठी, कमण्डलु, आसन, बर्तन और भोज्य वस्तु) आदिसे इसकी पूजा करते हैं। मेघपालीके अर्घ्यदानसे जाने-अनजाने जो भी पाप होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। श्रेष्ठ स्त्रियोंको शुभ देश या स्थानमें उत्पन्न मेघपालीकी फल, गन्ध, पुष्प, अक्षत, नारिकेल, खजूर, अनार, कनेर, धूप, दीप, दही और नये अङ्कुरवाले धान्य-समूहसे पूजा करनी चाहिये तथा लाल वस्त्रोंसे

उसे आच्छादित कर और अबीरसे विभूषित कर अर्घ्य देना चाहिये। वह अर्घ्य विद्वान् ब्राह्मणको समर्पण कर देना चाहिये। इस प्रकार मेघपालीकी पूजा करनेवाली नारी या पुरुष परम ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं तथा सुख-सौभाग्यसे समन्वित हो सौ वर्षोंतक मर्त्यलोकमें जीवित रहते हैं। अन्तमें विमानपर आरूढ हो विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं और अपने सात कुलोंको निःसंदेह नरकसे स्वर्ग पहुँचा देते हैं। जो नरकके भयसे फलादिसे समन्वित अर्घ्य मेघपालीको प्रदान करता है, उसके सभी पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं* जैसे सूर्यके द्वारा अन्धकार नष्ट हो जाता है। (अध्याय १६-१७)

पञ्चाग्निसाधन नामक रम्भा-तृतीया तथा गोष्यद-तृतीयाव्रत

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस मृत्युलोकमें जिस व्रतके द्वारा स्त्रियोंका गृहस्थाश्रम सुचारुरूपसे चले और उन्हें पतिकी भी प्रीति प्राप्त हो, उसे बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—एक समय अनेक लताओंसे आच्छन्न, विविध पुष्पोंसे सुशोभित, मुनि और किन्नरोंसे सेवित तथा गान और नृत्यसे परिपूर्ण रमणीय कैलास-शिखरपर मुनियों और देवताओंसे आवृत माँ पार्वती और भगवान् शिव बैठे हुए थे। उस समय भगवान् शंकरने पार्वतीसे पूछा—‘सुन्दरि! तुमने कौन-सा ऐसा उत्तम व्रत किया था, जिससे आज तुम मेरी वामाङ्गीके रूपमें अत्यन्त प्रिय बन गयी हो?’

पार्वतीजी बोलीं—नाथ! मैंने बाल्य-कालमें रम्भाव्रत किया था, उसीके फलस्वरूप आप मुझे पतिरूपमें प्राप्त हुए हैं एवं मैं सभी स्त्रियोंकी स्वामिनी तथा आपकी अर्धाङ्गिनी भी बन गयी हूँ।

भगवान् शंकरने पूछा—भद्रे! सभीको सौख्य प्रदान करनेवाला वह रम्भाव्रत कैसे किया जाता है? पिताके यहाँ इसे तुमने किस प्रकार अनुष्ठित किया था? उसे बताओ।

पार्वतीजी बोलीं—देव! एक समय मैं बाल्यकालमें अपने पिताके घर सखियोंके साथ बैठी थी, उस समय मेरे पिता हिमवान् तथा माता मेनाने मुझसे कहा—‘पुत्रि! तुम सुन्दर तथा सौभाग्यवर्धक रम्भाव्रतका अनुष्ठान करो, उसके आरम्भ करते ही तुम्हें सौभाग्य, ऐश्वर्य तथा महादेवी-पदकी प्राप्ति हो जायगी। पुत्रि! ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको स्नान कर इस व्रतका नियम ग्रहण करो और अपने चारों ओर पञ्चाग्नि प्रज्वलित करो अर्थात् गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि, आहवनीय तथा सभ्याग्नि और पाँचवें तेजःस्वरूप सूर्याग्निका सेवन करो। इसके बीचमें पूर्वकी दिशाकी ओर मुखकर बैठ जाओ और मृगचर्म, जटा,

* इसमें वनस्पतिको देवता मानकर उसकी पूजाको विशेष महत्व प्रदान किया गया है। विशेषकर अर्थवैद तथा उसके सूत्रोंमें ऐसे कई प्रकरण आये हैं। ओषधियाँ देवता ही हैं, जिनसे रोग, दुःख, पाप-शमनके साथ-साथ धर्मार्थकी सिद्धि भी होती है।

वल्कल आदि धारण कर चार भुजाओंवाली एवं सभी अलंकारोंसे सुशोभित तथा कमलके ऊपर विराजमान भगवती महासतीका ध्यान करो। पुत्रि ! महालक्ष्मी, महाकाली, महामाया, महामति, गङ्गा, यमुना, सिन्धु, शतद्रु, नर्मदा, मही, सरस्वती तथा वैतरणीके रूपमें वे ही महासती सर्वत्र व्याप्त हैं। अतः तुम उन्हींकी आराधना करो।'

प्रभो ! मैंने माताके द्वारा बतलायी गयी विधिसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रम्भा (गौरी)-ब्रतका अनुष्ठान किया और उसी ब्रतके प्रभावसे मैंने आपको प्राप्त कर लिया।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—कौन्तेय ! लोपामुद्राने भी इस रम्भाब्रतके आचरणसे महामुनि अगस्त्यको प्राप्त किया और वे संसारमें पूजित हुईं। जो कोई स्त्री-पुरुष इस रम्भाब्रतको करेगा, उसके कुलकी वृद्धि होगी। उसे उत्तम संतति तथा सम्पत्ति प्राप्त होगी। स्त्रियोंको अखण्ड सौभाग्यकी तथा सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाले श्रेष्ठ गार्हस्थ्य-सुखकी प्राप्ति होगी और जीवनके अन्तमें उन्हें इच्छानुसार विष्णु एवं शिवलोककी प्राप्ति होगी।

इस ब्रतका संक्षिप्त विधान इस प्रकार है— ब्रतीको एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसे गन्ध-पुष्पादिसे सुवासित तथा अलंकृत करना चाहिये। तदनन्तर मण्डपमें महादेवी रुद्राणीकी यथाशक्ति स्वर्णादिसे निर्मित प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। देवीके सम्मुख सौभाग्याष्टक—जीरा, कडुकुंड, अपूप, फूल, पवित्र निष्पाव (सेम), नमक, चीनी तथा गुड़ निवेदित करना चाहिये। पद्मासन लगाकर सूर्यास्ततक देवीके सम्मुख बैठा रहे। अनन्तर रुद्राणीको प्रणाम कर यह मन्त्र कहे—

वेदेषु सर्वशास्त्रेषु दिवि भूमौ धरातले ।

दृष्टः श्रुतश्च बहुशो न शक्त्या रहितः शिवः ॥
त्वं शक्तिस्त्वं स्वधास्वाहात्वं सावित्रीसरस्वती ।
पतिं देहि गृहं देहि वसु देहि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १८ । २३-२४)

'सम्पूर्ण वेदादि शास्त्रोंमें, स्वर्गमें तथा पृथ्वी आदिमें कहीं भी यह कभी नहीं सुना गया है और न ऐसा देखा ही गया है कि शिव शक्तिसे रहित हैं। हे पार्वती ! आप ही शक्ति हैं, आप ही स्वधा, स्वाहा, सावित्री और सरस्वती हैं। आप मुझे पति, श्रेष्ठ गृह तथा धन प्रदान करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार पुनः-पुनः उन्हें प्रणाम करके देवीसे क्षमा-प्रार्थना करे। अनन्तर सपलीक यशस्वी ब्राह्मणकी सभी उपकरणोंसे पूजा करके दान देना चाहिये। सुवासिनी स्त्रियोंको नैवेद्य आदि प्रदान करना चाहिये। इस विधानसे सभी कार्य सम्पन्न कर पाप-नाशके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। अगले दिन चतुर्थीको ब्राह्मण-दम्पतियोंको मधुर रसोंसे समन्वित भोजन कराकर ब्रत पूर्ण करना चाहिये।

पार्थ ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तथा चतुर्थी तिथिको प्रतिवर्ष गोष्ठद नामक ब्रत करना चाहिये। स्त्री अथवा पुरुष प्रथम ज्ञानसे निवृत्त होकर अक्षत और पुष्पमाला, धूप, चन्दन, पिष्टक (पीठी) आदिसे गौकी पूजा करे। उनके श्रृंग आदि सभी अङ्गोंको अलंकृत करे। उन्हें भोजन कराकर तृप्ति कर दे। स्वयं तेल और लवण आदि क्षार वस्तुओंसे रहित जो अग्निके द्वारा सिद्ध न किया गया हो उसका भोजन करे। वनकी ओर जाती तथा लौटती गौओंको उनकी तुष्टिके लिये ग्रास दे और उन्हें निम्र मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे— माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः । प्रनु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ठ ॥

(ऋ० ८। १०१। १५)

तदनन्तर निम्र मन्त्रसे गौकी प्रार्थना करे—
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

(उत्तरपर्व १९।७)

पञ्चमीको क्रोधरहित होकर गायके दूध, दही, चावलका पीठा, फल तथा शाकका भोजन करे। रात्रिमें संयत होकर विश्राम करे। प्रातःकाल यथाशक्ति स्वर्णादिसे निर्मित गोष्पद (गायका खुर) तथा गुड़से निर्मित गोवर्धन पर्वतकी पूजा कर ब्राह्मणको 'गोविन्दः प्रीयताम्' ऐसा कहकर दान करे। अनन्तर अच्युतको प्रणाम करे।

इस व्रतको भक्तिपूर्वक करनेवाला व्रती सौभाग्य, लावण्य, धन, धान्य, यश, उत्तम संतान आदि सभी पदार्थोंको प्राप्त करता है। उसका घर, गौ और बछड़ोंसे परिपूर्ण रहता है। मृत्युके बाद वह दिव्य स्वरूप धारणकर दिव्यालंकारोंसे विभूषित हो विमानमें बैठकर स्वर्गलोक जाता है एवं स्वर्गमें दिव्य सौ वर्षोंतक निवासकर फिर विष्णुलोकमें जाता है। इस गोष्पद त्रिरात्रव्रतका कर्ता गौ तथा गोविन्दकी पूजा करनेवाला और गोरस आदिका भोजन करते हुए जीवन-यापन करनेवाला उत्तम गोलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १८-१९)

हरकालीव्रत-कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! भगवती हरकालीदेवी कौन हैं? इनका पूजन करनेसे स्त्रियोंको क्या फल प्राप्त होता है? इसका आप वर्णन करें?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! दक्ष प्रजापतिकी एक कन्याका नाम था काली। उनका वर्ण भी नीलकमलके समान काला था। उनका विवाह भगवान् शंकरके साथ हुआ। विवाहके बाद भगवान् शंकर भगवती कालीके साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगे। एक समय भगवान् शंकर भगवान् विष्णुके साथ अपने सुरम्य मण्डपमें विराजमान थे। उस समय हँसकर शिवजीने भगवती कालीको बुलाया और कहा—‘प्रिये! गौरि! यहाँ आओ।’ शिवजीका यह वक्रवाक्य सुनकर भगवतीको बहुत क्रोध आया और वे यह कहकर रुदन करने लगीं कि ‘शिवजीने मेरा कृष्णवर्ण देखकर परिहास किया है और मुझे गौरी कहा है, अतः अब मैं अपनी इस देहको अग्निमें प्रज्वलित कर दूँगी।’ भगवान् शंकरने उन्हें अग्निमें प्रवेश करनेसे रोकनेका प्रयत्न किया, परंतु देवीने अपनी देहकी हरितवर्णकी कान्ति हरी दूर्वा आदि घासमें त्यागकर अपनी

देहको अग्निमें हवन कर दिया और उन्होंने पुनः हिमालयकी पुत्री-रूपमें गौरी नामसे प्रादुर्भूत होकर शिवजीके वामाङ्गमें निवास किया। इसी दिनसे जगत्पूज्या श्रीभगवतीका नाम ‘हरकाली’ हुआ।

महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको सब प्रकारके नये धान्य एकत्रकर उनपर अङ्कुरित हरी घाससे निर्मित भगवती हरकालीकी मूर्ति स्थापित करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, मोदक आदि नैवेद्य तथा भाँति-भाँतिके उपचारोंसे देवीका पूजन करे। रात्रिमें गीत-नृत्य आदि उत्सवकर जागरण करे और देवी हरकालीको इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

हरकर्मसमुत्पन्ने हरकाये हरप्रिये।
मां त्राहीशस्य मूर्तिस्थे प्रणतोऽस्मि नमः॥

(उत्तरपर्व २०।२०)

‘भगवान् शंकरके कृत्यसे उत्पन्न हे शंकरप्रिये! आप भगवान् शंकरके शरीरमें निवास करनेवाली हैं, भगवान् शंकरकी मूर्तिमें स्थित रहनेवाली हैं, मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरी रक्षा करें। आपको बार-बार प्रणाम है।’

इस प्रकार देवीका पूजन कर प्रातःकाल सुवासिनी स्त्रियाँ बड़े उत्सवसे गीत-नृत्यादि करते हुए प्रतिमाको पवित्र जलाशयके समीप ले जायँ और इस मन्त्रको पढ़ते हुए विसर्जित करें—

अर्चितासि मया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम्।
हरकाले शिवे गौरि पुनरागमनाय च॥

(उत्तरपर्व २०। २२)

‘हे हरकाली देवि! मैंने भक्तिपूर्वक आपकी पूजा की है, हे गौरि! आप पुनः आगमनके लिये इस समय देवलोकको प्रस्थान करें।’

इस विधिसे प्रतिवर्ष, जो स्त्री अथवा पुरुष

ब्रत करता है, वह आरोग्य, दीर्घायुष्य, सौभाग्य, पुत्र, पौत्र, धन, बल, ऐश्वर्य आदि प्राप्त करता है और सौ वर्षतक संसारका सुख भोगकर शिवलोक प्राप्त करता है। महादेवके अनुग्रहसे वहाँ वीरभद्र, महाकाल, नन्दीश्वर, विनायक आदि शिवजीके गण उसकी आज्ञामें रहते हैं। जो भी स्त्री भक्तिपूर्वक यह हरकाली-ब्रत करती है और रात्रिके समय गीत-वाद्य-नृत्यसे जागरण कर उत्सव मनाती है, वह अपने पतिकी अति प्रिय होती है।

(अध्याय २०)

ललितातृतीया-ब्रतकी विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप द्वादश मासोंमें किये जानेवाले ब्रतोंका वर्णन करें, जिनके करनेसे सभी उत्तम फल प्राप्त होते हैं, साथ ही प्रत्येक मास-ब्रतका विधान भी बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस विषयमें मैं एक प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ, आप सुनें—

एक समय देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्त्र, सिद्ध, तपस्वी, नाग आदिसे पूजित भगवान् श्रीसदाशिव कैलासपर्वतपर विराजमान थे। उस समय भगवती उमाने विनयपूर्वक भगवान् सदाशिवसे प्रार्थना की कि महाराज! आप मुझे उत्तम तृतीया-ब्रतके विषयमें बतानेकी कृपा करें, जिसके करनेसे नारीको सौभाग्य, धन, सुख, पुत्र, रूप, लक्ष्मी, दीर्घायु तथा आरोग्य प्राप्त होता है और स्वर्गकी भी प्राप्ति होती है। उमाकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए कहा—‘प्रिये! तीनों लोकोंमें ऐसा कौन-सा पदार्थ है जो तुम्हें दुर्लभ है तथा जिसकी प्राप्तिके लिये ब्रतकी जिज्ञासा कर रही हो।’

पार्वतीजी बोली—महाराज! आपका कथन

सत्य ही है। आपकी कृपासे तीनों लोकोंके सभी उत्तम पदार्थ मुझे सुलभ हैं, किंतु संसारमें अनेक स्त्रियाँ विविध कामनाओंकी प्राप्तिके लिये तथा अमङ्गलोंकी निवृत्तिके लिये भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करती हैं तथा मेरी शरण आती हैं। अतः ऐसा कोई ब्रत बताइये, जिससे वे अनायास अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकें।

भगवान् शिवने कहा—उमे! ब्रतकी इच्छावाली स्त्री संयमपूर्वक माघशुक्ला तृतीयाको प्रातः उठकर नित्यकर्म सम्पन्नकर ब्रतके नियमको ग्रहण करे। मध्याह्नके समय बिल्व और आमलकमिश्रित पवित्र जलसे स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण करे तथा गन्ध, पुष्प, दीप, कपूर, कुंकुम एवं विविध नैवेद्योंसे भक्तिपूर्वक भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखनेवाली तुम्हारी (पार्वतीकी) भक्तिभावसे पूजा करे। अनन्तर ईशानी नामसे तुम्हारा ध्यान करते हुए ताँबेके घड़ेमें जल, अक्षत तथा सुवर्ण रखकर सौभाग्यादिकी कामनासे संकल्पपूर्वक वह घट ब्राह्मणको दान दे दे। ब्राह्मण उस घटस्थ जलसे ब्रतकर्त्रीका अभिषेक करे। अनन्तर वह कुशोदकका आचमन कर रात्रिके समय भगवती

उमादेवीका ध्यान करते हुए भूमिपर कुशकी शय्या बिछाकर सोये । दूसरे दिन प्रातः उठकर स्नानसे निवृत्त हो, विधिपूर्वक भगवतीका पूजन करे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । इस प्रकार भगवतीका प्रथम मासमें ईशानी नामसे, द्वितीय मासमें पार्वती नामसे, तृतीय मासमें शंकरप्रिया नामसे, चतुर्थ मासमें भवानी नामसे, पाँचवें मासमें स्कन्दमाता नामसे, छठे मासमें दक्षदुहिता नामसे, सातवें मासमें मैनाकी नामसे, आठवें मासमें कात्यायनी नामसे, नवें मासमें हिमाद्रिजा नामसे, दसवें मासमें सौभाग्यदायिनी नामसे, ग्यारहवें मासमें उमा नामसे तथा अन्तिम बारहवें मासमें गौरी नामसे पूजन करे । बारहों मासोंमें क्रमशः कुशोदक, दुग्ध, घृत, गोमूत्र, गोमय, फल, निम्ब-पत्र, कंटकारी, गोशृंगोदक, दही, पञ्चगव्य और शाकका प्राशन करे ।

इस प्रकार बारह मासतक व्रतकर श्रद्धापूर्वक

भगवतीकी पूजा करे और प्रत्येक मासमें ब्राह्मणोंको दान दे । व्रतकी समाप्तिपर वेदपाठी ब्राह्मणको पत्नीके साथ बुलाकर दोनोंमें शिव-पार्वतीकी बुद्धि रखकर गन्ध-पुष्टादिसे उनकी पूजा करे और उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन कराये तथा आभूषण, अन्न, दक्षिणा आदि देकर उन्हें संतुष्ट करे । ब्राह्मणको दो शुक्ल वस्त्र तथा ब्राह्मणीको दो रक्त वस्त्र प्रदान करे । जो स्त्री इस व्रतको भक्तिपूर्वक करती है, वह अपने पतिके साथ दिव्यलोकमें जाकर दस हजार वर्षोंतक उत्तम भोगोंका भोग करती है । पुनः मनुष्य-लोकमें आनेके बाद वे दोनों दम्पति ही होते हैं और आरोग्य, धन, संतान आदि सभी उत्तम पदार्थ उन्हें प्राप्त होते हैं । इस व्रतका पालन करनेवाली स्त्रीका पति सदा उसके अधीन रहता है और उसे अपने प्राणोंसे भी अधिक मानता है । जन्मान्तरमें व्रतकर्त्ता स्त्री राजपत्नी होकर राज्य-सुखका उपभोग करती है । (अध्याय २१)

अवियोगतृतीया-व्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा— भगवन् ! जिस व्रतके करनेसे पत्नी पतिसे वियुक्त न हो और अन्तमें शिवलोकमें निवास करे तथा जन्मान्तरमें भी विधवा न हो ऐसे व्रतका आप वर्णन करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— महाराज ! इसी विषयको भगवती पार्वतीजीने भगवान् शिवसे और अरुन्धतीने महर्षि वसिष्ठजीसे पूछा था । उन लोगोंने जो कहा, वही आपको सुनाता हूँ ।

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको पवित्र चरित्रवाली स्त्री रात्रिमें पायस भक्षण कर शिव और पार्वतीको दण्डवत् प्रणाम करे । तृतीया तिथिमें प्रातः गूलरकी दातौनसे दन्तधावन कर स्नान करे । शालि चावलके चूर्णसे शिव और पार्वतीकी प्रतिमा बनाये । उन्हें एक उत्तम पात्रमें

स्थापित कर विधिपूर्वक उनका पूजन करे । रात्रिमें जागरण कर शिव-पार्वतीका कीर्तन करती हुई भूमिपर शयन करे । चतुर्थीको प्रातः उठकर दक्षिणाके साथ उस प्रतिमाको आचार्यको समर्पित कर शिवभक्त ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराकर संतुष्ट करे । ब्राह्मण दम्पतिकी भी यथाशक्ति पूजा करे ।

इस प्रकार प्रतिमास व्रत एवं पूजन करना चाहिये । बारह महीनोंमें क्रमशः शिव-पार्वतीके नामोंसे पूजा करनी चाहिये—मार्गशीर्षमें शिव-पार्वतीके नामसे, पौषमें गिरीश और पार्वती नामसे, माघमें भव और भवानी नामसे, फाल्गुनमें महादेव और उमा नामसे, चैत्रमें शंकर और ललिता नामसे, वैशाखमें स्थाणु और लोलनेत्रा नामसे, ज्येष्ठमें वैरेश्वर और एकवीरा नामसे, आषाढ़में त्रिलोचन

पशुपति और शक्ति नामसे, श्रावणमें श्रीकण्ठ और सुता नामसे, भाद्रपदमें भीम और कालरात्रि नामसे, आश्विनमें शिव और दुर्गा नामसे तथा कार्तिकमें ईशान और शिवा नामसे पूजा करनी चाहिये।

बारह महीनोंमें भगवान् शिव एवं पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः—नील कमल, कनेर, बिल्वपत्र, पलास, कुञ्ज, मलिका, पाढ़र, श्वेत कमल, कदम्ब, तगर, द्रोण तथा मालती—इन पुष्टोंसे पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मार्गशीर्षसे व्रत प्रारम्भकर कार्तिकमें व्रतका उद्यापन करना चाहिये। उद्यापनमें सुवर्ण, कमल, दो वस्त्र, ध्वजा, दीपक और विविध नैवेद्य शिवको अर्पित कर आरती करनी चाहिये और बारह ब्राह्मणयुगलका यथाशक्ति पूजन कर सुवर्णमय शिव-पार्वतीकी मूर्ति बनवाकर

उन्हें ताम्रपात्रमें स्थापित कर उसी पात्रमें चौंसठ मोती, चौंसठ मूँगा, चौंसठ पुखराज रखकर उस पात्रको वस्त्रसे ढककर आचार्यको समर्पित करना चाहिये। अड़तालीस जलपूर्ण कलश, छाता, जूता और सुवर्ण ब्राह्मणोंको दानमें देना चाहिये। दीन, अन्ध और कृपणको अन्न बाँटना चाहिये। किसीको भी उस दिन निराश नहीं जाने देना चाहिये। यदि इतनी शक्ति न हो तो कुछ कम करे, किंतु वित्तशार्थ्य न करे। इस व्रतके करनेसे रूप, सौभाग्य, धन, आयु, पुत्र और शिवलोककी प्राप्ति होती है तथा इष्टजनोंसे कभी वियोग नहीं होता। इस व्रतके करनेपर पतिव्रता स्त्री कभी भी पति-पुत्र, सौभाग्य और धनसे वियुक्त नहीं होती और शिवलोकमें निवास करती है। (अध्याय २२)

उमामहेश्वर-व्रतकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! जिस व्रतके करनेसे स्त्रियोंको अनेक गुणवान् पुत्र-पौत्र, सुवर्ण, वस्त्र और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा पति-पत्नीका परस्पर वियोग नहीं होता, उस व्रतका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ एक व्रत है, जो उमामहेश्वर-व्रत कहलाता है, इस व्रतको करनेसे स्त्रियोंको अनेक संतान, दास, दासी, आभूषण, वस्त्र और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको अप्सरा, विद्याधरी, किन्नरी, ऋषिकन्या, सीता, अहल्या, रोहिणी, दमयन्ती, तारा तथा अनसूया आदि सभीने किया था और अन्य सभी उत्तम स्त्रियाँ भी इस व्रतको करती हैं। भगवती पार्वतीने सौभाग्य तथा आरोग्य प्रदान करनेवाले और दर्दिता तथा व्याधिका नाश करनेवाले इस व्रतका दुर्भगा और कुरुपा तथा निर्धन स्त्रियोंके हितकी दृष्टिसे मनुष्यलोकमें प्रचार किया।

धर्मपरायणा स्त्री इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको नियमपूर्वक उपवास करे। प्रातः उठकर पवित्र गङ्गा आदि नदियोंमें स्नान कर शिव-पार्वतीका ध्यान करती हुई यह मन्त्र पढ़े और भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गनी भगवती श्रीललिताकी पूजा करे—

नमो नमस्ते देवेश उमादेहार्थधारक।

महादेवि नमस्तेऽस्तु हरकायार्थवासिनि ॥

(उत्तरपर्व २३। १२)

‘भगवती उमाको अपने आधे भागमें धारण करनेवाले हे देवदेवेश्वर भगवान् शंकर! आपको बार-बार नमस्कार है। महादेवि! भगवती पार्वती! आप भगवान् शंकरके आधे शरीरमें निवास करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है।’

पुनः घर आकर शरीरकी शुद्धिके लिये पञ्चगव्य-पान करे और प्रतिमाके दक्षिण भागमें भगवान् शंकर और वाम भागमें भगवती पार्वतीकी भावना

कर गन्ध, पुष्प, गुग्गुल, धूप, दीप और घीमें पकाये गये नैवेद्योंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे। इसी प्रकार बारह महीनेतक पूजनकर प्रसन्नचित्त हो व्रतका उद्यापन करे। भगवान् शंकरकी चाँदीकी तथा भगवती पार्वतीकी सुवर्णकी मूर्ति बनवाकर दोनोंको चाँदीके वृषभपर स्थापित कर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करे। अनन्तर चन्दन, श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र आदिसे भगवान् शंकरकी और कुंकुम, रक्त वस्त्र, रक्त पुष्प आदिसे भगवती पार्वतीकी पूजा करनी चाहिये। फिर शिवभक्त वेदपाठी, शान्तचित्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। सभीको दक्षिणा देकर उनकी प्रदक्षिणा करके यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

उमामहेश्वरौ देवौ सर्वलोकपितामहौ।

व्रतेनानेन सुप्रीतौ भवेतां मम सर्वदा॥

(उत्तरपर्व २३। २१)

‘सभी लोकोंके पितामह भगवान् शिव एवं पार्वती मेरे इस व्रतके अनुष्ठानसे मुझपर सदा प्रसन्न रहें।’

इस प्रकार प्रार्थना करके क्रोधरहित ब्राह्मणको सभी सामग्रियाँ देकर व्रतको समाप्त करे। इस व्रतको जो स्त्री भक्तिपूर्वक करती है, वह शिवजीके समीप एक कल्पतक निवास करती है। तदनन्तर मनुष्य-लोकमें उत्तम कुलमें जन्म ग्रहणकर रूप, यौवन, पुत्र आदि सभी पदार्थोंको प्राप्त कर बहुत दिनोंतक अपने पतिके साथ सांसारिक सुखोंको भोगती है, उसका अपने पतिसे कभी वियोग नहीं होता और अन्तमें वह शिव-सायुज्य प्राप्त करती है। (अध्याय २३)

रम्भातृतीया-व्रतका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं सभी पापोंके नाशक, पुत्र एवं सौभाग्यप्रद सभी व्याधियोंके उपशामक पुण्य तथा सौख्य प्रदान करनेवाले रम्भातृतीया-व्रतका वर्णन करता हूँ। यह व्रत सप्तियोंसे उत्पन्न क्लेशका शामक तथा ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाला है। भगवान् शंकरने देवी पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये इस व्रतकी जो विधि बतलायी थी, उसे ही मैं कहता हूँ।

श्रद्धालु स्त्री मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको प्रातः उठकर दन्तधावन आदिसे निवृत्त हो भक्तिपूर्वक उपवासका नियम ग्रहण करे। वह सर्वप्रथम व्रत-ग्रहण करनेके लिये देवीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

देवि संवत्सरं यावत्तृतीयायामुपोषिता।

प्रतिमासं करिष्यामि पारणं चापरेऽहनि।

तदविद्वेन मे यातु प्रसादात् तव पार्वति॥

(उत्तरपर्व २४। ५)

‘देवि! मैं पूरे एक वर्षतक इस तृतीया-व्रतका

आचरण और दूसरे दिन पारणा करूँगी। आप ऐसी कृपा करें, जिससे इसमें कोई विघ्न न उत्पन्न हो।’

इस प्रकार स्त्री या पुरुष व्रतका संकल्प करे और मनमें व्रतका निश्चय कर सावधानी बर्ती हुए नदी, तालाब अथवा घरमें स्नान करे। तदनन्तर देवी पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें कुशोदकका प्राशन करे। दूसरे दिन प्रातःकाल विद्वान् शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये और दक्षिणाके रूपमें सुवर्ण एवं लवण प्रदान करे। यथाशक्ति गौरीश्वर भगवान् शिवको प्रयत्नपूर्वक भोग निवेदित करे।

राजन्! पौष मासकी तृतीयामें इसी विधिसे उपवास एवं पूजनकर रात्रिमें गोमूत्रका प्राशन कर प्रभातकालमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और दक्षिणाके रूपमें उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार सोना तथा जीरक दे। इससे वाजपेय तथा अतिरात्र यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह कल्पपर्यन्त इन्द्रलोकमें निवासकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

माघ मासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको ‘सुदेवी’

नामसे भगवती पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें गोमयका प्राशन कर अकेले ही सोये। प्रातः अपनी शक्तिके अनुसार केसर तथा सोना ब्राह्मणोंको दानमें दे। इससे ब्रतीको चिरकालतक विष्णुलोकमें निवास करनेके पश्चात् भगवान् शंकरके सायुज्य (मोक्ष)-की प्राप्ति होती है।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको 'गौरी' नामसे देवी पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें गायका दूध पीये। प्रातः विद्वान् शिवभक्तों तथा सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराकर सोनेके साथ कडुहुंड देकर बिदा करे। इससे वाजपेय तथा अतिरात्र यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयामें भक्तिपूर्वक भगवती पार्वतीका विशालाक्षी नामसे पूजन कर रात्रिमें दहीका प्राशन करे और प्रातः कुंकुमके साथ ब्राह्मणोंको सोना प्रदान करे। विशालाक्षीके प्रसादसे व्रतकर्त्रीको महान् सौभाग्य प्राप्त होता है।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'श्रीमुखी' नामसे पूजन करे। रात्रिमें घृतका प्राशन करे और एकाकी ही शयन करे। प्रातः शिवभक्त ब्राह्मणोंको यथारुचि भोजन कराकर ताम्बूल तथा लवण प्रदान कर प्रणामपूर्वक बिदा करे। इस विधिसे पूजन करनेपर सुन्दर पुत्रोंकी प्राप्ति होती है।

आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको गौरी-पार्वतीकी 'माधवी' नामसे पूजा करे। तिलोदकका प्राशन करे। प्रातःकाल विप्रोंको भोजन कराये और दक्षिणामें गुड़ तथा सोना दे। इससे उसे शुभ लोककी प्राप्ति होती है।*

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'श्रीदेवी' नामसे पूजन कर गायके

सोंगका स्पर्श करे और जल पीये। शिवभक्तोंको भोजन कराकर सोना और फल दक्षिणाके रूपमें दे। इससे ब्रती सर्वलोकेश्वर होकर सभी कामनाओंको प्राप्त करता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'हरताली' नामसे पूजन करे। महिषीका दूध पीये। इससे अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है और इस लोकमें वह सुख भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'गिरिपुत्री' नामसे पूजन कर तण्डुल-मिश्रित जलका प्राशन करे और दूसरे दिन प्रातः ब्राह्मणोंका पूजन कर चन्दनयुक्त सुवर्ण दक्षिणामें दे। इससे सभी यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह गौरीलोकमें प्रशंसित होता है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'पद्मोद्धवा' नामसे पूजन करके पञ्चगव्यका प्राशन करे तथा रात्रिमें जागरण करे। प्रभातकालमें सपलीक सदाचारी ब्राह्मणोंको भोजन कराये और माल्य, वस्त्र तथा अलंकारोंसे उन शिवभक्त ब्राह्मणोंका पूजन करे। कुमारियोंको भी भोजन कराये।

इस प्रकार वर्षभर व्रत करनेके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये। यथाशक्ति सोनेकी उमा-महेश्वरकी प्रतिमा बनवाकर उन्हें एक सुन्दर, अलंकृत वितानयुक्त मण्डपमें स्थापित कर सुगन्धित द्रव्य, पत्र, पुष्प, फल, घृत-पक्क-नैवेद्य, दीपमाला, शर्करा, नारियल, दाढ़िम, बीजपूरक, जीरक, लवण, कुसुंभ, कुंकुम तथा मोदकयुक्त ताम्रपात्रसे देवदेवेशकी विधिवत् पूजा कर अन्तमें क्षमा-प्रार्थना एवं शंख आदि वाद्योंकी ध्वनि करनी चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! इस विधिसे

* ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'नारायणी' नामसे श्वेत पुष्पोंसे पूजन करे। रात्रिमें लवणका प्राशन करे। एकाकी शयन करे। प्रातःकाल शिवभक्त ब्राह्मण और सौभाग्यवती स्त्रियोंको यथाशक्ति भोजन कराये, ब्राह्मणको ताम्बूल दे और सुवर्णकी दक्षिणा देकर प्रणाम-क्षमा-प्रार्थना करे। इससे ब्रतकर्ताको शिवलोक प्राप्त होता है।

देवी पार्वतीका पूजन करनेपर जो फल प्राप्त होता है, उसका फल वर्णन करनेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। वह पूर्वोक्त सभी फलोंको प्राप्त करता है, सभी देवताओंके द्वारा पूजित होता है तथा सौ करोड़ कल्पोंतक सभी

कामनाओंका उपभोग करता हुआ अन्तमें शिव-सायुज्य प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह व्रत पहले रम्भाके द्वारा किया गया था, इसलिये यह रम्भाव्रत कहलाता है। (अध्याय २४)

सौभाग्यशयन-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले सौभाग्यशयन-व्रतका वर्णन करता हूँ। जब प्रलयके पूर्वकालमें—‘भूर्भुवः स्वः’ आदि सभी लोक दग्ध हो गये, तब सभी प्राणियोंका सौभाग्य एकत्र होकर वैकुण्ठमें भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। पुनः जब सृष्टि हुई, तब आधा सौभाग्य ब्रह्माजीके पुत्र दक्ष प्रजापतिने पान कर लिया, जिससे उनका रूप-लावण्य, बल और तेज सबसे अधिक हो गया। शेष आधे सौभाग्यसे इक्षु, स्तवराज, निष्पाव (सेम), राजिधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर तथा उसका विकार, कुसुंभ-पुष्प (केसर), कुंकुम तथा लवण—ये आठ पदार्थ उत्पन्न हुए। इनका नाम सौभाग्याष्टक है*।

दक्ष प्रजापतिने पूर्वकालमें जिस सौभाग्यका पान किया, उससे सती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। सभी लोकोंमें उस कन्याका सौन्दर्य अधिक था, इसीसे उसका नाम सती एवं रूपमें अतिशय लालित्य होनेके कारण ललिता पड़ा। त्रैलोक्य-सुन्दरी इस कन्याका विवाह भगवान् शंकरके साथ हुआ। जगन्माता ललितादेवीकी आराधनासे भुक्ति, मुक्ति और स्वर्गका राज्य आदि सब प्राप्त होते हैं।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जगद्वात्री उन भगवतीकी आराधनाका क्या विधान है? उसे

आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको ललितादेवीका भगवान् शंकरके साथ विवाह हुआ। इस दिन पूर्वाह्नमें तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। पञ्चगव्य तथा चन्दनमिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रशेखरकी प्रतिमाको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा उन दोनोंकी पूजा करे। इसके बाद इस प्रकार अङ्ग-पूजा करे—

‘ॐ पाटलायै नमः, ॐ शम्भवे नमः’ ऐसा कहकर पार्वती और शम्भुके चरणोंकी, ‘ॐ त्रियुगायै नमः, ॐ शिवाय नमः’ से दोनोंके गुल्फोंकी, ‘ॐ विजयायै नमः, ॐ भद्रेश्वराय नमः’ से दोनोंके जानुओंकी, ‘ॐ ईशान्यै नमः, ॐ हरिकेशाय नमः’-से कटि-प्रदेशकी, ‘ॐ कोटव्यै नमः, ॐ शूलिने नमः’ से कुक्षियोंकी, ‘ॐ मङ्गलायै नमः, ॐ शर्वाय नमः’ से उदरकी, ‘ॐ उमायै नमः, ॐ रुद्राय नमः’ से कुचद्वयकी, ‘ॐ अनन्तायै नमः, ॐ त्रिपुरघाय नमः’ से दोनोंके हाथोंकी पूजा करे। ‘ॐ भवान्यै नमः, ॐ भवाय नमः’ से दोनोंके कण्ठकी, ‘ॐ गौर्यै नमः, ॐ हराय नमः’-से दोनोंके मुखकी तथा ‘ॐ ललितायै नमः, ॐ सर्वात्मने नमः’ से दोनोंके मस्तककी पूजा करे।

इस प्रकार विधिवत् पूजनकर शिव-पार्वतीके सम्मुख सौभाग्याष्टक स्थापित कर ‘उमामहेश्वरौ

* इक्षवः स्तवराजं च निष्पावा राजिधान्यकम्।

- विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्पं कुंकुमं तथा। लवणं चाष्टमं तत्र सौभाग्याष्टकमुच्यते॥ (उत्तरपर्व २५।९)

‘प्रीयेताम्’ कहकर उनकी प्रीतिके लिये निवेदन करे। उस रात्रिमें गोशृंगोदकका प्राशन कर भूमिपर ही शयन करना चाहिये। प्रातः द्विज-दम्पतिकी वस्त्र-माला तथा अलंकारोंसे पूजाकर सुवर्णनिर्मित गौरी तथा भगवान् शंकरकी प्रतिमाके साथ वह सौभाग्याष्टक ‘ललिता प्रीयताम्’ ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको दे दे।

इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी तृतीयाको पूजा करनी चाहिये। चैत्र आदि बारहों मासोंमें क्रमशः गौके सींगका जल, गोमय, मन्दार-पुष्प, बिल्वपत्र, दही, कुशोदक, दूध, घृत, गोमूत्र, मक्खन, कृष्ण तिल और पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये। ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला, सती तथा उमा—इन बारह नामोंका क्रमशः बारह महीनोंमें दानके समय ‘प्रीयताम्’ कहकर उच्चारण करे। मल्लिका, अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पल, मालती, कुडमल, करवीर, बाण (कचनार या काश), खिला हुआ

पुष्प, कुंकुम और सिंदुवार—ये बारह महीनोंकी पूजाके लिये क्रमशः पुष्प कहे गये हैं। जपाकुसुम, कुसुंभ, मालती तथा कुन्दके पुष्प प्रशस्त माने गये हैं। करवीरका पुष्प भगवतीको सदा ही प्रिय है।

इस प्रकार एक वर्षतक व्रत करके सभी सामग्रियोंसे युक्त उत्तम शव्यापर सुवर्णकी उमा-महेश्वरकी तथा सुवर्णनिर्मित गौ और वृषभकी प्रतिमा स्थापित कर उनकी पूजा कर ब्राह्मणको दे।

इस व्रतके करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और निष्कामभावसे करनेपर नित्यपद प्राप्त होता है। स्त्री, पुरुष अथवा कुमारी जो कोई भी इस सौभाग्यशयन नामक व्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं, वे देवीके अनुग्रहसे अपनी कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। जो इस व्रतका माहात्म्य श्रवण करते हैं, वे दिव्य शरीर प्राप्त कर स्वर्गमें जाते हैं। इस व्रतको कामदेव, चन्द्रमा, कुबेर तथा और भी अन्य देवताओंने किया है। अतः सबको यह व्रत करना चाहिये। (अध्याय २५)

अनन्त-तृतीया तथा रसकल्याणिनी-तृतीया-व्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप सौभाग्य एवं आरोग्य-प्रदायक, शत्रुविनाशक तथा भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक कोई व्रत बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! बहुत पहलेकी बात है, असुरसंहारक भगवान् शंकरने अनेक कथाओंके प्रसंगमें पार्वतीजीसे भगवती ललिताकी आराधनाकी जो विधि बतलायी थी, उसी व्रतका मैं वर्णन कर रहा हूँ, यह व्रत सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला तथा नारियोंके लिये अत्यन्त उत्तम है, इसे आप सावधान होकर सुनें—

वैशाख, भाद्रपद अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको श्वेत सरसोंका उबटन

लगाकर स्नान करे। गोरोचन, मोथा, गोमूत्र, दही, गोमय और चन्दन—इन सबको मिलाकर मस्तकमें तिलक करे, क्योंकि यह तिलक सौभाग्य तथा आरोग्यको देनेवाला है एवं भगवती ललिताको बहुत प्रिय है। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्री रक्तवस्त्र, विधवा गेरु आदिसे रँगा वस्त्र और कुमारी शुक्ल वस्त्र धारणकर पूजा करे। भगवती ललिताको पञ्चगव्य अथवा केवल दुग्धसे स्नान कराकर मधु और चन्दन-पुष्पमिश्रित जलसे स्नान कराना चाहिये। स्नानके अनन्तर श्वेत पुष्प, अनेक प्रकारके फल, धनिया, श्वेत जीरा, नमक, गुड़, दूध तथा घीका

नैवेद्य अर्पण कर श्रेत अक्षत तथा तिलसे ललितादेवीकी अर्चना करे। प्रत्येक शुक्ल पक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी अर्चना करे।

प्रत्येक शुक्ल पक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी मूर्तिके चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्त पूजन करनेका विधान इस प्रकार है—‘वरदायै नमः’ कहकर दोनों चरणोंकी, ‘श्रियै नमः’ कहकर दोनों टखनोंकी, ‘अशोकायै नमः’ कहकर दोनों पिण्डलियोंकी, ‘भवान्यै नमः’ कहकर घुटनोंकी, ‘मङ्गलकारिण्यै नमः’ कहकर ऊरुओंकी, ‘कामदेव्यै नमः’ कहकर कटिकी, ‘पद्मोद्धवायै नमः’ कहकर पेटकी, ‘कामश्रियै नमः’ कहकर वक्षःस्थलकी, ‘सौभाग्यवासिन्यै नमः’ कहकर हाथोंकी, ‘शशिमुखश्रियै नमः’ कहकर बाहुओंकी, ‘कन्दर्पवासिन्यै नमः’ कहकर मुखकी, ‘पार्वत्यै नमः’ कहकर मुसकानकी, ‘गौर्यै नमः’ कहकर नासिकाकी, ‘सुनेत्रायै नमः’ कहकर नेत्रोंकी, ‘तुष्ण्यै नमः’ कहकर ललाटकी, ‘कात्यायन्यै नमः’ कहकर उनके मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर ‘गौर्यै नमः’, ‘सृष्ट्यै नमः’, ‘कान्त्यै नमः’, ‘श्रियै नमः’, ‘रम्भायै नमः’, ‘ललितायै नमः’ तथा ‘वासुदेव्यै नमः’ कहकर देवीके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करे। इसी प्रकार विधिपूर्वक पूजाकर मूर्तिके आगे कुंकुमसे कर्णिकासहित द्वादश-दलयुक्त कमल बनाये। उसके पूर्वभागमें गौरी, अग्निकोणमें अपर्णा, दक्षिणमें भवानी, नैऋत्यमें रुद्राणी, पश्चिममें सौम्या, वायव्यमें मदनवासिनी, उत्तरमें पाटला तथा ईशानकोणमें उमाकी स्थापना करे। मध्यमें लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्टि, मङ्गला, कुमुदा, सती तथा रुद्राणीकी स्थापना कर कर्णिकाके ऊपर भगवती ललिताकी स्थापना करे। तत्पश्चात् गीत और माङ्गलिक वायोंका आयोजन कर श्रेत पुष्प एवं अक्षतसे अर्चना कर उन्हें नमस्कार करे। फिर लाल वस्त्र,

रक्त पुष्पोंकी माला और लाल अङ्गरागसे सुवासिनी स्त्रियोंका पूजन करे तथा उनके सिर (माँग)-में सिंदूर और केसर लगाये, क्योंकि सिंदूर और केसर सतीदेवीको सदा अभीष्ट हैं।

भाद्रपद मासमें उत्पल (नील कमल)-से, आश्विनमें बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)-से, कार्तिकमें कमलसे, मार्गशीर्षमें कुन्द-पुष्पसे, पौषमें कुंकुमसे, माघमें सिंदुवार (निर्गुडी)-से, फाल्गुनमें मालतीसे, चैत्रमें मल्लिका तथा अशोकसे, वैशाखमें गन्धपाटल (गुलाब)-से, ज्येष्ठमें कमल और मन्दारसे, आषाढ़में चम्पक और कमलसे तथा श्रावणमें कदम्ब और मालतीके पुष्पोंसे उमादेवीकी पूजा करनी चाहिये। भाद्रपदसे लेकर श्रावण आदि बारह महीनोंमें क्रमशः गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक, बिल्वपत्र, मदार-पुष्प, गोशृङ्गोदक, पञ्चगव्य और बेलका नैवेद्य अर्पण करे।

प्रत्येक पक्षकी तृतीयामें ब्राह्मण-दम्पतिको निमन्त्रितकर उनमें शिव-पार्वतीकी भावना कर भोजन कराये तथा वस्त्र, माला, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। पुरुषको दो पीताम्बर तथा स्त्रीको पीली साड़ियाँ प्रदान करे। फिर ब्राह्मणी स्त्रीको सौभाग्याष्टक-पदार्थ तथा ब्राह्मणको फल और सुवर्णनिर्मित कमल देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

यथा न देवि देवेशस्त्वां परित्यज्य गच्छति।

तथा मां सम्परित्यज्य पतिर्नान्यत्र गच्छतु॥

(उत्तरपर्व २६। ३०)

‘देवि! जिस प्रकार देवाधिदेव भगवान् महादेव आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते, उसी प्रकार मेरे भी पतिदेव मुझे छोड़कर कहीं न जायँ।’

पुनः कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा और पार्वती—इन नामोंका उच्चारण करके प्रार्थना करे कि आप क्रमशः भाद्रपद आदि मासोंमें प्रसन्न हों।

ब्रतकी समाप्तिमें सुवर्णनिर्मित कमलसहित शश्या-दान करे और चौबीस अथवा बारह द्विज-दम्पतियोंकी पूजा करे। प्रत्येक मासमें ब्राह्मण-दम्पतियोंकी पूजा विधिपूर्वक करे। अपने पूज्य गुरुदेवकी भी पूजा करे।

जो इस अनन्त-तृतीया-ब्रतका विधिपूर्वक पालन करता है, वह सौ कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षोंतक उपवास कर पुष्प और मन्त्र आदिके द्वारा इस ब्रतका अनुष्टान करता है तो उसे भी यही फल प्राप्त होता है। सधवा स्त्री, विधवा अथवा कुमारी जो कोई भी इस ब्रतका पालन करती है, वह भी गौरीकी कृपासे उस फलको प्राप्त कर लेती है। जो इस ब्रतके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह भी उत्तम लोकोंको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब एक ब्रत और बता रहा हूँ, उसका नाम है—रसकल्याणिनी- तृतीया। यह पापोंका नाश करनेवाला है। यह ब्रत माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको किया जाता है। उस दिन प्रातःकाल गो-दुर्घ और तिल-मिश्रित जलसे स्नान करे। फिर देवीकी मूर्तिको मधु और गन्त्रेके रससे स्नान कराये तथा जाती-पुष्पों एवं कुंकुमसे अर्चना करे। अनन्तर पहले दक्षिणाङ्गकी पूजा करे तब वामाङ्गकी। अङ्ग-पूजा इस प्रकार करे—‘ललितायै नमः’ कहकर दोनों चरणों तथा दोनों टखनोंकी, ‘सत्यै नमः’ कहकर पिण्डलियों और घुटनोंकी, ‘श्रियै नमः’ कहकर ऊरुओंकी, ‘मदालसायै नमः’ कहकर कटि-प्रदेशकी, ‘मदनायै नमः’ कहकर उदरकी, ‘मदनवासिन्यै नमः’ कहकर दोनों स्तनोंकी, ‘कुमुदायै नमः’ कहकर गरदनकी, ‘माधव्यै नमः’ कहकर भुजाओंकी तथा भुजाके अग्रभागकी, ‘कमलायै

नमः’ कहकर उपस्थिकी, ‘रुद्राण्यै नमः’ कहकर भू और ललाटकी, ‘शंकरायै नमः’ कहकर पलकोंकी, ‘विश्वासिन्यै नमः’ कहकर मुकुटकी, ‘कान्त्यै नमः’ कहकर केशपाशकी, ‘चक्रावधारिण्यै नमः’ कहकर नेत्रोंकी, ‘पुष्ट्रै नमः’ कहकर मुखकी, ‘उत्कण्ठित्यै नमः’ कहकर कण्ठकी ‘अनन्तायै नमः’ कहकर दोनों कन्धोंकी, ‘रम्भायै नमः’ कहकर वाम बाहुकी, ‘विशोकायै नमः’ कहकर दक्षिण बाहुकी, ‘मन्मथादित्यै नमः’ कहकर हृदयकी पूजा करे, फिर ‘पाटलायै नमः’ कहकर उन्हें बार-बार नमस्कार करे।

इस प्रकार प्रार्थना कर ब्राह्मण-दम्पतिकी गन्ध-माल्यादिसे पूजा कर स्वर्णकमलसहित जलपूर्ण घट प्रदान करे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें पूजन करे और माघ आदि महीनोंमें क्रमशः लवण, गुड़, तेल (राई), मधु, पानक (एक प्रकारका पेय पदार्थ या ताम्बूल), जीरा, दूध, दही, घी, शाक, धनिया और शर्कराका त्याग करे। पूर्वकथित पदार्थोंको उन-उन मासोंमें नहीं खाना चाहिये। प्रत्येक मासमें ब्रतकी समाप्तिपर करवेके ऊपर सफेद चावल, गोद्धिया, मधु, पूरी, घेवर (सेवई), मण्डक (पिण्ठक), दूध, शाक, दही, छः प्रकारका अन्न, भिंडी तथा शाकवर्तिक रखकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। माघ मासमें पूजाके अन्तमें ‘कुमुदा प्रीयताम्’ यह कहना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन आदि महीनोंमें ‘माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, शची, सती, मङ्गला तथा रतिलालसा’ का नाम लेकर ‘प्रीयताम्’ ऐसा कहे। सभी मासोंके ब्रतमें पञ्चगव्यका प्राशन करे और उपवास करे। तदनन्तर माघ मास आनेपर करकपात्रके ऊपर पञ्चरत्नसे युक्त अङ्गुष्ठमात्रकी पार्वतीकी स्वर्णनिर्मित मूर्तिकी स्थापना करे। वस्त्र, आभूषण और अलंकारसे उसे सुशोभित

कर एक बैल और एक गाय 'भवानी प्रीयताम्' यह कहकर ब्राह्मणको प्रदान करे। इस विधिके अनुसार व्रत करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे उसी क्षण मुक्त हो जाता है और हजार वर्षोंतक दुःखी नहीं होता। इस व्रतके करनेसे हजारों अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है। कुमारी, सध्वा, विधवा या

दुर्भगा जो भी हो, वह इस व्रतके करनेपर गौरीलोकमें पूजित होती है। इस विधानको सुनने या इस व्रतको करनेके लिये औरेंको उपदेश देनेसे भी सभी पापोंसे छुटकारा मिलता है और वह पार्वतीके लोकमें निवास करता है।

(अध्याय २६)

आर्द्धनन्दकरी तृतीया-व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, आनन्द प्रदान करनेवाले, पापोंका नाश करनेवाले आर्द्धनन्दकरी तृतीयाव्रतका वर्णन करता हूँ। जब किसी भी महीनेमें शुक्ल पक्षकी तृतीयाको पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ अथवा रोहिणी या मृगशिरा नक्षत्र हो तो उस दिन यह व्रत करना चाहिये। उस दिन कुश और गन्धोदकसे स्नानकर श्वेत चन्दन, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारणकर उत्तम सिंहासनपर शिव-पार्वतीकी प्रतिमा स्थापित करे। सुगन्धित श्वेत पुष्प, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। 'वासुदेव्यै नमः, शंकराय नमः' से गौरी-शंकरके दोनों चरणोंकी, 'शोकविनाशिन्यै नमः, आनन्दाय नमः' से पिण्डलियोंकी, 'रम्भायै नमः, शिवाय नमः' से ऊरुकी, 'आदित्यै नमः, शूलपाण्ये नमः' से कटिकी, 'माधव्यै नमः, भवाय नमः' से नाभिकी, 'आनन्दकारिण्यै नमः, इन्द्रधारिणे नमः' से दोनों स्तनोंकी, 'उत्कण्ठिन्यै नमः, नीलकण्ठाय नमः' से कण्ठकी, 'उत्पलधारिण्यै नमः, रुद्राय नमः' से दोनों हाथोंकी, 'परिरम्भिण्यै नमः, नृत्यशीलाय नमः' से दोनों भुजाओंकी, 'विलासिन्यै नमः, वृषेशाय नमः' से मुखकी, 'सस्परशीलायै नमः, विश्ववक्त्राय नमः' से मुसकानकी, 'मदनवासिन्यै नमः, विश्वधामे नमः' से नेत्रोंकी, 'रतिप्रियायै नमः, ताण्डवेशाय नमः' से भ्रुवोंकी, 'इन्द्राण्यै नमः, हव्यवाहाय

नमः' से ललाटकी तथा 'स्वाहायै नमः, पञ्चशराय नमः' कहकर मुकुटकी पूजा करे। तदनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे पार्वती-परमेश्वरकी प्रार्थना करे—
विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ।
प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

(उत्तरपर्व २७। १३)

'विश्व जिनका शरीर है, जो विश्वके मुख, पाद और हस्तस्वरूप तथा मङ्गलकारक हैं, जिनके मुखपर प्रसन्नता झलकती रहती है, उन पार्वती और परमेश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार पूजनकर मूर्तियोंके आगे अनेक प्रकारके कमल, शङ्ख, स्वस्तिक, चक्र आदिका चित्रण करे। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक, गोश्रुंगोदक, बिल्वपत्र, घड़का जल, खसका जल, यवचूर्णका जल तथा तिलोदकका क्रमशः मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें प्राशन करे, अनन्तर शयन करे। यह प्राशन प्रत्येक पक्षकी द्वितीयाको करना चाहिये। भगवान् उमा-महेश्वरकी पूजाके लिये सर्वत्र श्वेत पुष्पको श्रेष्ठ माना गया है। दानके समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

गौरी मे प्रीयतां नित्यमधनाशाय मङ्गला।
सौभाग्यायास्तु ललिता भवानी सर्वसिद्धये॥

(उत्तरपर्व २७। १९)

'गौरी नित्य मुङ्गपर प्रसन्न रहें, मङ्गला मेरे पापोंका विनाश करें। ललिता मुङ्गे सौभाग्य प्रदान

करें और भवानी मुझे सब सिद्धियाँ प्रदान करें।'

वर्षके अन्तमें लवण तथा गुड़से परिपूर्ण घट, नेत्रपट्ट, चन्दन, दो श्वेत वस्त्र, ईख और विभिन्न फलोंके साथ सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा सपत्नीक ब्राह्मणको दे और 'गौरी मे प्रीयताम्' ऐसा कहे। शश्यादान भी करे।

इस आर्द्धानन्दकरी तृतीयाका व्रत करनेसे पुरुष शिवलोकमें निवास करता है और इस लोकमें भी धन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और सुखको प्राप्ति

करता है। इस व्रतको करनेवालोंको कभी शोक नहीं होता। दोनों पक्षोंमें विधिवत् पूजनसहित इस व्रतको करना चाहिये। ऐसा करनेसे रुद्राणीके लोककी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इस विधानको सुनता और सुनाता है, वह गन्धर्वोंसे पूजित होता हुआ इन्द्रलोकमें निवास करता है। जो कोई स्त्री इस व्रतको करती है, वह संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें अपने पतिके साथ गौरीके लोकमें निवास करती है। (अध्याय २७)

चैत्र, भाद्रपद और माघ शुक्ल तृतीया-व्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब आप चैत्र, भाद्रपद तथा माघके शुक्ल तृतीया-व्रतोंके विषयमें सुनें। इन व्रतोंसे रूप, सौभाग्य तथा उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें आप एक वृत्तान्त सुनें—

भगवती पार्वतीकी जया और विजया नामकी दो सखियाँ थीं। किसी समय मुनि-कन्याओंने उन दोनोंसे पूछा कि आप दोनों तो भगवती पार्वतीके साथ सदा निवास करती हैं। आप सब यह बतायें कि किस दिन, किन उपचारों और मन्त्रोंसे पूजा करनेसे भगवती पार्वती प्रसन्न होती हैं।

इसपर जया बोली—मैं सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाले व्रतका वर्णन करती हूँ। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको प्रातःकाल उठकर दन्तधावन आदि क्रियाओंसे निवृत्त होकर इस व्रतके नियमको ग्रहण करे। कुंकुम, सिंदूर, रक्त वस्त्र, ताम्बूल आदि सौभाग्यके चिह्नोंको धारणकर भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करे। प्रथम अतिशय सुन्दर एक मण्डप बनवाकर उसके मध्यमें एक मनोहर मणिजटित वेदीकी रचना करे। एक हस्त प्रमाणका कुण्ड बनाये, तदनन्तर स्नानकर उत्तम वस्त्र धारणकर देवताओं और पितरोंकी पूजा कर-

देवीके मण्डपमें जाय और पार्वती, ललिता, गौरी, गान्धारी, शांकरी, शिवा, उमा और सती—इन आठ नामोंसे भगवतीकी पूजा करे। कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन आदिका लेपन करे। अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प चढ़ाकर धूप, दीप आदि उपचार अर्पण करे। लड्डू, अनेक प्रकारके अपूप तथा विभिन्न प्रकारके घृतपक्ष नैवेद्य, जीरक, कुंकुम, नमक, ईख और ईखका रस, हल्दी, नारिकेल, आमलक, अनार, कूष्माण्ड, कर्कटी, नारंगी, कटहल, बिजौरा नींबू आदि ऋतुफल भगवतीको निवेदित करे। गृहस्थीके उपकरण—ओखली, सिल, सूप, टोकरी आदि तथा शरीरको अलंकृत करनेकी सामग्रियाँ भी निवेदित करे। शङ्ख, तूर्य, मृदङ्ग आदिके शब्द और उत्तम गीतोंके साथ महोत्सव करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार पार्वतीजीकी पूजा करके कुमारी कन्याएँ सौभाग्यकी अभिलाषासे प्रदोषके समय नये कलशोंमें जल लाकर उससे स्नान करें। पुनः पूर्वोक्त विधिसे भगवतीकी पूजा करे। प्रत्येक प्रहरमें पूजा और घृतसमन्वित तिलोंसे हवन करे। भगवतीके सम्मुख पद्मासन लगाकर रात्रि-जागरण करे। नृत्यसे भगवान् शंकर, गीतसे भगवती पार्वती और भक्तिसे सभी

देवता प्रसन्न होते हैं। ताम्बूल, कुंकुम और उत्तम-उत्तम पुष्प सुवासिनी स्त्रीको अर्पित करे।

प्रातः- स्नानके अनन्तर पार्वतीजीकी पूजा कर गुड़, लवण, कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन आदि द्रव्योंसे यथाशक्ति तुलादान करे और देवीसे क्षमा-प्रार्थना करे। ब्राह्मणों तथा सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराये। नैवेद्यका वितरण करे। इससे उसका कर्म सफल हो जाता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भी चैत्र-तृतीयाकी भाँति ब्रत एवं पूजन करना चाहिये। इसमें सप्तधान्योंसे एक सूपमें उमाकी मूर्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये तथा गोमूत्र-प्राशन करना चाहिये। यह ब्रत उत्तम सौन्दर्य-प्रदायक है।

इसी प्रकार माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको

चैत्र-तृतीयाकी भाँति पूर्वोक्त क्रियाओंको करनेके पश्चात् कुन्द-पुष्पोंसे तुलादान करे तथा चतुर्थीको गणेशजीका भी पूजन करे।

इस विधिसे जो स्त्री ब्रत और तुलादान करती है, वह अपने पतिके साथ इन्द्रलोकमें निवास कर ब्रह्मलोकमें और वहाँसे शिवलोकमें जाती है। इस लोकमें भी वह रूप, सौभाग्य, संतान, धन आदि प्राप्त करती है। उसके वंशमें दुर्भगा कन्या और दुर्विनीत पुत्र कभी भी उत्पन्न नहीं होता। घरमें दारिद्र्य, रोग, शोक आदि नहीं होते। जो कन्या इस ब्रतको करती है तथा ब्राह्मणकी पूजा करती है, वह अभीष्ट वर प्राप्त कर संसारका सुख भोगती है।

(अध्याय २८)

आनन्दर्य-तृतीया-ब्रत

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आपने शुक्ल पक्षके अनेक तृतीया-ब्रतोंको बतलाया। अब आप आनन्दर्य-ब्रतका स्वरूप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! ब्रह्मा, विष्णु और महेशने देवताओंको बतलाया है कि यह आनन्दर्य-ब्रत अत्यन्त गुह्य है, फिर भी मैं आपसे इस ब्रतका वर्णन करता हूँ। इस ब्रतका आरम्भ मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयासे करना चाहिये। द्वितीयके दिन रातमें ब्रतकर तृतीयाको उपवास करे। गन्ध, पुष्प आदिसे उमादेवीका पूजन कर शर्करा और पूरीका नैवेद्य समर्पित करे। स्वयं दहीका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। **प्रातःकाल** उठकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। इस विधिसे जो स्त्री ब्रत करती है, वह सम्पूर्ण अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करती है।

मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयाको भगवती कात्यायनीके पूजनमें नारिकेल समर्पित कर दुग्धका

प्राशन करे। काम-क्रोधका त्याग कर रात्रिमें शयन करे एवं **प्रातः** उठकर ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। ऐसा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

पौष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर गौरीका पूजन करे, लड्डूका नैवेद्य निवेदित करे और घृतका प्राशन कर शयन करे। **प्रातः** उठकर सप्तलीक ब्राह्मणका पूजन करे। इससे महान् यज्ञका फल मिलता है। इसी प्रकार पौषकी कृष्ण-तृतीयाको भगवती पार्वतीकी पूजा करे और नैवेद्य अर्पण करे, रातमें पूरी और गोमयका प्राशन करना चाहिये। **प्रातःकाल** ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इससे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका ‘सुरनायिका’ नामसे पूजन कर खाँड़ और बिल्वका नैवेद्य समर्पित करे। कुशोदकका प्राशन कर जितेन्द्रिय रहे, भूमिपर शयन करे। **प्रातः** ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। इससे

सुवर्णदानका फल मिलता है। इसी प्रकार माघ कृष्ण तृतीयाको पवित्र होकर 'आर्या' नामसे पार्वतीका पूजन कर भक्ष्य पदार्थोंका नैवेद्य समर्पित कर मधुका प्राशन करे। देवीके आगे शयन करे, दूसरे दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इससे वाजपेय-यज्ञका फल मिलता है।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको पवित्र होकर उपवास करे और देवी पार्वतीका 'भद्रा' नामसे पूजन कर कासारका नैवेद्य निवेदित करे। शर्कराका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे सौत्रामणि-यागका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्षकी तृतीयामें 'विशालाक्षी' नामसे भगवती पार्वतीका पूजन कर पूरीका भोग लगाये। जल तथा चावल निवेदित कर भूमिपर शयन करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अग्निष्ठोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको जितेन्द्रिय और पवित्र होकर भगवती पार्वतीका 'श्री' नामसे पूजन करे। वटक (दहीबड़ा)-का नैवेद्य निवेदित करे, बिल्वपत्रका प्राशन करे एवं देवीका ध्यान करता हुआ विश्राम करे। प्रातःकाल भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे, इससे राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार कृष्ण-तृतीयाको देवीकी 'काली' नामसे पूजा करे। अपूपका नैवेद्य निवेदित करे, पीठीका प्राशन करे और रात्रिमें विश्राम करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको जितेन्द्रिय होकर उपवास करे। भगवती पार्वतीकी 'चण्डिका' नामसे पूजा कर मधुक निवेदित करे। श्रीखण्ड-चन्दनसे लिस कर देवीके सम्मुख विश्राम करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करे। इससे

चान्द्रायणब्रतका फल मिलता है। ऐसे ही कृष्ण पक्षकी तृतीयाको विमत्सर होकर उपवास करे। देवीकी 'कालरात्रि' नामसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे पूजा करे। धी तथा जौके आटेसे बना नैवेद्य निवेदित करे। तिलका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अतिकृच्छब्रतका फल प्राप्त होता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर पार्वतीकी पूजा 'शुभा' नामसे करे तथा आम्र-फलका नैवेद्य निवेदित करे एवं आँखलेका प्राशन कर गौरीका ध्यान करते हुए सुखपूर्वक सोये। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे तीर्थयात्राका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार ज्येष्ठ कृष्ण तृतीयाको सुवासिनी स्त्री उपवास करे। 'स्कन्दमाता' की पूजा कर भोग लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन कर देवीके सामने शयन करे। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे कन्यादानका फल प्राप्त होता है।

आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको सतीका पूजन कर दहीका नैवेद्य समर्पित करे। गोशृङ्ख-जलका प्राशन कर शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे, इससे कन्यादानका फल प्राप्त होता है। पुनः आषाढ़ मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयामें कूष्माण्डीका पूजन कर गुड़ और घृतके साथ सत्तूका नैवेद्य अर्पित करे। कुशोदकका प्राशन कर शयन करे। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे गोसहस्र-दानका फल प्राप्त होता है।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर चन्द्रघण्टाका पूजन करे। कुलमाष (कुलथी)-को नैवेद्यरूपमें समर्पित कर पुष्पोदकका प्राशन कर शयन करे, प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। ऐसा करनेसे अभयदानका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रावणकी कृष्ण-तृतीयाको 'रुद्राणी'

नामसे पार्वतीका पूजन कर सिद्ध पिण्ड आदि नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। तिलकुटका प्राशन करे। प्रातः सपलीक ब्राह्मणका पूजन करे, इससे इष्टापूर्त-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयामें 'हिमाद्रिजा' नामसे पार्वतीका पूजन कर गोधूमका नैवेद्य समर्पित करे। श्वेत चन्दन तथा गन्धोदकका प्राशन कर शयन करे। प्रातः सपलीक ब्राह्मणका पूजन करे, इससे सैकड़ों उद्यान लगानेका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद कृष्ण-तृतीयाको दुर्गाकी पूजा करे। गुड़युक्त पिष्ट और फलका नैवेद्य समर्पित करे, गोमूत्रका प्राशन कर शयन करे। प्रातः सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करे। इससे सदावर्तका फल प्राप्त होता है।

आश्विनमें उपवासकर 'नारायणी' नामसे पार्वतीका पूजनकर पक्षान्त्रका नैवेद्य समर्पित करे। रक्त चन्दनका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इससे अग्निहोत्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है। आश्विन कृष्ण-तृतीयाको 'स्वस्ति' नामसे पार्वतीकी पूजा करे। गुड़के साथ शाल्योदन समर्पित करे। कुसुम्भके बीजोंका प्राशन कर रात्रिमें विश्राम करे। प्रातः काल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे गवाहिक (अन्न, घास आदिसे दिनभर गो-सेवा करने)-का फल प्राप्त होता है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको 'स्वाहा' नामसे पार्वतीका पूजन कर घृत, खाँड़ और खीरका नैवेद्य समर्पित करे। कुंकुम, केसरका प्राशन कर शयन करे और प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे एकभुक्त-ब्रतका फल प्राप्त होता है। कार्तिककी कृष्ण-तृतीयाको 'स्वधा' नामसे पार्वतीका पूजन कर मूँगकी खिचड़ीका नैवेद्य समर्पित करे और धीका प्राशन कर रातमें शयन करे। प्रातः सपलीक ब्राह्मणका पूजन करे। इससे नक्तब्रतका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार वर्षभर प्रत्येक मास एवं पक्षकी तृतीयाको ब्रतादि करनेसे ब्रती सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त और पवित्र हो जाता है। ब्रत पूर्ण कर उद्यापन इस प्रकार करना चाहिये—

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवास कर शास्त्र-रीतिसे एक मण्डप बनाकर सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनवाये। उन प्रतिमाओंके नेत्रोंमें मोती और नीलम लगाये। ओष्ठोंमें मूँगा और कानोंमें रत्नकुण्डल पहनाये। भगवान् शंकरको यज्ञोपवीत और पार्वतीजीको हारसे अलंकृत कर क्रमशः श्वेत और रक्त वस्त्र पहनाये। चतुःसम (एक गन्ध-द्रव्य जो कस्तूरी, चन्दन, कुंकुम और कपूरके समान-भागके योगसे बनता है) -से सुशोभित करे। तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप आदि उपचारोंसे मण्डलमें पूजनकर अगरुका हवन करे। इसमें अपराजिता भगवतीकी अर्चना करे। मृत्तिकाका प्राशन कर रातमें जागरण करे। गीत, नृत्य आदि उत्सव करे। सूर्योदयपर्यन्त जप करे। प्रातः उत्तम मण्डल बनाकर मण्डलमें शश्यापर शिव-पार्वतीकी प्रतिमा स्थापित करे। वितान, ध्वज, माला, किंकिणी, दर्पण आदिसे मण्डपको सुशोभित करे, अनन्तर शिव-पार्वतीकी पूजा करे। सपलीक ब्राह्मणको भोजनादिसे संतुष्ट करे। पान निवेदित कर प्रार्थना करे कि 'हे भगवान् शिव-पार्वती! आप दोनों मुझपर प्रसन्न होवें।' इसके बाद उच्छ्वस स्थानको पवित्र कर ले। तत्पश्चात् सुवर्णसे मण्डित सींग तथा चाँदीसे मण्डित खुरवाली, कांस्य-दोहनपात्रसे युक्त, लाल वस्त्रसे आच्छादित, घण्टा आदि आभरणोंसे युक्त पयस्विनी लाल रंगकी गौकी प्रदक्षिणा कर दक्षिणाके साथ जूता, खड़ाऊँ, छाता एवं अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ गुरुको समर्पित करे। पुनः शिव-पार्वतीको प्रणाम कर गुरुके चरणोंमें भी

प्रणाम कर क्षमा माँगे। इस प्रकार इस आनन्दर्थ-व्रतकी समाप्ति करे। जो स्त्री या पुरुष इस व्रतको करता है, वह दिव्य विमानमें बैठकर गर्भर्वलोक, यक्षलोक, देवलोक तथा विष्णुलोकमें जाता है। वहाँ बहुत समयतक उत्तम भोगोंको भोगकर शिवलोकको प्राप्त करता है और फिर भूमिपर जन्म लेकर प्रतापी चक्रवर्ती राजा होता है। व्रत करनेवाली उसकी स्त्री उसकी पटरानी होती

है। जिस प्रकार शिवजीके साथ पार्वती, इन्द्रके साथ शची, वसिष्ठके साथ अरुन्धती, विष्णुके साथ लक्ष्मी, ब्रह्माके साथ सावित्री सदा विराजमान रहती हैं, उसी प्रकार वह नारी भी जन्म-जन्ममें अपने पतिके साथ सुख भोगती है। इस व्रतको करनेवाली नारी पतिसे वियुक्त नहीं होती तथा पुत्र, पौत्र आदि सभी वस्तुओंको प्राप्त करती है। (अध्याय २९)

अक्षय-तृतीयाव्रतके प्रसंगमें धर्म वणिक् का चरित्र

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब आप वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी अक्षय-तृतीयाकी कथा सुनें। इस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, तर्पण आदि जो भी कर्म किये जाते हैं, वे सब अक्षय हो जाते हैं*। सत्ययुगका आरम्भ भी इसी तिथिको हुआ था, इसलिये इसे कृतयुगादि तृतीया भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली एवं सभी सुखोंको प्रदान करनेवाली है। इस सम्बन्धमें एक आख्यान प्रसिद्ध है, आप उसे सुनें—

शाकल नगरमें प्रिय और सत्यवादी, देवता और ब्राह्मणोंका पूजक धर्म नामक एक धर्मात्मा वणिक् रहता था। उसने एक दिन कथाप्रसंगमें सुना कि यदि वैशाख शुक्लकी तृतीया रोहिणी नक्षत्र एवं बुधवारसे युक्त हो तो उस दिनका दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। यह सुनकर उसने अक्षय तृतीयाके दिन गङ्गामें अपने पितरोंका तर्पण किया और घर आकर जल और अन्नसे पूर्ण घट, सत्तू, दही, चना, गेहूँ, गुड़, ईख, खाँड़ और सुवर्ण श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दान दिया। कुटुम्बमें आसक्त

रहनेवाली उसकी स्त्री उसे बार-बार रोकती थी, किंतु वह अक्षय तृतीयाको अवश्य ही दान करता था। कुछ समयके बाद उसका देहान्त हो गया। अगले जन्ममें उसका जन्म कुशावती (द्वारका) नगरीमें हुआ और वह वहाँका राजा बना। दानके प्रभावसे उसके ऐश्वर्य और धनकी कोई सीमा न थी। उसने पुनः बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ किये। वह ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण आदि देता रहता और दीन-दुःखियोंको भी संतुष्ट करता, किंतु उसके धनका कभी ह्रास नहीं होता। यह उसके पूर्वजन्ममें अक्षय तृतीयाके दिन दान देनेका फल था। महाराज ! इस तृतीयाका फल अक्षय है। अब इस व्रतका विधान सुनें—सभी रस, अन्न, शहद, जलसे भरे घड़े, तरह-तरहके फल, जूता आदि तथा ग्रीष्म-ऋतुमें उपयुक्त सामग्री, अन्न, गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र जो पदार्थ अपनेको प्रिय और उत्तम लगें, उन्हें ब्राह्मणोंको देना चाहिये। यह अतिशय रहस्यकी बात मैंने आपको बतलायी। इस तिथिमें किये गये कर्मका क्षय नहीं होता, इसीलिये मुनियोंने इसका नाम अक्षय-तृतीया रखा है। (अध्याय ३०—३३)

* मत्स्यपुराणके अध्याय ६५ में इसके विषयमें एक दूसरी कथा आती है, जिसमें कहा गया है कि 'इस दिन अक्षतसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनेसे वे विशेष प्रसन्न होते हैं और उसकी संतति भी अक्षय बनी रहती है—

अक्षया संततिस्तस्य तस्यां सुकृतमक्षयम् । अक्षतैः पूज्यते विष्णुस्तेन साक्षया स्मृता ।

शान्तिव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं पञ्चमी-कल्पमें शान्तिव्रतका वर्णन करता हूँ। इसके करनेसे गृहस्थोंको सब प्रकारकी शान्ति प्राप्त होती है। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीसे लेकर एक वर्षपर्यन्त खट्टे पदार्थोंका भोजन न करे। नक्तव्रत कर शेषनागके ऊपर स्थित भगवान् विष्णुका पूजन करे और निम्रलिखित मन्त्रोंसे उनके अङ्गोंकी पूजा करे—

‘ॐ अनन्ताय नमः, पादौ पूजयामि’ से भगवान् विष्णुके दोनों पैरोंकी, ‘ॐ धृतराष्ट्राय नमः, कटिं पूजयामि’ से कटिप्रदेशकी, ‘ॐ तक्षकाय नमः, उदरं पूजयामि’ से उदरदेशकी, ‘ॐ कर्कोटकाय नमः, उरः पूजयामि’ से हृदयकी, ‘ॐ पद्माय नमः, कण्ठौ पूजयामि’ से दोनों कानोंकी,

‘ॐ महापद्माय नमः, दोर्युं पूजयामि’ से दोनों भुजाओंकी, ‘ॐ शङ्खपालाय नमः, वक्षः पूजयामि’ से वक्षःस्थलकी तथा ‘ॐ कुलिकाय नमः, शिरः पूजयामि’ से उनके मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर मौन हो भगवान् विष्णुको दूधसे स्नान कराये, फिर दुग्ध और तिलोंसे हवन करे। वर्ष पूरा होनेपर नारायण तथा शेषनागकी सुवर्णप्रतिमा बनवाकर उनका पूजन कर ब्राह्मणको दान दे, साथ ही उसे सवत्सा गौ, पायससे पूर्ण कांस्यपात्र, दो वस्त्र और यथाशक्ति सुवर्ण भी प्रदान करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराकर व्रत समाप्त करे। जो व्यक्ति इस व्रतको भक्तिपूर्वक करता है, वह नित्य शान्ति प्राप्त करता है और उसे नागोंका कभी भी कोई भय नहीं रहता। (अध्याय ३४)

सरस्वतीव्रतका विधान और फल

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! किस व्रतके करनेसे वाणी मधुर होती है ? प्राणीको सौभाग्य प्राप्त होता है ? विद्यामें अतिकौशल प्राप्त होता है ? पति-पत्नीका और बन्धुजनोंका कभी वियोग नहीं होता तथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है ? उसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। इन फलोंको देनेवाले सारस्वतव्रतका विधान आप सुनें। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे भी भगवती सरस्वती प्रसन्न हो जाती हैं। इस व्रतको वत्सरारम्भमें चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको आदित्यवारसे प्रारम्भ करना चाहिये। इस दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर गन्ध, श्वेत माला, शुक्ल

अक्षत और श्वेत वस्त्रादि उपचारोंसे, वीणा, अक्षमाला, कमण्डलु तथा पुस्तक धारण की हुई एवं सभी अलंकारोंसे अलंकृत भगवती गायत्रीका पूजन करे। फिर हाथ जोड़कर इन मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—
यथा तु देवि भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
त्वां परित्यज्य नो तिष्ठेत् तथा भव वरप्रदा ॥
वेदशास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत् ।
वाहितं यत् त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥
लक्ष्मीर्मेधा वरा रिष्टिर्गोरी तुष्टिः प्रभा मतिः ।
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मा सरस्वति ॥

(उत्तरपर्व ३५। ७—९)

‘देवि ! जिस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा आपका परित्यागकर कभी अलग नहीं रहते, उसी प्रकार

अक्षतैस्तु नरा स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षतान् ॥ (मत्स्यपुराण ६५। ४)

(सामान्यतया अक्षतके द्वारा विष्णुपूजन नियिष्ठ है, पर केवल इस दिन अक्षतसे उनकी पूजा की जाती है। अन्यत्र अक्षतके स्थानपर सफेद तिलका विधान है।)

आप हमें भी वर दीजिये कि हमारा भी कभी अपने परिवारके लोगोंसे वियोग न हो। हे देवि ! वेदादि सम्पूर्ण शास्त्र तथा नृत्य-गीतादि जो भी विद्याएँ हैं, वे सभी आपके अधिष्ठानमें ही रहती हैं, वे सभी मुझे प्राप्त हों। हे भगवती सरस्वती देवि ! आप अपनी—लक्ष्मी, मेधा, वरा, रिषि, गौरी, तुष्टि, प्रभा तथा मति—इन आठ मूर्तियोंके द्वारा मेरी रक्षा करें।'

इस विधिसे प्रार्थनाकर मौन होकर भोजन करे। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको सुवासिनी स्त्रियोंका भी पूजन करे और उन्हें तिल तथा चावल, घृतपात्र, दुग्ध एवं सुवर्ण प्रदान करे और देते समय 'गायत्री प्रीयताम्' ऐसा उच्चारण करे। सायंकाल

मौन रहे। इस तरह वर्षभर व्रत करे। व्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मणको भोजनके लिये पूर्णपात्रमें चावल भरकर प्रदान करे। साथ ही दो श्वेत वस्त्र, सवत्सा गौ, चन्दन आदि भी दे। देवीको निवेदित किये गये वितान, घण्टा, अन्न आदि पदार्थ भी ब्राह्मणको दान कर दे। पूज्य गुरुका भी वस्त्र, माल्य तथा धन-धान्यसे पूजन करे। इस विधिसे जो पुरुष सारस्वतव्रत करता है, वह विद्वान्, धनवान् और मधुर कण्ठवाला होता है। भगवती सरस्वतीकी कृपासे वह वेदव्यासके समान कवि हो जाता है। नारी भी यदि इस व्रतका पालन करे तो उसे भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। (अध्याय ३५-३६)

श्रीपञ्चमीव्रत-कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! तीनों लोकोंमें लक्ष्मी दुर्लभ है; पर व्रत, होम, तप, जप, नमस्कार आदि किस कर्मके करनेसे स्थिर लक्ष्मी प्राप्त होती है ? आप सब कुछ जाननेवाले हैं, कृपाकर उसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! सुना जाता है कि प्राचीन कालमें भृगुमुनिकी 'ख्याति' नामकी स्त्रीसे लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ। भृगुने विष्णुभगवान्‌के साथ लक्ष्मीका विवाह कर दिया। लक्ष्मी भी संसारके पति भगवान् विष्णुको वरके रूपमें प्राप्तकर अपनेको कृतार्थ मानकर अपने कृपाकटाक्षसे सम्पूर्ण जगत्‌को आनन्दित करने लगीं। उन्होंसे प्रजाओंमें क्षेम और सुभिक्ष होने लगा। सभी उपद्रव शान्त हो गये। ब्राह्मण हवन करने लगे, देवगण हविष्य-भोजन प्राप्त करने लगे और राजा प्रसन्नतापूर्वक चारों वर्णोंकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार देवगणोंको अतीव आनन्दमें निमग्न देखकर विरोचन आदि दैत्यगण लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये तपस्या एवं यज्ञ-यागादि करने लगे।

वे सब भी सदाचारी और धार्मिक हो गये। फिर दैत्योंके पराक्रमसे सारा संसार आक्रान्त हो गया।

कुछ समय बाद देवताओंको लक्ष्मीका मद हो गया, उन लोगोंके शौच, पवित्रता, सत्यता और सभी उत्तम आचार नष्ट होने लगे। देवताओंको सत्य आदि शील तथा पवित्रतासे रहित देखकर लक्ष्मी दैत्योंके पास चली गयीं और देवगण श्रीविहीन हो गये। दैत्योंको भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होते ही बहुत गर्व हो गया और दैत्यगण परस्पर कहने लगे कि 'मैं ही देवता हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही ब्राह्मण हूँ, सम्पूर्ण जगत् मेरा ही स्वरूप है, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि सब मैं ही हूँ।' इस प्रकार अतिशय अहंकारयुक्त हो वे अनेक प्रकारका अनर्थ करने लगे। अहंकारमति दैत्योंकी भी यह दशा देखकर व्याकुल हो वह भृगुकन्या भगवती लक्ष्मी क्षीरसागरमें प्रविष्ट हो गयीं। क्षीरसागरमें लक्ष्मीके प्रवेश करनेसे तीनों लोक श्रीविहीन होकर अत्यन्त निस्तेज-से हो गये।

देवराज इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिसे पूछा—
महाराज ! कोई ऐसा व्रत बतायें, जिसका अनुष्ठान
करनेसे पुनः स्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति हो जाय।

देवगुरु बृहस्पति बोले—देवेन्द्र ! मैं इस सम्बन्धमें
आपको अत्यन्त गोपनीय श्रीपञ्चमीव्रतका विधान
बतलाता हूँ। इसके करनेसे आपका अभीष्ट सिद्ध
होगा। ऐसा कहकर देवगुरु बृहस्पतिने देवराज
इन्द्रको श्रीपञ्चमीव्रतकी साङ्घोपाङ्ग विधि बतलायी।
तदनुसार इन्द्रने उसका विधिवत् आचरण किया।
इन्द्रको व्रत करते देखकर विष्णु आदि सभी
देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सिद्ध,
विद्याधर, नाग, ब्राह्मण, ऋषिगण तथा राजागण भी
यह व्रत करने लगे। कुछ कालके अनन्तर व्रत
समाप्तकर उत्तम बल और तेज पाकर सबने विचार
किया कि समुद्रको मथकर लक्ष्मी और अमृतको
ग्रहण करना चाहिये। यह विचारकर देवता और
असुर मन्दरपर्वतको मथानी और वासुकिनागको
रस्सी बनाकर समुद्र-मन्थन करने लगे। फलस्वरूप
सर्वप्रथम शीतल किरणोंवाले अति उज्ज्वल चन्द्रमा
प्रकट हुए, फिर देवी लक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ।
लक्ष्मीके कृपाकटाक्षको पाकर सभी देवता और
दैत्य परम आनन्दित हो गये। भगवती लक्ष्मीने
भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय ग्रहण किया,
भगवान् विष्णुने इस व्रतको किया था, फलस्वरूप
लक्ष्मीने इनका वरण किया। इन्द्रने राजस-भावसे
व्रत किया था, इसलिये उन्होंने त्रिभुवनका राज्य
प्राप्त किया। दैत्योंने तामस-भावसे व्रत किया था,
इसलिये ऐश्वर्य पाकर भी वे ऐश्वर्यहीन हो गये।
महाराज ! इस प्रकार इस व्रतके प्रभावसे श्रीविहीन
सम्पूर्ण जगत् फिरसे श्रीयुक्त हो गया।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—यदूत्तम ! यह
श्रीपञ्चमीव्रत किस विधिसे किया जाता है, कबसे
यह प्रारम्भ होता है और इसकी पारणा कब होती
है ? आप इसे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! यह व्रत
मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको करना
चाहिये। प्रातः उठकर शौच, दन्तधावन आदिसे
निवृत्त हो व्रतके नियमको धारण करे। फिर
नदीमें अथवा घरपर ही स्नान करे। दो वस्त्र
धारण कर देवता और पितरोंका पूजन-तर्पण कर
घर आकर लक्ष्मीका पूजन करे। सुवर्ण, चाँदी,
ताम्र, आरकूट, काष्ठकी अथवा चित्रपटमें भगवती
लक्ष्मीकी ऐसी प्रतिमा बनाये जो कमलपर
विराजमान हो, हाथमें कमल-पुष्प धारण किये
हो, सभी आभूषणोंसे अलंकृत हो, उनके लोचन
कमलके समान हों और जिन्हें चार श्वेत हाथी
सुवर्णके कलशोंके जलसे स्नान करा रहे हों। इस
प्रकारकी भगवती लक्ष्मीकी प्रतिमाकी निम्नलिखित
नाम-मन्त्रोंसे ऋतुकालोद्भूत पुष्पोंद्वारा अङ्गपूजा करे—

‘ॐ चपलायै नमः, पादौ पूजयामि’,
‘ॐ चञ्चलायै नमः, जानुनी पूजयामि’,
‘ॐ कमलवासिन्यै नमः, कटिं पूजयामि’,
‘ॐ ख्यात्यै नमः, नाभिं पूजयामि’,
‘ॐ मन्मथवासिन्यै नमः, स्तनौ पूजयामि’,
‘ॐ ललितायै नमः, भुजद्वयं पूजयामि’,
‘ॐ उत्कण्ठितायै नमः, कण्ठं पूजयामि’,
‘ॐ माधव्यै नमः, मुखमण्डलं पूजयामि’ तथा
‘ॐ श्रियै नमः, शिरः पूजयामि’ आदि नाम-मन्त्रोंसे
पैरसे लेकर सिरतक पूजा करे। इस प्रकार प्रत्येक
अङ्गोंकी भक्तिपूर्वक पूजाकर अंकुरित विविध धान्य
और अनेक प्रकारके फल नैवेद्यमें देवीको निवेदित
करे। तदनन्तर पुष्प और कुंकुम आदिसे सुवासिनी
स्त्रियोंका पूजन कर उन्हें मधुर भोजन कराये और
प्रणाम कर बिदा करे। एक प्रस्थ (सेरभर) चावल
और घृतसे भरा पात्र ब्राह्मणको देकर ‘श्रीशः
सम्प्रीयताम्’ इस प्रकार कहकर प्रार्थना करे। इस
तरह पूजन कर मौन हो भोजन करे। प्रतिमास यह
व्रत करे और श्री, लक्ष्मी, कमला, सम्पत्, रमा,

नारायणी, पद्मा, धृति, स्थिति, पुष्टि, ऋद्धि तथा सिद्धि—इन बारह नामोंसे क्रमशः बारह महीनोंमें भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे और पूजनके अन्तमें ‘प्रीयताम्’ ऐसा उच्चारण करे। बारहवें महीनेकी पञ्चमीको वस्त्रसे उत्तम मण्डप बनाकर गन्ध-पुष्पादिसे उसे अलंकृतकर उसके मध्य शव्यापर उपकरणोंसहित भगवती लक्ष्मीकी मूर्ति स्थापित करे। आठ मोती, नेत्रपट्ट, सप्तधान्य, खड़ाऊँ, जूता, छाता, अनेक प्रकारके पात्र और आसन वहाँ उपस्थापित करे। तदनन्तर लक्ष्मीका पूजन कर वेदवेत्ता और सदाचारसम्पन्न ब्राह्मणको सवत्सा गौसहित यह सब सामग्री प्रदान करे। यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। अन्तमें भगवती लक्ष्मीसे ऋद्धिकी कामनासे इस प्रकार प्रार्थना करे—

क्षीराब्धिमथनोद्भूते विष्णोर्वक्षःस्थलालये ।
सर्वकामप्रदे देवि ऋद्धिं यच्छ नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ३७। ५४)

‘हे देवि! आप क्षीरसागरके मन्थनसे उद्भूत हैं, भगवान् विष्णुका वक्षःस्थल आपका अधिष्ठान है, आप सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाली हैं, अतः मुझे भी आप ऋद्धि प्रदान करें, आपको नमस्कार है।’

जो इस विधिसे श्रीपञ्चमीका व्रत करता है, वह अपने इक्कीस कुलोंके साथ लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। जो सौभाग्यवती स्त्री इस व्रतको करती है, वह सौभाग्य, रूप, संतान और धनसे सम्पन्न हो जाती है तथा पतिको अत्यन्त प्रिय होती है।

(अध्याय ३७)

विशोक-षष्ठी-व्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन! आपके श्रीमुखसे पञ्चमी-ब्रतोंका विधान सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। अब आप षष्ठीब्रतोंका विधान बतलायें। मैंने सुना है कि षष्ठीको भगवान् सूर्यकी पूजा करनेसे सभी व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं और सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! सर्वप्रथम मैं विशोक-षष्ठी-ब्रतका विधान बतलाता हूँ। इस तिथिको उपवास करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको प्रभातकालमें उठकर दन्तधावन करे, कृष्ण तिलोंसे स्नान आदिद्वारा पवित्र हो कृशर (खिचड़ी)-का भोजन करे, रात्रिमें ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे। दूसरे दिन षष्ठीको प्रभातकालमें उठकर स्नान आदिसे पवित्र हो जाय। सुवर्णका एक कमल बनाये, उसे सूर्यनारायणका स्वरूप मानकर रक्तचन्दन, रक्तकरवीर-पुष्प और रक्तवर्णके दो वस्त्र, धूप,

दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन करे। तदनन्तर हाथ जोड़कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

यथा विशोकं भवनं त्वयैवादित्य सर्वदा ।
तथा विशोकता मे स्यात् त्वद्वक्तिर्जन्मजन्मनि ॥

(उत्तरपर्व ३८। ७)

‘हे आदित्यदेव! जैसे आपने अपना स्थान शोकसे रहित बनाया है, वैसे ही मेरा भी भवन सदा शोकरहित हो तथा जन्म-जन्ममें मेरी आपमें भक्ति बनी रहे।’

इस विधिसे पूजनकर षष्ठीको ब्राह्मण-भोजन कराये। गोमूत्रका प्राशन करे। फिर गुड़, अन्न, उत्तम दो वस्त्र और सुवर्ण ब्राह्मणको प्रदान करे। सप्तमीको मौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे तथा पुराण भी श्रवण करे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त दोनों पक्षोंकी षष्ठीका व्रतकर अन्तमें शुक्ल सप्तमीको सुवर्ण-कमलयुक्त कलश, श्रेष्ठ सामग्रियोंसे युक्त उत्तम शव्या और पयस्विनी

कपिला गौ ब्राह्मणको दान करे। इस विधिसे कृपणता छोड़कर जो इस व्रतको करता है, वह करोड़ों वर्षोंसे भी अधिक समयतक शोक, रोग, दुर्गति आदिसे मुक्त रहता है। यदि किसी कामनासे यह व्रत किया जाय तो उसकी वह कामना

अवश्य पूर्ण होती है और यदि निष्काम होकर व्रत करे तो उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो इस शोक-विनाशिनी विशोक-षष्ठीको एक बार भी उपवास करता है, वह कभी दुःखी नहीं होता और इन्द्रलोकमें निवास करता है। (अध्याय ३८)

कमलषष्ठी (फलषष्ठी)-व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं कमल-षष्ठी नामक व्रतको बतलाता हूँ, जिसमें उपवास करनेसे व्यक्ति पापमुक्त होकर स्वर्गको प्राप्ति करता है। मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको नियतव्रत होकर षष्ठीको उपवास करे। कृष्ण सप्तमीको सुवर्णकमल, सुवर्णफल तथा शर्कराके साथ कलश ब्राह्मणको प्रदान करे। इसी विधिसे एक वर्षपर्यन्त दोनों पक्षोंमें प्रत्येक षष्ठीको उपवास करे। भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा तथा वरुण—इन बारह नामोंसे क्रमशः बारह महीनोंमें पूजन करे और 'भानुर्मे प्रीयताम्', 'अर्को मे प्रीयताम्' इस प्रकार प्रतिमास सप्तमीको दान और षष्ठी-पूजन आदिके समय उच्चारण करे। व्रतके अन्तमें ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजाकर वस्त्र-आभूषण, शर्करापूर्ण कलश और

सुवर्णकमल तथा स्वर्णफल ब्राह्मणको देकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर व्रत पूर्ण करे—
यथा फलकरो मासस्त्वद्वक्तानां सदा रवे।
तथानन्तफलावासिरस्तु जन्मनि जन्मनि॥

(उत्तरपर्व ३९। ११)

'हे सूर्यदेव ! जिस प्रकार आपके भक्तोंके लिये यह मास-व्रत फलदायी होता है, उसी प्रकार मुझे भी जन्म-जन्ममें अनन्त फलोंकी प्राप्ति होती रहे।'

इस अनन्त फल देनेवाली फलषष्ठी-व्रतको जो करता है, वह सुरापानादि सभी पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें सम्मानित होता है और अपने आगे-पीछेकी इककीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है। जो इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह भी कल्याणका भागी होता है।*

(अध्याय ३९)

मन्दारषष्ठी-व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले मन्दारषष्ठी नामक व्रतका विधान बतलाता हूँ। व्रती माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको स्वल्प भोजन कर नियमपूर्वक रहे और षष्ठीको उपवास करे। ब्राह्मणोंका पूजन करे तथा मन्दारका पुष्प भक्षण कर रात्रिमें शयन करे। षष्ठीको प्रातः उठकर स्नानादि करे तथा ताप्रपात्रमें काले तिलोंसे एक अष्टदल कमल बनाये।

उसपर हाथमें कमल लिये भगवान् सूर्यकी सुवर्णकी प्रतिमा स्थापित करे। आठ सोनेके अर्कपुष्पोंसे तथा गन्धादि उपचारोंसे अष्टदल-कमलके दलोंमें पूर्वादि क्रमसे भगवान् सूर्यके नाम-मन्त्रोंद्वारा इस प्रकार पूजा करे—'ॐ भास्कराय नमः' से पूर्व दिशामें, 'ॐ सूर्याय नमः' से अग्निकोणमें, 'ॐ अर्काय नमः' से दक्षिणमें, 'ॐ अर्यम्णो नमः' से नैऋत्यमें, 'ॐ वसुधात्रे नमः' से पश्चिममें, 'ॐ चण्डभानवे नमः' से वायव्यमें,

* मत्स्यपुराणके अध्याय ७६ में फलसप्तमी नामसे इसी व्रतका वर्णन हुआ है।



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

‘ॐ पूष्णो नमः’ से उत्तरमें, ‘ॐ आनन्दाय नमः’ से ईशानकोणमें तथा उस कमलकी मध्यवर्ती कर्णिकामें ‘ॐ सर्वात्मने पुरुषाय नमः’ यह कहकर शुक्ल वस्त्र, नैवेद्य तथा माल्य एवं फलादि सभी उपचारोंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। सप्तमीको पूर्वाभिमुख मौन होकर तेल तथा लवण भक्षण करे। इस प्रकार प्रत्येक मासकी शुक्ल-षष्ठीको व्रतकर सप्तमीको पारण करे। वर्षके अन्तमें वही मूर्ति कलशके ऊपर स्थापित कर यथाशक्ति वस्त्र, गौ, सुवर्ण आदि ब्राह्मणको प्रदान करे और दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च।
त्वं च वै तारयस्वास्मानस्मात् संसारकर्दमात्॥
(उत्तरपर्व ४०। ११)

‘हे मन्दारभवन, मन्दारनाथ भगवान् सूर्य! आप हमलोगोंका इस संसाररूपी पङ्क्षसे उद्धार कर दें, आपको नमस्कार है।’

इस विधिसे जो मन्दारषष्ठीका व्रत करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर एक कल्पतक सुखपूर्वक स्वर्गमें निवास करता है और जो इस विधानको पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है*। (अध्याय ४०)

ललिताषष्ठी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको यह व्रत होता है। उस दिन उत्तम रूप, सौभाग्य और संतानकी इच्छावाली स्त्रीको चाहिये कि वह नदीमें स्नान करे और एक नये बाँसके पात्रमें बालू लेकर घर आये। फिर वस्त्रका मण्डप बनाकर उसमें दीप प्रज्वलित करे। मण्डपमें वह बाँसका बालुकामय पात्र स्थापित कर उसमें बालुकामयी, तपोवन-निवासिनी भगवती ललितागौरीका ध्यानकर पूजन करे और उस दिन उपवास रहे, तदनन्तर चम्पक, करवीर, अशोक, मालती, नीलोत्पल, केतकी तथा तगर-पुष्प—इनमेंसे प्रत्येककी १०८ या २८ पुष्पाञ्जलि अक्षतोंके साथ निम्नलिखित मन्त्रसे दे—

ललिते ललिते देवि सौख्यसौभाग्यदायिनि।
या सौभाग्यसमुत्पन्ना तस्यै देव्यै नमो नमः॥

(उत्तरपर्व ४१। ८)

इस प्रकारसे पूजन करनेके पश्चात् तरह-तरहके सोहाल, मोदक आदि पक्कान, कूष्माण्ड, ककड़ी,

बिल्व, करेला, बैगन, करंज आदि फल भगवती ललिताको निवेदित करे और धूप, दीप, वस्त्राभूषण आदि भी समर्पित करे। इस विधिसे पूजनकर रात्रिको जागरण करे तथा गीत-नृत्यादि उत्सव करे। दूसरे दिन प्रातः गीत-वाद्यसहित मूर्तिको नदीके समीप ले जाय। वहाँ पूजनकर पूजन-सामग्री ब्राह्मणको निवेदित कर दे और भगवती ललिताकी बालुकामयी मूर्तिको नदीमें विसर्जित कर दे। घर आकर हवन करे और देवता, पितर, मनुष्य तथा सुवासिनी स्त्रियोंका पूजन करे। पंद्रह कुमारी कन्याओंको और उतने ही ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके स्वादिष्ट भोजनोंसे संतुष्ट कर दक्षिणा प्रदान करे और ‘ललिता प्रीतियुक्ता अस्तु’ यह कहकर उन्हें बिदा करे। जो पुरुष अथवा स्त्री इस ललिताषष्ठी-व्रतको करते हैं, उन्हें संसारमें कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। व्रत करनेवाली स्त्री बहुत कालपर्यन्त सुख-सौभाग्यसे सम्पन्न रहकर अन्तमें गौरीलोकमें निवास करती है। (अध्याय ४१)

* मत्स्यपुराणके अध्याय ७९ में मन्दारसप्तमी नामसे इसी व्रतका वर्णन हुआ है।